"वे नाम" सुरति धारा

वे नाम सुरति धारा/सहज सत्त मार्ग के अनुयाई इन 10 वचनों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

दस वचन

1. सदा सच बोलना।
2. सतगुरू से प्रामर्श।
3. एक नारी, सदा ब्रह्मचारी।
4. नेकी की कमाई से निर्वाह।
5. जुए व चोरी से कोसों दूर।
6. शराब व नशों से सख़्त परहेज़।
7. मांस से सख़्त परहेज़।
8. जगत में सभी से प्रेम व मैत्री भाव (वासुदेव कुटुम्बकम्)।
9. मन माया से परे निज (हंसा रुप) को जानें।
10. ईच्छा रहित भक्ति।

प्रथम संस्करण अप्रैल 2017

आरक्षित सभी अधिकारों की प्रतियां

(आत्मन कोष)

आश्रम :– 15–गार्डन एवेन्यू, तालाब तिल्लो,
जम्मू जे एण्ड के (भारत)–180002
मोबाईल : 9419284038, यू ट्यूब लिंक : vainaam surtidhara

अमर सागर

आत्मन कोष

अमर सागर

सतगुरू सत्तनाम

साहिब (सतपुरूष) साक्षात्कार

सत्यपुरूष एक वृक्ष हैं, निरंझन उन के डाल।
तीन देव शाखें भई, पात–फूल संसार।

आरती
साहिब सतगुरू जी की

जय सतगुरू देवा – दाता जय सतगुरू देवा
सब कुछ तुम पर अर्पण – 2, करूं हर पल सेवा –साहिबा –

1 जो ध्यावे सुख पावे , दुख मिटे तन का – साहिबा –
वचन सुनत तम नासे – 2, सब संशय मन का – साहिबा –
2 मात पिता तुम मेरे, शरण पड़ी तुमरे – साहिबा –
तुम बिन और ना दूजा – 2, आस करूं मैं जिसकी – साहिबा –
3 गुरू चरणामृत निर्मल, सब दोषक हारी – साहिबा –
शब्द सुनत भ्रम नासे – 2, सब बंधन टारे – साहिबा –
4 तन मन धन सब अर्पण, गुरू चरणन कीजे – साहिबा –
सतगुरू देव परम पद – 2, मौक्ष गति लीजे – साहिबा –
5 काम क्रौध मद्य लौभ, तृष्णा अति भारी – साहिबा –
सुरत सब्द को देकर, सार सब्द को देकर, संत सब संहारें – साहिबा –
6 ध्यानी योगी ज्ञानी, सब हरि गुण गावें – साहिबा –
सब का सार बता कर – 2, संत मार्ग लावें – साहिबा –
7 मन माया निज घेरा, जीव बहे सारे – साहिबा –
सुरत सब्द को देकर, सुरति जहाज चढ़ा कर, संत पल में तारें – साहिबा –
8 संत बिन दान ना होवे, साहिब ब्ख़ान करें – साहिबा –
संत बिन ज्ञान ना होवे, संत बिन मौक्ष ना होवे, यत्न बहुत कीने – साहिबा –
9 दीन बन्धु दुख हर्ता, तुम रक्षक मेरे – साहिबा –
विषय विकार मिटाओ – 2, तुम दर्शक मेरे – साहिबा –
10 सुरत कमल के दाता, तुम रक्षक मेरे – साहिबा –
मौक्ष पद दिलाओ – 2 , तुम कर्ता मेरे – साहिबा –

जय सतगुरू देवा – दाता जय सतगुरू देवा
सब कुछ तुम पर अर्पण – 2, करूं हर पल सेवा – साहिबा –

आरती
निरालम्भ राम जी की

जय राम जय राम जय राम जी – जय राम जय राम जय राम जी – २
निरालम्भ राम निरालम्भ राम निरालम्भ राम जी–जय राम जय राम जय राम जी

1 चौथे लोक के प्यारे राम, न्यारे राम जी – 2 जय राम
2 सांचा नाम सांचा नाम, तेरो नाम जी – 2 जय राम
3 तुझ में राम मुझ में राम, सब में राम जी – 2 जय राम
4 निरालम्भ राम निरालम्भ राम निरालम्भ राम जी – 2 जय राम
5 तेरो नाम तेरो नाम, प्यारा नाम जी – 2 जय राम
6 उपर राम नीचे राम, निरालम्भ राम जी – 2 जय राम
7 मेरे राम तेरे राम, सब के राम जी – 2 जय राम
8 निरालम्भ राम निरालम्भ राम निरालम्भ राम जी – 2 जय राम
9 गाओ राम सुनो राम, चौथे राम जी – 2 जय राम
10 मन कारण सुरति नहीं जगती, बिन सुरति नहीं राम – 2 जय राम
11 निजधाम के प्यारे राम, न्यारे राम जी – 2 जय राम
12 निरालम्भ राम निरालम्भ राम निरालम्भ राम जी – 2 जय राम
13 सुरति निरति स्वांस में डालो, संग में सार नाम – 2 जय राम
14 सतगुरू सूं भेद को जानो, स्वांस स्वांस में नाम – 2 जय राम
15 बिन सुरति आत्म नहीं जगती, बिन आत्म नहीं राम – 2 जय राम
16 आठों पहर सुरति में रहना, संग में प्यारा नाम – 2 जय राम

जय राम जय राम जय राम जी – जय राम जय राम जय राम जी – 2
निरालम्भ राम निरालम्भ राम निरालम्भ राम जी–जय राम जय राम जय राम जी

अमर सागर

क्रमः	सहज भक्ति सारांश	पृष्ठ
1	अमृत सार	1
2	भूमिका	2
3	कर्ता पुरख़	3
4	''वे नाम परमहँस जी'' कहत हैं	4
5	अनमोल रत्न	5
6	चौथे राम	6
7	प्रस्तावना	7
8	संदेश	8
9	सहज सत्त मार्ग	9
10	आत्म बंधन	10
11	सत सुरति संदेश	11

अमर सागर

क्रमः	विषय	पृष्ठ संख्या
1	जीवन उद्धेश्य	15
2	जागने की महत्वता	19
3	निराकार (महांकाल) की महिमां	52
3—क	मन व ईन्द्रियां और कर्म फल विस्तार	61
3—ख	निरंकार भौग व मुक्तियां	88
4	पूर्ण सतगुरू परमहँस महिमां (बृहन्गा मत)	107
4—क	सतगुरू परमहँस जी के प्रति आस्था समर्पण	123
4—ख	सहज अवस्था/सहज सतमार्ग/परा भक्ति	137
4—ग	गुरू और पूर्ण सतगुरू में भेद	163
5	परमहँसों का प्रेम पथ	175
5—क	प्रेम प्रीति विरह तड़प	187
6	'सार सब्द' की महिमा	210
6—क	'सुरत सब्द' सुरति की महत्वता	229
7	सत्तपुरूष जी की महिमां	250
7—क	हंसा सत्तलोक/निजघर महिमां	260
7—ख	सतपुरूष/निरंकार सत्ता भेद	268
8	जीवन में रंगों की महत्वता	283
9	''वे नाम परमहँस जी'' के सफ़रनामें	292

अमर सागर (भाग–1)

सहज मार्ग भक्ति के काव्य संग्रह

1 निराकार भगवान महिमां व त्रिलौकी पसार

क्रमः	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1	निराकार की महिमां	321
2	चौरासी विस्तार	321
3	अनहद भ्रम	322
4	कर्म बन्धन मुक्ति	322
5	आशा तृष्णा	323
6	चौरासी लाख योनियों का भेद	324
7	निरंकार धारा	324
8	मानव धर्म	325
9	पांच तत्व काया रहस्य	326
10	मन की महिमां	327
11	मन मोहणी माया	327
12	मन वशीकरण	328
13	माया मोहणी	328
14	अनहद झंकार	329
15	अपूर्ण मुक्ति	330
16	कर्म भौग	330
17	चार मुक्ति विस्तारा	331
	चार मुक्ति विस्तारा : (भाग–1, भाग–2)	332
	चार मुक्ति विस्तारा : (भाग–3, भाग–4)	333
18	महां काल भ्रमजाल	334
19	जगत विस्तार	335
20	मौक्ष रहस्य – 'वे नाम कहत हैं	335

अमर सागर (भाग–2)

सहज मार्ग भक्ति के काव्य संग्रह

2 सत्तलोक/मृत्युलोक सत्ता भेद

क्रमः	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1	निराकार और सत्तलौक सत्ता	336
2	मानव मालामाल	336
3	निराकार माया	337
4	अंत्ताकरण भण्डार	337
5	फूल और कांटे	338
6	तूं और मैं	338
7	मोह माया से मुक्ति	339
8	बन्धन से मौक्ष की ओर	339
9	कुण्झी रखवारा	340
10	अभाव की महिमां	340
11	जग सपना	342
12	भाव की गति	342
13	निराकार महांजाल से पार	343
14	दान भ्रम	343
15	संपूर्ण राम रहस्य	344
16	अपूर्ण व संपूर्ण मुक्ति	344
17	सुबह से शाम	344
18	निरंकार और सत्तपुरूष दात की महिमां	345
19	अनहद नाद	345
20	अंतर दृष्टि् विकार	346
21	देह गुरू	348
22	निरंकार व सतलोक का भेद	349
23	झूठा है संसार	349
24	अमर वाणी	350
25	निरंकार से आगे का भेद	351

अमर सागर (भाग–3)

सहज मार्ग भक्ति के काव्य संग्रह

3 सत्तगुरू/सत्तपुरूष महिमां व सत्तलोक बखान

क्रमः	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1	सच्चा दानी	352
2	अनमोल दात	352
3	सार रहस्य	353
4	मौक्ष दात	353
5	प्रेम रहस्य	354
6	आस्था	354
7	जीते जी मरना	355
8	साहिब सर्वत्र	356
9	प्रेम की माला	357
10	सुरति पसार	358
11	परम सुरति चाहत	358
12	सत्तलोक किवाड़	359
13	सब्द जहाज	360
14	सार सूं मौक्ष	360
15	सार महिमां	361

अमर सागर (भाग–3)

सहज मार्ग भक्ति के काव्य संग्रह

3 सत्तगुरू/सत्तपुरूष महिमां व सत्तलोक बख़ान

क्रमः	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
16	सार सब्द मुक्ति प्रदाना	361
17	जग सपना सार	361
18	सार सब्द सर्वोपरी	363
19	सार सब्द महिमां	364
20	सत्तगुरू प्रीति	364
21	सहज भक्ति पड़ाव	365
22	सत्तगुरू की वेदना	365
23	सत्तगुरू प्यारे	366
24	सुरति सूं एक	366
25	पूर्ण संत्त महिमां	366
26	गुरू निरादर	367
27	गुरू शरणी	367
28	भड़भागी जन	368
29	साधना सुमिरन विधि	368
30	पूर्ण विश्वास	369

अमर सागर (भाग–3)

सहज मार्ग भक़्ति के काव्य संग्रह

3 सत्तगुरू/सत्तपुरूष महिमां व सत्तलोक बख़ान

क्रम:	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
31	सत्तगुरू संत्त की संगति	369
32	साहिब रंगोली	370
33	कर्त्ता और कारण हार	370
34	सुरति सूं सृष्टि् रचना	371
35	मैं कहत हूं – 'वे नाम'	372
36	साधक की अर्ज़ी	372
37	निजधाम वर्णन	372
38	गुरू तो सत्तपुरूष रूप हैं	373
39	साहिब मिलन का सफ़र	373
40	साहिब प्रसाद	374
41	गम्य सत्त	374
42	सतगुरू अवहेलना	375
43	बिन लेखनी प्त्र	375
44	कबीर जी वाणी	376
45	''वे नाम'' कहें	376

अमर सागर

अमृत संदेश

क्रमः	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1	अमृत सार	377
2	मानुष के छेः शरीरों का वर्णन	382
3	सुरति निरति महिमां	386
4	सतगुरू श्री 'वे नाम जी' की संक्षिप्त जीवनी	391
5	अमृत और शुद्ध अमृत में भेद	395
6	मोत के बाद का सफ़र	396
7	सतगुरू जी के पूर्व तीन जन्मों का भक्ति वृतांन्त	400
8	आलोकिक दृष्टांत	406
9	खर अक्षर और निःअक्षर	427
10	निरंकार का क्रूर माया जाल	432
11	निरंकार दायरे की मुद्राऐं	438
12	निरंकार दायरे की चार मुक्तियां	442

————

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

1 जीवन उद्देश्य

1 क्या किया जग आई के, क्या पाओगे जग जाई ।
कुछ न पाया जगत में, ना पाओगे जग जाई ।। साहिब जी

2 कितने जन्म तूं जग आया, हर बार मन ने तुझे भरमाया ।
हर बार मोह माया में गया, स्वंय आत्म को जान ना पाया ।। साहिब जी

3 निरंकार ने जगत भरमाया, आत्म की चले ना बात ।
आत्म उर्जा से सब चेतन होत है, पर सुने ना मन कोई बात ।। साहिब जी

4 बचपन, जवानी में भजन कर, परम पुरूष को जान ।
आए कहां से और जाना कहां, इस भेद को ले तूं जान ।। साहिब जी

5 मैं कहां था, कहां से आया, कुछ भी तो ख़बर नहीं ।
हम सब केवल हँसा हैं, मन माया की ख़बर नहीं ।। साहिब जी

6 मैं क्या था, कहां से आया और कहां मुझे है जाना ।
जमने मरने आया नहीं, निज रूप को हमें है पाना ।। साहिब जी

7 आठ अरब चौंसठ करोड़ वर्ष प्रलय में, सात बार नर चोला पायो ।
हर बार मन माया भरमायो, महा काल ग्रास बनायो ।। साहिब जी

8 नर तन जान अनमोल रत्न तेरा, बार बार मिल न पायो ।
जे ना पाया सतगुरू प्यारा, चौरासी में अति दुख पायो ।। साहिब जी

9 नर तन मरन की खातिर नहीं, कि भोगो और मर जाओ।
मानव तन प्यारे दुर्लभ मिले, भक्ति में इसे लगाओ ।। साहिब जी

10 नर तन मिला अनमोल है, सतगुरू सूं प्रीत लगाओ ।
जे न सच्चा सतगुरू मिले, तो इसे व्यर्थ ही पाओ ।। साहिब जी

11 जन्म से पहले गर्भ में, साहिब सूं किए कौल करार ।
जग माया ने है भरमाया, भूला निज रूप व साहिब सरकार ।। साहिब जी

12 नित सुबह उठे, भागे दौड़े, सांझ पड़े सो जाई ।
करोड़ों जन्मों से यही किया, अब तो साहिब भज भाई ।। साहिब जी

13 हर जन्म में माया पाई, खाई में रहा समाई ।
साधु, सिद्ध और ज्ञानी, इस माया सूं बचें ना भाई ।। साहिब जी

14 निरंकार काल जाल फैलाया, सब को दिया भरमाई ।
आत्म खुद को कैसे समझे, सो तो गयी भरमाई ।। साहिब जी

15 ब्रह्म रूप में जगत रचायो, विष्णु रूप में जगत चलायो ।
महा काल रूप जीवों को खायो, निरंकार यह चक्र रचायो ।। साहिब जी

16 ऋषि मुणि सिद्ध और ज्ञानी, निरंकार की महिमा गायो ।
निरंकार की सब सेव करें, उसने कर्म जाल उलझायो ।। साहिब जी

17 ऋषि मुणि सिद्ध ओर ज्ञानी, निरंकार के कार्य को आये ।
चार–मुक्ति निरंकार दीनी, भौग–भौग फिर जग में आयो ।। साहिब जी

18 हे मानव तूं तन नांहि, मन नांहि, तूं तो है हंसा महान ।
निरंकार को जग माया में, तूं भूला सब कुछ, अपने आप को जान।। साहिब जी

19 इस जन्म तूं ना भटकना, तज मोह माया का जाल।
समर्पण कर छोड़ तूं अकड़ना, सच्चे सत्तगुरू मिलें तत्काल ।। साहिब जी

20 कई जन्मों से निरंकार भजा, फंसा मोह माया के जाल ।
स्वर्ग नर्क कर्मण फल भौग, फिर पड़ा मृत्यु जाल ।। साहिब जी

21 अब की बार धोखा मत खाना, ये जन्म व्यर्थ ना जाये ।
सच्चे सतगुरू शरणी जाकर, जन्म मरण सूं मुक्ति पाये ।। साहिब जी

22 आंखों के विकार छोड़ दे, मन से विचार दे छोड़ ।
आंखों से अभिमान मिटा, जग की आशा तृष्णा दे छोड़ ।। साहिब जी

23 साहिब इस संसार में, आए और तन मन पाए ।
या से सुख ना उपजे भाई, आषा तृष्णा दिया भरमाए ।। साहिब जी

24 आत्म तो मन की कैद में, भूला फिरे संसार ।
सार नाम की दात सूं प्यारे, पल में भवजल पार ।। साहिब जी

25 आए थे परमपुरूष भजन को, और यहां लगे करने क्यास ।
बिन कुछ किए ध्यान लगाए, परम पुरूष पाने की आस ।। साहिब जी

26 जो अब के सतगुरू नांहि पाया, फिर चौरासी जाना है ।
जद अब की बार न जागे, फिर क़यामत तक भरमाना है ।। साहिब जी

27 देवी देव, धर्म, ये सारे, भरमाते सब जीवो को ।
ये तो केवल शब्द से उपझे, कुछ लाभ नहीं जीवों को ।। साहिब जी

28 गर्व ना कीजे देह का, जो है बिन प्राण ।
बिन हंसा बने तन बुकनी, जिसमें नांहि प्राण ।। साहिब जी

29 क्या किया जग आई के, क्या करेगा जाए ।
मांगते आया जगत में, मांगते ही कूच करि जाए ।। साहिब जी

30 सत लौक की दूर सैल, ईक्कीस लौक की करते सैल ।
निरंकार से तन मन पाकर, भूल बैठे कहां से आए इस जल ।। साहिब जी

31 आत्म तूं तो जोत सरूप है, अपना मूल पहचान ।
मन के वश पड़ के, भूली निजघर निजधाम ।। साहिब जी

32 वे नाम जी सत लौक सूं आए, सब सोए जगाने को ।
सार नाम दात वो बांटते, सतलौक ले जाने को ।। साहिब जी

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

जीवन–उद्धेश्य

भावार्थ : सभी इस एक मत पे सहमत हैं कि यह मानव तन अति दुर्लभ व अनमोल है । प्रायः इस सृष्टि में आया मनुष्य/मानव जगत–माया में भ्रमित हो कर अपना जीवन भुगत योनियों (पशु–पक्षियों) की तरंह उत्पन्न होना, दिनचर्या व्यतीत करना और कुछ समय उपरान्त मृत हो जाना, इसी प्रथा से बंदा हुआ अनमोल जीवन व्यर्थ गंवा देता है । मानव, जन्म और मृत्यू के मध्य का समय, इस मोह माया और आवागमण से मुक्त होने और मोक्ष प्राप्ति के लिए बड़ा ही महत्वपूर्ण ओर अनमोल है । समय समय पर सम्पूर्ण संत–जन मानव को इसी उद्धेश्य के लिए प्रेरित करते रहे हैं । दुर्भाग्यवश मानव इस जगत की मोह माया की चकाचौंध में सुख सुविधाएं इक्ट्ठा करने में इतना वियग्र और संल्गन है कि इस जगत से कूच करना है, जो अल्प समय केलिए विश्राम स्थल है, आश्रय नहीं, यही भूल बैठा है ।

निराकार (महाकाल,नारायण) भगवान ने साहिब सतपुरुष जी के अंश 'हंसा' को मन दे कर आत्म रुप में परिवर्तित किया है और मानव व भुगत योनियों में तन दे कर इस विशाल मोह–माया और इन्द्रियों के मोह–पाष के सम्मोहन में भ्रमित किया है । इस मोह–जाल के भ्रम से निकलना और अपने मूल रुप (हंसा) को पाना ही मोक्ष (मुक्ति) है।

मानव जन्म के इलावा बाकि सभी काया भुगत योनियों में आती हैं जहां कर्मों का फल भोगने के लिए योनियों में जन्म लेना पड़ता है । सभी ऋषि–मुणि और संतजन चौरासी लाख भुगत योनियों के उपरान्त मानव तन को एक मात्र लक्ष्य, मोक्ष प्राप्ति का एक साधन मानते हैं । यह मानव जन्म सांसारिक मोह, माया और वासना–तृष्णा में लिप्त हो कर नष्ट करने के लिए नहीं मिला है । प्रायः सारा जगत निराकार भगवान के देवी–देव और सर्गुण–निर्गुण (मन) रूपों की पूजा अर्चना में व्यस्त है और मनोकामना में जगत की वस्तुऐं ही मांग रहा है । कोई बिरला जन ही स्वर्ग कामना की प्राप्ति के लिए ही आराधना कर रहा है जिसे वह मोक्ष अथ्वा मुक्ति समझ बैठा है । शरीर से प्रस्थान करने के उपरान्त 'हंसा' आशा–तृष्णा को साथ लिए हुए आत्म रूप में जन्म–मृत्यू के आवागमण के बंधन में बंधा रहता है । स्वर्ग, अल्प–कालिक मुक्ति है, अच्छे कर्मों का फल ख़त्म होने उपरान्त आत्मा पुनः देह धारण करती है । र्स्वग भी तो भोग–विलास और मनोवांछित सुविधाओं से युक्त है ।

निराकार (मन–रूप) के किसी भी सर्गुण अथ्वा निर्गुण रूपों को भजने से मुक्ति व मोक्ष नहीं मिल सकता, जब तक कि मानव किसी पूर्ण संत/सतगुरू की शरण में साहिब (सतपुरूष) जी का सार रस अमृत पान कर के पूर्ण समर्पण और मन की वृतियों आशा–तृष्णा, राग–द्धेष और अहंकार को तज नहीं देता, तब तक अपने मूल (साहिब सतपुरूष की भक्ति) को पा नहीं सकता । बिना पूर्ण सतगुरू की शरणी जाए 'मन' नहीं मिटता और मन–रूपी आशा–तृष्णा तजे बिना आत्म 'हंसा' नहीं बनता । बिना सतगुरू की शरणी जाए साहिब भक्ति संभव ही नहीं और साहिब भक्ति बिना आवागमण से छुटकारा (मुक्ति) नहीं मिलता । मोक्ष के उपरान्त हंसा फिर गर्भ नहीं धारण करता अर्थात अपना मूल रूप पहचानना और मोक्ष प्राप्त करना ही मानव जीवन का केवल एक मात्र

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

2 जागने की महत्वता

33 चल हंसा सत्तलौक को, छोड़ ये मृत संसार ।
यह संसार मुत्यु लौक है, कर्म जाल पसार ।। साहिब जी

क प्रीतम को पत्तियां लिखूं, जो कहूं बसे विदेस ।
तन में मन में नैनन में, उनको कोन उद्धेष्य ।। साहिब जी

34 जागत और सोये में, ईक सी जोत उजियार।
वे नाम जगाये अमृत सुरति से, सोया मन अनुसार।। साहिब जी

35 जैसे बीज कोई बोईए, तस फल चाखो आप ।
सुरति सूं सत्य कहत हूँ, मोहे पुण्य नांहि पाप ।। साहिब जी

36 कल करे जो आज कर, आज करे सो इस पल ।
कल के प्रलय होएगी, भौरी करेगा कब ।। साहिब जी

37 मन बड़ाई दुख देत है, कभी न जागन होई ।
गारी (गाली) कौउ वह क्षमा करे, वो ही जागा कहलाई ।। साहिब जी

38 काल हमारा कर गाहे, दिन दिन बीता जाई ।
लाखों जन्म सूं जागे नांहि, सोवत बीता जाई ।। साहिब जी

39 सोयों को जगाने में वक़्त लगता है, सुरति से होता भाई।
कली को खिलने में वक़्त लगता है, धैर्य से होता भाई ।। साहिब जी

40 मन माया को भगाने में वक़्त लगता है, वक़्त की ही बात भाई ।
बाहिर से अंदर आने में वक़्त लगता है, समझने की ही बात भाई ।। साहिब जी

41 जंगम जोगी सेवडा, पड़े काल के जाल ।
अक्का (सार) नाम जाने बिना, काल का छूटे न जाल ।। साहिब जी

42 जग में सारे ही भले, काऐ बुरा कहलाए ।
आत्म सब में एक है, पर कोई जागा कहलाए।। साहिब जी

43 कोमल तरल जे हो रहो, छूटे लघु समान ।
कुछ पावन न कर सके, दे झोंके शक़्ति महान ।। साहिब जी

44 सोता जीव जगाई, करिए सुरति सूं जाप ।
सोता जो भी जीव है, उसका छूटा सुख सूं साथ।। साहिब जी

45 साहिब अंश है आत्मां, मत पूजो शाली ग्राम ।
बोलन हारा पूजिये, जिस में रहते राम ।। साहिब जी

46 जब पत्थर को भगवान मानता, जीव को देता घात ।
ये कैसी भक़्ति आराधना तेरी, बिन जाने अपना घाट ।। साहिब जी

47 जो पत्थर को भगवान मान कर पूजता, संतों से न करता प्रीत ।
वो पत्थर में भी भगवान को देखता, पर प्राणियों से न करता प्रीत ।। साहिब जी

48 साधक मरे क्या रोइये, जो निज घर को जाए।
रोईये जो सोया मरे, काल जाल फंस जाए ।। साहिब जी

49 जो जन वासना को तजे, आवागमण से हो मुक़्त ।
जो सोहि सच्चा साधक बने, मन माया से मुक़्त ।। साहिब जी

50 दुख में खोजे न मिले, सुख में ही मिल पाए ।
दुख में दुख का कारण है, सुख में उसे ध्याऐं ।। साहिब जी

51 बिन मांगे मोती मिले, मांगे मिले न चून (भीख) ।
ये ही विधि जब ध्याईए, सुरति में प्रगटे सुन्न ।। साहिब जी

52 फिर वोही निजलौक प्यारा, सच्चा देश हमारा ।
सोये जीवों को जगा सको तो, पाओ निज देश प्यारा ।। साहिब जी

53 सत्त पाना कोई कठिन नांहि, जब जागा हो संसार ।
लाखों साल से सोया पड़ा, कैसे करे दीदार ।। साहिब जी

54 सुनो सब्द पल छिन, शुभ घड़ी याद पड़े जब नाम ।
लग्न मुहूरत झूठ सब, और बिगाड़े काम ।। साहिब जी

55 जे चिन्ता सत्तनाम की, मन की छोड़ें तरंग ।
जो चितवे सत्तनाम को, मन का छूटे संग ।। साहिब जी

56 जो कारण–क्रिया को जोड़े नांहि, खोदो पावो दुख ।
जे कारण को जान लो, दुख जाए प्रगटाऐं सुख ।। साहिब जी

57 प्रथम और अंतिम जब ना जुड़ें, वोहि दुख का सार ।
नर्क का द्वार सजा–सजाया है, स्वर्ग बिन प्रचार ।। साहिब जी

58 नर्क का चारों और प्रचार है, मन रचे प्रपंच।
सत्त तो बिन प्रचार है, काल की सीमा प्रपंच ।। साहिब जी

59 शान्ति स्थान तो मर्घट समान है, मौत भी तो है शांत ।
जहां शान्ति चारों ओर है, वो ही सुख स्थान ।। साहिब जी

60 खाली आकाश परिपूर्ण है, हृदय भी पूर्ण शांत ।
मनोरंजन केवल नर्क स्थान है, दुख उनका परिणाम ।। साहिब जी

61 मन ईन्द्रियां भरमायें पल पल–मत बैठें बिन ध्यान ।
ध्यान में यह भरमावें तुझे, धैर्य से हों सब काम ।। साहिब जी

62 तुम तो केवल राम हो, हसां तुम्हारा रूप ।
ईन्द्रियां सेवक राम हैं, जब अंदर सुत्र स्वरूप ।। साहिब जी

63 नहाये धोए क्या भया, जे मन की मैल न जाए ।
मन ही तो मैला भया, सुरति सूं धोया जाए ।। साहिब जी

64 सत्तनाम जाने बिना, कैसे छूटे संसार ।
मानव दुर्लभ तन पाए के, तन का न कियो विचार ।। साहिब जी

65 यह अवसर अनमोल है, मिले न दूजी बार ।
सोया चद्दर तान के, मन सपने देत हज़ार ।। साहिब जी

66 सर पे खड़ा यमराज है, नगाड़ा बजा रहा ।
ये समय जो बीत गया, फिर कुछ न होत तेरा ।। साहिब जी

67 प्रीती करता हर कोई, निज स्वार्थ के हेत ।
अंत समय परलौक में, कोह साथ न देत ।। साहिब जी

68 जे तूं चाहे भक़्ित को, जगत से टूटे तार ।
जोड़िये नाता जगत सूं, सतलौक से टूटें तार ।। साहिब जी

69 नीच–नीच समर्पण भाव से सब पा गए, संत चरण लवलीन ।
जात–वरण अभिमान ते, डूबे सिद्ध साध पंडित महान ।। साहिब जी

70 कई युगों सूं भक़्ित करी, पाया नांहि मोक्ष द्वार ।
बिन जागे जो नर भक़्ित करे, सो नांहि भवसागर सूं पार ।। साहिब जी

71 सार नाम पाओ मेरे भाई, तेरा जीवन सफल हो जाई ।
स्याहि गई सफेदी आई, अब क्या करेगा भाई ।। साहिब जी

72 दात पाने को बड़े आलसी, तुम्हारी सुरति गई भरमाई।
मन माया के जाल में फंस कर, आत्म सुरति भूला भाई ।। साहिब जी

73 ध्यान से छूटें दुख के कारण, पीछे अमृतधार ।
दुखन के कारण सब गए, अब बह गई अमृत धार ।। साहिब जी

74 माया छाया एक समान, सब जग लिया लिपटाए ।
जब माया नागिन सेवा करे, ताहि को ही फिर खाए ।। साहिब जी

75 कोठी बंगला कारों की, दौलत जाके पास ।
अंदर से खाली वे जन, तांहि दुख उन साथ ।। साहिब जी

76 अच्छे दिन जब आए थे, करि न गुरू सूं प्रीत ।
अब क्यों रोवे जगत में, जब गुरू सूं नांहि जुड़ी प्रीत ।। साहिब जी

77 देह मिली ईक दण्ड है, जानत बिरला कोए।
सिध–साधक छोड़ें सुरति ध्यान सूं, मूर्ख छोड़ें रोए ।। साहिब जी

78 सोना माटी संत जन होत ईक समान, टूटें जुड़ें सत बार ।
दुर्जन, कुम्भ समान हैं, ठोकर सूं पड़े दरार ।। साहिब जी

79 सब की गठड़ी लाल है, कोई नहीं बिन लाल ।
अंदर जाओ तो पाईए, हीरे मोती और लाल ।। साहिब जी

80 आत्म हंसा सत पुरूष का आयो, क्यूं करता अभिमान ।
और तो तूं कुछ है नांहि, किसका है तुझे मान ।। साहिब जी

81 सोता जीव जीने से, मरना ही भला जान ।
माटी में माटी मिले, उगावे फूल महान ।। साहिब जी

82 यही प्यारा समय, संतन पावें धूल ।
सब गुण सींचरे पल में, जब पावें चरणन धूल ।। साहिब जी

83 साधक वही सराहिए, अंग न पहने लोह ।
झूठे जग बंधन खोल दे, छोड़े मन का मोह ।। साहिब जी

84 जाकि सुरति जग सूं लागी, क्या हज काबा जाए ।
जाकि सुरति में साहिब नांहि, वह सुख कैसे पाए ।। साहिब जी

85 हृदय भीतर आरसी, स्वंय न जानी जाए ।
स्वंय तो तब ही जानिए, जब मन–माया मिट जाए।। साहिब जी

86 अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ।
अति का भला न बोलना, अति की भली है केवल चुप ।। साहिब जी

87 बुरे लागें सीख के वचन, यह विचारो आप ।
कड़वी ओषधि बिन पिए, मिटे न तन का ताप ।। साहिब जी

88 कड़वे लागत संत के वचन, साधक न जाने आप ।
कड़वी औषधि बिन पिए, जागे न साधक आप ।। साहिब जी

89 जो गुरू ते मन न मिटे, माया से न छूटे साथ ।
सो गुरू झूठा जानिए, पल में त्यागें साथ ।। साहिब जी

90 घर से दूर जाकर भी, घर की याद अच्छी है ।
पर निगुरे कैसे जानेंगे, किस घर से वह आया है ।। साहिब जी

91 सुख मिलन की चाह में, कितने जन्म बिताए ।
जानें मुख–मिठास की, जब मुख निम चभाए।। साहिब जी

92 हम नहीं चंगे, और बुरा नांहि कोई ।
अपनी आखों देख लो, बुराई ही बुरी होई ।। साहिब जी

93 मन माया इक जाल है, जग में जकड़ा हर कोई ।
पाप से बैर सभी करो, पापी से करो न कोई ।। साहिब जी

94 जो जन निंदे संतन को, सो घर गया समूल ।
तिन की नाव भंवर में, ले डूबे सब मूल ।। साहिब जी

95 माया मोह में पड़े रहे, दिन दिन बीता जाए ।
लाखों बार जमते–मरते रहे, प्रेम प्रीत न होए ।। साहिब जी

96 निंदक शत्रु स्वयं का, पर उपकारी सोहि ।
सबको वह उझला करे, स्वंय मैला होई ।। साहिब जी

97 जीवन सपन समान है, जागो तो कुछ नांहि ।
ऐसा सब संसार है, जाने संतन संगत मांहि ।। साहिब जी

98 सतपुरूष सा हीरा छोड़ के, करे हरि की सेव ।
वे नर भटका खाएगा, जो करे ना सतगुरू सेव ।। साहिब जी

99 गुनाह किए कई जन्म में, भजन मांहि भंग होये ।
साहिब का दास होई कर, गुनाह करे न कोये ।। साहिब जी

100 गारी आई एक जब, पलटे भईं अनेक ।
जो दास पलटे नांहि, तांहि नां होत अनेक ।। साहिब जी

101 संत संगति निज जाया कर, आत्म कीजिए शुद्ध ।
'वे नाम' वहां ना जाइऐ, जहां उपजे कुबुद्ध ।। साहिब जी

102 वैद लुक़मान मरि गया, दास दिया है रोए।
निंदक जीवे जुगन जुगन, जो आत्म मैल को धोए ।। साहिब जी

103 ये ऐसा संसार है, जैसा फूल सुमेर ।
पल में यह छुट जावेगा, जैसे औस सवेर ।। साहिब जी

104 भौग भौग कर भूखा प्यासा, मिटे ना भौगन की आस ।
तन बूढ़ा रोग सताए, फिर भी मिटे ना 'काम' भौग की आस ।। साहिब जी

105 होनी होए से होए चाहे, बार बार है आना ।
जब तक ना जागे मानुष ये, उसे बारम्बार है आना ।। साहिब जी

106 बार बार आने को, जन्म नया पाने को ।
बिन जागे कुछ न होगा, मोक्ष पद पाने को ।। साहिब जी

107 सतलौक दूर नांहि, बस तुझे जागना है ।
थक कर क्यों बैठे हो, सतलौक पास ठिकाना है ।। साहिब जी

108 कितनी नौकाएं जग सागर डूबीं, कैसे होवें जग पार ।
दास की नौका सार सब्द की, चढ़ो सो उतरो पार ।। साहिब जी

109 मरने वाला मर गया, जीवित मरया नांहि ।
जो मरने पे रो रहा, जागा इक पल नांहि ।। साहिब जी

110 लौक लाज कुल छोड़ी के, कर लो सच्चा काम ।
जग फंसा मन माया जाल में, जो जागे तो हों काम ।। साहिब जी

111 कण कण से बने चांद तारे हैं, सूरज के कण दें लौ ।
हम कण कण गुण भूलकर, कहते सूरज देत लौ ।। साहिब जी

112 जात पात और कर्म धर्म, बंधा सब संसार ।
सब हंस हमारा रूप हैं, पड़े जाल निराकार ।। साहिब जी

113 स्त्री को हक ना मिले, ये बड़ी चोरी कहलाए ।
सुई का सा दान दे, मान को दान कहलाए ।। साहिब जी

114 कयामत तक काल निरंझन पसारा, आई रात मिटा उजियारा ।
पांच तत्व सब्द समाई, चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्ष अंधियारा ।। साहिब जी

115 धरती फाटे, मेघ जोड़ता, कपड़ा जोड़े सुई ।
तन घायल को ओषधि, मन मिटे सार–सुरति सूं ।। साहिब जी

116 मन मान वैरी जो जान ले, तन वैरी नांहि कोए ।
तूं दुख–सुख, आशा तृष्णा छोड़ दे, तुम सा जग में न कोए।। साहिब जी

117 पल पल जीव है मर रहा, जीवन है पल चार ।
मौत तो तेरे सर पर खड़ी, मन माया सूं बंधी तार ।। साहिब जी

118 हीरा हीरा सब कहें, जाने बिरला कोए ।
जो जन हीरे का पारख़ी, मौल जाने केवल सोए ।। साहिब जी

119 निंदक दया का पात्र है, चाहे अवगुण अनेक ।
दया की बूंद गिरती रहे, खिलेगा वह दिन एक ।। साहिब जी

120 निंदक दूर मत कीजिए, दीजिए आदर मान ।
दुख सुख तेरे ले मरे, छूटे तेरा काल का मान ।। साहिब जी

121 निंदक मेरा ना मरे, जुग जुग जीवे वह ।
वोही तो मेरी परख है, जब मन माया नांहि मोह ।। साहिब जी

122 मैने अपने जीवते, निंदक देखे अनेक ।
पर निंदा जो न करे, लाखों में कोई एक ।। साहिब जी

123 अपना दोष ना कोई देखता, दूजे के अनेक ।
अपने दोष जे देख ले, सभी जन दिखें नेक ।। साहिब जी

124 साहिब दोष पराया देखता, हंसी में करता बात ।
अपने उर न झांकता, कैसी मनुष्य की जात ।। साहिब जी

125 जे तूं निदंक संत का, संकट रहता साथ ।
मन माया छूटे नांहि, काल का छूटे न साथ ।। साहिब जी

126 साहिब कंचन तजना सहल है, सहल मिटा सूं नेह ।
निंदा मल को त्यागना, अति कठिन है यह ।। साहिब जी

127 साहिबा सकल पदार्थ है जग मांहि, छानो तोहि पाओ ।
बाहर केवल भ्रम जग मांहि, अंदर ही सत्त पाओ ।। साहिब जी

128 मन मैला तन उझला, यह नांहि भक्ति रंग ।
जीवित तन मन छूटे नर का, तांहि चड़ेगा रंग ।। साहिब जी

129 मास खात मंदिरा पिए, सो नर काल सताए ।
जुआ खेले चोरी करे, अंत प्रेत योनी में जाए ।। साहिब जी

130 एक राम दशरथ घर डोले, एक राम घर घर में बोले ।
एक राम तीन लौक पसारा, एक राम त्रिभुवन से न्यारा ।। साहिब जी

131 स्वार्थ बिन जो नर कार्य करे, जा सूं आत्म आनंदित होए ।
इस उर्जा का प्रयोग कर, तासे आत्म शुद्धि होए ।। साहिब जी

132 आहार अधिक मत लीजिए, आलसी तन बन जाए।
सब उर्जा जुटे पचाने को, उर्जा व्यर्थ हो जाए ।। साहिब जी

133 अंदर जाने के सब द्वार खोल दो, बाहर के कर लो बंद ।
अंदर आत्म रूप है, बाहर केवल द्वन्द ।। साहिब जी

134 वे नाम दास खड़ा बाज़ार में, दुखी होत देख संसार ।
जे जग जागना सीख ले, हो तीन लौक से पार ।। साहिब जी

135 जब तक 'मैं' तुझ में बसे, तब तक न हो मोक्ष ।
मन माया जब बह गए, तब ही आत्म मोक्ष ।। साहिब जी

136 जिसे डूंडत मैं फिरा, तैसा मिला अति दूर ।
बहुत समय संग में बीत गया, समय आया बरसा नूर ।। साहिब जी

137 जे तूं प्यार से जीवना, नीचे रख तूं रीर (रीढ़)
मान–अपमान सब मिट गया, संतन की ले लो सीख ।। साहिब जी

138 मत तूं दे किलकारियां, साहिब ना बहरा होए ।
जाको देता बांग तूं, तीसरी आंख खुले तो सुनता सोए ।। साहिब जी

139 इच्छा कारण सेवा करे, सब कुछ लेता जान ।
ये कोई सेवा नांहि, बिन इच्छा सेवा जान।। साहिब जी

140 बिन इच्छा मिले सो दूध, मांगे मिले सो नीर ।
खींचा तानी सूं जो मिले, वह केवल दुख और पीड़ ।। साहिब जी

141 जग में जो देखो सो झूठ है, जो पाओ सो झूठ ।
बाहिर के नाते तोड़ कर अन्दर देखो, जो नांहि झूठ ।। साहिब जी

142 सब्द विचार के बोलिए, इसके लाखों पाओं ।
एक शब्द अमृत झड़े, एक शब्द सूं घाव ।। साहिब जी

143 पेड़ बबूल ना कहु काम के, डार पात फल फूल ।
औरन को बाधा देत हैं, आवत ना काम फल फूल ।। साहिब जी

144 मांसाहारी मानवा, दुखी रहत जग आन ।
तांकी संगति जो करे, उसकी भक्ति में हान ।। साहिब जी

145 सुन्दर तन को देखी कर, ना उपझत अनुराग ।
ढका ना होत तन खाल सूं, तो जीवित खाते काग ।। साहिब जी

146 अजगर करे ना चाकरी, पंछी हरता भूख ।
चौर करता निज चौरियां, कभी ना हरती भूख ।। साहिब जी

147 कभु न मांगू निज के लिए, मांगू पर उपकार ।
परमार्थ के कारणे, करो संगत उपकार ।। साहिब जी

148 मन ने किया बुरा हर जीव है, जाने न कोई भेद ।
जो निज खोजा मन अपना, दूजा बुरा देता ये भेद ।। साहिब जी

149 जब आशा–तृष्णा बह गई, मन सोया तूं जान ।
जब तर्क वितर्क मन न उठे, बुद्धि को सोया जान ।। साहिब जी

150 भूत भविष्य जब बह गए, जब कुछ याद ना आए ।
ऐसी दशा जब मन की बने, तब चित भी छूटा जाए ।। साहिब जी

151 जब तुम एकांत में बैठ गए, हाथ पांव करें विराम ।
ऐसी दशा जब नर धार ले, अंहकार भी करे विश्राम ।। साहिब जी

152 आत्मां खाती पीती नहीं, ना रूप रंग को पाए ।
ना ये टूटे, ना मल लागे, ना कुचलाई न बिगाड़ी जाए ।। साहिब जी

153 संतो, ये जग जानत नांहि, संत कभु ही जग में आंए ।
सांच कहो तो मारन धावे, झूठ कहा ना जाए ।। साहिब जी

154 मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक ।
जो संत्त सतगुरू सूं मिले, पल में छूटे मन संग ।। साहिब जी

155 कई जन्म सूं भटक रहा नर, सत्त नाम नांहि जाना रे ।
तेरा जीना पानी का बुलबुला, पल ही में मर जाना रे ।। साहिब जी

156 इस जग अन्दर कोई बिरला ही, घर आए को देता आदर मान ।
सभी ही देखते लाभ को, कोई बिरला देत है निस्वार्थ मान ।। साहिब जी

157 तब तक जीवन प्यारा लागे, जब तक कोई हमारा होए ।
चाहने वालों से जब स्वार्थ नांहि, फिर पल में साहिब संग होए ।। साहिब जी

158 पवन थिर तो मन थिर, आत्म उन्नत होए ।
ईंगला पिंगला सम करो, सुश्मिणा सम हो जाए ।। साहिब जी

159 जल थल रहते जीव जंत है, इन पे दया प्रेम विचारो ।
सब घट व्यापक साहिब अंश है, फिर काहे इनको मारो ।। साहिब जी

160 धन योवन सुख संपदा, यही हैं दुख के मूल ।
बिन जागे चौरासी भुगते, शरीर ही दुख का मूल ।। साहिब जी

161 कई जन्म सूं स्वांसा खाली जात है, लिया न स्वासां सूं नाम ।
यही तो मन है कर रहा, स्वांस जात बिन नाम ।। साहिब जी

162 जन्म–मरन जिस एक सा, जीवन की नांहि आस ।
उसने सब कुछ पा लिया, कुछ भी बची न आस ।। साहिब जी

163 दुख सुख ईक सम जानिए, दुख नेड़े नांहि आवे ।
हर कार्य गुरू चरणन अर्पण करो, सुख आनंद प्रकटाए।। साहिब जी

164 दुख में जो तुम धीर धरो, तो सुख उत्पन्न हो जाए ।
एक पर जे ना ध्यान धरो, तो चंचल मन उलझाए।। साहिब जी

165 शुद्वी तो जीवित मरन सूं, बिन मरे ना शुद्धि होत ।
मन माया सत्ता जब साथ है, कभी ना शुद्धि होत ।। साहिब जी

166 जग में दुखिया कोई नांहि, सब के अन्दर लाल ।
ताला खोलन नांहि जानता, तां ते भयो कंगाल ।। साहिब जी

167 कंचन त्रिया माटि माया, इनका तजना सहज ।
मान बड़ाई ईर्ष्या द्वेष, जानो ना तजना सहज ।। साहिब जी

168 लग्न मुहूर्त मन जानिए, काल उत्पन्न कर दे आन ।
हर पल हर घड़ी शुभ ही शुभ, जो पल बीतें नाम में सोहि शुद्व तूं जान ।। साहिब जी

169 धनवान पुत्र सूं डरता पिता, पल पल चिंतित होए ।
ऐसा जीना मृत्यु से बुरा, सतगुरू संग जीना होए।। साहिब जी

170 भरिए माटी सूं पैर–तन–देह, पानी सूं उतरे खेह ।
मूत पलीती कापड़ा तन होई, साबुन सूं लईए ओह धोए।। साहिब जी

171 जो जागे सो यूं कहत है, जग खुली आंख का सपना ।
आंख खुली पर लेती सपना, बिन स्वार्थ मीत न अपना ।। साहिब जी

172 बिगड़ जाए जब बात कोई, कैसे आवे रंग ।
जे फटे दूध को मथो, मक्खन न आवे संग ।। साहिब जी

173 जे तूं मन को तजे, तब होश में आए ।
आत्म जोत जब चेतन हो, पल क्षन मुक्ति पाए ।। साहिब जी

174 जो जन जग गया, सो मन से गया जीत ।
काम क्रोध और लोभ गया, गया मन माया से जीत ।। साहिब जी

175 जो जन सत्तगुरू शरणी गया, ताके मिटे सब संताप ।
जब पूर्ण समर्पण कर दिया, प्रालब्द कचरा जले आपो आप ।। साहिब जी

176 होमा जीव की मिटती नांहि, कैसे समर्पण होए ।
संत संगति सूं अहम मिटे, पल में समर्पण होए ।। साहिब जी

177 साहिबन का घर दूर है, वहां तो सिलसिली गैल ।
सुरति न टिके साधक की, ज्ञानी लादे बैल ।। साहिब जी

178 तन रहता मन जात है, मन रहता तन जाए।
तन मन एको होई रहें, जीव तब हंस कहाए ।। साहिब जी

179 तन की चाहत मन की चाहत, सब को है सताए ।
दोनों जब इक होई रहें, तब जीव साधक बन जाए।। साहिब जी

180 दास देत पुकार सभी को, चड़ चंदन की झाड़ ।
जो पुकार को न सुने, जाए यम द्वार ।। साहिब जी

181 मन मुरीद कुल संसार है, संत मुरीद ईक आद ।
वह भी ढूंडे सुख को, तो किस विधि हो उद्धार ।। साहिब जी

182 सर्दी–गर्मी–पतझड़ सब रितु, करते अपना काम
किस को कहुं में अच्छा बुरा, सबका काम महान ।। साहिब जी

183 जन्म जन्म कितने यत्न किए, कारण था इक सुख ।
दुख की कभी न ईच्छा की, फिर भी आता दुख ।। साहिब जी

184 जब जब सुख की इच्छा नारी करते, ध्यान में रहता दुख ।
ध्यान ही केवल मूल है, उसी से उपजता दुख और सुख ।। साहिब जी

185 जितना छोटा दुख है आता, ध्यान में लगता पहाड़ ।
अगर ध्यान में छोटा दुख, तो छोटा ही पहाड़ ।। साहिब जी

186 अंधे के आगे रोना, अपनी आंखों को खोना ।
नांगे साधू को देना कपड़ा, उससे बद–दुआ लेना ।
गंझे को कंघी देना, उस के दुखों को जगाना ।
दुर्भाग्य और कुकर्मों के बीच, उर्जा का नष्ट हो जाना ।। साहिब जी

187 अज्ञान और अंहकार, भक्ति से करें अति दूर ।
दुख में भागीदार बनें, सुख से नाता अति दूर ।। साहिब जी

188 तेरे अंदर साहिब (परमपुरूष) हैं, तांहि में देख ।
उन को तभी ही देखिए, जब तन मन होवे साफ ।। साहिब जी

189 जग में अति सुख मिले, तृष्णा न मन की जाए ।
कहे दास – का से कहूं, सब ही यहीं रह जाए ।। साहिब जी

190 जो कुछ दिख़ता सब कुछ तेरा, रख इसे तूं पास ।
मैं तो आत्म रूप हूँ, क्युंकर रखूं इन पे आस ।। साहिब जी

191 पानी में मीन प्यासी, मोहे सुन सुन आवत हासी ।
घर पड़ी वस्तू नहीं सूझे, बाहर खोजत जासी ।। साहिब जी

192 मृग की नाभी मांही कस्तूरी, वन वन फिरत उदासी ।
आत्म ज्ञान बिन सब सूना, क्या मथुरा क्या काशी ।। साहिब जी

193 चंचल मन पंछी भया, उड़ कर चला आकाश ।
सतलौक खाली पड़ा, साहिब संतन साथ ।। साहिब जी

194 दासा मन पंछी भयो, अब रही ना जग की आस ।
ये जग माया सपना लागे, हर थां साहिबन वास ।। साहिब जी

195 मन की गति का, कोई पावे न पारा ।
जो कोई भी तां से बचे, तीन लोक से न्यारा ।। साहिब जी

196 यह जग बुरों और भलों से भरा पड़ा, इनसे बचा ना कोए ।
जब खोजा मन अपना, सभी–भले 'मुझ से बुरा ना कोए'।। साहिब जी

197 सब विषयों को प्यारो, विष समान छोड़ो ।
सब को तजो प्यारो, तभी निस्तारा हो ।। साहिब जी

198 पात्र में विष रूपी ज़हर भरा, उसे खाली किए बिना ।
उसमें अमृत डाल लो, अमृत भी विष बना ।। साहिब जी

199 डर कर भक्ति करने से नर, भटक गया ।
रास्ता खो जाने से, प्रेम विरह करना भूल गया।। साहिब जी

200 मरते मरते जग मरा, जागा मरा ना कोए ।
जागा तो जीते जी मरा, फिर आवागमण ना होए ।। साहिब जी

201 बिगड़ जाए जब बात कोई, कैसे आवे हाथ ।
मथें फटें दूध को, माखन न आवे हाथ ।। साहिब जी

202 कई जन्म से लेन देन सौदा किया, कुछ न आयो हाथ ।
अब की बार सौदा मत करियो, कुछ नी जाना साथ ।। साहिब जी

203 प्रीत करो तुम एक सूं, साहिब को भावे सोहि ।
दस दस जब दर फिरे, किस को लुभावे सोहि ।। साहिब जी

204 आत्म ज्ञान ही मात्र ज्ञान है, बाकी सब विज्ञान – 'जानकारी है' ।
जो बाहर से प्राप्त होता है, अन्दर केवल निर्वाण है ।। साहिब जी

205 मनुष्य शरीर मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार आदि नांहि ।
आत्म निज स्वरूप है, आत्म बिन कुछ नांहि ।। साहिब जी

206 ईत और उत के भार को, लिए फिरता संसार ।
इस भार को छोड़ दे, छूट जाता संसार ।। साहिब जी

207 पतझड़ में पत्ते भी वृक्ष का, छोड़ जाते हैं साथ ।
आंधी आती है तो, आंख से ओझल हो जाता साथ ।। साहिब जी

208 कौन अपना है भाई, और कौन पराया भाई ।
यह किसी किसी ही की, समझ में आया भाई ।। साहिब जी

209 दुख़ में तो अपना हाथ भी, हाथ आता नांहि ।
दूसरों की क्या कहूं, सुरति भी पहचानी जाती नांहि ।। साहिब जी

210 सुख में अपनी भी प्यारो, याद आती नहीं ।
मालिक तो दूर प्यारो, अपनी भी होश आती नहीं ।। साहिब जी

211 अच्छे दिन ही प्यारो, मालिक की पुकार हैं ।
जो सुन ले प्यारो, उसका बेड़ा पार है ।। साहिब जी

212 सुख ही तो मालिक है, उसी की पहचान है।
दुख़ तो शैतान की देन है, उसी की पहचान है ।। साहिब जी

213 दुख में जो याद करता है प्यारो, सुनता शैतान है भाई ।
जाग जाओ तो होती, मालिक की पहचान है भाई ।। साहिब जी

214 दीपक सब को रोशनी, पहुंचाता प्यारो।
पर देखो अपने घर में, अंधेरा ही दे जाता प्यारो।। साहिब जी

215 पौड़ी तिलकी बिछड़ गए, भौर न आवे हाथ ।
बिन जागे कुछ न आवे हाथ, जागो हुई प्रभात ।। साहिब जी

क तरवर फल नहीं खात है, सरोवर पिए न पान ।
रहिमण परहित काज को, सुमति सच्चन सुझान ।। साहिब जी

216 कहता हूं कहा जात हो, कहा जो मान हमार ।
जिसका गला तूं काटी, सो गला काटी तुम्हार ।। साहिब जी

217 वृक्ष फल नांहि खात है, सागर पिए न पान ।
संत देते सार सब्द–गुरू मुख पाते दान ।। साहिब जी

218 सीप मोती देत है, गज मुक्ता देता गज ।
केर देता कपूर है, तुम क्या दिया आन इस जग ।। साहिब जी

219 सूरज देता रोशनी, सरवर देता नीर ।
पवन देत शीतलता, तुम क्यों बैठे नदिया तीर ।। साहिब जी

220 प्रकृति में सब देत हैं, गाए देती दूध ।
कोयल देती मीठी तान को, तुम क्यों बने पेड़ बबूल ।। साहिब जी

221 प्रकृति सब लुटाती है प्यारो, मानुष लेता सब लूट ।
देवी देव से मांगता, जो पाता सब जाता छूट ।। साहिब जी

222 सब से भूखा जग में कौन, उसकी करो पहचान ।
आठों पहर है सो रहा, मन तरंग की करो पहचान ।। साहिब जी

223 हर वस्तु जो जग आई, संसार की बड़ावे आन ।
तूं तो सब कुछ भोग रहा, क्या दिया जग आन ।। साहिब जी

224 मरते मरते जग मोआ, बिन तृष्णा मोआ न कोए ।
आशा तृष्णा ले मरा, मुक्त कहां से होए।। साहिब जी

225 पूरा हो के न मरा, ये तो न मरना होए ।
जागा अधूरा ही भला, तन मन छूटे न कोए ।। साहिब जी

226 प्रीतम को पत्तियां लिखूं, जो बसें दूर के देस ।
साहिब को मैं क्या लिखूं, जो दें सुरति संदेश ।। साहिब जी

227 जागा उसको जानिए, निज में रहता आप ।
आशा तृष्णा बह गई, चित से गयो संताप ।। साहिब जी

क फरीदा ऐसे होरिए, जैसे कख़ मसीत ।
पैरां हेठ लताड़ीऐ, तेरे नाल साहिब दी प्रीत ।। साहिब जी

ख कागा कंख फरोलयो, चुन चुन खाई यो मास ।
यह दो नैना मत छुईयो, इन पिया मिलन की आस ।। साहिब जी

228 मरिए ते मरि जाईए, छूट पड़े जंजाल ।
ऐसी मरनी को मरे, दिन में मरें सो–सो बार ।। साहिब जी

229 जीवित मरिए भवजल तरिए, जासे छूटे यम द्वार ।
साहिब मिलन की आस सूं, मंरू दिन में सो–सो बार ।। साहिब जी

230 जीते जी जो मर गया, जीना सीखा आज ।
मरने से जो डर गया, तन मन रहता साथ ।। साहिब जी

क मरते मरते जग मोआ, मरन न जाना कोए ।
ऐसे मरनी न कोई मरा, भौर न मरना होए ।। साहिब जी

ख जा मरने से जग डरे, मेरे मन अनंत ।
कब मरूं कब पांऊ, पूर्ण परमानंद ।। साहिब जी

ग जहां खोजत ब्रहमा थके, योगी यति और देव ।
कहे कबीर सुन्न साध कर, कर सतगुरू की सेव ।। साहिब जी

231 होश संभाले सब काज है, बिन होश बिगडे सब काज ।
होश में सार्थक संग रहे, व्यर्थ के छूटे सब काज ।। साहिब जी

232 कल्पनाओं में जीना आदत तेरी, झूठे सपने संग साथ ।
आज दुख़ी जो जीव है, कल कहाँ से आवे सुख साथ ।। साहिब जी

233 कल के सपने बहुत सुहाने, बहुतों को डुबोया ईक साथ ।
सतगुरू पल में समझा रहे, मत खोना ये अवसर, आत्म संग साथ ।। साहिब जी

234 कच्चे घड़े जल न रूक सके, जान लो सच्ची बात ।
होश के पक्के जब बनो, सब कुछ पाओ संग साथ ।। साहिब जी

235 मालिक अपने खुद बनो, हंसा जानो निज रूप ।
आदत मालिक न बने, जानो आत्म का सच्चा रूप ।। साहिब जी

236 अभी तो तुम सोये पड़े हो, किस विधि करोगे प्रीत ।
अभी तो तुम, तुम ही नांहि, कौन करे तुम संग प्रीत ।। साहिब जी

237 तुम लोभी तुम लालची, तुम तो अभी भरम संग साथ ।
तुम तो पुर्ण झूठ हो, फिर सच्चे प्रेम से कैसा साथ ।। साहिब जी

238 संसार निरंकार को ही, मानता सच्चा मालिक मेरे भाई।
निरंकार के तीन लौक, स्वर्ग नरक मृत्यु लौक मेरे भाई।। साहिब जी

239 छोड़ झूठे धन्धे मेरे भाई, जा संतन के द्वार ।
भरमों में पड़ा तूं माने नांहि, जायेगा यम द्वार ।। साहिब जी

240 ओ बन्दे मौका आज है, आ सतगुरू के द्वार ।
तुझे जन्म मरण सूं जे तरना, पा ले सच्चा द्वार।। साहिब जी

241 दोष पराया देख के, कभी ना मिटता निज दोष ।
जे झांको निज अपने, पल में जानो निज दोष ।। साहिब जी

242 पराधीनता सुख नांहि, चाहे हीरे मोती संग साथ ।
पर पाने से खोना भला, जान लो सच्ची बात ।। साहिब जी

243 सपने लोरी देत हैं, कभी ना जागा इक पल ।
सतगुरू सूं पालो दात को, हर सुख मिले इस पल ।। साहिब जी

244 बिन वृक्ष कली ना उग सके, आज कली कल फूल ।
कली सुगन्ध ना दे सके, सुगन्ध नांहि बिन फूल ।। साहिब जी

245 तुझ में ही है कल पड़ा, कल में पड़ा फिर कल ।
कल फिर आता आज में, आज आता इसी पल ।। साहिब जी

246 तूं इस पल में जीना सीख ले, यही सुख का आधार ।
ईस पल में जीना ही जीना है, इसी सूं जोड़ो तार ।। साहिब जी

247 समय गंवाना आदत तेरी, फिर कैसे रहे इस पल ।
कल कल करते अवसर खो गया, फिर कैसे रहे इस पल ।। साहिब जी

248 कीचड़ में रह दुख पा रहा, आंसू बहे हर पल ।
आंसू बहते ना थमें, हंसी रूके उसी पल ।। साहिब जी

249 माटी के तन सूं छूटना, निज कार्य जान बेमोल ।
हम हंसा तो सब एक हैं, एक को पाना कार्य अनमोल ।। साहिब जी

250 यह तन जब जाए कोड़ी मोल में, फिर किसे कहें अनमोल ।
सब जग माया जाल है, इसे जानो तो बनो अनमोल ।। साहिब जी

251 निज रूप को जाने बिना, आत्म ना हंसा होए।
काम, क्रोध, लोभ, मोह सूं भरा हुआ, प्रेम कहां से होए ।। साहिब जी

252 बिन प्रेम महां प्रेम ना पा सके, बिन माया मिटे, ना प्रकटे प्रेम ।
किसी जीव की जो हत्या करे, फिर कैसे जागे प्रेम ।। साहिब जी

253 जान लो यह अभी शुरूआत है, काल के दूजे पहर की ।
अभी बहुत कुछ तुझे है देखना, काल के दूजे पहर भी ।। साहिब जी

254 जब दुख़ सुख़ एक समान हो, सब जग नाते एक समान ।
कौन भला और कौन बुरा है, कोई ना अन्तर जान ।। साहिब जी

255 आंखो के विकार छोड़ दे, मन से छोड़ विचार ।
आंखो से अभिमान मिटा, आशा तृष्णा का छोड़ संग ।। साहिब जी

256 छोड़ जग मोहिणी माया को, रिश्ते नाते और स्वार्थ ।
आत्म को भरमाने के लिए, निरंकार मन रूप में संग साथ ।। साहिब जी

257 इक जाल सगल संसारा, भूत, भविष्य महां काल विस्तार ।
जो इस पल में रहना सीख ले, छूटे काल जाल पसार ।। साहिब जी

258 कहता हूं कहा जात हो, कहा जो मान हमार ।
जिसका गला तूं काटी, सो गला काटे तुम्हार ।। साहिब जी

259 निरंकार ने जग भरमाया, आत्म की चले ना बात ।
आत्म उर्जा से सब चेतना, मान लो संतन बात ।। साहिब जी

260 निर्बल जान कीजिए नांहि, कभु वैर विरोध ।
जीते तो कुछ शोभा नांहि, हारे सुरति विरोध ।। साहिब जी

261 एक राम को जग है पूजता, दूजा घट घट वास ।
तीजा राम जग सृजनहारा है, साहिब जी अमरपुर वास ।। साहिब जी

262 तीन लौक, तीन राम हैं, तीनों राम व्यवहार ।
चोथे राम अमर धाम हैं, ताका करो विचार ।। साहिब जी

क एक राम दशरथ के राम, दुजे राम घट–घट के राम ।
तीजे राम का सगल पसारा, चौथे राम हैं सब से न्यार ।। साहिब जी

263 जब सब कुछ तेरे पास था, करि ना सत्तगुरू सूं प्रीत ।
अब क्यूं बैठा रो रहा, जब दुखों ने लिया है जीत ।। साहिब जी

264 राम पाल और राम लाल, गली–गली फिरत संसार ।
दूजे सिया के राम, जिनकी लीला करत संसार ।
तीजा राम निरंकार प्यारा, जिन रचयो सगल पसार ।
हंसा को मन काया दे भरमाया, औकांर ही है निराकार।
चौथा राम निरालम्भ राम है, जा की महिमां अपरम्पार ।

राम नाम के नाम में, बहति अमृत सुरति धार ।। साहिब जी

265 तन मन तोड मोह माया छोड़, छे जो प्यारे तन ।
परन्तू किसी की सुरति ना तोड़ो, यही तो मोक्ष निर्वाण ।। साहिब जी

266 जब जीवन खंडर हो जात है, कुछ बचा ना तेरे पास ।
जीवन तो व्यर्थ हो गया, अब मौत ही जाए साथ ।। साहिब जी

267 ख़तरे दुख में अपने सहायक आप बनो, बिन सतगुरू किसका साथ ।
प्राण संकट में जब पड़े, सार नाम का करो संग साथ ।। साहिब जी

268 विश्वास तो सुरक्षा कवच है, किसी वस्तु की ना हो आस ।
और किनारा है नांहि, ईक सतगुरू संग विश्वास ।। साहिब जी

269 बिन परख़ जे विश्वास करो, जीवन की यह ना पतवार ।
विश्वास निज को पाने की कड़ी, जब जागो उतरो पार।। साहिब जी

270 विश्वास तो संसार में रहा नहीं, केवल झूठा व्यवहार ।
अंदर का कुछ भी नहीं जागता, अंधेरा साथ साथ हर द्वार ।। साहिब जी

271 विवेक तभी जाग्रत हो सके, जब संदेह बड़े संताप और कष्ट ।
चारों ओर से छेदे प्राण, विवेक जागे जब पूर्ण कष्ट ।। साहिब जी

272 काम क्रौध लोभ हिंसा–सभी, सूचक हैं दुश्मन नांहि ।
चेतना अरदग़ामी हो गई, उरदग़ामी से दुख नांहि ।। साहिब जी

273 चेतना उरदग़ामी के लिए, अंदर ही जाना काम ।
जब सब कुछ अंदर जल गया, चेतना करे सब काम ।। साहिब जी

274 जग में रिश्ते नाते पाल कर, भक्ति कैसे होये ।
भक़्ति संसार जे करि बिन मोह, तो ही भक़्ति होये ।। साहिब जी

275 कर्म गया ज्ञान गया, कल और कल करे विश्राम।
इस पल में जीना आ गया, मन का छूटा सब काम

नासिका सुगंध की शक्ति, कान करे सुनने का काम।। साहिब जी

276 साहिब का घर अति दूर है, जैसे उड़ी पतंग।
उड़ो तो पाओ मोक्ष को, पड़ो तो टूटे अंग।। साहिब जी

277 खो जाना ही पाना है, ईस पल में पाना जान।
सुरति में ही रहना ध्यान, यही जागना लो जान।। साहिब जी

क मरिये तो मरि जाईये, छूट पड़े संसार।
ऐसी मरनी को मरो, दिन में सौ सौ बार।। साहिब जी

ख जीवित मरिये भवजल तरिये, छूट जाये संसार।
अपना तो कोई है नांहि, ये झूठा संसार।। साहिब जी

ग काल फिरे सिर उपर, जीवहि नज़र ना आवे।
कहें साहिब सतगुरू सब्द से, यम से जीव बचावे।। साहिब जी

278 नर तन दुर्लभ प्यारो, एक युग में सात ही बार।
मन माया सूं बाहिर आना प्यारो, यह सपनों का संसार।। साहिब जी

279 बाल पन गया जवानी गई, पिण्झर तन अब साथ।
सतगुरू अभी ना पायो, चला मन माया के साथ।। साहिब जी

280 फूल समान जीवन तेरा, कली से फूल की देर।
माली फूल फूल चुनि लेई गया, यही जीवन का फेर।। साहिब जी

281 निज का दौष दिखता नांहि, दौष पराया हसाये।
लाखों जन्म से भटक रहा, काल को लेत हसाये।। साहिब जी

282 जीव मक्खी समान गुड़ में गड़ा, हथ पैर लिपटाये।
हथ मले और सिर पटके, कभी पार ना पाये।। साहिब जी

283 तेरे अंदर लाल रत्न भण्डार, जागो मिले यह भेद।
खो बैठा निज देश प्यारे, संतन संग मिले यह भेद।। साहिब जी

284 सहज हंसा अमरलोक का, पड़ा काल के जाल।
पांच पच्चिस तीन का पिंझरा, पल पल करे बेहाल।। साहिब जी

285 भरम जाल संसार है, सब उलझे इस माया जाल।
प्यारो सब जन एक हैं, पड़े सब काल के जाल।। साहिब जी

क ज्युं तिरिया सपने सुत खोई, सपने में अकुलायी।
जाग परि पलंग पर पायो, न कहुं गयो न आयो।। साहिब जी

286 जो आया सो जायेगा, कुछ दिन का मेहमान।
जीवित मरिये ते जानिये, सब छूटे बने महान।। साहिब जी

क जिस मरने से जग डरे, मेरे मन अनंत।
कब मरूं कब पाऊँ, पूर्ण परमानंद।। साहिब जी

ख मरते मरते जग मुआ, मरन ना जाना कोय।
ऐसी मरनी जो मरे, बहुरि मरना ना होय।। साहिब जी

ग उठ जाग मुसाफिर भौर भई, अब रैन कहां जो सोवत है।
जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है।। साहिब जी

घ टुक नींद से अखियां खोल ज़रा, ओ ग़ालिफ रब से ध्यान लगा।
ये प्रीत करन की रीत नहीं, रब जागत है तूं सोवत है।। साहिब जी

ड0 दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार।
पल्टु अंधेरि मिटी, बाती दीन बार।। साहिब जी

च तोहि मोरि लग्न लगाये रे फकीरवा।
सोवत ही मैं अपने मंदिर में।
सब्दन मारि जगाये रे फकीरवा।। साहिब जी

छ मूर्ख सब्द नहीं मानी, धर्म ना सुने विचार ।
सत्त सब्द नहीं जब पाया, जावे यम द्वार ।।

287 भौजन थाली में देख ले, कितनों ने तजे हैं प्राण ।
प्रेम से समर्पण कर दिया, कब खुलेंगे तेरे नैन ।। साहिब जी

288 खान पान शुद्ध है नांहि, पानी दूषत जान।
वातावरण अच्छा नांहि, सुरति पर नांहि ध्यान।। साहिब जी

289 तूं सोया–सोया खा रहा, कभी ना जाना प्रेम का दान ।
कभी आंख उठा उन्हें देख ले, तजे जिन्होंने प्रेम में प्राण ।। साहिब जी

290 उन सब का धन्यवाद कर, तुझ ख़ातिर तजे प्राण ।
तूं लाखों जन्मों से सोया पड़ा, अंदर के नैन ना करते काम ।। साहिब जी

291 जिसे खाना खाना–आ गया, उसके प्राणों में तान ।
अब तुम उसे जागा जान लो, जात पात सूं हूआ पलायन ।। साहिब जी

292 पवन–जल पदार्थ सब को ले रहे, सब प्राणी एक समान ।
उनका कोई जात धर्म ना, बोल क्या तेरी पहचान ।। साहिब जी

293 यह रास्ता सुख पाने का है नांहि, जो बदले कल सूं फिर कल ।
जो खाना तुम खाने लगे, उसी में रहता यह पल ।। साहिब जी

294 यह तन किराए का मकान है, इसे मत अपना जान ।
जे ना जाना इस भेद को, कभी ना छूटे तन लो जान ।। साहिब जी

295 मरने से ये तब तक डरे, जब तक में है तेरी आंख ।
आपा मिटे आप को जान लो, तभी खुलती वह आंख ।। साहिब जी

296 अति कठिन मार्ग हो गया, हर नाव में अति है भार ।
पत्थर ही पत्थर नाव में, उतरोगे कैसे पार ।। साहिब जी

297 जो नर पूर्ण विधि सूं , मालिक को देता पुकार ।
पत्थरों में टकरा कर, पुनः आती आप द्वार ।। साहिब जी

298 नाव फंसी आन मझधार में, पार होना अति दुश्वार ।
पत्थरों को अब तुम फेंक दो, फिर चले नाव उस पार ।। साहिब जी

299 साबुन विचारा क्या करे, गांठ में रखना संग ।
जल सूं होता परस ना, कपड़ा ऊजला होत न पानी साबुन संग ।। साहिब जी

300 घर का रखवाला बंधा पड़ा, चिड़िया खायो खेत ।
रखवालों को आज़ाद कर, जो बचा बचा लो खेत ।। साहिब जी

301 देखा देखी जो नर भक्ति करे, कुछ ना आवे हाथ ।
हाथ मलता वह रह गया, सतगुरू का करे ना साथ ।। साहिब जी

302 जीवन कोय समझे नहीं, मुवा क्या सुने संदेश ।
तन तो अब साबत नहीं, मन ना सुने संदेंश ।। साहिब जी

303 मन राजा मन रंक है, इस के रूप अनेक ।
मन जिस ने भी वश कर लिया, उस के बदले लेख ।। साहिब जी

304 भ्रम मोह की जीवनी सूं बंधा सब संसार ।
नमक बिन खाना फीका पड़े, बिन भजन शरीर ।। साहिब जी

305 पढ़ना गुढ़ना चातरी सब, हर कोई करे यह काम ।
मन माया जो बस करे, जोनो यह सच्चा काम ।। साहिब जी

306 जिस घर में अंधेरा रहे, चौर डाकू सांप आकर्षित हो जात सब ।
उजाला हो घर बाहिर जब, बच कर निकलते सब ।। साहिब जी

307 यह काल का जीव सुनता नहीं, होते हुए रहता बिन कान ।
जीता केवल नाम का, कौटि जन्मों सूं जीवन धोखा जान ।। साहिब जी

308 जब दुख सूं दुख ही मिले, विच के अन्तराल में सुख आभास ।
जीवन में इक पल ऐसा ना मिले, जिस में जगे प्रीती की प्यास।। साहिब जी

309 'मैं' माया के बीच का सपना, इस में हो सके तो ले तूं जान ।
जब मृत्यू को होश में देख लो, 'मैं' के गिरते को पल में लोगे जान।। साहिब जी

310 अण्ड ब्रह्माण्ड समाया हुआ, यह माने नर नार ।
जो जन चुपी धार ले, अंदर के खुलते द्वार ।। साहिब जी

311 तुम असत्य संसार असत्य, दोनों में जुड़ी है तार ।
सतगुरू ही असत्य की तार को काटता, पर तुम ही नहीं हो तैयार।। साहिब जी

312 जिसने मन मान त्याग दिये, वोहि जागा होत।
आशा तृष्णा का साथ जिसका, मुर्दे समान वह होत।। साहिब जी

313 किसी के जाने की किसी के आने की, पुकार सुनाई पड़ती।
जीव को द्वैष तब होता है, जब दूजे की लकीर लम्बी दिखती।। साहिब जी

314 जो सतगुरू कह दें, उस पर कैसा विचार।
मन माया जाल संग पड़ा, कैसे कराऊँ भव पार।। साहिब जी

315 दुख सुख में ईक सम रहकर, दोनों का भेद लो जान।
दोनों मन से उपझे, ईस पल में रहना लो जान।। साहिब जी

316 ग़रज अपनी अपनों से प्यारे, कही ना जाये।
जैसे राजा की कुलवधु, कैसे किसी ओर घर जाये।। साहिब जी

317 ये तन काग़द का पुतरा, बूंद पड़े गली जाये।
जागन का भेद पाया नहीं, कैसे चिंता रोग कटि जाये।। साहिब जी

318 त्रिलोकि में प्यारो कोई नहीं है भूखा, सब हैं मालामाल।
निज रूप को जानत नांहि, भरम सूं भयो कंगाल।। साहिब जी

319 झुकना आ गया तो, भगवान बन जाते हो।
अकड़े रहे तो, मुर्दे समान बन जाते हो।। साहिब जी

320 किसी के दुख में सहायक बनो, तो सच्चे जीव कहलाते हो।
किसी के दुख में हंसो तो, शैतान ही कहलाते हो।। साहिब जी

321 मालिक बिगाड़े ईक काम, सेवक बिगाड़े तीन।
मालिक सच्ची राह पा गया, सेवक जानो दीन।। साहिब जी

322 जिसने पहले कहा, वह आवा हो गया।
जिसने आगे सुनाया, वह सोया ही रह गया।
दोनों का कहना, मन का काम कर गया।
सुरति सूं तीजे को, बिन कुछ कहे सब दे गया।। साहिब जी

323 जगत माया में डूबा पड़ा, खावे और सोवे।
साधक की महिमां प्यारी, सुरति में जीवे और रोवे।। साहिब जी

324 यह तन विष की बेलड़ी, इस सूं मोह त्याग।
तूं अजर अमर अविनाषी, बिन इसके सब त्याग।। साहिब जी

क मन के मनोरथ छोड़ दे, तेरा किया ना होय।
पानी में घीव निकले तो, रूखा खाये ना कोय।। साहिब जी

ख करे करावे आपे आप, मानुष के कुछ नहीं हाथ।
जो कहे कि मैं कुछ कर्ता, फिर फिर गर्भ योनि में फिरता।। साहिब जी

325 अज्ञानी पुरूष के लिए, कर्म कर्म–फल आवश्यक जान।
उनका जन्म कर्म अनुसार है, बिन इच्छा बनो महान।। साहिब जी

326 जो जाग गया प्यारो, वो त्रिलोकि में मेहमान।
जो सोया पड़ा जग में, रह गया मुर्दे समान ।। साहिब जी

क भरम सेवा भरम पूजा, भरम जप तप ध्यान।
भरम करि करि भरम बंधा, नांहि सब पहचान।। साहिब जी

327 निस्वार्थ प्रेम हेतु, सतगुरू मित्र स्वामी दुख हानि नांहि।
बिन झुके प्रीति कहां, जन्म मरन सूं कबहु छूटे नांहि।। साहिब जी

328 बिन जागे बंधन छूटे नांहि, मृत्यू का सागर होत ना पार ।
बिन सतगुरू जग दाता नहीं, जो सच्ची दात सूं करते पार ।। साहिब जी

329 आत्म मन माया बंध पड़ी, छूटन का नांहि उपाये।
आत्म को जाने बिना, बंध कैसे दिख पाये।। साहिब जी

330 रोग़ भेद को जान लो, निवृति निधान फिर लो जान।
आत्म को पहले जान लो, फिर ही होत निधान।। साहिब जी

331 मन से काम लेना छोड़ दे, यही तो काल का रूप ।
मरने पर कोई साथी नहीं, जे जाना नहीं निज रूप ।। साहिब जी

332 जीवन में जो कोई जाग कर जिया, मृत्यू कर सके ना अंत ।
यह तो जीवन की परम परिपूर्णता, तीन लौक का अंत ।। साहिब जी

333 अपने सतगुरू और साधक परिवार संग, दूजे सूं भी करें प्यार ।
वह जन जल्दी जाग कर, बड़ावे प्रेम सूं प्रेम परिवार ।। साहिब जी

334 कुछ आते हैं, आकर कुछ कमा जाते हैं।
कुछ आते हैं, कमाया हुआ सब खा जाते हैं।
दोनों ही अच्छे हैं, जे सत्त पाकर निजघर जाते हैं।। साहिब जी

335 जिन जाना नांहि भूजा नांहि, सो सोया कहलाये।
अज्ञानी मूर्ख सोया जानिये, कैसे जागा कहलाये।। साहिब जी

336 जो जाग गया सो पार गया, मुर्दे क्या करेंगे बात।
सफ़ल होता हर कार्य में, इस पल की करता जो बात।। साहिब जी

337 जो जागे सो बने महान, सोये मुर्दे समान।
जागे की पहचान होत, बाकी सब गुमनाम।। साहिब जी

338 भेद भाव कुछ है नांहि, तीन लोक खेल मैदान।
हर कोई खेल है खेल रहा, जागो तो होत पलायन।। साहिब जी

339 बिन सत्संग जागे कोई ना, बिन जागे मुक्ति ना होई ।
बिन मुक्ति जन्म–मरन ना छूटे, पूर्ण सत्तगुरू से मेल ना होई।। साहिब जी

340 सतगुरू शरणी जो ना आ सके, उलटी चलता चाल ।
जीवन जब सोया खो रहा, काल के हाथों बेहाल ।। साहिब जी

341 प्यारो मुश्किल आन पड़ी, दो में से चुनो कोई एक ।
एक तरफ़ संसार है, दूजी ओर सुरति नाम ।। साहिब जी

342 जागत और सोये में, एक ही ज्योत उजियार।
वे नाम जागा आत्म में, सोया मन अनुसार।। साहिब जी

–0–

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।

(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

जागने की महत्वता

भावार्थ : प्रायः मानव समाज में नींद से उठने को ही जागना माना जाता है या भले बुरे को जानने के बावजूद, ग़लत आचरण को ही सोया हुआ माना जाता है । मानव समाज में आबादी का तक़रीबन एक–तिहाई हिस्सा मद्यपान या किसी ना किसी नशे के पदार्थों का सेवन करता है । सभी को यह पहले से ही ज्ञान होता है कि इसका सेवन मानव समाज के लिए हानिकारक है, परन्तू फ़िर भी वह उसका सेवन करके अनमोल मानव जीवन को ही नष्ट किये जा रहा है, इसी प्रकार हर प्राणी में उस मालिक का अंश है, लोभ व जीवा के स्वाद वश अनग़िनत असहाय प्राणियों की हत्या किए जा रहा है, ऐैसा कर्म करने वाले अज्ञान व अभिमान वश, अनग़िनत तर्क–वितर्कों से अपने अपने कु–कृत्यों को सही ठहराने की भरसक चेष्ठा करते रहते हैं । इस प्रयास में वे कई देवी–देवताओं, महापुरूषों, अवतारों, पैग़म्बरों और न जाने कितनी महान विभूतियों का अपमान किए जा रहे हैं । उद्‌ाहरणता, मद्यपान व नशा करने वाले भगवान भोले शंकर जी का अपमान करते हैं । दूसरों की हत्या करने वाले आतंकवादी अपने कृत को धर्म–कृत 'जेहाद' नाम कह कर उचित ठहराते हैं । संसार के सब दुराचारी,दम्भी, दुरविचारों से ग्रसित, नाना प्रकार के अपने घृणित कार्यों को तर्क–वितर्कों से उचित ठहराने की चेष्ठा करते रहते हैं । तर्क–वितर्कों से उनको हराना अत्यन्त कठिन कार्य होता है । वह ग्रन्थों व महापुरूषों की वाणियों को अपने तर्क–वितर्क अनुसार तोड़ मरोड़ के खुद को सही ठहराने की चेष्ठा करते हैं, ठीक इसी प्रकार मानव समाज आध्यात्म के विषय में बहुत कुछ समझते हुए भी भ्रमित हुआ, इस जगत की चकाचौंध व मन व मन की इन्द्रियों के वशिभूत हुआ सारा जीवन भर अपनी चेष्ठाऐं, सामर्थ व उर्जा नाशवान वस्तुओं को इक्ट्‌ठा करने में अपना अनमोल जीवन नष्ट कर बैठता है, ऐसा नहीं कि मानव अपनी मृत्यू को जानता नहीं, इस जग को कुछ काल उपरान्त छोड़ कर मृत्यू को प्राप्त होना ही है, यह जानते हुए भी इस जगत में उलझा हुआ आगे के सफ़र के बारे में कोई प्रयास तक नहीं करता । मानव इस जीवन से पहले, कहीं से तो आया है और जीवन उपरान्त कहीं तो जाना है, यह सब जानते समझते हुए भी इस विषय में किसी प्रकार का कोई चिन्तन मनन नहीं करता है ।

महाभारत में एक दृष्टान्त अनुसार, युधिष्ट्‌ठर से जब पूछा गया कि इस जीवन की सबसे हैरान करने वाली विचित्र बात क्या है ? तो उत्तर में युधिष्ट्‌ठर ने कहा, प्रायः सभी मानव जानते हैं कि एक दिन हमें मृत्यू को प्राप्त होना ही है मगर फ़िर भी उनकी दिनचर्या, रहन–सहन, कार्य व व्यवहार और सारे जीवन भर की चेष्ट्‌ठाओं से लगता है कि हर मानव इस प्रकार जी रहा है जैसे वह तो अमर है, बाकी सब ही ने मृत्यू को प्राप्त होना है। यह बात बिल्कुल यथार्थ है अर्थात आज भी मानव समाज अपने अपने इष्ठों, आराध्यों को पूज तो रहा है मगर अपनी श्रदा व पूजा, संसार की नाशवान वस्तुओं को पाने के लिए ही कर रहा है । कोई बिरला जन ही निस्वार्थ भाव से अनन्य भक्ति किए जा रहा है । किसी सोए हुए मनुष्य को तो जगाना आसान है, किसी भटके हुए को तो रास्ता दिखाना आसान है, परन्तु इस सृष्टि की श्रेष्ठ रचना मानव, मन व जगत की चकाचौंध वश सब कुछ जानते हुए भी भौतिक जगत को प्राप्त करने की चेष्ठा किए जा रहा है और इस चेष्ठा से कर्म बन्धन में धंसा हुआ बार–बार जन्म मरण को प्राप्त हो रहा है ।

जो मानव आध्यात्म की दुनियां में पूजा–अरचना व जप तप और नां जाने कितने अनग़िनत

जो मानव आध्यात्म की दुनियां में पूजा–अरचना व जप तप और नां जाने कितने अनगिनत प्रयत्न किए जा रहा है, अपने अपने ईष्ठ, देवी–देव, अवतार–पैग़म्बर, दिग़म्बर, जड़–पदार्थ, वृक्षों, किन्नरों, गन्धर्वों, राक्षसों, भूत–प्रेतों व साकार और निराकार के ना जाने किन–किन रूपों की पूजा किए जा रहा है । संसार में प्रायः सभी धर्म व मत अपने–अपने मार्ग व ईष्ठ को श्रेष्ठ बताते हुए एक बात पर तो सभी सहमत हैं कि सब का मालिक एक है।मूलतः यह सारी क़ायनात उस निराकार भगवान को जिसे 'ऊं'एक औंकार, अलख़–निरंझन, काल–पुरूष, खुदा व ईश्वर नाम से जाना जाता है, के अधीन है । यह सारे उपरोक्त आराध्य, भजने वालों को निराकार भगवान उसी रूप में ही उनकी मनोकामनाएं पूर्ण करते हैं, पर इनको भजने से अल्प–अवधि की मुक्ति, अर्थात स्वर्ग तो मिल सकता है पर आत्मा इस (आवागमण) जन्म मरन के बन्धन से मुक्त नहीं हो सकती ।

सब प्राणियों में श्रेष्ठ मानव का तन और मन, उस निराकार का ही रूप है, परन्तु चेतन आत्मा, उस एक सत्य–पुरूष/परमपुरूष जिसे सन्तों ने साहिब नाम से पुकारा, का ही अंश है, प्रायः सारा जगत मन–रूपी निराकार के वशीभूत हुआ, अपने मूल को ना पहचानता हुआ निराकार की भक्ति में ही संलग्न है और उसे ही सब कुछ (एक मालिक)

मान बैठा है । जबकि सच तो यह है कि सहज मार्ग (सत्तभक्ति) के संतों अनुसार आत्मां उस सत्यपुरूष का ही अंश है और यह तीन लौक, सृष्टि, जीव–काया और मन, निराकार का ही रूप हैं । परन्तु जीव के अंदर चेतन सत्ता, परमपुरूष का ही अंश है जिसे संतजनों ने 'हंसा' नाम से पुकारा है । हंसा के साथ मन जुड़ने से इसे 'आत्मां नाम से जाना गया ।

(हंसा + मन = आत्मां) (आत्मां – मन = हंसा)

निराकार सत्ता के ऋषि–मुणि, गुरू, महात्मा व उपदेशक इस चेतन सत्ता को अज्ञानतावश आत्मां नाम से पुकारते हैं मगर सहज मार्ग के संत व संपूर्ण सत्तगुरू परमहँस इसे हंसा नाम से सम्बोधित करते हैं । निराकार दायरे के गुरूजन मन–रूपी काम, कौध, आशा–तृष्णा से ग्रसित होते हैं । बहुत उच्च अवस्था प्राप्त करने के बाद भी वे मनरूपी निराकार के अधीन होने के कारण मन से ग्रसित रहते हैं । ऐसे अनेक ऋषि–मुणियों, जैसे विश्वामित्र जी, शुक्राचार्य जी, भृगु जी, दरवासा ऋषि, अष्टावक्र जी व अन्य अनगिनत ऋषियों के कई उद्‌ाहरण विद्‌मान हैं । इस माया रूपी चकाचौंध से युक्त जगत को समझना और सतपुरूष को पाने को प्रयत्नशील होना ही 'जागना' है । बिना जागे भक्ति सम्भव ही नहीं, जैसे श्री–कृष्ण भगवान ने अर्जुन को बिना जगाए गीता का सम्पूर्ण ज्ञान समझाया, परन्तु सोया हुआ अर्जुन उसे समझ पाने में असमर्थ, श्री–कृष्ण को निराकार रूपी भगवान ना मान कर अपना साधारण मित्र व सख़ा ही समझता रहा । निराकार के मनरूपी बन्धन (इन्द्री–जाल/तीन–पाँच–पच्चीस का पिजँरा) को जानने के उपरान्त, अपने मूल–रूपी साहिब (सत्तपुरूष) अंश 'हंसा' को पहचानने और सत्तपुरूष/साहिब को पाने हेतु प्रयास–रत होना ही जागने की ओर पहला कदम है ।

————————

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

3 निराकार (महांकाल) की महिमां

343 गुप्त भयो संग हर जीव के, निरंझन मन लो जान।
चार वेद जाका ब्ख़ान करे, आत्म उसी के वश जान।। साहिब जी

344 असत्य मन का खोट, करो सार सुरत सूं बाहिर ।
असत्य सूं यात्रा मन की, वही है निरंकार ।। साहिब जी

345 अंदर तेरे सपने, बाहिर ये माया जाल ।
अतीत की यादें भविष्य के सपने, यही है कर्मण जाल ।। साहिब जी

346 तुम असत्य का संग ही कर रहे, उसी में मग्न आठों पहर ।
निराकार ही भरमा रहा, भर रहा हर पल अहंकार ।। साहिब जी

347 निराकार लोक में सुख कहीं दिखता नांहि, दुख ही दुख चारों ओर ।
सुख तो दुखों के मध्य की, आस बिन नांहि कुछ ओर।। साहिब जी

348 हरि हर नाम ह्रदय धरे, जाने न शब्द का फेर ।
चौरासी मन में सदा, मिटे न भव का फेर ।। साहिब जी

349 देवी देवों की भक्ति में, लिपट रहयो संसार ।
कहे वे नाम सार नाम बिन, कैसे छूटे संसार ।। साहिब जी

350 भूला कौल करार को, पड़ी जब काल की मार ।
कोठी–बंगला–कारों की तृष्णा सूं, आत्म हुई बेहाल ।। साहिब जी

351 कर्मों के वश त्रिलोकि पड़ी, वैसे जीव मनवा हाथ।
नाना नाच नचाई के, बस में रखे मन आत्म अपने हाथ ।। साहिब जी

352 बाजीगर का बांदरा, वैसे जीव मनवा हाथ।
नाना नाच नचाई के, बस में रखे अपने हाथ।। साहिब जी

353 बीता कल ग़वाया आज प्यारो, आज ग़वाया फिर कल ।
आशाओं का सहारा लेते जो, सपनों में रहते हर पल ।। साहिब जी

क चिन्ता तो सतनाम की, ओर न चितवे दास ।
जो कुछ चितावे नाम बिन, सोहि काल की फांस ।। साहिब जी

ख गर्भ योगेश्वर गुरू बिना, करे हरि की सेव ।
जा पहुँचा बैकुण्ठ में, हरि फेर दिया सुख देव ।। साहिब जी

354 मनसा वाचा कर्मणा, रहो स्मिरन के मांहि ।
श्वांस–श्वांस में रम गया, अब रहता स्मिरन मांहि ।। साहिब जी

355 प्यारो एक सुत्र तुम धार लो, सुनो अनहद नाद ।
ईन्द्रियां किया समर्पण नाम को, अंदर उठा अनहद नाद।। साहिब जी

356 अब मन नाम होई रहा, शीष निवाहें काहे ।
अंग अंग में रम गया, भजन भया न कोए ।। साहिब जी

357 इक बार बजे बांसुरी, गोपियां छोड़ें घर द्वार ।
मथनी–मटकी त्याग कर, दौड़ें कृष्ण दरबार ।। साहिब जी

358 शब्दे भक्ति शब्दे आकाश, सब्दे भयो प्रकाश ।
देवी देव शब्द से आए, तीन लोक प्रकाश ।। साहिब जी

359 काल जाल में पड़कर, बिसरी नाम सूं प्रीत।
दुख तो पल पल पा रहे, बिसरी सच्ची प्रीत ।। साहिब जी

360 मन माया जब संग में, संतों से क्या काम ।
करे बसंत पुकार तुझे, नाम से क्या काम ।। साहिब जी

361 मन माया छिन एक में, बने आत्म दास ।
जगत की आशा बह गई, नाम का जे संग साथ ।। साहिब जी

362 अपने घर की मरम न जाने, धोए वैद का दाव ।
निज का संग ना सतगुरू से, जो तरन का देता दाव ।। साहिब जी

363 सूरज सैल करे नभ उपर, जब खुलें सुश्मिन द्वार ।
चांदनी चौक छाया घट भीतर, जोत स्वरूप सुन्न द्वार ।। साहिब जी

364 बिन मन छूटे जगत में, कैसे हो जग त्याग ।
मुख से स्मिरन क्या भया, जे भीतर मिटा ना दाग ।। साहिब जी

365 होंठ–कण्ठ से जो जपे, वह मानव कहलाए ।
मन–हृदय से जो जपे, सो देव कहलाए ।। साहिब जी

366 सात सुन्न (सात महांसुन्न) सात सुरति स्थान, ईक्कीस ब्राह्मण्ड स्थाना ।
काल निरंझन रचियता सबन का, सब जीव भरमाना ।। साहिब जी

367 भंवर गुफा में अनहद झंकार, सुरति सूं पावे तान ।
जो कोई सुने इस तान को, पावें सुन्न स्थान ।। साहिब जी

368 जा का गुरू सोया पड़ा, चेला भी उस संग ।
दोनों सोए ईक संग में, कैसे छूटे काल का संग ।। साहिब जी

369 सुन्न से स्वांसा उठत है, सुन्न सूं नाभी तल जाए ।
हाथ पांव इसके नांहि, सुरति सूं पकड़ी जाए।। साहिब जी

370 पांच तत्व के बीज सूं, निरंझन रचयो संसार ।
उन्चास (49) करोड़ योजन पृथ्वी, सूर्य, तारे, चांद और पाताल ।। साहिब जी

371 सात पाताल, सात लोक, सात महासुन्न रच डाले ।
मांग बीज, खेत बीजन को, तां सूं खेत रच डाले ।। साहिब जी

372 तीन लौक से पार वह, बिसरी बैठा दातार ।
वेद कतेव देव अंत नांहि, बेंअत बेशुमार ।। साहिब जी

373 कंई जन्म गवाई सोई के, कंई गवायो खाई ।
साहिब रूपी हंस आत्मा, काल रजा नहीं भरमाई ।। साहिब जी

374 साहिब जी झूठी काया झूठी छाया, झूठा जग परिवार ।
झूठी माया संसार भवसागर, कोई न उतरे पार ।। साहिब जी

375 जब मन रता विषय विकार सूं, उसे तूं सोया जान ।
तब लग सुरति न जागे, सुरति सूं दूर प्राण ।। साहिब जी

376 जिस घर संत न पूजिए, संतन सेव ना होए ।
वो घट मरघट जानिए, भूत प्रेत का डेरा होए ।। साहिब जी

377 मन माया में रम रहा, भूला मूल निवास ।
घौर दुख है पा रहा, पड़ा काल संग साथ ।। साहिब जी

378 सब संसार निरंकार रचियता, यही है मन विस्तार ।
बिन निरंकार नांहि संसार, है तीन लौक पसार ।। साहिब जी

379 ब्रहमा गुरू तीन लौक के, संतन लेन न देन ।
उलझा सब संसार है, पढ़ी चार वेद पुराण ।। साहिब जी

380 जिस में भेद छुआ–छूत का, जात पात का दोष भी संग ।
देवी देवों की भक्ति करे, काल का छूटे ना संग ।। साहिब जी

381 पावत बहुत तलाश के, करते छोटी बात ।
आंधी दूर ही ले गई, कित गई टूटी पात ।। साहिब जी

382 पाहन ही को पूजता, पाहन में रखता पाहन ।
अंधेरा जो है पूजता, आत्म की न करे पहचान ।। साहिब जी

383 पारस मणि से नांहि काम संतों का, ये तो मर्म है मान ।
अब मन माया तो बह गए, आत्म रहती बिन मान ।। साहिब जी

384 डूढंत राम फिरे वन वन में, कुछ ना आवे हाथ ।
जड़ चेतन ग्रन्थों के मांहि, बारम्बार जन्म मरन का साथ ।। साहिब जी

385 दशों अवतार निरंझन करे, कोई ना पहुंचा निजधाम ।
सब जग को भरमा रहा, कोई बिरला जावे निजधाम ।। साहिब जी

386 ईक लख नब्बे हज़ार गुरू, पीर पैग़म्बर जग अवतार ।
सब मिल ईक निरंझन जानेया, कहलाएं निरंकार अवतार ।। साहिब जी

387 काल पुरूष करि जीव जग़त की रचना,
हंसा संग जोड़ा तन मन साथ।
ऋषि मुणि और जपी तपी सभी लियो भरमाए,
हंसों को किया कैद मन साथ – २ ।। साहिब जी

388 तेरा घड़ा दिखने में तो साबुत दिखे, अंदर पड़ी दरार ।
वर्षा पानी ना टिके, कितना भी बरसे मेह ।। साहिब जी

389 जात–धर्म पंथ पद, प्रेम में डालें दरार ।
अब कोई ज्ञान ना ठहर सके, 'मैं' ने पकड़ी डौर ।। साहिब जी

390 अब मन अति भारी हो गया, सुरति करे ना काम ।
अब निंद्रा ग़हरी हो गयी, दुख के हाथ कमान ।। साहिब जी

391 केवल सीदी चाल सूं, प्यादा बने वज़ीर ।
रूख़ कभी शाह ना हो सके, टेढ़ी जाकी तसीर ।। साहिब जी

392 पांच शब्द सौहंग सत्त ज्योति–निरंझन निरंकार औंकार सोहि सत्त मान।
इनके उपर अक्का सब्द, ताकि ख़बर ना जान ।। साहिब जी

393 सिध साद्व और ऋषि मुणि, पंच शब्द भरमाए ।
पांच मुद्रा पर ध्यान घट भीतर, फिर गर्भ वास में आए ।। साहिब जी

394 जब लग पूर्ण सतगुरू ना पावें, छूटे ना काल का जाल ।
तीन लौक सब काल पसारा, यही निराकार का जाल ।। साहिब जी

395 आशा–तृष्णा मोह अंहकार पद, जाने निरंकार मन रूप ।
इसका तजना कठिन है, उससे ढका आत्म रूप ।। साहिब जी

396 मन लोभी, मन लालची, मन का फैला जाल ।
मन राजा, मन सूरमा, निरंकार रचयो जाल ।। साहिब जी

397 मन को देवी देव तुम जानो, यही खुदा यशु गुरूआई ।
मानव तो इन्हीं में फंसा, निराकार रूप समाई ।। साहिब जी

398 मन झूठा, जग झूठा है, सबको लिया मन लूट ।
बिन सब्द कोई ना बचे, पल में मन ले लूट ।। साहिब जी

क मन के मते ना चलिए, मन के मते अनेक ।
जो मन पे असवार है, वह साधू कोई एक ।। साहिब जी

ख मन ही सरूपी देव निरंझन, तांहि रहा भरमाई ।
तीन–पांच–पच्चीस का पिंझरा, जा में रहा भरमाई ।। साहिब जी

399 मन ही आत्म भरमावता, काल का छूटे ना साथ ।
साहिबा त्रिवेणि घाट पर, आत्म छोड़े मन साथ ।। साहिब जी

400 मन ही सृष्टि से परे, आप निरंकार कहलाए ।
मन ही साकार–निराकार है, दोनों निज रूप कहाए ।। साहिब जी

401 इसमें कुछ संदेह नांहि, जग क्रूर सत्ता के हाथ ।
सब ओर दुख़ छाया पड़ा, छल कपट स्वार्थ निज साथ ।। साहिब जी

402 मन जीवन है पवन सूं , शून्य में पवन रूप ।
शून्य बृहा आधार है, निराकार का स्वरूप ।। साहिब जी

403 एक योगी के पांच पुत्र, एक एक पांच बिबियां लाया ।
एक अचम्भा ऐसा देखा, बेटी ने बाबुल जाया ।। साहिब जी

404 योगी एक किले से उतरा, संग लिए चारू चेला ।
चारों ने मिल जग भरमाया, योगी की सुने न चेला ।। साहिब जी

405 मन ह्रदय चित साफ हो, प्राण अमृत धार ।
प्राण त्रिकुटि सुरंग उल्टा चड़े, दर्शण होत प्रकाश दीदार।। साहिब जी

406 कोन मन्दिर में कोन देव, कहीं विधि बैठ कीजिए सेव।
कर सूं मुख सूं मन सूं, यही विधि ध्यावे देव ।। साहिब जी

407 मन ही काल का रूप है, जीव नचाए करे बेहाल ।
हर जीव संग काल का वास, अज्ञानी फिरे बेहाल।। साहिब जी

408 मन के रूप अनेक है, पल पल बदले रंग ।
तीन लौक मन निज रूप, हर नर के रहता संग ।। साहिब जी

409 डर कारण करता हर कार्य, सब सूं करता प्रीत ।
दुख ना देता किसी जीव को, दुख हर्ता पाता प्रीत ।। साहिब जी

410 पल पल सुन्न है बन रहा, पांच तत्व बनते–मिटते साथ ।
प्रकाश भी है मिट रहा, कैसे भगवान कहलाये आप ।। साहिब जी

411 सार नाम नांहि ह्रदय धरा, पड़ा निरंकार के जाल ।
वस्तू कहीं डूढें कहीं, किस विध मिटे काल का जाल ।। साहिब जी

412 कई जन्म से लेन देन का सौदा किया, कुछ न आयो हाथ ।
अब की बार सौदा मत करियो, नहीं जाना कुछ साथ ।। साहिब जी

413 काल निरंझन कई जन्मों से, चुन चुन खायो मास ।
अब की बारी मत खाइयो, मोहे पिया मिलन की आस ।। साहिब जी

क काग़ा कंख फरोलियो, चुन चुन खाईयो मास ।(फ़रीद जी वाणी)
ये दो नैनन मत छुईयो, मोहे पिया मिलन की आस ।। साहिब जी

414 काग़ा सा कांव कांव मत करो, कम और मीठा बोलो मेरे भाई ।
काग़ा दे आदतन बिष्ठा खावे, तू क्यूं ऐसा करे मेरे भाई।। साहिब जी

क) उठ फ़रीदा सुत्तेया, झाडू दे मसीत ।
तूं सुत्तेया, रब जागता, तेरी डाडे नाल प्रीत ।। साहिब जी

415 काग़ा तो व्यर्थ ही बोलता, कानों में घोलता विष ।
तेरा बोलना कैसा भाई, अमृत मांहि या विष ।। साहिब जी

416 सिद्ध तांत्रिक जो चमत्कार करत, वह भी हैं माया रूप।
ईन्द्रियां मन से जो दर्शण होत, वह भी माया रूप ।। साहिब जी

417 मन माया तेरा रूप है, जिस का रूप अपार ।
किस विधि प्रेम करूं, जिस का आर न पार ।। साहिब जी

418 हरी भक्ति सब करे, मांगे मन भावन मांग।
मांगे जो हरी पूरी करें, फ़िर मांग पे मांग ।। साहिब जी

419 निराकार नाम अलख निरंझन, दो आंखों के मद का ताला ।
शिव जी और ग़ोरख नाथ ने, खोला था ये महां ताला ।। साहिब जी

420 मन तेरे अंदर देव निरंझन, तांहि रहा भरमाई ।
हे हंसा तूं जोत अमर, धूल पड़ा जग आई ।। साहिब जी

क तरवर फल नहीं खात है, सरोवर पिए न पान ।
रहिमण परहित काज को, सुमति सच्चन सुझान ।। साहिब जी

421 प्रकृति सब लुटाती है, मानुष लेता सब लूट ।
देवी देव से मांगता, जो पाता सब जाता छूट ।। साहिब जी

422 संसारी नर निरंकार को, मान रहे हैं साहिब ।
निरंकार के तीन लौक, स्वर्ग नर्क मृत्यु लौक बिन साहिब ।। साहिब जी

423 तीन लोक निराकार को, पूज रहे दिन रात ।
निरंकार की ही सेव करें, कैसे भौगें भौग की भात ।। साहिब जी

424 मन झूठा झूठी देहि, सत सब्द निज सार।
बिन सब्द जग भूला फिरे, मरना जीना नांहि सार।। साहिब जी

425 सगुण निर्गुण सब पूज रहे, निरंकार को दिन रात ।
निरंकार मन रूप को पूजें, आत्म न छूटे मन जब साथ।। साहिब जी

426 कहता हूं कहीं जात हूं, यही है मेरा काम ।
कानों को बंद जो कर गया, कैसे पावे सार वे नाम ।। साहिब जी

427 पांच तत्व का जीव यह, जग आवे बारम्बार ।
आशा तृष्णा जब तक संग है, मरता बारम्बार ।। साहिब जी

428 चार दिन सुख के देख कर, मत कर तूं अभिमान ।
आगे आगे देख लो, कैसे कैसे दुख देत अभिमान ।। साहिब जी

429 बहुत हठ मत कर मन मेरे, हठ सूं जड़ हो जाए ।
ज्यूं ज्यूं भीजे कपास को, त्यूं त्यूं बीज बड़ाए ।। साहिब जी

430 संसारी प्रेम से कल्याण ना कर, इससे बने ना कोई काम ।
पर इस को उभारते, अंदर के पट खुलें तो होत कल्याण।। साहिब जी

431 सभी के उपर आकाश एक है, निराकार का सब सूं व्यवहार एक ।
हम ही अगर सतगुरू को नहीं पा रहे, दोष उस एक को क्यूं है देत।। साहिब जी

432 जो सतगुरू की माने नहीं, मन की सुनता बात ।
अब सतगुरू साहिबा क्या करें, मन के हाथ सब बात ।। साहिब जी

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

3—क मन व ईन्द्रियां और कर्म फल विस्तार

433 सात सुरति दश हैं इन्द्री, संतन किया ब्खान ।
इन्द्री पांच ज्ञान की जानो, कर्म इन्द्री पांच महान ।। साहिब जी

434 सुर नर मुणि सब को ठगें, मन ही है अवतार ।
जो कोई या को साध ले, तीन लौक सूं पार ।। साहिब जी

435 चिंता ऐसी डाकनी, काड कलेजा खाए ।
वैद विचारा क्या करे, कब तक मरम लगाए।। साहिब जी

436 जहां धर्म तहां सत्य है, जहां दो तहां पार।
जहां धर्म सत्त गये, तहां लोभ मोह अहंकार।। साहिब जी

437 वर्षा कण जब बरसते, धारें सुन्दर रूप ।
धरती चुम्भक प्रीत सूं, धुन बाजे अनूप ।। साहिब जी

438 ह्रदय कण्ठन में मन बसे, माया उसका रूप ।
सुरति सूं निज धियाईए, भजन बने भाव रूप ।। साहिब जी

439 वाणी द्वार तुम बंद करो, मन दूर हो जाए ।
बिन विचार सुरति घरो, ईन्द्री जाल खो जाए ।। साहिब जी

440 करो प्रतीती जब जीव सूं, मन माया से पार ।
झूठ, व्योपार संसार का, झूठा काल सूं प्यार ।। साहिब जी

441 माया ठगिणी नागिणी, खाए ते डस जाए।
तीनों देव वश में किए, जीव कहां को जाए ।। साहिब जी

442 पर—नारी पैनी छूरी, मत भरमावे कोई ।
पर नारी के विष से, जीवित बचा न कोय ।। साहिब जी

443 मंदिर मस्जिद गिरिजा घर, भक्ति से दूर के डाल ।
वेद–क्तेव तौरा कुराण, निरंकार ही के डाल ।। साहिब जी

444 दिवस गया आसार में, रात में सपने हज़ार ।
हीरों वरगी आत्मां, मन माया के आसार ।। साहिब जी

445 ईन्द्री वश हर जीव है, मिटे न संशय मूल ।
बाहर केवल माया जाल है, यही है दुख का मूल ।। साहिब जी

446 पढ़ लिख नर भूला सच्ची दात, दुख ही दुख संग साथ।
पद–प्रतिष्ठा सब मिले, मन भी पाया साथ ।। साहिब जी

447 मन की मत सुनो चित लाई, मन तो केवल आसार ।
मन का सार ईन्द्री जोड़, जो है खाज मिठास ।। साहिब जी

448 तुम्हारी बैलगाड़ी के संग, चारों ओर हैं बैल ।
रस–गन्ध सुन्दरता प्रचार, चारों ओर विष बैल ।। साहिब जी

449 सब कुछ मिलता भीतर, बाहर नर्क द्वार ।
मन जानो सब आसार, प्यारो प्रलोभन द्वार ।। साहिब जी

450 मन की मैल तभी मिटे, जब मन से भाव मिट जाए ।
मन ही काल निरंझन भैया, सार सब्द सूं मिट जाए।। साहिब जी

451 मन माया श्रृंगी ऋषि का, जीवन कियो बेहाल ।
सब तज जंगल को भागे, मन माया किया बेहाल ।। साहिब जी

452 जड़ चेतन सूं ग्रन्थी पड़ी, आत्म छूटत कठिनाई ।
मिथ्या गाण्ठ सूं 'मै' बन्दी, निज भ्रम कठिनाई ।। साहिब जी

453 चन्दन पानी समान सुरति बने, मन ईन्द्री मदमस्तक होत ।
जो मन ईन्द्री मनवाणी सुने, लाखों जन्म दुख सहत ।। साहिब जी

454 होए जिसका दोस्त निरंकार, दुश्मन आसमान क्यूं कर ।
होए जिसका दोस्त सियाल, दुश्मन फन्द हो क्युं कर ।। साहिब जी

455 जीवन अकेले सफ़र की रात है, पूरी कायनात निज साथ।
यही तो मन माया की बात, अपने अपने हौंसले की बात।। साहिब जी

456 अपने घर का मर्म न जाने, धोए वैद का घाव।
उपदेश देता जग में फिर, खुद ग्रस्त है भाव ।। साहिब जी

457 अधम वचन कभी न फलयो, बैठे मन माया की छांव ।
ये दोनों बन्धन के कारण, इन से बिन मुक्ति नहीं ठांव।। साहिब जी

458 पूजा–पाठ मान बड़ाई, यह सब मन की मांग ।
सार सब्द की दात सूं मन, माया संग लियो भाग ।। साहिब जी

459 काम क्रोध लोभ अंहकार, मन माया की लहर संसार ।
बिन मन तजे लहर न जाऐ, यही लहर भटकावे संसार ।। साहिब जी

460 जो आया सतलोक से, सो तो घट ही मांहि ।
परदा पड़ा है मन का, तां ते सुझे नांहि ।। साहिब जी

461 साधु विषय विकार सूं , जब रहता मन मलीन ।
तब लग सुरति जागे ना, दुख़ सुख़ में आत्म लीन ।। साहिब जी

462 ज्यूं धुन लागे लाकड़ी, लीहें लागी काट ।
काम करे घट जाजरा, छिन्न भिन्न होवे बाट ।। साहिब जी

463 एक कनक अरू कामिणी, कामी को भाए सोहि ।
पतंगा जोत सूं जल मरे, कामी मरे मन मांहि ।। साहिब जी

464 एक कनक अरू कामिणी, पड़े जो इनके संग ।
प्यारो जली मुआ जगत, ज्यूं दीपक जोत पतंग ।। साहिब जी

465 झूठी काया, झूठी माया, झूठ का सब व्योपारा ।
झूठी क़नक अरू कामिणी, बिन जाने सतगुरू प्यारा ।। साहिब जी

466 डाल पात तजि मूल मांहि, फिर दिखलावे भेष।
यह सब धोखा मन का प्यारो, भूला सच्चा देश ।। साहिब जी

467 झूठे तन के कारण, संग काम क्रौध विकार ।
झूठे पद धन संपदा, पूत सपूत कुटुम्भ परिवार ।। साहिब जी

468 मुख मीठो मन कपटी, तहां नांहि साहिब निवास ।
तां सूं सुरति ना मिले, तां नांहि प्रेम निवास ।। साहिब जी

469ऊँचे कुल का जन्मियां, कभी न जागा होए ।
मान बड़ाई मार्ग चले, सुख न पावे कोए।। साहिब जी

470 मन भाव प्रकटाये हर पल, तूं छाया को छूना ।
यह माया अति है प्यारी, भक्ति को मत तूं छूना ।। साहिब जी

471 जो सिर साहिब ना निवें, तृष्णा छूटे नांहि ।
मान अपमान में मन फंसा, दुख़ सुख़ छूटे नांहि ।। साहिब जी

472 कण कण से बने चांद तारे, सूरज के कण दें लौ ।
हम कण कण गुण भूलकर, कहते सूरज देत लौ ।। साहिब जी

473 आत्मा से बैर किस बात का, सुन लो मेरे भाई ।
मन ही आत्म बांध्या, जन्म–जन्म की लड़ाई ।। साहिब जी

474 तन को कुछ भी चाह नहीं, जो दो सोहि कबूल ।
खट्टा–मीठा नमकीन जो, मन झट करता कबूल ।। साहिब जी

475 तन काग़ज की नाव है, ईंद्रियां जल की धार ।
सब मिल भंवर में घेरेया, कैसे लागे पार ।। साहिब जी

476 मन पांचो के वश पड़ा, पांच नांहि मन आधार ।
जे मन पांचों से बचे, तांहि उतरे पार ।। साहिब जी

477 कौटिन कर्म कराए कर, विषयों में लेत भरमाए ।
सतगुरू सब्द जे ना मानिए, पल पल फंसता जाए ।। साहिब जी

478 जग में जो दान है करता, अन्दर इच्छा महान ।
वस्तु अनाज का दान जो करता, आ घेरे अभिमान ।। साहिब जी

क जो कोई दान है दे रहा, मान को ही है दान।
उंचा चड़ के देखता, कौतिक दूर निशान ।। साहिब जी

479 चिंता माया डाकिनी, काड कलेजा खाए ।
मन ही के ये अंग हैं, सत सब्द सूं मिट पांए ।। साहिब जी

480 साहिब इस संसार में, सब का वैरी मोह ।
जिस घर जिता धन पड़ा, तांहि घर लेता मोह ।। साहिब जी

481 पंडत ज्ञानी कथनी कथें, करनी का ना बौध ।
सपनों का महल सजावे, सार आसार का ना भेद ।। साहिब जी

482 कथनी कथे जग भरमाता, करनी का ना बौध ।
करनी–कथनी न जब एक, सुरति सूं मन का भेद ।। साहिब जी

483 रोटी मिले न आप को, ओरन बांटे छिर ।
अपना मन तो मिटा नांहि, ओरन देता धीर ।। साहिब जी

484 कोन मुर्हूत वापिया, चांद सूरज आकाश ।
लग्न–मुहूर्त सब झूठ हैं, मन जाऐ पंडत पास ।। साहिब जी

485 पढ़ते गुढ़ते कंई वर्ष लोगे, बड़ा अति अभिमान ।
भीतर व्यापया रोग आशा तृष्णा का, अंदर मन माया में ध्यान ।। साहिब जी

486 निंदक नाक बिन जग फिरे, बुरी संगत पड़ी रहत ।
संतन संग भी रहकर, मन–मुरीद सम ही रहत ।। साहिब जी

487 ऊँचे पद के कारण, फूला फिरे संसार ।
जैसे फूल उजारि का, बिन दिखे छोड़ संसार ।। साहिब जी

488 बिन सतगुरू प्रीति न उपझे, हौमें नांहि जाई ।
बिन सतगुरू मुक्ति न पाईए, लख जतन करे जे कोई ।। साहिब जी

489 आत्म कुछ नांहि जग मांगती, मन अनुसार करे सब काज ।
मन माया निज जाल सूं, पल पल भरमा कराते काज ।। साहिब जी

490 मन मुरीद़ हरि को पूजता, माया में धरता ध्यान ।
राग द्वेष अतीत के, आशा तृष्णा में रहता ध्यान ।। साहिब जी

491 साहिबा मन भरमावता, हर पल नचावे नाच ।
ध्यान करने में बाधा बने, आशा तृष्णा नचावे नाच ।। साहिब जी

492 सतपुरूष सा हीरा छोड़ी कर, करे हरि की आस ।
सो नर काल जाल फंस जाएगा, राखे न निज घर आस ।। साहिब जी

493 मन मानयो तो काल ना छोड़े, गर्भ वास बहुत दुख पाई ।
मन मैला तन उजरा, जीवित प्रेत दुख–दाई ।। साहिब जी

494 मन माया एको करि जानिए, इन में नांहि कोई भेद ।
ईन्हीं मिल नर को लिप्टेया, जानो सच्चा भेद ।। साहिब जी

495 माया त्रिगुणी रूप है, तां से प्रगटा मन रूप ।
पांच तत्व के मेल सूं, प्रगटा सकल स्वरूप ।। साहिब जी

496 मन ब्रह्माण्ड निज जानिए, माया त्रिगुण गुण रूप ।
पंच तत्व से निर्मित प्राकृति, सो भी माया रूप ।। साहिब जी

497 माया मन में समाई है, पंच तत्व सूं नर शरीर ।
मन पल–पल आत्म संग है, सब मिल भरमाया हंस रूप ।। साहिब जी

498 आशा–तृष्णा कभु ना मरे, मरे ना मन और माया ।
मरता तो शरीर है, मन आत्म भरमाया ।। साहिब जी

499 धन–स्त्री–पुत्र घर–बाहर, यह है माटि माया ।
माटि मात्र तजनी सरल है, तजि जाए ना माया ।। साहिब जी

500 आशा–तृष्णा अंहकार, सूक्ष्म माया रूप ।
इनका तजना कठिन है, जिनके कंई रूप ।। साहिब जी

501 मन को देवी देव तुम जानो, सबे रहा भरमाई ।
नर तो हंसा अमर लौक का, पड़ा काल वश आई ।। साहिब जी

502 काम क्रोध लोभ मोह, यह मन के जानों अंग ।
ये पाचों मन के अस्त्र, जिन सूं झकड़ा हंसा संग ।। साहिब जी

503 बहु बंधन सूं बाधियां, इक विचारा जीव ।
जीव विचारा क्या करे, जब मन ने पकड़ी नींव ।। साहिब जी

504 इन पाचों का निज परिवार पड़ा, मन को किया बेहाल ।
चेतन शक्ति आत्म सूं अर्जित करे, तांहि आत्म बेहाल ।। साहिब जी

505 कंई बंधन सूं बांधेया, इक चेतन ये जीव ।
आत्म सब जाने नांहि, किस कारण दुख़ी सब जीव ।। साहिब जी

506 मन बुद्धी चित अंहकार, अतांकरण के अंग ।
मन–मूर्ख मन–लालची, मन के ही हैं अंग ।। साहिब जी

507 मन बुराईयों के वश पड़ा, ईच्छांए पूरी न होत ।
बुराई न दिखती जीव को, तांही तो दुख़ होत ।। साहिब जी

508 सभी इच्छाएं पूर्ण न हो सकें, इसी कारण दुख शरीर ।
इसी से तुम ये जान लो, मन कारण दुखी शरीर ।। साहिब जी

509 'काम' मन का मस्तिष्क जानिए, कामुकता वासना–विषय भोग ।
इनकी पूर्ती के लिए, सुर–नर–मुणि बेहाल बिना भोग ।। साहिब जी

510 तन मन स्थिर ना रह सके, काम बाण–विषैला बाण ।
एक बाण सूं सब जग जागे, सुर–नर–मुणि जब लागे बाण।। साहिब जी

511 'काम' अति प्रचण्ड, होए उत्पन्न हृदय अंग ।
तन मन स्थिर ना रहे, काम बाण निज संग ।। साहिब जी

512 ये सब नीच काम हैं मन के, नीच कर्म में सभी सहाए ।
सार सब्द सूं अमृत छोड़े, विष सूं प्रीति लगाए ।। साहिब जी

क 'काम' के वशिकरण से छूटे सुरति, मोहिणी रूप विष्णू से रति भौग कर डाला ।
'काम' के वश ही ईन्द्र ने, अहिल्ल्या सूं रति भौग कर डाला ।। साहिब जी

513 'काम' सूं श्रंगी–ऋषि, नारदमुणि और रावण, ये भी ना बच पाए ।
बड़े–बड़े ज्ञानी ध्यानी भी, 'काम' से ना बच पाए ।। साहिब जी

514 'काम' नर पे सवार हो, आत्म से दूर हो जाए ।
काम' ही नश्वर पापी तन, धारण करी मन का साथ निभाए।। साहिब जी

515 'कामी' कभु ना साहिब भजें, मिटे ना संशय मूल ।
यह अवगुण अति कठौर, जिसे डार न मूल ।। साहिब जी

516 काम है माया मोहिणी, बिन सुरति तजी ना जाए ।
तां–कयामत तक ताकि, दुर्गति रूक न पाए ।। साहिब जी

517 भक़्ति बिगारी कामियां, ईन्द्रियां लें स्वाद ।
हीरा खोया हाथ सूं, जन्म गंवाया बाद ।। साहिब जी

518 माया सूं मन उपझे, माया त्रिगुण रूप ।
पंच तत्व के मेल सूं, बंधे सक़ल सरूप ।। साहिब जी

519 माया मन की मोहिणी, सुर नर रहे लुभाए ।
इस माया सब खाया, यह माया कोई न खाए ।। साहिब जी

520 मन ही निरंकार–काल निरंझन, उसी का फ़ैला जाल ।
भूख़ प्यास और निंद्रा, मन का सब जंजाल ।। साहिब जी

क ब्रह्म राम तें नामु बड़ा, बर दायक बरदानी ।
राम चरित सत कौटि मंह, लिये महेस जिये जानो ।।

ख तुलसी दास जी ने यहां तक कह डाला है ।
कहौं कहां लगि नाम बड़ाई, राम ना सकहि नाम गुन गाई ।।

ग निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोहि कपट छल छिद्र ना भावा ।।

घ जासु नाम पावक अध तूला ।
सुमिरत सकल सुमंगल मूला ।।

मानस में स्वंय राम ने इस सत्य का वर्णन किया है :–

ड0 वचन कर्म मोरी गति, भजनु करहिं निःकाम ।
तिन के ह्रदय कमल मंहु, करूं सदा विश्राम ।।

भावार्थ :– जिन को मन वचन और कर्म से केवल मुझ पर ही भरोसा है और जो निष्काम भाव से मेरा भजन किया करते हैं उनके ह्रदय कमल में मैं सदा सुखपूर्वक निवास करता हूं ।

हे भाई जिससे राम चरित मानस का राम प्रति संदेश :–

च गो गोचर जंह लगि मन जाई ।
सो सब माया जानेहु भाई ।।

भावार्थ :— श्री राम जी अपने छोटे भाई लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं कि हे भाई ! वह गुरू रूप में यह कह रहे हैं ''ईन्द्रियों के विषयों को और जहां तक यह मन जाता है, उन सबको माया बिन कुछ ना जान''।

छ जातें बिगि द्रवंउ में भाई ।
सो मम भक्ति सखु दाई ।।

भावार्थात :— मैं शीग्र ही प्रसन्न होता हूं वह मेरी भक्ति है जो कि भक्तों को सुख देने वाली है ।

ज भक्ति तात अनुपल सुख मूला ।
मिलइ जो संत होइ अनुकूला ।।

भावार्थात :—हे भई भक्ति सर्वश्रेष्ठ एवंम सुख की मूल है, लेकिन ये किसी पूर्ण सतगुरू (संत) की दया कृपा से ही मिलती है ।

झ परहित बस जिन्ह के मन मांही ।
तिन्ह कहुं जग दुर्लभ नांहि ।।

भावार्थात :— जो लोग सदा दूसरों का हित सोचते हैं उनके लिय इस संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है और उनकी सभी कामनांए पूर्ण होती हैं।

ण वे जीव जग धन्य हैं, पर उपकारी सुरति संग ।
करने वाले को लगै, हाथों पर मैंहदी का रंग ।।

त संगत सूं गुण उपझे, संगत सूं गुण जाय ।
तुम संतन संगत हर पल करो, सुख ही सुख उपझाये ।।

थ सुनहु उमा ते लोग अभागी ।
हरि तजि होहिं विषय अनुरागी ।।

भावार्थात :– वे लौग अभागे हैं जो प्रभु भक्ति को छोड़ कर विषय वासनाओं में लिप्त रहते हैं ।

द कह रघुपति, सुनु भामिनि बाता ।
मानंउ एक भक्ति, कर नाता ।।

भावार्थात :– श्री रामचन्द्र जही शबरी से कहते हैं कि हे देवी ! मैं केवल भक्ति का ही रिश्ता मानता हूं।

ध सुर नर मुणि, सबन की यह रीति ।
स्वार्थ लागि करहिं सब प्रीति ।।

भावार्थात :– देवता मनुष्य और मुणि सब की यह रीति है कि वह स्वार्थ के लिए ही प्रीत करते हैं ।

न परहित सरिस धर्म नहिं भाई ।
पर पीड़ा सम नहीं अधमाई ।।

भावार्थात :– (राम जी) परोपकार से बड़कर कोई पुण्य नहीं है और दूसरों को दुख पहुंचाने के समान कोई नीचता या पाप नहीं ।

ट बिन सत्संग, विवेक ना होई ।
राम कृपा बिन, सुलभ ना सोई ।।

भावार्थात :– साहिब की कृपा के बिना सच्चा सत्संग सरलता से नहीं मिलता !

ध्यान (सुरति) की महिमां :

ठ श्री गुरू पद नख मणि गण ज्योति।
सुमिरत दिव्य दृष्टि् हीय होती।।

ड छिन छिन सुरति लार दृग के रहो।
अपनी सुरति दोनों आंखों के बीच राखो।।

ढ तन मन दर्पण मांझ साज सुरति से गहो।
लगन लगे लख पार सार तब पायो।
अरे हां रे तुलसी संत चरण की धूल नूर दर्सायो।।

521 मन ही शत्रु निज जानिए, आत्म का न चलता ज़ोर ।
राज ही मन का चल रहा, तांहि अंसतोष सब और ।। साहिब जी

522 ईच्छा संकल्प और मन समता, झगड़े के सब मूल ।
तपस्वी–सन्यासी–साधुजन, मन से छूटे ना मूल ।। साहिब जी

523 भृगु परशुराम दरवासा ऋषि, तप किया बहु भारी ।
पर कोई क्रौध ना छोड़ सका, संग रहा क्रौध अति भारी ।। साहिब जी

524 ये संसार काल का देसा, कर्म का जाल पसारा ।
सभी अटके इस काल जाल में, कैसे छूटे काल पसारा ।। साहिब जी

525 मन में निर्मलता सहजता, अमलता आनंद कुछ नांहि ।
यह सब गुण तो केवल आत्मन, मन के गुण ये नांहि ।। साहिब जी

526 मन परिवार शत्रु अति भारी, आत्म संग करते रास ।
कल तक जो आसार था, अब देते तरंग है सार ।। साहिब जी

527 संसारी को माया भावे, इसी में रहे भरमाए ।
निराकार की भक्ति करें, फ़िर मुक्ति कैसे पाऐं ।। साहिब जी

528 आत्मण भक्ति ही सार जगत में, अन्दर सुख का मूल ।
मन जीव पल–पल नचा रहा, कोई देख न पाता शूल ।। साहिब जी

529 मन बिन रसरी सबै नचावे, दिखती काओ को नांहि डौर ।
आत्म अति व्याकुल पड़ी, मन बांधी कर्मण डौर ।। साहिब जी

530 अच्छे बुरे कर्म मन करवाता, आत्म भागीदार ।
मनुष्य जग में जो कुछ करे, आत्म मन अनुसार ।। साहिब जी

531 खाना पीना उठना चलना, आत्म करे मन अनुसार ।
मन तो कुछ कर पाता नहीं, आत्म करे तो पार ।। साहिब जी

532 मन राजा मन प्रजा, मन सयाल का फन्द ।
मन ही सभी को उलझा रहा, यही काल जाल का फन्द ।। साहिब जी

533 कामी क्रौधी तरते देखे, लोभी तरे ना एक ।
पाई तीन लौक की सम्पदा, मिटता रोग ना एक ।। साहिब जी

534 आत्मां की कोन सुध है लेता, मन जिसमें अंहकार ।
आत्मां हंस कैसे बने, जिसमें मन बैठा परिवार ।। साहिब जी

535 पीर पैग़म्बर कोतव ओलिया, मन माया के अधीन ।
सुर नर मुणि सबको डसें, इस नाग़िन के अधीन ।। साहिब जी

536 जग लालची राजा और रंक, सब मन के हैं संग ।
लाख़ चौरासी फ़िरते, जीव जाने न मन तरंग ।। साहिब जी

537 मन का सुन्न ही रूप है, पवन आकार निराकार ।
मन–रूपी मूल पवन सहारा, सब्द सुरति साहिबन सरकार ।। साहिब जी

538 जल थल मांहि जीव जंत, इन पर दया दृष्टि विचारो ।
सब घट व्यापक एक ही हंसा, काहे को इनको मारो ।। साहिब जी

539 सुन्न तत्व अनहद गरजे, सुन्न भी जानो मन रूप ।
इन तीनों ही लौक में, मन ही मन का स्वरूप ।। साहिब जी

540 मन सूं उठता मन सूं खाता, मन सूं करता ध्यान ।
मन पवन का जीवन नाता, मौक्ष नहीं बिन सुरति नाम ।। साहिब जी

541 घट–घट में निरंझन वास, मन ही निरंझन जान ।
मन ही माया मन ही छाया, तीन लौक में मन ही जान ।। साहिब जी

542 अच्छे बुरे कर्म मानव करता, फल भौगन जन्म ले बारम्बार ।
मनुष्य जग में जो कुछ करता, छूटे ना कर्मण पसार ।। साहिब जी

543 अच्छे बुरे कर्म मन है कारण, आत्म बेबस लाचार ।
मनुष्य मन अधीन कम करे, मन ना करने दे आत्म अनुसार ।। साहिब जी

544 खाना पीना उठना चलना, आत्म करे मन अनुसार ।
तांहि तो आत्म छूट ना पाता, जन्म ले बारम्बार ।। साहिब जी

545 मन राजा मन प्रजा, मन कामी मन रूप है काल ।
मन ही सभी कुछ करता, यही काल का जाल ।। साहिब जी

546 माया आई लौभी भयो, तृष्णा मिटी ना एक ।
तीन लौक की सम्पदा पाई, मिटता लौभ ना एक ।। साहिब जी

547 कंचन त्रिया माटि माया, इनका तजना सहज ।
मन से कोई छूटे नांहि, मन तजो तो ही सहज ।। साहिब जी

548 अवतार पैग़म्बर पादरी औलिया, सब मन के अधीन ।
सुर नर मुणि सबको डसे, सब जग मन अधीन ।। साहिब जी

549 हर कोई लालची राजा और रंक, सब रंगे मन के रंग ।
मन की ही सब सेव करें, कैसे छूटे मन तरंग ।। साहिब जी

550 ऋषि मुणि गण गन्धर्व, सब करते मन सेव ।
तीन लौक मन राज, कोई बिरला जाने भेद ।। साहिब जी

551 तीन लौक पड़े क्रूर सत्ता के हाथ, उसी को कहते महांकाल ।
सारा जग उसी सत्ता को पूजता, तां से ही बेहाल ।। साहिब जी

552 निज घर से सब बाहर पड़े, बहुत सोए कम जागे जान ।
माया में हर नर ऐसा फंसा, पाया ना सच्चा ज्ञान ।। साहिब जी

553 मन तो केवल काग़ा, तुच्छ (बिश्ठा) पर देत ध्यान ।
हर नीच वह कर्म करे, फ़िर कैसे छूटे अज्ञान ।। साहिब जी

554 मन भी पांचो के बस पड़ा, वह भी पांचो साथ ।
अब आत्म करे तो क्या करे, वह भी बंधी उन संग साथ ।। साहिब जी

555 सुर–नर–मुणि–सिद्ध और ध्यानी, सब ही की उल्टी कहानी ।
मन सब को अपनी ओर लगावे, मन ग़ति कोई पार न पावे ।। साहिब जी

556 लोभी जग में बहुत, और नीच से भी नीच ।
तीन लौक की संपदा, तो भी मांगे भीख ।। साहिब जी

557 मोह मन की मोहिणी, कभी न छोड़े संगा ।
सतगुरू साहिबन संग गया, फ़िर कैसे छूटे निरंगा ।। साहिब जी

558 आषा–तृष्णा भेदी, मन की ईच्छा भेद परिवार ।
लालच–कपट–रोग और शौक, मन का सब दरबार ।। साहिब जी

559 लालच–रोग–कपट और शौक, यह सब मोह के अंग ।
ये सब साथी मन के, कैसे छूटे आत्म संग ।। साहिब जी

560 अमृत तजना सहज है, सहज साहिबन नेह ।
मान–बड़ाई–मोह और माया, दुर्लभ तजनी यह ।। साहिब जी

561 काम–क्रोध–लोभ–अंहकार, मोह का ही परिवार ।
इनसे जो कोई बचे, पल में पावे दीदार ।। साहिब जी

562 निंदा–बल–बुद्धी–विश्वास, ये सभी मन के अंग ।
काम–क्रौध–लोभ–मोह–अंहकार, मन बुद्धि चित के अंग।। साहिब जी

563 मनसा वाचा कर्मणा, चित को देखो आप ।
जो कुछ हृदय में चल रहा, वही है संताप ।। साहिब जी

564 दुख और सुख, दो अंग बार बार भरमाऐं ।
ईक जाए दूजा उलझाए, चैन तुझे न आए ।। साहिब जी

565 गृह छोड़ जो जंगल को भागें, वहीं न पावें पारा ।
इस विधि मालिक नहीं मिलें कौटिन छोड़ो परिवारा ।। साहिब जी

566 जग में रह के जग को जानो, छोड़ो अंदर का परिवारा ।
अंताकरण पावन बिन, नांहि कोई निस्तारा ।। साहिब जी

567 ''काम–क्रोध–लोभ–मोह–अंहकार'', अंदर का परिवारा ।
पाचों अंतःकरण की ईंद्रियां, मन का विस्तारा ।। साहिब जी

क तीन–पांच, पच्चीस का पिंजरा, तां में तूं रहा भरमाई ।
चल हंसा सतलौक को, पड़ा काल वष आई ।। साहिब जी

568 दिल की दुनियां बस रही, आज कल चहुं ओर ।
अन्दर अंधेरा फैला हुआ, दिखता है हर ओर ।। साहिब जी

569 साहिब सा हीरा छोड़ के, करे निरंकार की आस ।
तूं नर भटका खायेगा, जन्म–जन्म काल संग रास ।। साहिब जी

570 गीता ऐतिहासिक ग्रन्थ नांही, हर जीव के मन का हाल ।
प्रत्येक मनुष्य के हृदय में, हर ओर काल का जाल ।। साहिब जी

571 मानव योद्धाओं की रचना, मन हृदय कल्पनाओं का जाल ।
मन से उत्पन्न ईच्छाएं, केवल दुःखों का जाल ।। साहिब जी

572 अर्जुन विषाद योग में डूबा पड़ा, बिन इच्छा युद्व न होए।
धर्म की बातों का क्या मूल, रिश्ते नातों में घिरा जब होए।। साहिब जी

573 जग माया जग सपना, लागे सब कुछ अपना ।
आंख मिटी सब छूटा, रह गई आशा तृण्णा ।। साहिब जी

574 दुख तो अंतर चटट्‌ान सम, पीछे अमृत धार ।
दुख अपादि मिट गई, बह उठी अमृत धार ।। साहिब जी

575 कर्म–धर्म सब झूठ है, जान लेवे संसार ।
जब तक उनका संग है, काल करे संहार ।। साहिब जी

576 सुरति–निरती मन पवन, उल्टा स्वांसा हो आप ।
लेख समाना आलेख में, कर्ता निज है आप।। साहिब जी

577 तीन लौक माया वश पड़े, देवी देव सिद्ध साध ।
जो दिखे आवे और जावे, वह ही करते घात ।। साहिब जी

578 साहिब जी इस संसार में, माया लिया है लूट ।
तीन लौक चारों दिशा, माया की है लूट ।। साहिब जी

579 दुख़िया सुख़िया नेता जन, माया वश पड़े ।
सब का पात्र खाली पड़ा, बिन पैंदा कैसे भरे ।। साहिब जी

580 पहने कवच जाति–पाति के, रिश्ते–नाते निज बंधन ।
कर्म काण्ड संग औछा जन्म, अब कैसे छूटे निज बंधन ।। साहिब जी

581 संत बेचारा क्या करे, पंथी न चले विचार ।
सत का मार्ग छोड़ के, फ़िरे उजाड़–उजाड़ ।। साहिब जी

582 जग में मार्ग दो हैं, ईक बंधन–इक मोक्ष ।
जाएं श्वांसा संग प्राण, जब आत्म जाए बिन मोक्ष ।। साहिब जी

583 साधु जो आन जग विष पिये, दिन–दिन बड़ता रोग ।
जम–जम मरि जाएगा, बिन तजि विषय रस भोग ।। साहिब जी

584 मरने से दुनियां डरे, – आशा–तृष्णा लिए संग साथ ।
योनी की चोली बदलती, आशा तृष्णा संग साथ ।। साहिब जी

585 संगीत ना ही बदलता, सरग़म रहती वही ।
केवल गायक की वाणी बदलती, मन माया तो वही ।। साहिब जी

586 संसार में हर प्राणी, मरने से डरता मेरे भाई ।
आशा–तृष्णा संग लिए, फिर आ दमकता मेरे भाई ।। साहिब जी

587 कर्मों का जाल संसार है, इसे काटना पड़ता है ।
सार सब्द की दात सूं – सब बंधन कटते हैं ।। साहिब जी

588 हमने रात न जानी, सुन्न तत्व को जानो सो ।
आशा–तृष्णा सुख़ और दुख़, जानो रात इनको ।। साहिब जी

589 जे ना अन्ध सागर पार किया, आत्म गई भरमाई ।
अब पछताए क्या होत है, अंधी मति अन्द समाई ।। साहिब जी

590 अज्ञानी दिन रात कथनी कथें, करनी बिन फल नांहि ।
जो नर बिन फल सेव करे, उसे कमी कुछ नांहि ।। साहिब जी

591 निंदक को मत निंदिए, ये कैसा है भेद ।
निंदक मन मुरीद सम, (जन्म–जन्म) नर्क छूटे नांहि भेद ।। साहिब जी

592 निःअक्षर नाम सा हीरा छोड़ी के, करो आन की आस ।
कर्म धर्म जाल फस जाएंगा, छूटन की नांहि आस ।। साहिब जी

593 उज्जल वस्त्र पहनता, मन भाता सब खाए ।
सार सब्द पाए बिना, काल जाल फंस जाए ।। साहिब जी

594 मत मांगो तुम किसी सूं, यही तो कर्मन का जाल ।
देवी देव केवल मन रूप, आत्म पड़ी मन जाल ।। साहिब जी

595 जब जीव बीज रूप में आया, लाया साथ कर्म ।
जो जीव ने जग कर्म कमाए, आया लेने फल कर्म ।। साहिब जी

596 सांस लेना जीवन नांहि, यह तो मौत निशान ।
सार को जान लेना ही जीवन, आसार में मौत समान ।। साहिब जी

597 जैसो किया अब भौगया, यह है कर्मण जाल ।
जो जो जग आई करे, वैसा ही फल काल ।। साहिब जी

598 कर्म फल में फंसा था प्राणी, तांहि कीना गर्भ शरीर ।
गर्भ भवन में घौर अंधियारा, पग़ उपर तल शीश ।। साहिब जी

599 खट्टा मीठा भाता खावे, छुरी समान दुख होत ।
आप दुखी माता दुखी, दशों महीने दुख होत ।। साहिब जी

600 कभी कोई बनता बाप है, कभंहू को तेरा पूत ।
कभी तो तेरा भाई है, कभंहू वो तेरा दूत ।। साहिब जी

601 हीरे मोती माल की, कमी नहीं जिन पास।
वह भी मन सूं कहते, सुख नांहि हम पास ।। साहिब जी

602 माया सुख कैसे दे सके, माया मन का रूप ।
सब जग माया रूप है, आशा तृष्णा दुख रूप ।। साहिब जी

603 हंसा चेतन अजर–अविनाशी, और सहज सुख़ रासी ।
मन माया सूं मैली भई, मृग–तृष्णा दुख़ रासी ।। साहिब जी

604 दुख़ को दुख़ ना जानिए, सुख उत्पन्न हो जात ।
एक ईच्छा जब उत्पन्न भई, मन विरोध उपजात ।। साहिब जी

605 मन धारा जब क्रौध में बहती, दन्त नाखुनों में धार ।
हमारे नख़ पशुता की ही फिरत, तांहि से आई धार ।। साहिब जी

606 ऊँ, सोहम जग ध्यान धरे, तां सूं मौक्ष ना होए ।
नाम निरंझन हृदय बसे, कर्म जाल छूटे ना कोए ।। साहिब जी

607 माया मरी न मन मरे, ले मरे हर बार शरीर ।
आशा–तृष्णा सार सब्द बिन, कर्म जाल शरीर ।। साहिब जी

608 जहां जहां नर पग़ धरे, संग संग रहता काल ।
सर पे तेरे काल खड़ा, ये सब कर्मण जाल ।। साहिब जी

609 सार सब्द पाई नाव सतगुरू सूं, खुद ही खे़वन हार ।
जो साधक नाव पर आ गया, संत पार लगावन हार ।। साहिब जी

610 हंसा हमारी जात है, मात पिता साहिब जो आप ।
राह हमारी केवल सतगुरू, सार नाम मिलावे आप ।। साहिब जी

611 वे नाम कहे, सुन मेरे मीत,
मत कर, जीव संहार ।
कर्म के लेखे कभी ना मिटते,
जग में आ, चुकता होत हिसाब ।। साहिब जी

612 सुर–नर–मुणि और देवता, तीन लौक का खण्ड ।
कहे दास सब भोगियो, निज कर्मों का दण्ड ।। साहिब जी

613 कामी–क्रौधी–लालची, तिन से भक्ति न होए ।
ये अज्ञान का रास्ता, दुख़ी रहे और रोए ।। साहिब जी

614 तेरी सोच और समझ ही, तेरा कर्म बन जात ।
सोच समझ को छोड़ दो, आत्म मुक़्त हो जात ।। साहिब जी

615 ये भार तुम्हे जग लाता, उतारो भार तो कौन है आता ।
अपना भार ही तुझे डुबोता, उतारो भार तो पार है होता ।। साहिब जी

616 आवा–गति सूं उत्पन्न वायु, तांहि से उपझे मन ।
मन उत्पति सूं शब्द प्रगटे, शब्द में समाए मन ।। साहिब जी

617 मन ही बीज शरीर का, सार सुरति सूं साधक कहलाए ।
आकाश की स्वछंद गति सूं, वायु अग़्नि प्रकटाए ।। साहिब जी

618 मन की शक़्ति निरंझन है, जा का सुन्न में वास ।
निरंकार का जो ध्यान धरे, पाए सुन्न में वास ।। साहिब जी

619 सौ में से निन्यानवें साधक होते नहीं, ध्यान में जाते साथ ।
ये तो केवल लोभ से हैं भरे, कैसे पाऐं सत्तगुरू साथ ।। साहिब जी

620 आवरण से सब झूठ हो जात, मैली चदरिया ली औट ।
बुढ़ापे में मानुष सब खो रहा , दुख आवें चहुं ओर ।। साहिब जी

621 बच्चा ही सच्चा जीव, जिस आवरण ओढ़ा नांहि ।
बुढ़ापे में ठोस–ठोस कर पहनता, मृत्यु का डर जावे नांहि ।। साहिब जी

622 जग की दौलत जा के पास, मन के भाव सूं ना दूर ।
दुख संताप जा के पास, मन भाव ना करता दूर ।। साहिब जी

623 मन पल–पल भरमा रहा, पल–पल बदले रंग ।
आत्म मन वश ऐसे पड़ी, माने मन की तरंग । साहिब जी

624 मन ही सरूपी काल निरंझन, सबे रहा भरमाई ।
हंस तूं तो अमरलौक का, पड़ा काल वश आई ।। साहिब जी

625 जन्म लिया मन भावन किया, छूटा ना मन का मोह ।
माया मोहिणी जब नाच करावे, कैसे छूटे मोह ।। साहिब जी

626 ये संसार काल का देसा, कर्म का जाल पसारा ।
सभी अटके काल जाल में, कैसे छूटे काल पसारा ।। साहिब जी

627 भृगु ऋषि, परशुराम, दरवासा ऋषि, तप किया बहुभारी ।
क्रौध न छोड़े संग इन्हीं का, करत क्रौध अति भारी ।। साहिब जी

628 मन वृति संकल्प है, निर्णय बुद्धि काम ।
चित केन्द्र है याद का, अहंकार क्रौध का काम ।। साहिब जी

629 आदि का गुरू अनादि, माया धरती मन आकाश ।
ज्ञान निवासा चिंतन, शून्य स्थान वहीं आकाश ।। साहिब जी

630 मन की माने मन को सेवें, मन भावन व्यवहार ।
मन तो दुख का मूल है, जीव चाहे सुख मंगलाचार ।। साहिब जी

631 जल थल मांहि जीव जंत हैं, गगन पाताल भी विचरें ।
सब जीव व्यापक एक ही हंसात्मां, काहे को इनको मारें ।। साहिब जी

632 सुन्न तत्व निराकार रूप, सुन्न ही जानो मन रूप ।
जग माया भी निरंकार, हर थां फैला मन स्वरूप ।। साहिब जी

633 सरगुण–निरगुण ऐ माया जानो, दोनों हैं भ्रम जाल।
भ्रम में रमे सभी जन, भ्रम भी मन जाल ।। साहिब जी

634 सरगुण–निरगुण एको जानो, इक अंदर इक बाहर जान ।
दोनों मन माया जाल हैं, हर मानव डूबा जान ।। साहिब जी

635 पांच योनि का खेल चौरासी, हर योनी में पच्चहतर करोड़ साल बिताये ।
जीव पड़ा बहु लूट में, मन तरंग जान न पाये ।। साहिब जी

636 धर्म जिज्ञासा के बिना, सुख कभी न प्रकटाऐ ।
यह सब मन का जाल है, दुःख सूं दुख उपझाऐ ।। साहिब जी

637 लड़ने के विचार के आते ही, हर अंग–कंप कंपाऐ ।
अजृन के हाथों सूं गाण्डीव, फ़िसल फिसल गिर जाए ।। साहिब जी

638 खड़ा न अर्जुन हो सके, अंग–अंग जलन पहुंचाए ।
हृदय में <u>बोझ</u> रिश्ते–नाते, तभी सोया कहलाए ।। साहिब जी

639 मन में धारा अशुद्ध कार्य की, हृदय में प्रकटाई ।
क्या कल्याण इसी कार्य मे, जीवत मारन सूं बड़ाई ।। साहिब जी

640 युद्व कभी धर्म युद्ध होता नहीं, जिस में मोल ना जीव ।
यह जीवन तो अनमोल है, जिस का मोल ना तोल ।। साहिब जी

641 दुर्लभ मानुष जन्म अनमोल है, हीरे मोती करें न तोल ।
किस कारण जग आए हैं, इस का होत ना मेल ।। साहिब जी

642 आशाओं और तृष्णाओं को, बरसाएं किस किस ओर ।
दुःख की कलियाँ अनखिली, देख ले चारों ओर ।। साहिब जी

643 मन सूं उठता मन सूं खाता, मन सूं करता बात ।
मन सेवते कंई जीवन गये, हर जीवन काली रात ।। साहिब जी

644 घट–घट में निरंझन वासा, त्रिलोकी जान निरंझन जाल ।
मन ही माया मन ही काया, तीन लौक मन जाल ।। साहिब जी

645 माया छाया एक से, दोनों ना पकड़ में आऐं।
पीठ करो पीछे चलती, सन्मुख पकड़ ना पाऐं।। साहिब जी

646 मान सा शत्रु जग कोई है नांहि, यह तो बोझ समान।
मूर्ख सिर पर राखते, तोते कीड़े रेशम के बंदर समान।। साहिब जी

647 स्तर से छोटा बड़ा मित्र भला, सम स्नेहि दुखदाई।
घी मधु ईक मात्रा में मिले, महां विष कहलाई।। साहिब जी

648 कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक उपझाये गुण तीन।
जैसो जिसका गुण प्यारो, वैसो रूप करि दीन।। साहिब जी

649 निज को झुकाना आता नहीं, दूजे को ले झुकाये।
विनम्रता मुल्य कम ना करे, जग से पार कराये।। साहिब जी

650 यह संसार माया मृग जाल है, झूठ मूठ झिलमिलाती प्यास।
झूठी माया देखी कर, मृग तृष्णा जगावे प्यास।। साहिब जी

651 निर्गुण सगुण संग गया, जो है केवल मन मान।
आशा तृष्णा का संग गया, मिला पद निर्वाण।। साहिब जी

652 साध पांव साहिब जो लागे, यही अचम्भा तेरा।
सुरति आगे निरति नाचे, यही प्राणों का फेरा।। साहिब जी

653 कामी–क्रौधी–लालची, सुख से ना कोई काम ।
अंदर का दिया जब बुझ गया, काल के हाथ कमान ।। साहिब जी

654 मन भी तेरा धन भी तेरा, तेरा पिण्ड प्राण ।
तेरा तुझको सौंप कर, करूं गुरू चरणों में ध्यान ।। साहिब जी

655 काल तो तभी है आवता, जब कल सूं हो कोई काम ।
आज अभी में तब रहो, जब पर धरो ना कोई काम ।। साहिब जी

656 तुम अपनी इच्छाओं सूं ही बंधे हो, कैसे फिरो आज़ाद ।
तुम सुख को कैसे पा सको, सार सब्द जे नांहि पास ।। साहिब जी

657 वस्तुओं से मन कभी भरता नहीं, यही है भूल की बात ।
जग की वस्तुऐं नमकीन जल समान हैं, जो केवल जगावे प्यास ।। साहिब जी

658 खारा जल कभी प्यास भुजाता नहीं, मृत्यू को लाता पास ।
हम मृत्यू को भूले बैठे हैं, पात्र भरने की केवल प्यास ।। साहिब जी

659 हम बुद्धि सूं खोजें कर रहे, अंतिम घड़ी कब आये ।
जब सब कुछ बुद्धि पा लिया, शेष पाने का ना कोई उपाये ।। साहिब जी

660 जब कुछ भी करने को ना बचा, तब जीव कहां को जाये ।
बिन लड़ने के चारा नहीं, पत्थर युग बिन नांहि उपाये ।। साहिब जी

661 नेता गये लड़ने वाले गये, साधु गये संसारी गये ।
बचने का नहीं उपाये, तभी कयामत आये ।। साहिब जी

662 कयामत की काली रात्री, सब को ले डुबाये ।
चार अरब बत्तीस करोड़ सालों के लिए, हर आत्म काल में जा समाये।। साहिब जी

663 मान सूं हरदम रहे भरा, मांगन में रहता ध्यान ।
मांग मांग कर मर रहा, मेरे भी चलते प्राण ।। साहिब जी

664 इस संसार की रीत अनूठी, तजे सच झूठ सूं प्रीती ।
मन सूं स्मिरण करे, सुरति सूं करे ना प्रीती ।। साहिब जी

665 परख नहीं कंगाल को, संतन की डौरी खोय ।
जा घट सतगुरू प्रीति नांहि, सो घट सब कुछ खोय ।। साहिब जी

666 सतगुरू नाव बिन जीवन धिक्कार है, सुंदर रूप धनवंत और मान ।
सतगुरू सूं प्रीत जाने नहीं, डूबे मझधार बिना सुरति ध्यान ।। साहिब जी

667 'वे नाम जी' मृत्यू के समय, पीड़ा मिले अपार ।
एक साथ बिछूं हज़ार ज्यूं, डंक मारें ईक साथ ।। साहिब जी

668 जहां आशा तृष्णा संग साथ हैं, वहीं पे मन मान होता वास ।
देह छूटे आशा तृष्णा मन साथ, वासा तहां जहां बुझती प्यास ।। साहिब जी

669 जो कुछ है वह सुरत है, सुरति बिन झूठा संसार ।
रिश्ते नाते कीड़ सब, तीन लौक झूठ पसार ।। साहिब जी

670 चोरी हिंसा व्यभचार पाप काया करे, गारि निंदा झूठ पाप वचन से।
काम क्रौध ईर्ष्या मान छल पाप, मानव करे मन से।। साहिब जी

671 चार अरब बत्तीस करोड़ की जे आयू तेरी, नवां खंडा विच आधार मिले ।
आशा तृष्णा भी मिट गई, सतगुरू कृपा बिन साहिब सूं होत ना मेल ।। साहिब जी

672 सुरति रहस्य सूं हम भरे पड़े, छः तन सूं बाहिर जब आऐं ।
सिद्धांत हाथ में जब आते हैं, मन में ही रहें समाऐं ।। साहिब जी

673 बुरा भला मत कहो निराकार (मन) को, वही तो सहते दुख सुख सार ।
आत्म दुख–सुख सूं रहित है, मन ही तो सहे दुख तुम्हार ।। साहिब जी

674 निराकार भक्ति सूं, जे सम भी तुम हो जाओ ।
प्रलयः काल की रात्री, चार अरब बत्तीस करोड़ साल सुन्न समाओ।। साहिब जी

675 वर मांगने से ईच्छा प्रगटाए, ईच्छा ही दुख कहलाये ।
काल निरंझन ने सतपुरूष सूं वर है पाया, दुख भण्डार ही तो पाये ।। साहिब जी

676 अब चाहते हुए भी छूटे ना बंधन, भक्ति सूं दात को पाया ।
17–चौकड़ी आयोजन का वर है, अब छूटे ना भक्ति छाया ।। साहिब जी

677 मान व मन की दसो ईन्द्रियां, और कर्म फल विस्तार ।
देवी देव चाहे पूज लो, कोई ना मन से पार ।। साहिब जी

678 खुशी तो कभी आती नहीं, इसी में रहता दुख।
यहि लहलहाती तृष्णा, पीछे खड़ा है दुख।। साहिब जी

679 मन आशा तृष्णा जरूरतें, उत्पन्न करे चित्त में ।
मन ये सब उत्पन्न करना छोड़ दे, छूटे तेरी 'मैं' ।। साहिब जी

680 जग में अच्छा बुरा कुछ है नांहि, सब जीव में साहिबन वास ।
स्वार्थी मानव बुरा ही देखता, कोई अच्छी लगे ना बात ।। साहिब जी

681 जिस ने सागर को पा लिया, जीवन में मिले आनंद ।
जिस ने पकड़ा अनेक को, उसे दुख ही दुख कहीं ना पाए आनंद ।। साहिब जी

682 तुमने एक क्षण सुख पाया नहीं, जिस कारण उठे धन्यवाद ।
पुराना दुख छोड़ते, छोड़ते नये की पकड़ त्यार ।। साहिब जी

683 कोई ओर ना लिखता लेखा तेरा, तेरा चित्त है तेरे साथ ।
जो तूं करता–जपता लिख रहा, यह सब तेरे हाथ ।। साहिब जी

684 बिन सतगुरू सब्द के, पूजा पत्थर तीर्थ पानी।
माला मन मान का संग, वेद शास्त्र जान कहानी।। साहिब जी

685 मन तो पंछी समान उड़े, कबहु देस कबहु परदेस।
स्वर्ग लोक की आस में, खोया निज देस।। साहिब जी

686 मान अपमान में जो रस गया, जागन की टूटी कमान ।
यह सब मन ईन्द्रियों का खेल है, मारे कर्म का बाण महान ।। साहिब जी

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

3–ख निराकार भौग व मुक्तियां

687 नर्क का चारों ओर प्रचार है, मन रचे प्रपंच।
सत्त तो बिन प्रचार है, काल की सीमा प्रपंच ।। साहिब जी

688 दुख़ सुख़ मन का जाल है, कोई बिरला जाने भेद ।
करे बसंत पुकार तुझे, जान सतगुरू सूं साहिबन भेद ।। साहिब जी

689' एक अचम्भा जग में ही रहा, कालपुरूष को कहते सच्चा नांव ।
कालपुरूष मन रूप सुरति में रहे, तीन लौक है काल का गांव ।। साहिब जी

690 1758 हज़ार वर्ष का सत्तयुग, 1216 हज़ार वर्ष का त्रेता युगा।
8 लख 64 हज़ार वर्ष द्वापर, 4 लख 32 हज़ार वर्ष कलयुग।। साहिब जी

691 सुशुप्ति में चेतना, नाभी तल में होत प्यारी।
कुछ भी याद संग नांहि, खुशी देत प्यारी।। साहिब जी

क सतयुग सत त्रेता तप, द्वापर पूजा चार।
कलियुग केवल नाम आधार, सुमिर सुमिर उतरो भव पार।। साहिब जी

692 सतयुग सत त्रेता तप, द्वापर पूजें चार।
कलियुग केवल नाम, सतगुरू नाम सूं पार।। साहिब जी

693 आशा देवी अदभुत, सेवा से दुख बिन कुछ ना होत।
देवी देवता से जो पाते, दुख बिन कुछ ना देत।। साहिब जी

क अजब फकीरी साहिबा, भागन सूं जग पायो।
नेह लागा जगदीश सूं, और कुछ ना चायो।। साहिब जी

ख वैर प्रीत उनके नांहि, नांहि वाद विवादा।
रूठे से जग में रहें, सुनें अनहद नादा।। साहिब जी

694 नर दया भाव जाने नांहि, ज्ञान कथे दिन रात।
सो नर नरके जायेंगे, सुनि सुनि थोथा ज्ञान।। साहिब जी

695 निरंझन सहज सुन्न में कीन्ही ठिकाना, तन को भगवान जग है माना।
ब्रह्मां विष्णु और शिव देवा, सबो निरंझन भगवान है माना।। साहिब जी

696 घट अंदर अनहद गरजे, ज्योति निरंझन दरशे हर ओर।
घंटा संख वीणा सुनो, सहज अवस्था कौसों दूर।। साहिब जी

697 अनहद में विश्राम मत करना, सुन्न महांसुन्न नहीं है गृह।
ये सब काल का जाल प्यारो, मत जानो इसे गृह।। साहिब जी

698 ब्रह्मां विष्णु शिव जग उपझाई, तीन लोक बसायो।
जन्म मरन का चक्र देकर, निजघर से दूर बसायो।। साहिब जी

699 अनेक किले विचारों के जाल, धन के पद के प्रतिष्ठा के।
दुख सुख कल और काल, किले झूठ और सच्च के ।। साहिब जी

क रस गगन गुफा में अजर झरे।
बिन बाजा झन्कार उठे जहां।
समझी परै जब ध्यान धरे।। साहिब जी

ख बिन सतगुरू कोउ होये, नांहि वो को दरसावे।
निकसे एक आवाज़, चिराग़ की ज्योति मांहि।। साहिब जी

ग मूल मंत्र ये सतगुरू बोला, कुण्झी कुल्फ ते कुण्डी खोला।
मूल अहे जो सब में धरिया, अनहद बाणी अनुभव कहिया।। साहिब जी

700 सब्द में ज्योति, ज्योति में नाद।
नाद प्रकास के मानसरोवर, आलोकमय उठत है नाद।। साहिब जी

701 सांसा में निरति वासा, माया संग उलझी जान।
तन में स्वांसा ही सार है, उर्दमुखि होना महान।। साहिब जी

क मरो है जोगी मरो, मरन बड़ो है मीठा।
तिस मरनी मरो, जिस मरनी गोरख मरि दीठा।। साहिब जी

ख ईंगला के घर पिंगला जाई, सुखमन नीर रहे ठहराई।
ओ३म सोहम तत्व विचारा, बकंनाल में जा ठहराई।। साहिब जी

702 सुरति ध्यान में जाय कर, मस्तिष्क तेज भरसाये।
आंख से आंख मिलाना, नर को दे भरमाये।। साहिब जी

क अधर आसन किया प्यारो, प्यारो अधम प्याला पिया।
शून्य महल की फेरी पाई, वो वैरागी पक्का भया।। साहिब जी

703 क्या पढ़िये क्या लिखिये प्यारो, प्यारो क्या वेद पुराण सुनिये।
पढ़ि लिखी क्या होई प्यारो, जो सहज ना मिलया सोई।। साहिब जी

704 निरंकार लोक गगन में, तिस में जोत भण्डार।
यहि उल्टा कुआं गगन में, जो जले बिन तेल बिन बाती।
यह चिराग़ हर पल जगमगाता, बिन तेल की धार।
पांचवा काला तत्व दिये में, जिसका आर ना पार।। साहिब जी

क कहै कबीर सोहि धुण जागे, सब्द बाण उर अंतर लागे।
मुरलि बाजत अखंड सदा से, तहां प्रेम झंकार लागे।। साहिब जी

705 जे 'तूं' देवें सेवा जग़त की, मेरे खुल जाएं भाग ।
जे भीख मांगने को सुरति मिले, तो भी प्यारे भाग ।। साहिब जी

706 पूर्ण सतगुरू की माने नहीं, मन की करता सेव ।
बातें तो करे ज्ञान की, दुख में काल पुरूष की सेव ।। साहिब जी

707 अनंत लूट होत घट भीतर, घट का मर्म ना जान ।
कामिनी रूपी सकल संसारा, इसे माया तूं जान ।। साहिब जी

708 ज्ञानी ध्यानी मुनिवर थाके, पकरी सके नहीं सुरति भेद ।
ब्रह्मा कुबेर पीपा प्रहलाद, करी काल पुरूष की सेव ।। साहिब जी

709 प्यारो इतना जान लो, मन सूं बना संसार ।
यह माया केवल दुख देत है, इस पर करो विचार ।। साहिब जी

710 आकाश तत्व जो रंरकार सूं पैदा होत है, बसे सब में मन रूप।
यही तो सब का काल है, जो बैठा सुश्मिण द्वार मन रूप ।। साहिब जी

711 लाखों जन्म बीते अज्ञान में, मन कब सूं बना पहाड़ ।
संतों के संग से क्यों तूं डर रहा, वही काटें मन पहाड़ ।। साहिब जी

712 पीछे लौटना अहंकार की चोट है, सत्तर साल जो गये बेकार ।
ग़ल्ती जानते भी ना मानता, कैसे कहें खुद को बेकार ।। साहिब जी

713 यज्ञ दान तीरथ करो, पूजा पाठ में बीतें दिन रात ।
मुक्ति इन सूं ना मिले, बिन सतगुरू भक्ति बने ना बात ।। साहिब जी

714 ईन्द्र की पदवी मिले ब्रह्मा का मिले क्षण, मौत का संग रहे साथ ।
आगे तो भी मरण है, भौजा लादा सौ मन साथ ।। साहिब जी

715 भक्ति बिना थोथे सभी, सच्ची भक्ति बिन शैतान ।
मानुष जन्म दुर्लभ मिलेयो, बिन सतगुरू शरणी दुख महान ।। साहिब जी

716 जीव का मन खाली स्थान को टटोलता, भरी जगह के प्रति अंधा मन ।
खाली से प्रति आंखें जागती, उनकी चाहत कभी ना भरती मन।। साहिब जी

717 जो तुम्हारे पास है उसी सूं नांहि प्रसन्न, पर देने वाला देते थकता नहीं ।
ये तो कर्मण जाल है, वह देने को तैयार है तुम लेने को मिलते नहीं।। साहिब जी

718 तुम ने किसी और योनी में जन्म है ले लिया, तांहि तो लेने को मिलते नहीं ।
बकरी बन घास पत्ते खाने लगी, तेरा मांगा तुझ पास अभी नहीं।। साहिब जी

719 लाखों जन्मों के व्यतीत होने पर, तुम धारते मनुष्य देह ।
अब वह सब तुझे देता जायेगा, पर इस सूं भी भरे ना देह ।। साहिब जी

720 मांग पे मांग बड़ती चले, कर्म जाल सूं छूटे ना देह ।
बिन सतगुरू कृपा के, मन माया सूं ना छूटे नेह ।। साहिब जी

721 जिसको देखो वही सुनाता, सुनता नहीं सच्ची पुकार ।
दुख पे दुख है सह रहा, दुखों सूं जोड़ी है तार ।। साहिब जी

722 अन्दर का दीप जगमग करे, खोलो अन्दर के नैन द्वार ।
अनहद झनकार है हो रही, खोलो अन्दर के श्रवण द्वार ।। साहिब जी

723 तीन लोक बिन सपन कुछ है नहीं, यही है सच्ची बात।
कर्म धर्म सब झूठ है, पारस सुरति बिन कुछ नांहि बात।। साहिब जी

724 पढ़ पढ़ विद्या जगत भ्रमावे, भक्ति पदार्थ हाथ ना आवे।
पोथी पढ़ कर दिन राती, बिन भ्रम कुछ हाथ ना आवे।। साहिब जी

725 कर्मों के वश त्रिलोकि पड़ी, मन नचावे कठपुतली समान।
लाखों जन्म से यही हो रहा, संग ना पारस सुरति दात महान।। साहिब जी

726 जहां धर्म तहां सत्य है, जहां दो तहां पार।
जहां धर्म–सत्ता खो गई, तहां लोभ मोह अहंकार।। साहिब जी

727 सुख सम्पति अभिमान वश, वस्तु अनश्वर मान निर्भय होत।
साधक तोये नहीं जानिये, मन मान सूं निर्भय होत।। साहिब जी

728 जिसने भेद पहले कहा, वो कल हो गया।
जिसने आगे सुनाया, काल जाल में फंस गया।। साहिब जी

729 कर्म के वश सब जग पड़ा, मन नचावत कठपुतली समान।
लाखों जन्म से जीव नाच रहा, बिन पारस सुरति दान।। साहिब जी

730 गरज अपनी अपनों से, प्यारो कही ना जाये।
जैसे राजा की कुलवधु, कैसे किसी घर जाये।। साहिब जी

731 सुख संपति अभिमान वश, वस्तु अनश्वर मान तो निर्भय होत।
बुद्धिमान तायें नहीं जाने, मन मान सूं भय होत।। साहिब जी

732 निस्वार्थ प्रेम हेतु सतगुरू, मित्र स्वामी दुख हानि नांहि।
सच्ची प्रीति बिन मिटे ना होत, माया प्रीति नरक बिन कछु नांहि।। साहिब जी

733 कीचड़ में तो खिलता कमल, कीचड़ तज वह बने महान ।
जीवन में भौग भोग कर तज दे, वर्णा मृत्यु दण्ड संग ले जान।। साहिब जी

734 औंकार लोक प्यारा सुन्न में, तिस में जोत भण्डार।
सुन्न तत्व का चिराग़ यह, जिस की महिमां अपार।। साहिब जी

क उल्टा कुआँ गगन में, जिस में झरे चिराग़।
बिन तेल बिन बाती, हर पल जले चिराग़।। साहिब जी

735 मृत्यु लोक महां सुन्न के मध्य, जोत सरूप भण्डार।
उल्टा कुआँ तन गगन में, रोशन हर ईक तार।। साहिब जी

736 निरंकार लोक कोई विरला पहुंचे, संतों की फेरी का द्वार।
तीन लोक संदेश है भेजता, काला भेष लेता धार।। साहिब जी

737 अंदर उल्टा बाहर सीधा, अदभुत जगमगाता चिराग़।
हर पल अनहद धुण प्रकटावे, सुरति में सुनो चिराग़।। साहिब जी

738 भेद भाव किसी सूं नांहि, तीन लोक खेल मैदान।
हर प्राणी खेल है खेल रहा, जागे तो होता कल्याण।। साहिब जी

739 अति दूर ये लोक है, मीन चाल सूं पहुंचा जाये।
उसके पूर्ण भाग, जो देखे सुने सुरति ध्यान लगाये।। साहिब जी

740 ऊँ ध्यान में प्रकटे रंग सुनहरी, संग में ऊँ का नाद।
जो कोई सुने इस नाद को, पावे चार मोक्ष दात प्रसाद।। साहिब जी

क शब्दे धरती शब्दे आकाश, शब्दे शब्द गया परगास।
सगली सृष्टि शब्द के पीछे, नानक शब्द घटे घट आछे।। साहिब जी

741 पारस सब्द की महिमां न्यारी, नाद धुण पर सुन्न महांसुन्न की सैल।
ज्ञान समाधि सुरति सूं, सुने घंटा सीटी बांसुरी बिना ध्यान के सैल।। साहिब जी

क उल्टा चिराग़ गगन में, जिस में जोत भण्डार।
जो कोई देखे सुने इस जोत को, जाने निरंकार महिमां अपार।। साहिब जी

ख पंच तत्व का तन रचयो, जानत संत सुजान।
इसमें कुछ सांचो नहीं, नानक ये सांचा मान।। साहिब जी

742 तपस्या कर्म काण्ड से, भव सागर का पार नांहि।
मन ही देव निरंझन मेरे भाई, माया बंधन से पार नांहि।। साहिब जी

क बहु बंधन ते बांध्या, ईक विचारा जीव।
जीव विचारा क्या करे, जो ना छुड़ावे पीव।। साहिब जी

743 योग क्रिया तप तपस्या से, आत्म की नां छूटे कैद।
बिन नाम कैसे छूटे, काल जाल की कैद।। साहिब जी

744 मोह मान की उपज है, कर्मों का करता मान ही जान।
सत रज तम तीनों गुणों से, कर्मों का करता मान।। साहिब जी

745 श्री कृष्ण सूं पहला ज्ञान, सूर्य देव विवस्वान।
विवस्वान सूं पहले मनु, मनु सूं पाया शब्द ईश्वाकु। साहिब जी

746 हर कर्म में आत्म सहभागी, यह सब मन माया का खेल।
पीर पैग़म्बर सिद्ध साधक सब, जीत ना पाये खेल।। साहिब जी

747 चारों ओर ब्रह्म जाल फैला पड़ा, पल पल भ्रमित होत।
नज़र जादू टोना सब झूठ है, मोह माया बंधन से होत।। साहिब जी

748 हर नर भ्रम में जी रहा, भ्रम वातावरण चहुं ओर।
तंत्र मंत्र सब झूठ है, मन बिन नहीं करता कोई और।। साहिब जी

749 भ्रम जाल चहुं ओर फिरायो, माया फंद रचाई।
कनक कामिणी फंदा रोपे, हर नर राखे उरझाई।। साहिब जी

750 उलझाव बंधन में आत्म जानो, शरीर धर्म महान।
प्यारी आत्म से अनात्म कार्य, मन का बाण महान।। साहिब जी

751 प्यारो बाहर क्या दिखलाईये, अंदर सुरति महान।
रोना हंसना गाना नाचना, मन के खेल ले जान।। साहिब जी

752 जीव को जीव मिला, मन से दोनों एक।
अंधे को अंधा मिला, अंध में दोनों एक।। साहिब जी

753 मन निज हित के कारण, आत्म को किया है कैद।
आत्म मुक्ति को व्याकुल, बिन नामें कैसे छूटे कैद।। साहिब जी

754 काम क्रौध लोभ मोह अहंकार, दुश्मन काया किया बेहाल।
बिन पारस नाम छुटकारा नांहि, किस को सुनावें हाल।। साहिब जी

क मर्घट मुट्ठी स्वाद नांहि बिछड़े, घर घर नट फिरायो।

ऐसे ही गज फटिक शिला में, दशानन आनी अरयो।
कहे कबीर ललनी के सुवना, ताहि कवने पकरयो।। साहिब जी
755 जो कोई मीन चाल सूं, निरंकार घर को जावे।
उसके पूर्ण भाग, जो देखे सुने ऊँ धुण जावे।। साहिब जी

756 ऊँ की जगमग सुनहरी रंग, उभरे ऊँ का नाद।
जो कोई सुने नाद ऊँ की, पावे मुक्ति दान प्रसाद।। साहिब जी

क बिन सतगुरू कोउ होय, नांहि वो को दरसाये।
निकसे एक आवाज चिराग़ की, जोति ही मांहि।। साहिब जी

ख ईक औंकार सत्तनाम, करता पुरूख निरभऊ निरवैर।
अकाल मूर्ति अजूनी सैभं, गुरू प्रसाद आद सच्च उगाद सच्च।। साहिब जी

757 आत्म आप से आप बेहाल, अपने हाथों किया बुरा हाल।
आत्म निज को बांधा, आत्म को कोई नहीं बांधने वाला।। साहिब जी

758 सतगुरू अमृत सागर हैं, कोई कोई जाने भेद।
मन मान तभी तजे कोई, सतगुरू सूं मिले सब्द का भेद।। साहिब जी

759 अनेक जन्म मेरे हैं हो चुके, सभी मुझे हैं याद।
तुमरे भी लाखों जन्म हुए, तुम्हें नहीं कुछ याद।। साहिब जी

760 मैं (श्री कृष्ण) अजन्मा अविनाशी, समस्त जीवों का स्वामी।
हर युग में आया और आना है, दिव्य रूप में जग स्वामी।। साहिब जी

761 यह काल पुरूष का खेल है, जो निराकार साकार रूप बनाये।
कभी हंसाये कभी रूलाये, कोई बिरला भेद ये पाये।। साहिब जी

762 समर्पण में मन मान नांहि, चित्त करे सब काम।
विचारों में चित्त भटक रहा, कंई जन्मों की यादों का काम।। साहिब जी

763 जगत मृतक जीव से संग, टुकड़ों में चित्त का काम।
सब कुछ सच्च प्रतीत हो, जानों मन का काम।। साहिब जी

764 प्यारो बाहर मत दिखलाईये, अंदर सुरति ध्यान।
रोना हंसना गाना सब, मन के खेल ले जान।। साहिब जी

क सब्द की ओट में चोट लागत नांहि, तत्व झंकार ब्रह्मण्ड मांहि।
कहत कमाल कबीर जी को बालका, भौग सब भोग त्रिलोकि मांहि।। साहिब जी

765 सतनाम में सत्त है कुण्झी, सतगुरू सूं मिलता भेद।
सत सुरति का भेद है इसमें, खुलें ताले मिलता भेद।। साहिब जी

766 उपज उपज फिर फिर मरो, साथ में केवल दुख ।
सतगुरू पाये बिन, दो दुखों के अंतराल में अनुभव होता सुख ।। साहिब जी

767 मन वासना बंधन बड़ा, स्वंय है प्रधान ।
मौक्ष आस किस काम की, पाया ना सब्द महान ।। साहिब जी

768 उल्टा चिराग़ शीष गगन में, जो है औंकार जोत लोक भण्डार।
जो कोई देखे सुने जोत को, पावे चार मुक्ति दान भण्डार।। साहिब जी

769 सात सुरति दश प्राणा, संतन करी पहचान ।
पांच प्राण भौगा संदेई मानो, पांच प्राण काया रस दई पहचान।। साहिब जी

770 सुरति स्वभाव सब जीव में, सच्ची भाषा कहलाए ।
जो सार सब्द सुरत स्वभाव से भजे, मौक्ष पद वह पा जाए ।। साहिब जी

771 कौटि कर्म मन माया सूं जुड़े, बचे का कोन उपाए ।
यह फंदा केवल काल पुरूष का, सार सब्द बिन नहीं उपाए।। साहिब जी

772 पड़े बूंद पत्ते वृक्ष के, हिले वह बारम्बार ।
सोया मनवा अमृत वचन संतन के सुने, हौमे की टूटे ना तार।। साहिब जी

773 सुरति सूं सुमिरण की गति कही जाए ना, जो को कहे पाच्छै पछताए ।
मनन तो सुमिरण मन करे, सी पाच्छे पछताए।। साहिब जी

774 इड़ा पिंगला सुख मन नारी, मुक्ति द्वार सुरति की प्यारी ।
ईड़ा बांई ओर चन्द्र स्वर कहलाए, पिंगला दांई ओर सूर्य स्वर कहलाए।। साहिब जी

775 सतगुरू समझाये समझे नांहि, अंदर बहुत अभिमान।
सतगुरू सब्द अछेद के, कहता सकल निज ज्ञान।। साहिब जी

776 औंकार सबै जीव भरमावे, ऊँ सोहम शब्द मन से गावे।
नाम निरंझन तीन लोक का राजा, नाना रूप धरि भरमावे।। साहिब जी

777 कीचड़ से कमल खिल सीख है देता, कीचड़ छोड़ो बनो महान ।
मन माया तो काल जाल, तजो तो जानो निज रूप महान।। साहिब जी

778 कीचड़ से कमल है खिलता, दुर्गंध छोड़ सुगन्ध है देता ।
जग माया में मानव जीता, माया ना छोड़े बारम्बार जम के मरता।। साहिब जी

779 कीचड़ सूं कमल खिल कर, बास फैलाये चहुं ओर ।
लौभी मानव कभी ना रजता, लूट मचाये हर ओर ।। साहिब जी

780 खिलता कमल यह समझावे, दुख में ही सुख का बीज ।
विपत्ति काल में धीर धरो तो, सुख का खिलता बीज ।। साहिब जी

781 सत्त और भौग दोनों जग में, निर्णय को तूं आज़ाद ।
मानव खुद ही कैद चुने, निरंकार की ऐसी माया मोहणी कैद।। साहिब जी

782 बिन जाने सतगुरू करे, छूटे ना काल का बाण ।
भेष देख मत भरमाईये, सार सब्द की परख महान ।
बिन परख कैसे होत, कंचन की पहचान ।। साहिब जी

783 जोत नुमा वी (V) द्वार से प्रवेश हो, यह दृष्य अति महान ।
इस की महिमां ना कोई कर सके, कोई विरला पावे दृष्य महान।। साहिब जी

784 स्वर्ग पद ब्रह्मां पद, सुन्न महांसुन्न की आस।
शिव लोक विष्णु लोक, निरंजन लोक तक आस।। साहिब जी

785 तीन लोक में सब ही अटके, चौथे लोक का भेद महान।
खरे सयाने सोये पड़े, सतलोक की महिमां महान।। साहिब जी

786 जहां की आस किसी को, वैसा ही मिले कर्मण अनुसार।
आशा में वासा जन्म जन्म से, करनी जब मन अनुसार।। साहिब जी

787 चार धाम स्वर्ग, काल भक्ति स्थान।
स्वर्ग अवधि पश्चात, पुनः पाता गर्भ स्थान।। साहिब जी

788 जो लौक में तूं भूला फिरे, सो लौक तूं काल पुरूष का जान ।
इसमें तूं तो कैद में, काल जाल के भेद को जान ।। साहिब जी

789 विचार ही मन, निःसब्द बिन विचार।
मन औंकार, मन भावन करावे निरंकार।। साहिब जी

790 सत्य नाम का सहारा जब मिले, जा पहुंचे सतलोक ।
बिन सतगुरू कोई पार ना, फिर फिर काल के लोक।। साहिब जी

791 विचार ही मन, कैसे पाँऊ पार।
मन मान छूटे, जाओ निजधाम द्वार।। साहिब जी

क ब्रह्म राम ते नाम बड़, वर दायक वरदान।
राम चरित शत कौटि मांहि, लिये महेश हिये जान।।

792 सार सब्द बिन सब झूठा ज्ञान, सब्द बिन सब थोथा ध्याण।
सब्द छोड़ काल में ध्याणा, यह सबै अज्ञानी ले जान।। साहिब जी

793 पारस सुरति संतन बाण है, जो खाये बाण सोहि उतरे पार।
औंकार मन ही जानिये, प्रलयः में सब मरने को तैयार।। साहिब जी

794 प्रलय विदेह मुक्त सब होई, उत्पति में तन घट सब सोई।
आवे जावे सो मुक्त ना मानों, दोनों मुक्ति भरम करि जानो।। साहिब जी

795 कुराण शरीफ़ कहे, बेचूना खुद हमारा।
ईसा मसीह भी कहें, आकाशी पिता हमारा।। साहिब जी

796 चंद्र स्थान मन विराजता, पवन के संग में सूर्य स्थान ।
शून्य स्थान में काल नाद बजता, ज्ञान पांच तत्व समान।। साहिब जी

797 सुन्न महल (अग़म दिशा) से आई मन पवना, नाभी तल पर जासी ।
बंकनाल से नाद उभरिया, निरंकार सूं रम जासी ।। साहिब जी

798 ओईम, सौहम दोनों साध लो, पावोगे करतार ।
मन वीणा तुम जगा लो, हरि भज पाओ निराकार ।। साहिब जी

799 हरी भक्ति त्रिदेव की, ताहि से नांहि निस्तार,
जो–जो ताकि भक्ति करें, कभी न उतरें पार ।। साहिब जी

800 सगुन निर्गुण एक ही जानें, ईक अंदर ईक बाहर ।
पूर्ण मुक्ति दोनों में नांहि, यही सच्ची बात ले जान ।। साहिब जी

801 ब्रह्म ज्ञानी की है, ईक निराकार पर आस,
इस भक्ति सूं मत करूं, पूर्ण मुक्ति की आस ।। साहिब जी

802 ज्यों नैनन में पुतली, त्यूं साहिब घट मांहि ।
मन माया परदा पड़ा, हसां खोया इन मांहि ।। साहिब जी

803 आत्म ही सतपुरूष अंग है, हरि दिया तन मन साथ ।
मन से उठत तरंग है, आशा तृष्णा का संग साथ ।। साहिब जी

804 चोरी करी है आत्मा, तन का करता मान ।
मन सभे भरमावता, देता चार मुक़्ति का दान ।। साहिब जी

805 मन ही निरंझन जानिए, निरंझन हरि तो एक ।
जिसका स्मिरण सब जग कर रहा, कैसे जाने साहिब एक।। साहिब जी

806 पांच तत्व सूं मित्रता कीनी, तां सूं आत्म फंसी मेरे भाई ।
मन माया से मित्रता प्यारी, कैसे मिले मौक्ष मेरे भाई ।। साहिब जी

807 यह जड़ प्राकृति, उस चेतन तत्व की अभिव्यक़्ति जान ।
मन काल का खेल है, लीला है नांहि पूर्ण मुक़्ति जान ।। साहिब जी

808 बिन दीपक उजियारा, अनहद हो रही वाणी ।
मूल सब्द पे सुरत लगाओ, तीन लौक लो तुम जानी ।। साहिब जी

809 निराकार भक्ति 'ऊँ' नाम, सब नामों में नाम ।
जो सुमरें 'ऊँ' शब्द को, सुन्न में पावे दाम ।। साहिब जी

810 प्रलय काल में पांच तत्व, विलय हो जाएं ।
सुन्नाकार निराकार ज्योति, तां में हंस समाए ।। साहिब जी

811 दोनों औंकार, निरंकार निरंजन जानिये प्यारा।
पर ये सत्त नांहि, नांहि यह पिता हमारा।। साहिब जी

812 निज स्वार्थ के कारण, काल निरंझन आत्म को लिया बांधा।
निरंझन माया कुछ कार्य ना कर सके, रिश्ते नातों के बंधन से बांधा।
ईक जीव विचारा क्या करे, मोह माया का प्यारा बांध।। साहिब जी

813 सालोक्य और सामुज्य नाम सूं, मुक्ति चार प्रकार की जान ।
काल पुरूष की दी तूं जान, इन का फल भौगने पर फिर जग होवे आन।। साहिब जी

814 काल पुरूष के इस लौक में, मन चित बुद्धि आनंद से स्मिरण ध्यान ।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरिया, चार शरीर की देत पहचान ।। साहिब जी

815 विहंगम चाल का कुछ पता नहीं, सत्य लौक की विधी महान ।
तुरिया तीत योगेश्वर पार करें, मीन पपील चाल सूं सुन्न महासुन्न की सैल महान।। साहिब जी

816 निराकार रूप के दर्शन करें, सहस्त्रार की सैल महान ।
बिन सुर्य वह जग मग करे, बिन धरती काला द्रव्य पहचान ।। साहिब जी

817 तीन लोक ब्रह्मण्ड खंड में देखे, देखा औंकार लोक प्यारा।
'वे नाम' पर कृपा साहिबन की, मीन पपील चाल सूं सैल प्यारो।। साहिब जी

818 गोरख दंताश्रय नाम देव, किया काल पुरूष का ध्यान ।
स्वर्ग में जा निवास किया, छूटा ना काल का बान ।। साहिब जी

819 संगीत जब पूर्ण हो गया, टूटें उसके तार।
अब अन्न भी जानो राम ही, ईन्द्रियां नतमस्तक राम।। साहिब जी

820 वी (V) तर्ज जोत बिन द्वार, सतगुरू प्यारा खोले यह कुल्फ़ कवार।
सतगुरू संग साथ हों जब, साधक करे द्वार को पार।। साहिब जी

821 यह भेद केवल 'वे नाम' है पाया, तीन लोक से किया भव पारा।
काले तत्व साहिबन संग, पाया पत्र जन्म मरन से पार।। साहिब जी

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।

(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

निराकार महिमां – कर्म व मन ईन्द्री जाल

भावार्थ :– निरंकार को, निराकार, ओम, काल–पुरूष, ईक–औंकार, अलख़–निरंझन, नारायण, सिरजनहारा, सिरजन कर्ता, युगपुरूष, त्रिलोकी नाथ, सृष्टि् रचियता, गाड, खुदा, और ईश्वर और सुन्न न जाने कितने और नामों से निराकार भगवान को पुकारा जाता है ।

निराकार भगवान को भजने वाले निरगुण/रंग रूप रहित निराकार या सुन्न रूप में भजते हैं । ऐसे भक्त निराकार को सगुन/मूर्ती पूजा या देवी देव, अवतार, गुरूओं, पैग़म्बरों, दिगंबरों व महान आत्माओं, समाधियों, पीर, जड़, पेड़, पर्वत, शहीदों, सत्तियों, नदियों व न जाने किन किन रूपों को भजने वालों से भिन्न मानते हैं, पर ये सत्य से परे की बात है, निराकार भगवान सगुन/निगुन दोनों को भजने वालों की मनोकामनायें पूर्ण करते हैं। निराकार भगवान खुद ही मन रूप में सब में विद्य्मान हैं, वो मन रूप में मानव व सब प्राणियों में वास करते हैं, यह सारा संसार, अण्ड मण्ड बह्मण्ड, सात द्वीप, नौ खण्ड, चाँद सितारे, तीन लौक सारी सृष्टि् पांच तत्व से बनी है, यह पांच तत्व भी निराकार ही के रूप का विस्तार हैं, वो प्राणी जो एक, दो, तीन व चार तत्व से बने प्राणी हैं वह सब कर्म फल भौगने के लिय भुगत योनियों में जन्मते हैं, बस केवल मानव तन काया ही पंच तत्व से युक्त होने से कर्म करने को आज़ाद है । इस सृष्टि् व त्रिलोकों को चलाए मान रखने के लिय निराकार भगवान ने आधशक्ति की सहायता से तीन देवों को उत्पन्न किया और त्रिदेवों ने यह जगत, स्वर्ग–नर्क व पाताल का कार्य सुचारू रूप से चले, इसी कारण माया भ्रमित मन व इसकी कर्म, ज्ञान ओर अंताकरण की इंद्रियों से युक्त मानव, पंच तत्व का पुतला बनाया और निराकार खुद ही मन रूपी माया का सिर्जन कर्ता है जबकि सारे देवी–देव माया रूपी शब्द पुत्र हैं । निराकार की उत्पत्ति भी सब्द से हुई, परन्तु आधशक्ति तो सतपुरूष जी का अंश हंसा है जिससे आधशक्ति की महानता निराकार से कंई गुणा अधिक है, निराकार अधीनता वश वह भी निज से अनभिग् है। संसार में सारी पूजा विधियां जो मूर्ति या किसी आकार की पूजा को नक्कारते हैं और खुद को दूसरों से अलग मानने वाले चाहे किसी भी पूजा पद्धति, प्रथा व विधि से युक्त हों यह सारी निराकार की ही भक़्ति है । भाषा, परिस्थितियों ओर समय अनुसार नए नए धर्म, पंथ, सम्प्रदाय, मत–मतांतर भी निराकार की ही लगातार बड़ती फलती फूलती सृष्टि् का विस्तार है जो लगातार जारी है और रहेगा । यहां एक बात जो धर्म/सम्प्रदाय यह कहते हैं कि आखिरी नबी, आखिरी गुरू या आखिरी ग्रन्थ या इन के बाद कोई अवतार, पैग़म्बर, गुरू , पथ पर्दशक, या ग्रन्थ ना है, ना होगा, वे तो ईस निराकार सृष्टि् नियम के विरूद्ध हैं, इससे मत–सम्प्रदाय में एका नहीं हों सकता क्योंकि मानव हर काल खण्ड, समय व ज़रूरत अनुसार नवीन से नवीन विचार, व्याख़्यायें और नवीन सृजना करता ही रहता है ।

कलयुग के इस अंतिम पहर में मानव निज स्वार्थ सिद्धि तथा तुरन्त फल प्राप्ती हेतु देवी देवताओं से परे नागों, भूत प्रेतों (कुल देवते, राक्षस देव, समाधियां, पीर बाबे तथा तांत्रिकों के रूप में) तथा जड़ पदार्थों (नदियों, पर्वतों और पेड़ों के रूप में) तक को भी ना जाने किन किन ईष्टों के रूप में पूजता रहता है। निरंकार भगवान हर भगत की मनोकामना उस के ईष्ट का रूप ही धारण कर के पूर्ण करते हैं जिससे जीव घौर नर्क युक्त योनियों में वासा पाता है। नागों को पूजने वाले नाग लोक में, भूतों को पूजने वाले प्रेत लोक में तथा पेड़ों–पर्वतों को पूजने वाले पेड़ों और पर्वतों की ही योनीयों में वासा पाते हैं। यह सब भक्तियां जीव के आध्यात्मिक उत्थान

करवाने के विपरीत जीव के लिये घोर पतन और दुख का कारण बनती हैं तथा इन कष्टकारी योनियों में जीव को हज़ारों लाखों वर्ष काल का समय कष्टदायी अवस्था में व्यतीत करना पड़ जाता है।

ठहराव, मानव जीवन व सृष्टि् का नियम नहीं, मानव भी अपनी काया तक नवीन अवस्थाओं को प्राप्त करता है, वह चाहे या ना चाहे यह संसार और क़ायनात निरंतर विस्तरित होती जा रही है तो कैसे समय–समय पर पथ प्रदर्शक, अवतार, पैग़म्बर व गुरू ना हों ? या मालिक की उपमा और गुणगाण करने वाले ग्रन्थ व लेखनी ना हो ? ऐसा मानना सत्त को नक्कारना है या यर्थाथ से पलायन है, यह संसार व मानव नित्य नवीन विचार और धर्म रहनुमाओं से युक़्त रहा है और आगे भी रहेगा । अर्थात देवी देव और अपने आराध्यों से भी मानव महान है, इस मानव काया में ही मुक़्ति/मोक्ष और जन्म मरण से छुटकारा मिल सकता है, देवी देव और आराध्य भी तो मानव तन पाने को लालायत रहते हैं। पर सभी मानवों में 'निराकार' मन–रूप में और साहिब सत्तपुरूष जी का अंश 'हंसा' आत्म–रूप में विद्यमान है। इसी कारण देवी देव मानव से निचली अवस्था में हैं, पर मोह माया कर्म के वशिभूत और भ्रमित हुआ आत्मा अपने आप को शरीर मान बैठा है और सत्य से अनभिग् अज्ञानता वश देवी देवों और आराध्यों से पूजा भक़्ति और आराधनाओं के फलस्वरूप जग की नाशवान वस्तुओं को ही मागे जा रहा है।

देवी देव व आराध्य मानव मनोकामनाएं मानव के सैंचित कर्म–कौष से समय से पूर्व उपलब्द करवा देते हैं जो अल्प समय में तो लाभकारी व सुखवर्दक लगते हैं पर मूलतः यह सब तो महां दुख़ का कारण बनते हैं। अपने कर्म–कौष से अच्छे–अच्छे फल समय से पूर्व भोग लेने से वही कुछ समय उपरान्त महां दुख का कारण बनते हैं, प्रालब्ध कर्मफल समाप्त होने के उपरांत बहुत बार अच्छे फल प्राप्ती हेतु मांगने व गिड़गिड़ाने के बाद भी मानव की फ़रियाद उनके आराध्य और देवी–देव अनसुनी कर देते हैं, अर्थात मांगन तो मरन समान है। अपने इष्ट्ों से मांगना ही उनके दुखों को बड़ाने का कारण बनता है । यह मानव इस निराकार–रूपी मन और मन की कर्म, ज्ञान व अंताकरण इन्द्रियों के वशिभूत हुआ अपने निज रूप से अनभिग अपने आप को असमर्थ मान बैठा है । इसी कारण वह इनसे झकड़ा हुआ, मोह–माया, काम–क्रौध व अहंकार से युक़्त हुआ कर्म किए जा रहा है जो उसे जन्म मरन के अन्तहीन बन्धन में बांधे हुए हैं ।

निरंकार की भक्ति के दायरे के गुरूजनों व ईष्टों की अपनी अपनी महानता है तथा जो जीव पूरी श्रद्धा व समर्पण भाव से इनको भजते तथा इनकी भक्तियां करते हैं, वे भक्त जन भी अल्प मुक्तियों को प्राप्त होते हैं। निरंकार दायरें में भक्त जन चार मुक्तियों को ही प्राप्त करते हैं :–

प्रथम :– सामिप्य मुक्ति (पित्र लोक)

द्वित्य :– सालुक्य मुक्ति (स्वर्ग लोक : जैसे बैकुण्ठ, शिवलोक, भागवत लोक, गौ लोक आदि)

तृत्य :– सशिप्य मुक्ति (शुद्ध ब्रह्म लोक तथा सुन्न लोक)

चतुर्थ :– सायुज्म मुक्ति (महां सुन्न लोक)

प्रथम मुक्ति श्रेणी में वो भद्रजन जो किसी भी ईष्ट की सर्गुण या निर्गुण रूप में भक्ति नहीं करते तथा वो जो अनेकों ईष्टों को पूजते हैं ऐसे श्रेष्ठ कर्मयोगी व कर्म धर्म निष्ठ कार्य करने वाले मानव पित्र लोक में स्थान पाते हैं। इस लोक में कंई श्रेणियां हैं जिसमें पहुंचने वाले मानव अपने कर्मानुसार अलग अलग श्रेणी में स्थान पाते हैं। पित्र लोक में रहने वाले जीवों को वहां के नियमों अनुसार ही अनुसरन करना पड़ता है परन्तु यथा कर्मानुसार भोग पदार्थ जीव को इस लोक में भी उपलब्ध होते हैं।

द्वित्य मुक्ति श्रेणी में साकार सर्गुण पूजा करने वाले भक्त जन दान–पुण्य करने वाले व श्रेष्ठ कर्मफल युक्त भक्तजन स्थान पाते हैं। इस उच्च अवस्था को प्राप्त भक्तजन किसी एक ईष्ट की भक्ति में संलग्न रह कर निरंतर भक्ति करते हैं। जो जो भक्त जन जिस जिस ईष्ट को पूजते हैं वे स्वर्ग में अपने ईष्ट व आराध्यों के लोक में स्थान पाते हैं जैसे भगवान राम जी के भक्त भरतपुर लोक में, भगवान कृष्ण जी के भक्त गौ लोक में तथा भगवान विष्णु जी के भक्त बैकुण्ठ लोक में वासा पाते हैं।

तृत्य मुक्ति श्रेणी में निरंकार रूपों की निर्गुण भक्तियां करने वाले भक्त जन शुद्ध ब्रह्म लोक व सुन्न लोकों में स्थान पाते हैं, इन लोकों में योगी यति, जपि–तपि तथा सन्यासी, ब्रह्मचारी, ऋषि मुणि जन सीान पाते हैं परन्तु इस उच्च अवस्था वाले भक्तजन मन तरंग से युक्त रहते हैं। इस लोक में भगत जन अपने मन की ईच्छानुसार मन वांछित भोगों को भौगते हैं।

चतुर्थ मुक्ति श्रेणी में निरंकार की निर्गुण भक्ति की उच्च परिकाष्ठा को प्राप्त भक्तजन स्थान पाते हैं। महां योगेश्वर ही इन महां सुन्न लोकों में वासा पाते हैं। इस अवस्था को प्राप्त योगेश्वर निस्वार्थ भक्ति करते हुए अधिकांष्ता मन तरंग से मुक्त हुऐ होते हैं परन्तु फिर भी 2 प्रतिशत मन तरंग इन संग बनी रहती है। इस अवस्था को प्राप्त महां योगेश्वर जन संकल्प शक्ति से किसी भी लोक में तुरन्त आ जा सकते हैं। इस अवस्था को सात महां योगेश्वर ही प्राप्त कर पाये। गौरख नाथ, मुछंदर नाथ, दत्तात्रेय, वेद व्यास तथा त्रिदेव ब्रह्मां विष्णु महेश जी ही महां योगेश्वर की अवस्था तक पहुंच पाये। ये चतुर्थ श्रेणी सायुज्म मुक्ति निरंकार दायरे की भक्ति का अंतिम पड़ाव है।

उपरोक्त चारों निरंकार दायरे की मुक्तियों के भौग के उपरांत कर्मफल क्षिनः होने पर जीव को पुनः धरा पर राज योग से युक्त हो कर जन्म लेना ही पड़ता है। राज योग से युक्त होने के कारण जीव को संसार में सारे भौग व सुख साधनों से युक्त जीवन प्राप्त होता है। जिस कारण मानव में अहम व अभिमान की भावना जाग्रत हो जाती है जिससे वह अहम व निज स्वार्थ वश दूसरों के हित का ध्यान ना रखते हुऐ अनिष्ठकारी कुकर्मों में संलग्न हो जाता है। जिससे वह अवगति को प्राप्त होता है। ''राजों नर्क, नर्कों राज'' की ना समाप्त होने वाली प्रथा निरंतर चलायेमान रहती है जिससे जीव का आवागमण कभी नहीं मिटता। इस जगत में कर्म के बदले फल मिलना अटल है । सारी त्रिलौकी कर्मफल के अटल नियम से बंधी है अर्थात कर्मों का फल तो भुगतना ही पड़ता है, हां कुछ विलम्भ हो सकता है पर कर्म फल नियम अटल है, यही तो निरंकार का मनभावन मोहिणी माया जाल है ।

ऐसा कदाचित नहीं कि निराकार भगवान ने केवल मन व कर्म बन्धन ही मानव को दिया अपितु इस मानव को जीने के लिए तन, सुख–साधन, खाने के लिए अन्न, रहने के लिए धरती, पीने के लिए जल, स्वांस लेने को वायु और ना–ना प्रकार के भोग भी धरा पर सब जीवों के लिए

उपजाए, साथ ही मेघ, प्रकाश, अनगिनत चाँद–सितारे बनाए, इस कारण निराकार भगवान व सभी देवी–देव और आराध्य नमन योग्य, आदर और प्रंशसा के पात्र हैं पर सारे साधन होने पर भी जीव तो कैद में है । मानव पराधिनता में कभी भी सुखी व खुशहाल नहीं हो सकता। स्वाधीनता अर्थात आवागमण से आजादी, मौक्ष ही मानव जीवन का एकमा़त्र लक्ष्य है । इसी जगत में सारे साधन के साथ–साथ मौक्ष प्राप्त करना भी सम्भव हैं । अगर माया ग्रसित मानव बिना किसी मांग और स्वार्थ के अपने इष्ट् की भक़्ति करता है तो निराकार भगवान भी उसे सहज मार्ग के सम्पूर्ण सत्तगुरू परमहँस जी की शरणी को जाने में सहायक हो जाते हैं, क्योंकि निस्वार्थ भक्ति करने वालों को निरंकार रोक ही नहीं सकते, वह भी वचन बद्ध हैं पर इस जगत में बहुत सारे गुरू निराकार–रूपी मन को मार मुकाने व अरानगल भाषा का प्रयोग करते हैं । यह मन का माया–जाल एक तरफ़ अगर जग में है तो ही तो निजधाम व मौक्ष पाने की इच्छा भी विद्य्मान है । इस धरा पर समय–समय पर पूर्ण संत सत्तगुरू परमहँस जी मानव आत्माओं को हंस–रूप बना के मोक्ष दिलाने और सत्त मार्ग/साहिब सत्तपुरूष भक़्ति का बख़ान करने आते रहे हैं और आते रहेंगे ।

–0–

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

4 सतगुरू महिमां (बृहन्गा मत)

822 अठसठ तीर्थ सतगुरू चरणों में, चरणामृत अमृत धारा ।
चरण कमल को निस दिन पूजो, संतन चरण मुक़्ति आधारा ।। साहिब जी

823 सामने निज घर हमारा, जे पावें सच्ची दात ।
'वे नाम' आया लिए, बांटने मुक़्ति दात ।। साहिब जी

824 सतगुरू दाता मोक्ष के, नाम सार संग साथ।
सार सब्द पाई सुरति में गाहे, निजघर फेरा साथ।। साहिब जी

825 सत्तनाम निज जहाज है, अमर लौक को जाए ।
जे पूर्ण सतगुरू मिलें, कर्म–धर्म संशय मिट जाऐं ।। साहिब जी

826 एक ही आत्म सगल घट, जानत केवल संत ।
संत चरण धूली मिले, होत दुखों का अंत ।। साहिब जी

827 सभी को करना सतगुरू अनुसार है, जो जागें सो पार ।
आवें ना यह घड़ियां प्यारी, जो ले जाएं उस पार ।। साहिब जी

828 कईं क़यामतों से भक़्ति करी, पाया ना मोक्ष द्वार ।
व्यर्थ ही जम, जीते यहां, बिन सतगुरू कोई होत ना पार।। साहिब जी

829 सतगुरू पाये बिना, कर्म ना छूटें मूल ।
सार सब्द जाने बिना, रहे पड़ी कर्मन धूल ।। साहिब जी

830 सतगुरू की महिमां क्या लिखूं, सब कर्ता वह आप ।
वह ही सतपुरूष रूप जग पधारयो, सब कुछ उनके हाथ ।। साहिब जी

831 जग में भक़्ति सब ही करें, भक़्ति में मांग बिसात ।
कर्म कचरा जली जात है, सतगुरू सूं मिले जब दात ।। साहिब जी

832 गुरू को करिए वन्दना, कोटि–कोटि प्रणाम ।
सतगुरू बिन कोई न पावसी, प्यारो सार–नाम का दान ।। साहिब जी

क ये तन विष की बेलड़ी, सतगुरू अमृत की खान ।
शीष दिये जो सतगुरू मिलें, तो भी सस्ता जान ।। साहिब जी

833 बिन सतगुरू प्रताप ते, कोई न उतरे पार ।
संत–लौक हंसा लौक है, वही करें उद्धार ।। साहिब जी

834 सतगुरू मिलें तो पाईए, भक़्ति–मुक़्ति भण्डार ।
सार नाम को ध्याय कर, करो साहिब दीदार ।। साहिब जी

835 सतगुरू मिला तो सब मिला, खुले मौक्ष द्वार ।
उनकी पूर्ण कृपा सूं, करो साहिबन दीदार ।। साहिब जी

836 जैसे फूल बग़िया खिले, वैसे स्वांस पर सार ।
जब ही संग–संतन, बहे विरह की धार ।। साहिब जी

837 सतगुरू साधक सूं रीझ के, दिया सब्द का दान ।
बरसा अमृत पारस सुरति का, पाया पद निर्वाण ।। साहिब जी

838 सतगुरू मारा कस के, सब्द विरह का बाण ।
मन माया छेदे गए, पाया पद निर्वाण ।। साहिब जी

839 कोई बिरला पावे सच्ची दात को, सतगुरू सूं दात ।
पल में आत्म हंसा बने, पावे पद निर्वाण ।। साहिब जी

840 संतों से तुम जान लो, नहीं राम बिना ठांव ।
राम तो अन्दर से मिलें, अंदर इन्द्री ठांव ।। साहिब जी

841 शुभ घड़ी सतगुरू मिलें, खुली आंख निज धाम ।
चरणों की धूली मिली, पाई सुरति आंख निजधाम ।। साहिब जी

842 सेवक को सतगुरू मिले, सब कुछ उनके साथ ।
वह सेवक निज घर चले, साहिब चलें निज साथ ।। साहिब जी

843 सतगुरू हम से रीझ के, दिया सब्द का दान ।
अमृत वर्षा ऐसी भई, अमर पद पायो दान ।। साहिब जी

844 मूल सब्द जो गुप्त है, बिरला पावे कोय ।
बिन पूर्ण सतगुरू, पार न पावे कोए ।। साहिब जी

845 दास की एको विनति प्यारो, दान दीजो सत्तनाम ।
और नांहि कुछ चाहिए, हर पल सुरति नाम ।। साहिब जी

846 बिन सतगुरू सुरति ना जागसी, कोटिन धरो ध्यान ।
सार सब्द की दात सूं, छूटे मन ध्यान ।। साहिब जी

847 प्रीति लागी संसार सूं, मन माया से होए ।
सच्ची प्रीति तब जानिए, संत संग जब होए ।। साहिब जी

848 सतगुरू मारा कस के, सुरति सूं इक बाण ।
सुरति अकेली रह गई, मन माया गयो संग बाण ।। साहिब जी

849 सतगुरू दीन दयाल जी, तुम सूं जोड़ी तार ।
आत्म को हंसा किया, मन माया की तोड़ी तार ।। साहिब जी

850 सतगुरू दीन दयाल जी, तुम संग जोड़ी डौर ।
जैसे चांद चकौर सूं, बंधी प्रीत की डौर ।। साहिब जी

851 अंधेरा ही तो धोखा तेरा, माया का जानो जाल ।
अंतरमुखी हो ध्यान कर, बिन सतगुरू ना जुड़ती तार ।। साहिब जी

852 सतगुरू समान कोई दाता नांहि, जो देता दात महान ।
संत संग निज जाओ, पाओ मौक्ष पद का दान ।। साहिब जी

853 गुण सबी साहिब में, मेरा काम जगाना ।
सार नाम सुमिरते–सुमिरते, हंसा रूप पा जाना ।। साहिब जी

854 महा सुन्न विषमी घाटी, बिन सतगुरू नांहि पार ।
चडो तो गिर–गिर पड़ो, सतगुरू करावे पार ।। साहिब जी

855 साध सतगुरू (साहिब) संगति यूं पाईए, प्रेम उपजे चंहु ओर ।
संत (सतगुरू) संगति साहिब मिले, साहिब कृपा चंहु ओर ।। साहिब जी

856 साधो जन्म गंवाया, सब लूट लिया मन–माया ।
सांचा सतगुरू जे मिले, पल छिन छूटे संग पराया ।। साहिब जी

857 साधो सब में एक ही देखिए, कुंझर कीट समान ।
संतन सूं जो संग करे, छूटे सब अभिमान ।। साहिब जी

858 साधो संग सोहि कीजिए, जो अजर अमर होई ।
संत का केवल संग करे, दुख़ व्यापे न कोई ।। साहिब जी

859 मेरा साहिब मुझ में बसे, मै मूर्ख अनजान ।
आत्म में उसी का वास है, संतन बिन पशु समान ।। साहिब जी

860 साहिब सरवर भरिया दसों दिशा, पंथी प्यासा जाई ।
पर संतन प्रसाद बिन, जल कैसे दिखे मेरे भाई ।। साहिब जी

861 विरहन रोवे रात दिन, सेवक फ़िरे उदास ।
सच्चे सतगुरू जब मिलें, बुझती आत्म प्यास ।। साहिब जी

862 मन रहे सतगुरू पास में, सुरति रहे संग साथ ।
सुमिरन बिन कुछ सूझे नांहि, काल का छूटे साथ ।। साहिब जी

863 सहजे–सहजे सब होत है, जे सतगुरू तेरे साथ ।
काहे को कलपे मरे, अब मन का छूटा साथ ।। साहिब जी

864 संग सोहि का कीजिए, जो मन माया सूं दूर ।
वह मरे ना बिछड़े, साहिबन का देखे नूर ।। साहिब जी

865 काम क्रौध मन अंग है, बिन सतगुरू छूटे नांहि ।
सार–सब्द जे दात हो, पल में ही मिट जाहि ।। साहिब जी

866 साहिब संशय छुटेया, मिलया सतगुरू परनूर ।
सार–नाम की दात लिए, बांटे दात परनूर ।। साहिब जी

867 मारो हे सन्तों मारो, मरन भरी मिठास ।
मन छूटा तन छूटा, आत्म हंस मिठास ।। साहिब जी

868 सतगुरू सबको देत हैं, हर पल केवल सीस ।
जो कोई देता शीष को, पाता गुरू की सीस ।। साहिब जी

869 सुरत–सब्द के मिलन से, पाया साहिबन संग।
अब साहिब ही सब कुछ करें, सुरति ही उन संग ।। साहिब जी

870 जो साहिब (सतगुरू) का प्यारा, सोहि पावे निर्वाण ।
सुरत–सब्द गोता मार, पाओ पद निर्वाण ।। साहिब जी

871 सार–सब्द बिन अंदर अंधेरा, कैसे उतरें पार ।
सतगुरू सूं कुण्झी मिले, तांहि सूं तूं पार ।। साहिब जी

872 संत हैं सच्चे पारखी, तां सूं छूटे काल–जंजाल ।
सांचा सतगुरू पा लिया, कर्म–धर्म का छूटा जाल ।। साहिब जी

873 संत्त हैं सच्चे सारथी, ले चलें भव जल पार ।
निरंकार जो हो सारथी, बहें मन की धार ।। साहिब जी

874 जे होना साधक है तुझे, छोडो निंदक साथ ।
पूरण संत सूं लो, सार–सब्द की दात ।। साहिब जी

875 साहिबा आपन को ना सराहिए, मत बनो तुम रंक ।
सब संतन जग जो दिया, उनकी महिमां अनंत ।। साहिब जी

876 तन–मन एको जानिए, बिन सतगुरू शुद्ध न होई ।
सार–सब्द सूं शुद्धि होत है, बिन शुद्धि पार ना कोई ।। साहिब जी

877 तुम्हरे चरण रहे ध्यान हमारा, तुझ बिन कौन सहारा ।
हम अपने आप को जान सकें, मिला सच्चा साथ तुम्हारा ।। साहिब जी

878 सतगुरू बिन कैसे तरना होए, काल–जाल संसार ।
अपने हाथ सूं उभारिये, तांहि उतरूं भव पार ।। साहिब जी

879 साहिब तेरी दया सूं, छूटे मोह और माया ।
बिन सार नाम के, जो है जानो माया ।। साहिब जी

880 जाति–पाति को छोड़ कर, भज ले सतगुरू नाम ।
'मैं' सूं नाता तोड़ कर, सतगुरू चरणी ध्याण ।। साहिब जी

881 सतगुरू समान जग दाता नांहि, बिन सतगुरू जीव जान मसान ।
सतगुरू सतपुरूष रूप हैं, जग में करें कल्याण ।। साहिब जी

882 साहिब सब्द संतन पास में, इस बिन मिले ना ज्ञान ।
सार–सुरति वासा साहिबन, मौक्ष पद निर्वाण ।। साहिब जी

883 सतगुरू बिन राह ना मिले, संतन बिन मिले ना मौक्ष ।
यत्न, अनुभव, अभ्यास सेवा बिन, कैसे देवें मौक्ष ।। साहिब जी

884 दया धर्म ह्रदय बसे, जब सतगुरू चरणन ध्यान ।
तांहि ऊँचा करि जानिए, जिनकी सुरति संतन नैन ।। साहिब जी

885 तन चेतन हो सार सुरति सूं, बाहर दिखें उदास ।
सतगुरू चरणन ध्यान सूं, पाऊं साहिबन पास ।। साहिब जी

886 सतगुरू संगत जाको मिले, उसके भाग दर्शाए ।
सब गुण निज में अर्जित करें, आप में आप समाएं ।। साहिब जी

887 साहिब जी सब्द ही कुण्झी–सब्द ही ताला, कौन कुण्झी सूं खुले ताला।
अचेतन बूढ़ा चेतन बाला, कैसे बने कोई चेतने वाला ।। साहिब जी

888 सतगुरू सब्द सत्य करी मानो, बृहन्गा मत साहिब का पाई ।
तजो जगत की आसा–मन वासा, जीवित मुक़्त हो जाई ।। साहिब जी

889 धोखे पड़ा सकल संसारा, बिन सतगुरू नांहि निस्तारा ।
सार–सब्द सतगुरू सूं पावें, भ्रम मिटे–हो निस्तारा ।। साहिब जी

890 काल–जाल सब माया नाम, विदेहि नाम कोई एक ।
विदेही नाम सतगुरू से पावें, उंचे भाग तिस जन एक ।। साहिब जी

891 संतो की संगत सो, अति अमृत वर्षा होए।
दिन–दिन खिलता फूल सम, पूर्ण खिलें तो संत होए ।। साहिब जी

892 मन ही निज अवतार जग जानो, जिस के रूप हज़ार ।
बिरला ही मन से बचे, जिस पाया सतगुरू प्यार ।। साहिब जी

893 यह संसार काल का देशा, बिन नामें नांहि पार ।
सय्याद की क़ैद में सब हैं पड़े, बिन सतगुरू ना होवें पार ।। साहिब जी

894 बिन सार नाम की दात के, कोई ना उतरे भव पार ।
सतगुरू सूं मिलती दात ये, पल में उतरें भव पार ।। साहिब जी

895 बिन सतगुरू सार–सब्द सूं , चारों ना मिट पांए ।
सार–सब्द की दात अनोखी, आत्म को हंस बनांए ।। साहिब जी

896 सार–नाम जिन है पाया, वोहि 'काम' से बच पाया ।
जो जन सतगुरू शरणी आया, अतांकरण से मन भगाया ।। साहिब जी

897 अंतस्थ–मल कौन धौवता, कौन स्मिरण मन तजे विकार ।
कौन भाव सूं निर्भय बने, सतगुरू सब्द विचार ।। साहिब जी

898 अंतस्थ–मल सत्तगुरू धौवता, मन के मिटे विकार ।
सार–सब्द की दात सूं, छूटें मन विकार ।। साहिब जी

899 मत छोड़ो संग तुम सत्त का, सत्त ही सत्तलौक महान ।
कोई बुरा जग में नांहि, सतगुरू सूं पाओ दान ।। साहिब जी

900 सार–सब्द सुरति सूं धौवें, मन के छूटें विकार ।
सतगुरू सत्संग निर्भय करे, खुलें मौक्ष द्वार ।। साहिब जी

901 सब्द सतगुरू–सुरति चेला, सुरति महल उलटि श्वांसा ।
सुरति–निरति मन पवन हो एक, सतगुरू संग निवासा ।। साहिब जी

902 सतगुरू में साहिब परछाई दरशे, वही है मेरे साहिब ।
सिन्धु में बूंद समाई, अब हर थां मेरा साहिब ।। साहिब जी

903 नाम वेदेही जब पास हो, तांहि से खूलें किवाड़ ।
कृपा पूर्ण सतगुरू बिना, मिले ना मौक्ष द्वार ।। साहिब जी

904 अक्का–नाम सतगुरू से पावें, साहिबन सूं प्रगटा सतगुरू पास ।
लिखा ना जाए पड़ा ना जाए, सुरति सूं रखो तुम पास ।। साहिब जी

905 पूर्ण सतगुरू कभी न मरता, नांहि जन्मता जग आई ।
सतगुरू ख़ेवेटिया नाव तुम्हारी, दोनों संग संग पार हो जाई।। साहिब जी

906 यह तो मेरी सत की नेवेड़िया, सतगुरू लगायो पार ।
सत की नाव ख़ेवेटिया सतगुरू, सार नाम सूं पार ।। साहिब जी

907 साहिबन लिखे जो गीत मधुर, आए थे वे ही गाने को
बिन गाए ही अगर चल पड़े, आतुर क्यों थे आने को ।। साहिब जी

908 सत सब्द सूं काम बिसारी, काम क्रौध मोह जाए ।
माया ममता बिन सतगुरू, कभी तजी ना जाए ।। साहिब जी

909 बूढ़ा था सो बाला भया, जब मन का छूटा संग ।
ईब में सब कुछ पा लिया, जब पाया सतगुरू संग ।। साहिब जी

910 सोह्म शब्द रट काम न आवे, काल की मुक्ति भरमावे ।
अमर सब्द सार–नाम है, पूर्ण संत सूं ही कोई पावे ।। साहिब जी

911 सहज अवस्था जग धारिए, भक्ति मुख़ ध्यान ।
सत्तगुरू सन्मुख अमृत वाणी, पल में जुड़े ध्यान ।। साहिब जी

912 साहिबा अमूल का सुन्न मूल है, मूल में 'हंसा' वास ।
सतगुरू सूं नाता जोड़ लो, काल सूं छूटे वास ।। साहिब जी

913 पूर्ण सतगुरू सूं सार दात को पाओ, तो आत्म जाने आप ।
आत्म जानी तो स्वयं को जाना, अब साहिब को पांए आप।। साहिब जी

914 साधो सतगुरू है जग से न्यारा, जिस पाया साहिब सूं नाम निस्तारा ।
सतगुरू बाटें सत सब्द प्यारा, जो पावे हो भव सागर से पारा।। साहिब जी

915 सतगुरू जग में तीन पांच का भेद मिटाता, आत्म अनुभव साथ ।
जन्म–मरण दुख अब नांहि व्यापे, मौक्ष पद साधक साथ ।। साहिब जी

916 सतगुरू बिना कोई नांहि पावे, क्रौटिन जन्म का भेद ।
भूला जीव काल–जाल अंदर, जग में दुख़ का भेद ।। साहिब जी

917 सतगुरू प्रीत लागी घट भीतर, परसे कोई साधक प्यारा ।
सतगुरू बिना जान नांहि पावे, भव सागर अति विस्तारा ।। साहिब जी

918 जिन जन लागा प्रेम साहिब सूं , नाचें बे–सुर–बेताल ।
उसका दुख दर्द सब बह गया, सतगुरू करें सभाल ।। साहिब जी

919 मन, सौहम, काल निरंझन तुम जानो, हर नर रहा भरमाई ।
निरंकार मन सबनी थांहि, केवल सतगुरू ही भेद समझाई ।। साहिब जी

क इंगला–पिगंला सुश्मिना भूजें, आपे अलख लगावें ।
उसके उपर सांचा सतगुरू, अनहद सब्द सुनावें ।। साहिब जी

920 सब्दे मारा मर गया, अब मंरू ना दूजी बार ।
सब्द ते पाया साहिब जो, सतगुरू सब्द सूं पार ।। साहिब जी

921 'वे नाम' निज घर के भेदी, लिए हुकम की डौरी ।
जग को देने सच्चे घर का पता, गली–गली देत फेरी ।। साहिब जी

922 सार–नाम अमोलक रत्न है, पूर्ण संतन पास ।
जो पाता सो पहुंचें, निजघर साहिबन पास ।। साहिब जी

923 उसी एक को जान लो, बिन सतगुरू न जाने कोए ।
हर दर पे जे भटकता फ़िरे, कभी पार ना होए ।। साहिब जी

924 कंई सदियों अंदर कोई संत है आता– लेके नाम जहाज ।
वह धरा पावन कहलाती, जहां संत उतारे जहाज ।। साहिब जी

925 सत्त–सब्द का देख तमासा, सुरति सूं घर वासा ।
सतगुरू सूं इस दात को पाया, छूटा मन घर वासा ।। साहिब जी

926 बिन सतगुरू सच्चा ज्ञान ना उपझे, मन की ना टूटे तार ।
जा की सुरति सत सब्द में, छूटे मन ततकाल ।। साहिब जी

927 कहे दास ये जान लो, सतगुरू लखे सो पार ।
सार–नाम सत्तगुरू नाव है, जो ले चलें मौक्ष द्वार ।। साहिब जी

928 जब ये नाव अधर में डौले, बार–बार जाए खोए ।
मेरे सतगुरू पल में बिन खोए, उधर पार ले जाएं ।। साहिब जी

929 सतगुरू आप चरित्र, स्वंय काव्य दर्शाएं ।
जो कोई दर्श करे साहिबन का, सहज स्वभाव पाए ।। साहिब जी

930 सतगुरू कृपा बिन सच्चा ज्ञान ना उपजे, कभु ना उतरे पार ।
जाकी सुरति सत्य सब्द में रम गई, जन्म मरन से होवे पार ।। साहिब जी

931 चलते–चलते कई युग भये, पावें कोस पर गांव ।
बिन सतगुरू कोई जाने नांहि, सार नाम सूं गांव ।। साहिब जी

932 मात–पिता साहिब जी जान लो, पाओ मौक्ष द्वार ।
निज धाम ही सच्चा घर तेरा, सतगुरू हाथ डौर तुम्हार ।। साहिब जी

933 नाम सुमिरन सब कहत हैं, सच्चा नाम ना पाया कोए ।
नाम की गति अति न्यारी, बिन सतगुरू जाने ना कोए ।। साहिब जी

934 संत बसें निज नाम में, नाम स्नेही हो ।
संत मिलावे साहिब सूं, संत में ही साहिब हों ।। साहिब जी

935 संत जाने राह निजधाम की, साहिबन प्रीति लागी ।
पल–पल संत संदेश लें, प्रेम सागर सूं प्रीति लागी ।। साहिब जी

936 'सतगुरू मधु दीन दयाल जी', देते सार नाम का भेद ।
तन शीतल मन शीतल करें, नाम जहाज का देते भेद ।। साहिब जी

937 'सतगुरू मधु परमहंस' दया करि, दिया सब्द उपदेश ।
प्रेम घर आया, छूटे सुख़–दुख़, जा पाया निज देश ।। साहिब जी

938 सच्ची दात को छोड़ कर, जो लेते हो नाम ।
यह सब काल जाल है, संतन जहाज चढ़ो बनें काम ।। साहिब जी

939 सुरति निरति जब एक हो, मूल सुरति कहलाए ।
सतगुरू चरणन नत मस्तक हो, अमर लौक सधांए ।। साहिब जी

940 अब कौन उभारे जीव को, जब तीनों पकड़े हाथ ।
अब संत ही तीनों भिन्न करें, सार–सब्द के साथ ।
करें चेतन आत्म को, भेजें निज घर आप ।। साहिब जी

941 हंसा रूप हर जीव है, माया रूप संसार ।
पारस रूपी संत हैं, पल में करें उस पार ।। साहिब जी

942 सांचा सतगुरू–सांचा सब्द, सांचा साहिबन होए ।
तीन सच जब एक हों, फिर भक़्ति काहे न होए ।। साहिब जी

943 पूर्ण से पूर्ण को पाओ, तो ही होवे पार ।
निराकार के मकड़ जाल में, उलझा सगल संसार ।। साहिब जी

क जिस का गृह तिस दियो ताला, चाभी संतन सूं पाई ।
अनेक उपाए खुल नहीं पाई, बिन सतगुरू शरनाई ।। साहिब जी

940 सतगुरू दीन दयाल जी, तुमसा जग में नांहि ।
जे न मिलते दास को, क़्या ग़ति होती मांहि ।। साहिब जी

941 'वे नाम' जग में कुछ नहीं, केवल साहिबन परछाई ।
साहिब जी–सतपुरूष हैं, जित देखूं तित वोहि ।। साहिब जी

942 दानी तो उपर है रहता, वहीं से देता दान ।
सतगुरू दीन दयाल जी, तांहि सूं पाया दान ।। साहिब जी

943 आप ही गुरू–शिष्य पुनी आप, आप ही समुंद्र–बिन्दु पुनी आप ।
आप ही आप का खेल है सारा, जित देखूं तित आप ।। साहिब जी

क कौटि नाम संसार में, तिन से न मुक़्ति होए ।
मूल नाम जो गुप्त है, जाने बिरला कोए ।। साहिब जी

944 सार–सब्द का पाना ही, सतगुरू से आत्म शादी जान ।
पक्की है ये शादी आत्म की, साहिबन प्रीति सच्ची जान ।। साहिब जी

क गुरू धोबी शिष्य कापड़ा, साबुन सृजन हार ।
सुरत सिला पर धोईए, निखरे रंग अपार ।। साहिब जी

945 सतगुरू सूं जग में कौ बड़ा, जाने जीते जी मोह तज दीन ।
दाता रंक महांबली योगी यति, सब मन माया के अधीन ।। साहिब जी

क राम–कृष्ण तों को बड़ा, तिन भी तो गुरू कीन ।
तीन लौक के नायका, गुरू आगे अधीन ।। साहिब जी

ख जहां खोजत ब्रहमा थके, योगी–यति और देव ।
कहे कबीर सुन साधक, कर सतगुरू की सेव ।। साहिब जी

946 जा को खौजत ब्रहमा थके, योगी–यति और देव ।
कहे दास सार–सब्द बिना, कोई न पावे भेद ।
बिन नामें कोई पावे नांहि, सतगुरू की सेव ।। साहिब जी

947 सत्तगुरू पारस सुरति सूं, साधक की मैल मिट जाए ।
दोनों ईक–मिक हो गये, संग में निज घर जाए ।। साहिब जी

948 सत्तगुरू की महिमा सुन कर, कुछ साधक भ्रमित हो जात ।
जो सत्तगुरू महिमा में बहत हैं, पल में पार हो जात ।। साहिब जी

949 हीरा रतन की पौटली, बार बार ना खोल ।
जब कोई पारख़ी आ मिले, सब ही उसे दे खोल ।। साहिब जी

950 सुनो मेरे प्यारो जो मन है तुम्हारा, पल–पल तुम्हें भरमा रहा है ।
अतीत आंसू है देता, कल प्यारे सपने दिये जा रहा है ।। साहिब जी

951 गुरू सतगुरू में बड़ो अंतरा, मन सुरति नहीं ईक समान।
एक काल जाल में राखे, एक करे आप समान।। साहिब जी

952 सतगुरू सुरति सार नाम चेतन करे, आत्म पाये स्थान।
मन माया पल में छूटती, बचता केवल ध्यान।। साहिब जी

953 सतगुरू बिन भव सागर, तरई ना कोई।
चाहे साधक, ब्रह्मां शंकर सम होई।। साहिब जी

954 जो साहिबन सब्द सुमिरन करे, दिन में कई कई बार।
सतगुरू का संग करे, मोक्ष दात उस पार।। साहिब जी

955 'वेद कहे' में भेद ना जानी, चौथे लोक का भेद।
जहां से हंसा आये हैं, सतगुरू जाने उस का भेद।। साहिब जी

क कौटिन जन्म का पंथ था, सतगुरू पल में दियो पहुंचाये।
एक नाम की नाव सूं, भव सागर पार कराये।। साहिब जी

956 निर्लोभी निष्कामी, सो सतगुरू महान।
उनके दर्शन पाई के, पाओ चर्णन के स्थान।। साहिब जी

957 सतगुरू की सुरति में, दुख सुख भेद ना कोये।
सतगुरू किल्ली के संग जो, नष्ट करे ना कोये।। साहिब जी

958 सतगुरू पर विश्वास कर, तजि लोक कुल लाज।
भव जल पार सूं ही नर, चढ़ि सार नाम जहाज।। साहिब जी

959 निःअक्षर सुरति में धरो, सतगुरू महिमां ले जान।
आदि अंत निःअक्षर में, निःअक्षर में सब ले जान।। साहिब जी

960 आत्म ज्ञान सार नाम से, सतगुरू देते दान।
मन आत्म बिन करे, निज सा ही कर दीन।। साहिब जी

961 सोहि ज्ञानी पुरूष है, सत्तगुरू सत्त कबीर ।
रज विरज से पैदा नांहि, सांसा नहीं शरीर ।। साहिब जी

962 सतगुरू बड़े साहिब से, प्यारो मत करो सोच विचार।
साहिब सिमरे सो वार है, सतगुरू सिमरे सो पार।। साहिब जी

963 सत्तगुरू अचल है, अनंत करे उपकार ।
लोचन अनंत उगारिया, अनंत दिखावन हार ।। साहिब जी

964 सतगुरू चरणन समर्पण सूं, मिले मौक्ष पद का दान ।
अब काल पुरूष का लेखा मिट गया, बन हंसा जावे निज धाम।। साहिब जी

965 तेरा घर अमरपुर है, इस जग (तीन लौक) से नहीं कोई काम ।
मनुष्य देह को पा लिया, पूर्ण सतगुरू की कर पहचान ।। साहिब जी

966 जग में पूर्ण संत कोई एक है, उसकी पहचान कौन तूं जान ।
पूर्ण भाग से मिल सके, बड़े भाग जे होत पहचान ।। साहिब जी

967 हंसा सार सुरति आनंद से, तीन लौक छूट जाएं ।
पूर्ण मौक्ष सतगुरू चरणन में, सुख दुख भेद खो जाए ।। साहिब जी

968 हंस आत्मां का कभी भी नाश ना, लाखों जन्मों में साथ ।
खेल खेलने जग आ गई, बिन सतगुरू कोई ना साथ ।। साहिब जी

969 सर नीचा अभिमान का, सदा पाए दुख और हार ।
मन मिटे सतगुरू चरणन सदा, जग में कहीं मिले ना हार ।। साहिब जी

970 किसी के घर जाकर बहुत खाना, दोष निकालना अच्छा नहीं ।
ऐसा कर्म एक मूर्ख बिना, दूजा करे कोई नहीं ।। साहिब जी

971 रिश्ते नाते बाधा बड़ी, इन सूं उतरो ना पार ।
सार सुरति ध्यान सूं काट दे, सतगुरू ले चलें उस पार ।। साहिब जी

972 सतगुरू परम हंसा रूप हैं, तन मन की ना हो बात ।
वह भी लिखते पढ़ते सुरति सूं, यही संतन की बात ।। साहिब जी

973 बिन धरती पानी अग्नि के, रोशन हर ईक तार।
हर पल जगमगाता दीप ये, बिन सतगुरू कैसे कोई पार।। साहिब जी

974 निकसे धुन ऊँ चिराग़ से, कोई संत ही पावे पार।
जिस पर कृपा सतगुरू की, पहुंचे इस लोक द्वार।। साहिब जी

975 निजधाम दिखाने वाला कोई न मिलया, जो मिलया सो गरज़ी ।
कहें साहिब तीन लौक भरमाए, किस को दूं मैं अर्ज़ी ।। साहिब जी

976 सतगुरू मधु जी साहिबन रूप हैं, उनको दो तुम अर्ज़ी ।
अमरपुर सूं सार जहाज हैं लाए, सुन तुम्हारी अर्ज़ी ।
दो पग़ पर निज घर तुम्हारा, सुरति सूं भेजो अर्ज़ी ।। साहिब जी ।।

977 सतगुरू पग़ सुरति सूं दरशे, मौक्ष पद तुम पाओ ।
सतगुरू आज्ञा बिन पग़ ना दरियो, अमर होई गर्भ ना आओ ।। साहिब जी

978 सुर नर मुणि सब को मिल घेरें, कोई ना पावे पार ।
सतगुरू नाम जहाज पर, जो चढ़े सो उतरे पार ।। साहिब जी

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

4–क सतगुरू के प्रति आस्था सम्पर्ण

979 सार सब्द निजधाम सूं आया, 'वे नाम' पायो दान ।
जिस में साहिब (सत्तपुरूष) आप समाए, पूर्ण सत्तगुरू महान।। साहिब जी

980 सतनाम को पाकर, दूजा दे बहाए ।
कर्म–धर्म सब त्याग़ कर, सतगुरू सुरत समाए ।। साहिब जी

981 सत्तगुरू सूं जब प्रीति जागी, छूटा जग सूं मोह ।
पूर्ण समर्पण जब किया, तब सूं छूटा नेह ।। साहिब जी

982 संतन का मोह अग़म है, साहिब (करैवी) गुणों की ख़ान ।
पूर्ण सतगुरू चीन के, पावे पद निर्वाण ।। साहिब जी

983 संतन सेवा जो करे, वोहि पहुंचे दरबार ।
सच्ची प्रीति जो करे, वोहि पाए दीदार ।। साहिब जी

984 तन मन सतगुरू दीजिए, मान का करो त्याग ।
सुरति में गुरू निहारिए, जागें पूर्ण भाग ।। साहिब जी

985 संत मिले तो सब मिले, रहे न कुछ भी शेष ।
मन माया सब बह गई, हंसा रहा अब शेष ।। साहिब जी

986 सतगुरू दासन के दास हैं, भक़्ति भजन संतन ध्यान ।
करते सब पर कर्म हैं, छूटे नां सुरति ध्यान ।। साहिब जी

987 योग–योग सब कहते हैं, योग है केवल जोड़ ।
साधक संतन मेल से, जोड़े साहिब सों डौर ।। साहिब जी

988 करिए प्रीत सतगुरू सूं , जो पूर्ण साहिब सूं आई ।
बिन सत्संग विवेक न होई, संतन महिमां जिन गाई ।। साहिब जी

989 गर्भ गुमान ले दूर साहिबन सूं , कर्म काण्ड का जाल।
सार–सब्द की दात ही, काटे कर्मन जाल ।। साहिब जी

990 मोह–माया मन भरत ना, संतों से जानो रीत ।
अब कुछ भी मेरी मांग ना, संतो सूं लागे प्रीत ।। साहिब जी

991 जो सतगुरू सार नाम से, सांचि करे प्रीत ।
सुरति सूं नाम धियाईए, हार मिले या जीत ।। साहिब जी

992 सतगुरू की बात मान सब लीजिए, उसी में धरो विश्वास ।
सार–सब्द की टेक सूं, और न बांधो आस ।। साहिब जी

993 गुरू सूं प्रीती कठिन है, संशय जागे कंई बार
तन–मन–धन अर्पण करो, जोड़ो सांसा सुरति तार ।। साहिब जी

994 जिन–जिन सतगुरू भक्ति करि, सो पहुंचो दरबार ।
जिन–जिन काल भक्ति करि, पायो यम द्वार ।। साहिब जी

995 साधक–सेवक सतगुरू का, पाई अमृत दात ।
सुरति लागी सतनाम सूं , पाई अमर प्रेम की दात ।। साहिब जी

996 पूर्ण सतगुरू सूं दात मिली, जीवन हुआ सुख़ दाई ।
संतों सूं प्रीत ऐसी लागी, जैसे मधु–मख़ीर मेरे भाई ।। साहिब जी

997 वही समय प्यारा जब संत मिलें, संतन चरणन धूल ।
सब गुण सींचरे पल छिन, महिमां जानो चरणन धूल ।। साहिब जी

998 महां चमत्कार संतन सूं होत, वो हैं पूर्ण प्रेम ।
जब पूर्णता सद् जात है, आत्म पूर्ण हंस प्रेम ।। साहिब जी

999 सतनाम में वास सतपुरूष का, तुम जागो तो पाओ दात ।
आए थे जग में कुछ पाने को, बिन संत मिले न दात ।। साहिब जी

1000 जाकि सुरति सतगुरू बसे, सो जन कल्पे काहे ।
सुरति लहर सार–सब्द की, दुख़ दरिद्र सब जाए ।। साहिब जी

1001 पांच तत्व के बीच में, आत्म तत्व का वास ।
विरला ही कोई पात है, कोई संतन का सच्चा दास ।। साहिब जी

1002 पूर्ण सतगुरू वाजों, हो सकदा प्रतक्ष नाहीं ।
मन–माया जो मिट जाए तो, साहिब का पाना कठिन नहीं।। साहिब जी

1003 साहिब का घर दूर से दूर, और पास से पास ।
आंख मिले पूर्ण सतगुरू सूं, पल में पाओ पास ।। साहिब जी

1004 यत्न हज़ारां लखां करले, ऐ काबू आंदा नंई ।
पूर्ण सतगुरू आ के जेकर, मूंह तूं घूंघट लांदा नई ।। साहिब जी

1005 शिष्य तो ऐसा चाहिए, तन मन गुरू चरणन धरे ।
सतगुरू ऐसा चाहिए, सुरति में सुरति धरे ।। साहिब जी

1006 जात–धर्म पूछो न कोए, साहिब को भजो साहिब का होए ।
जात–पात झूठा कवच है, भजन में बाधा होए ।। साहिब जी

1007 इस माया सब भरमाया, केवल बचे ईक संत ।
संत ही जग से पार लगावें, जब सार दात दें संत ।। साहिब जी

1008 तीनों लौक में सांची संगत संत, जे पावे कोए।
यही विधि जग में रहे जो, निर्वाण पावे सोऐ ।। साहिब जी

1009 बाहर से मन उज्जवल दिखे, भीतर मैला अंग ।
तां से तो साधक भला, तन मन छूटे संग ।। साहिब जी

1010 कामी कर्म करे, सुश्मिण का न खुले द्वार ।
संतन शरणी जाई के, पाएं मोक्ष आनंद भण्डार ।। साहिब जी

1011 गुप्त भेद सतगुरू से पाओ, सुरति में सब्द ले जाओ ।
बिन देखे प्रतीती न आवे, प्रगटे–संग लिए निज घर जावे।। साहिब जी

1012 सच्चे संत (साहिब) सूं, जो प्रीत लगाए ।
बिन मांगे वह, मौक्ष को पाए ।। साहिब जी

1013 नाम पुरूष, नौका निज भाई, खेवट संत सुरति सूं भाई ।
सार–सब्द सुमिरो लौ लाई, तभी नौका निज घर को जाई ।। साहिब जी

1014 निरंकार द्वार को छोड़ कर, आया संतन द्वार ।
अब तो मेरा केवल सतगुरू, मारे या लगावे पार ।। साहिब जी

1015 युग–युग की मैली गज़ी, कैसे चढ़ेगा रंग ।
सतगुरू ही धोवें गज़ी, कौ चढ़ावें तीखा रंग ।। साहिब जी

1016 सतगुरू जीवन ही नहीं देता, मरना भी सिख़ाता है ।
साधक को मन माया से बाहिर, सुरित में संग हो लेता है ।। साहिब जी

1017 जो भी सतगुरू संग में, उसे गले लगाता है।
बिन रूप रंग जात–पात के, मालिक़ सूं जा मिलाता है ।। साहिब जी

1018 चरण धूली रज–रज पाओ, आंख जोत बस जाओ ।
सतगुरू सब्द सुरति में डालो, मौक्ष पद पा जाओ ।। साहिब जी

1019 यह जगत मन का विस्तारा, आत्म बीज सहारा ।
सतगुरू आत्म आज़ाद कराए, मन की छूटे धारा ।। साहिब जी

1020 पूजा मान न चाहिए, यह ना संतन की चाह ।
साहिब मिले तो सब मिला, दूजी और ना चाह ।। साहिब जी

1021 जे सिर सौंपया सतगुरू को, सो सिर भया सनाथ ।
सतगुरू तारन हार हैं, निजघर जाए निज साथ ।। साहिब जी

1022 जीव स्वार्थ सब लागे, सुरत स्नेह नांहि ।
सुरत स्नेही सतगुरू हैं, काल निरंझन नांहि ।। साहिब जी

1023 चिंता चिता समान है, सतगुरू धरो घ्यान ।
सार–सब्द निज औषदि, चिंता करे पलयान ।। साहिब जी

1024 ना जीने की खुशी, ना मरने का ध्यान ।
बस एक से दोस्ती, मित्र निदंक एक समान ।। साहिब जी

1025 निरख़–परख़ पग़ राखि़ए, ताते लागे न दाग़ ।
संतन चरण रज लीजिए, मन छूटे बिन दाग़ ।। साहिब जी

1026 सोहि सुहागन जानिए, हीरा झलके माथ ।
सार–सब्द नित ध्यान में, पिया संग सुरति साथ ।। साहिब जी

1027 सतगुरू सांची वाणी पर, जो कोई धरे ध्यान ।
मन–माया का लेप मिटे, दुख़ सुख़ एक समान ।। साहिब जी

1028 सांचा साधक गुरू सेव कमावे, गुरू को देवे मान ।
ऐसा साधक मरे न जन्मे, जीवित जाता निजधाम ।। साहिब जी

1030 सुरति मांहि सतगुरू भजें, 'मै' को राखें दूर ।
आशा–तृष्णा सब तजें, ईन्द्रियों से सुरति दूर ।। साहिब जी

1031 कथ्नी थोथी सांत्वना, तां से मिटे न भूख़ ।
'वे नाम' कहे करनी भली, जो मिटावे आत्म भूख़ ।। साहिब जी

1032 पढ़ी गुढ़ी पाठक भयो, साधक भयो न मूल ।
संत मिले साधक बने, जीवन जाना मूल ।। साहिब जी

1033 साहिबा खोजी बनो तुम सब्द के, सतगुरू शरणी जाए ।
पल छिन सुरति धरो सब्द में, भवजल पार हो जाए ।। साहिब जी

1034 साहिब जी बड़ा हुआ तो क्या हुआ, बड़ा न किया कोए काम ।
जे जाना सत्तलौक को, संतन चरणन ध्यान ।। साहिब जी

1035 साहिबा आशा तो कोई है नांहि, जे सतगुरू हैं साथ ।
मन–माया सूं हंसा मुक़्त, छूटा मोह का साथ ।। साहिब जी

1036 संसार जो कहता कहने दे, तूं सतगुरू सब्द दे ध्यान ।
सोये जन नादान की, बात ना धरो ध्यान ।। साहिब जी

1037 ये तन मन विष की बेलड़ी, सार–सब्द है अमृत ख़ान ।
सब देत जे सतगुरू मिले, इसके आगे कैसी मांग ।। साहिब जी

1038 जग में जैति आत्मा, तैता हंसा रूप ।
सतगुरू बोलन हारा पूजिए, जा से चमके नूर ।। साहिब जी

1039 साहिब मिलन की ईह तेरी बरिया, उवरि ना कोई काम ।
मिल साध संग भज रहयो भाई, सांचा केवल नाम ।। साहिब जी

1040 छल कपट तज दीजिए, कराएं सतगुरू सूं उद्धार ।
चरणन सुरति ध्यान सूं, माया जाल सूं पार ।। साहिब जी

1041 क़दली–सीप–भुजंग–गज, स्वाती गुण अनेक।
जिस की संगति आन करे, तैसो ही फल एक ।। साहिब जी

1042 जिन ली सतगुरू औट है, उनके पूर्ण भाग ।
सोवत सुख़ की नींद सूं , सतगुरू बदले भाग ।। साहिब जी

1043 सतगुरू–भक़्ति श्रम–सेव–साधना, ये हैं भक़्ति अंग ।
जिन संग पास ये चार गुण, तांहि पावें सुख संग ।। साहिब जी

1044 जो नर आप खावे औरन खिलावे, सुरति सूं सब काम ।
सतगुरू चरणी ध्यान धरे, जा पहुंचे निजधाम ।। साहिब जी

1045 जहां–जहां बछड़ा फिरे, तहां–तहां संग में गाय ।
जहां–जहां रहते संत जन, तहां–तहां साधक जाये ।। साहिब जी

1046 मन सादे मन मोह छूटे, पवन वश चन्दन स्वर सिद्धी ।
ज्ञान सिद्धी सूं भोग भेदें, सतगुरू सुरति सूं अजर सिद्धी ।। साहिब जी

1047 साहिब सतगुरू एक ही रूप में, साधक चेला आत्म रूप ।
ना कोई आया ना कोई जाए, सार सुरति सूं हंसा रूप ।। साहिब जी

1048 संत की संगत पारस समाना, लोह कंचन बन जाए ।
संत की संगत सूं सुख़ उपझें, अमृत वर्षा हो जाए ।। साहिब जी

1049 किस विधि मन भ्रान्ति नशाये, कैसे संत को पाऐं ।
पूर्ण सतगुरू मन–बुद्धि सूं पार, परमपुरूष संग पाऐं ।। साहिब जी

1050 धुण बाजे घन घोरा, मग्न भया मन मोरा ।
सतगुरू सूं प्रिती ऐसी करूं, जैसे चाँद चकोरा ।। साहिब जी

1051 साहिब कुछ और ना दीजिए, बिन नैनन दीदार ।
कभी ना मांगू भीख़ में, खाऊं ना बिन दीदार ।। साहिब जी

1052 आज्ञा चक्र सतगुरू दर्शन पावें, सुरत कमल संग जाई ।
गुरू चरणन शीष देई के, सोलहं सूर्य की ज्योति पाई ।। साहिब जी

1053 सार–नाम बिन जो कुछ सुमरिए, सो सब कर्म कमाई ।
आप मिटे तो भक़्ति होवे, संतन चरणी समर्पण होई ।। साहिब जी

1054 दुख़ सुख़ ना व्यापे कभी, परम पद जो पाए ।
उठत बैठत कभहू न छूटे, ऐसी ताड़ी (सुरति) लगाए ।। साहिब जी

1055 सांचा नाम सो ही पावता, जिन्हीं आशा तृष्णा त्यागी ।
कल और कल को छोड़ कर, सतगुरू सूं सुरति लागी ।। साहिब जी

1056 संतन दर्शन कीजिए, दिन में सौ–सौ बार ।
आठों पहर दीदार करें, गुरू रहें सुरति द्वार।। साहिब जी

1057 साहिबन छवि नैनन बसी, और छवि कहां समाए ।
भीतर सार–सब्द रस उपजे, अब दूजा कहां समाए ।। साहिब जी

1058 साहिबन के पल छिन, दर्शन रज–रज पांऊ ।
'मैं' मैली साहिब उझले, किस विधि लागू पांऊ ।। साहिब जी

1059 सभी गुण तुझ में साहिबा, मुझ में नांहि कोई एक।
बिन सतगुरू प्रीति ना उपजे, भक्ति कैसे हो एक ।। साहिब जी

1060 तेरे पास मन मेरा, अब तूं ही है सहारा ।
सुर नर मुणि सब को ठगें, मन लिया अवतारा ।
जो कोई या ते बचे प्यारो, तीन लोक से न्यारा ।। साहिब जी

1061 ईश्क मुश्क सार को जानो, जिसके कान मूंह अनेक ।
सच्चा साधक हर पल देखे, सतगुरू सूरत प्यारी एक ।
बाग बहारां तां तूं देखें, अंदर रमदा प्रीतम प्यारा एक ।। साहिब जी

1062 तन रहे ना मन रहे, रहे न ह्रदय ध्यान ।
जे तूं पाले सतगुरू सूं, पूर्ण आत्म ज्ञान ।। साहिब जी

1063 नहाए धोए मंदिर जाए, छोड़े न मन की मैल ।
मनसा वाचा कर्मणा तीनों मिलें, तो उतरे मैल ।। साहिब जी

क नाम वंत बहुते मिले, ध्यान वंत अनेक ।
कहे कबीर धर्म दास सूं, गुरूवंत कोई एक ।। साहिब जी

1064 गुरू सेवे अपना ही, तिस बलिहारी जांऊ ।
तारूं तस ईक्कत्र वंशा, सतगुरू सब्द जे पाओ ।। साहिब जी

1065 सतगुरू को तन मन दो, उतरे सर से भार ।
जो अपना अहम ना तज सके, सहे काल की मार ।। साहिब जी

क तन दिया मन दिया तो भला किया, सिर का जासी भार ।
जो कोई कहे सो मैं दिया, बहुत सहे सिर–मार ।। साहिब जी

1066 छल–कपट से माया पाई, हो गया अभिमान ।
संत साहिब सूं प्रीती लागी, छूट गया अभिमान ।। साहिब जी

1067 संत की महिमों ना जानें, जो लोभी खुदगर्ज़ी ।
उनको जाने गुरूमुख प्यारा, जा में साहिबन मर्ज़ी ।। साहिब जी

1068 सतगुरू तेरी बाट जोहूँ, अखियां तरसें बिन दर्शन ।
सुरति सूं अखियां जो बन्द, रज–रज पाऊं दर्शन ।। साहिब जी

1069 सुख़ दुख़ हानी लाभ, विजय पराजय ना धरो ध्यान ।
इन सब का विचार किये बिन, गुरू आज्ञा में धरूं ध्यान ।। साहिब जी

1070 सत्तगुरू कभी बिसारो नांहि, मोक्ष भी जो मिल जाए ।
हमसे कितने संग तेरे, तुम संग हमारो नांहि कोए ।। साहिब जी

1071 सात द्वीप नौ खंड में, सत्तगुरू सुरति समाए ।
जो सत्तगुरू संग ना पा सके, निजघर कैसे जाए ।। साहिब जी

1072 सत्तगुरू चरणों में समर्पित हो, तो मन माया मिट जाए ।
एक बार सत्तलौक जो जाए, बहुरि गर्भ ना आए ।। साहिब जी

1073 बिन सत्तगुरू जग माया ना मिटे, बार–बार यम द्वार ।
जो पूर्ण सत्तगुरू शरणी ले, जन्म–मरन सूं पार ।। साहिब जी

1074 प्रेम की ओर उठा जो पग़, कभी व्यर्थ ना जाए ।
सच्चा पग़ एक ही भला, सतगुरू चरणन सुरति लाए ।। साहिब जी

1075 एक बार मुख़ अपनी ओर लो, सत्तगुरू खटकाऐं द्वार ।
पहचान में देरी ना लागे, जे पूर्ण सत्तगुरू खड़े द्वार ।। साहिब जी

1076 बिन संदेह विश्वास ना होई, कौटिन जतन करे जे कोई ।
बिन ज्ञान विवेक ना होई, बिन विवेक आत्म हंसा ना होई ।। साहिब जी

1077 वन–वन डोलूं ख़ोजत फ़िरूं, कोई ना देता हामी ।
आ पहुंची दर 'वे नाम' के, निज–घर लिया पहचानी ।। साहिब जी

1078 मोह माया बंधन तोड़ो, मै मेरी अहम छोड़ो ।
लाखों जन्म व्यर्थ गंवायो, अब तो सत्तगुरू संग नाता जोड़ो ।। साहिब जी

1079 पूर्ण सतगुरू को पाईके, लेख़ा–जोखा देयो बहाई ।
अब की बार जो भटक गये तो, काल ना सुने दुहाई ।। साहिब जी

1080 जो सतगुरू को कूट वचन कहे, कहीं ना मिलती ठौर ।
मानव वह अभागी रहे, मृत्यु लौक वासा दुख घनघौर ।। साहिब जी

1081 सत्तगुरू सूं प्रीत लागी, अब तृष्णा बची ना शेष ।
प्रीतम के प्रेम में सब कुछ सहुं, चाहे दुख हों या क्लेश ।। साहिब जी

क गुरू को सिर पर राखिए, चलिए आज्ञा मांहि ।
कहे कबीर तां दास को, तीन लौक डर नांहि ।। साहिब जी

ख गुरू को अखण्ड, ब्रहंमा कर जाने ।
गुरू को नांहि, मानुष कर माने ।। साहिब जी

1082 सतगुरू मिले तो सतगुरू मिले, मूल सब्द तेरे पास ।
आशा तृष्णा के जाल को तोड़ दे, सार सब्द का बान जे पास।। साहिब जी

क हरि ने कुटुम्भ जाल में घेरा, गुरू ने काटि ममता बेरी।
हरि ने मोसे आप छिपायो, गुरू दीपक दे ताहे दिखायो।। साहिब जी

ख हरि ने पांच चोर दिये साथा, गुरू ने लेई छुड़ाये अनाथा।
चरण दास पर तन मन वारूं, गुरू ना तजुं हरि को तज डारूं।। साहिब जी

1083 बिन देखे जस बोले, अंधे का सा काम।
बलिहारी अपने सतगुरू के, जगाने का करते काम।। साहिब जी

क जहं जहं डौलूं सौ परिक्रमां, जो जो करूं सो सेवा।
गृह उजाड़ ईक सम लखूं, पूजूं और ना देवा।। साहिब जी

ख सब्द निरंतर ते सुरति लागि, मलीन वासना त्यागी।
उठत बैठत कभी ना टूटे, ऐसी तारी लागी।। साहिब जी

1084 तन मन गुरू को सौंप दे, मन माया सूं सुरति पार ।
अब कुछ देने को पास ना, सार सब्द सूं जोड़ो तार ।। साहिब जी

1085 पढ़ी पढ़ी मन चटान सम, लिखी लिखी भयो फूल दान ।
जब तक सतगुरू माया नहीं, सार सब्द का ना मिलता दान ।। साहिब जी

1086 तीन ताप जग बांधिया, ताका बिन सतगुरू नांहि उपाये ।
ताप आत्म महा प्रचण्ड है, सार सब्द बिन नहीं जाए ।। साहिब जी

1087 सार सब्द में जब सुरति धरो, अंदर के खुलें किवाड़ ।
भक्ति करो सतगुरू की, हर दम पीवो अमृत धार ।। साहिब जी

1088 सार सब्द जिन सुरति में भर दिया, वही उतरे उस पार ।
सतगुरू की सुरति में खो गये, सतगुरू कर दें पार ।। साहिब जी

1089 जप तप तीर्थ बहुत करे, खाली हाथ ही उसे तूं जान ।
बिना मेहर सतनाम ना, बिन सार सब्द ना होत कोई पार ।। साहिब जी

1090 तन गया मन भी गया, सतगुरू का मिला जे संग ।
सार सुरति सार सब्द में डले, मिले साहिबन संग ।। साहिब जी

1091 बिन नाम सुरति ना जागे, पूर्ण सतगुरू दे जगाए ।
आत्मां की आस बंद है पड़ी, सतगुरू सुरति सूं खुल जाए ।। साहिब जी

1092 सतगुरू की महिमां अपरम्पार है, अभय दान दीनन को देत ।
आठ पहर सतगुरू स्तूति कीजिए, पा लो मौक्ष पद की दात ।। साहिब जी

1093 सतगुरू कृपा सूं मुक्ति उजियारा, सतगुरू कृपा सूं मिले निजधाम प्यारा ।
सतगुरू चरणी महां सुख होई, सतगुरू के पथ चले सत्यवादि प्यारा ।। साहिब जी

1094 सब तीरथ सतगुरू चरणन में, चरणामृत अमर कर देत ।
चरण कमल की निसदिन जो पूजा करे, हंसा रूप हो जात ।। साहिब जी

1095 पर सूं और कोई देवी देव ना, सतगुरू चरणन में सुरति डाल ।
सतगुरू चरण प्राण सूं प्यारे, सतगुरू चरण में प्रीती सत्कार ।।साहिब जी

1096 सतगुरू चरण कमल सुरति राखूं, कपिल वृक्ष रूप में ध्याऊं ।
बिन मांगे सब कुछ पा लिया, मन माया सूं दूर हो जाऊं ।। साहिब जी

1097 सतगुरू चरणन प्रीती कैसे लगे, जब मन माया सूं जोड़ी हो तार ।
अभी भी है सोया पड़ा, रिश्ते नातों सूं ना टूटी तार ।। साहिब जी

1098 बिन सतगुरू अपना कोई है नांहि, जिस सूं मैं जोडूं तार ।
इतना ज्ञान जब हो गया, सब सूं टूटी एक सूं जुड़ गई तार।। साहिब जी

1099 लख चौरासी में पड़ा, बिन सतगुरू ना होवत पार ।
जन्म मरण छूटे नांहि, बिन शरणी सतगुरू द्वार ।। साहिब जी

1100 सार नाम यूं लीजिये, सतगुरू सूं जोड़े तार।
केवल सतगुरू ही सुरति सूं जानते, ऐसी सुरती की तार।। साहिब जी

1101 सतगुरू पूर्ण मिले, जन्म जन्म की बुझे प्यास।
वे मिलते केवल सत्संग में, जहां बहती सुरति बास।। साहिब जी

1102 सतगुरू की बात मानो, तो बात बन जाती।
विश्वास की ही बात, नैया पार लग जाती।। साहिब जी

1103 काम क्रौध लोभ मोह अहंकार, ईर्ष्या द्वैष मदिरा भण्डार संग साथ।
यह दे दो सब सतगुरू को, पारस सुरति सूं सतगुरू साथ।। साहिब जी

1104 सतगुरू पाया सब पाया, सतपुरूष रचयो खेल ये सारा।
जीव ना जाने ईस भेद को, सतगुरू ही करन करावन हारा।। साहिब जी

1105 भक्ति गुप्त कोई जाने नांहि, बिन पारस सुरति दात।
भक्ति करो भरमो नांहि, बिन सतगुरू बने नां बात।। साहिब जी

1106 बिन ज्ञान नहीं भक्ति है, सार नाम जब ध्यान।
बिन सतगुरू भेद ना जाने, किस का करें ध्यान।। साहिब जी

1107 तन आत्म पिझंरा जान लो, मन वश इसे तूं जान।
सतगुरू बंधन काटनहार हैं, उनकी हर बात तूं ले मान।। साहिब जी

1108 निष्काम भाव से कर्म करो, सतगुरू की बात लो मान।
कर्म बंधन सब कट गये, जब सतगुरू चरणन ध्यान।। साहिब जी

1109 आप ही तुम जान लो, बिन गुरू मिले ना ज्ञान ।
पूर्ण सतगुरू महान हैं, जिन दिया वे नाम को ज्ञान।। साहिब जी

1110 सतगुरू सुरति सार सब्द को, चेतन करे हर पल।
सुरति निरति आत्म रूप धारे, मन माया बाहर उसी पल।। साहिब जी

1111 सार सब्द में जाकर, स्वांसा सब्द सुरति ईक।
सतगुरू चरण सुरति धरो, जीवित मरो तो पायो एक।। साहिब जी

1112 सार नाम सूं सुरति जोड़ ले, जन्म मरन सूं टूटें तार ।
पूर्ण संत के हथ कमान है, हर टूटी जोड़ें तार ।। साहिब जी

1113 जो सतसंग में आकर सोचता, मिलता सड़ा अनार ।
अवसर बिना बोले हंसे, उसे मूर्ख जाने संसार ।। साहिब जी

1114 माया फांस फसाया जीव को, मन मान कुलफ़ कवाड़।
सतगुरू सब्द सतलोक का, खोले ये कुल्फ़ कवाड़।। साहिब जी

1115 सतयुग त्रेता और द्वापर, देते कलियुग प्रमाण।
तत्व सार केवल ईक सार नाम, और थोथा सभी ज्ञान।। साहिब जी

1116 सब्द विदेह नांहि कोई विवेकी, मन भाव की उल्टि नीती।
सार नाम में सुरति लो लाई, यही सतलोक पायन की नीती।। साहिब जी

1117 बलिहारी जाऊं सत्तगुरू अपने, जिन दीनी सार सुरति सतरंग ।
जित देखूं प्रेम रंग छाया, सत्तपुरूष ही हैं प्रीत प्रेम का रंग।। साहिब जी

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

4–ख सहज अवस्था/सहज सतमार्ग/परा भक्ति

1118 सहज सहज सब कहत हैं, मन जाये तो चीन्हें सहज।
मन माया कल और कल, संग से कबो नहीं तुम सहज।। साहिब जी

1119 सहज सब्द सूं सहज बन जाओ, निजघर प्यारे जाओ।
सहज सतपुरूष सहज हैं सतगुरू, सहज के घर जाओ।। साहिब जी

1120 सतगुरू सच्ची बात बताई, मत जाना उसे तुम भूल ।
तीन लौक से आगे साहिब जी, अमरपुर जाना ना भूल ।। साहिब जी

1121 गुण सब साहिबन में, मेरा काम जगाना ।
दास कहता पुकार है, एक में एक हो जाना ।। साहिब जी

1122 सुन्दर तन को पाई के, सतगुरू सूं जोड़ो तार ।
नहीं तो काल दरेड़े खावे, बचें तभी जे उभरे प्यार ।। साहिब जी

1123 सार–नाम बिन काल ना छूटे, कभु ना मौक्ष द्वार ।
सहज अवस्था कभी ना आवे, सहज बिन कैसे दीदार ।। साहिब जी

1124 सहज होना यत्न से नांहि, सतगुरू कृपा की बात।
पल पल झुकना आ गया, कृपा की बरसे बरसात।। साहिब जी

1125 सार–नाम को पा कर, सुरति सतगुरू चरणाई ।
सेवा–स्मिरण सत्संग, सहज मिलें सतगुरू शरणाई ।। साहिब जी

1126 बिन सत्संग प्रेम न सींचरे, घट खाली न होए।
पूर्ण सतगुरू भक्ति बिना, आत्म शुद्ध न होए।। साहिब जी

1127 लाखों जन्म बदले ये मकान हैं, मान ना तजा ईक बार ।
पूर्ण संत जग में आ गयो, मानो संतन की बात ईक बार ।। साहिब जी

1128 यह जग तेरा है नहीं, क्यों बैठा चादर तान ।
सतगुरू सूं सुरति सब्द लो, पाओ मौक्ष का दान ।। साहिब जी

1129 सत्संग महिमां अपार है, जैता धरो ध्यान ।
खाली मन जब हो रहे, पल में लागे ध्यान ।। साहिब जी

1130 बिन (साहिब) सत्संग कोई जागे नहीं, कौटिन करो उपाए ।
सत्संग सेतू बांध ले, अब शेष न कुछ उपाए ।। साहिब जी

1131 मिला सत्संग सतगुरू का, संतन सुने विचार ।
तजे भ्रम–जाल संसार का, जागा संतन सूं प्यार ।। साहिब जी

1132 सत्संग सेतु निर्वाण का, सुरति में रहे अब नाम।
सतनाम सेतु निजधाम का, सतनाम सूं बने सब काम ।। साहिब जी

1133 घी दूध में ऐसे रम रहा, जैसे आत्म जोत ।
दूध से दही बिन मथे, कभी न माख़न हो ।। साहिब जी

1134 पानी मे रहते हैं, नेत्र तर में रहते ।
अपने वोहि होते हैं, जो सतगुरू चरणन में रहते । साहिब जी

1135 कहने को अपने होते हैं, प्राणी को अपने ही डुबोते ।
अपने तो वोहि होते हैं, जो सतगुरू शरणी होते ।। साहिब जी

1136 बिन सत्संग कोई जागे नांहि, कौटिन करें उपाए ।
बिन सार–सब्द के, छूटन नांहि उपाए ।। साहिब जी

1137 मीठे वचन बोल कर, भजन में रहो लवलीन ।
संतन सेवा में रहें, सत्संग में रहो लवलीन ।। साहिब जी

1138 संग सांच को राख़िए, झूठ से रहो तुम दूर ।
सुरति में नज़र आवे, साहिबन जी पुर नूर ।। साहिब जी

1139 साहिबा संगत संत की, सदबुद्धि प्रगटाए ।
मन–माया का भेद भी, संत–संगत में पाएं ।। साहिब जी

1140 संतन सत्संग जो सुने, जन्म–जन्म के कटते पाप।
सत्संग में जो सुरति धरे, छूटे कर्म–धर्म संताप ।। साहिब जी

1141 साहिबा सहज समाधि जो धरें, सोहि उतरें पार ।
केवल सार–सब्द सूं, हंसा मन माया से पार ।। साहिब जी

1142 जो सतगुरू संग बैठ विचार सुने, उसके पूर्ण भाग ।
पल–पल आत्म जागती, होत मन माया का त्याग ।। साहिब जी

1143 सब ते उतम संतन सत्संग, सतगुरू में धरो ध्यान ।
सार–नाम की महिमां जान लो, अक्का–नाम बिन कैसा ध्यान ।। साहिब जी

1144 सतगुरू मिले सब दुख़ गए, अंतर के खुलें पट निज साथ ।
विरह आग भड़की तन भीतर, कौटिन कर्म जलें इक साथ।। साहिब जी

1145 बिन जल ईक सरवर भरिया, नीर नज़र नहीं आये ।
मेरे सतगुरू अति कृपालू, तहां बैठ मल–मल नहाये ।। साहिब जी

1146 थिर हो मनवा दृढ़ हो चित, जब संग हो पूर्ण संत ।
काया पवन ईक रस हों, जब संतन सूं पाओ सत्संग ।। साहिब जी

1147 सार–सब्द सूं संयम धारो, क्या कर सकता रोग ।
सतगुरू संग बैठ उपझे सन्तोष, क्या कर सकता भौग़ ।। साहिब जी

1148 नारी प्रेम की जोत प्यारो, जब जागें तब पाएं ।
पल में सतगुरू संग सूं, आत्म चेतन हो जाए।। साहिब जी

1149 सतगुरू सत्संग अमृत वर्षा करें, मन बुद्धि सूं पार ।
मन करता मन भौग़ता, सार–सुरति सूं हंसा पार ।। साहिब जी

1150 कैसे सोऊं पापन नींद संग, साहिबन की सुरति संग ।
कई जन्मों से सोई पड़ी, यह पूर्ण भाग सूं साहिबन संग ।। साहिब जी

1151 ईंगला–पिंगला सम करो, सुरत–सब्द में ध्यान ।
अब सुश्मिन धारा बन गई, सुरति–निरती मन–पवन ईक समान ।
जब सुरति–निरती ईक हो गई, प्राण सुरति ईक ध्यान ।। साहिब जी

1152 सब जग माने मन बात को, उसी का करता ध्यान ।
जो कोई मन असवार, वही करता सहज ध्यान ।। साहिब जी

1153 ईंगला–पिंघला सम करो, सुश्मिन में डालो प्राण ।
सार–सुरति सूं अंदर जाना, सुरति सूं जोड़ो प्राण ।। साहिब जी

1154 आंख कान नां रूंधिए, तनिक कष्ट बिन ध्यान ।
अंदर आंख सूं सतगुरू दर्शण, सुनो अनहद की तान ।। साहिब जी

1155 साधक ध्यावें संत को, तिरियां पूजें एक नाथ ।
'वे नाम जी' सब को कहें, दोनों चलें ईक साथ ।। साहिब जी

1156 बिन सत्संग कुछ हाथ न आवे, कौटिन करो उपाए ।
संत कृपा बिन सत्संग ना, जावें यम द्वारे ।। साहिब जी

1157 कर सत्संग सार रस पाओ, सतगुरू दर्शन रज–रज पाओ ।
उनकी आंख सतपुरूष सहाई, जोत वर्षा उर पाई ।। साहिब जी

1158 साहिबा जग में दो बड़े, ईक संत–ईक सार–नाम ।
संत जगावे तृष्णा बड़ावे, सार नाम जपावे सतनाम ।। साहिब जी

1159 संतों सुख़ समाधि भली, जिस में पाओ राम ।
बिन सुन्न धारे खाली रहे, कैसे मिलेंगें राम ।। साहिब जी

1160 जीव तो पारस रूप है, लोह भयो संसार ।
जब जीव पारस संग किया, कुन्दन भयो हर तार ।। साहिब जी

1161 मान बड़ाई जो तजें, आप में ही खो जायें ।
वह साधक अब जाग गया, जब अंदर जोत जगमगाये ।। साहिब जी

1162 आत्म मिलावे पवन में, दस प्राण बन जायें ।
सुख़मन सुरति लगाई के, उल्टा जाप चलायें ।। साहिब जी

1163 सभी गुण तुझमें साहिबा, मुझमें नांहि कोई एक ।
बिन सतगुरू प्रीति ना उपजे, भक़्ति कैसे होए एक ।। साहिब जी

1164 संत कृपा से सहज अवस्था, प्राप्त करो सहज प्रेम ।
सहज सुख़ अवस्था जब मिले, सहजे भक्ति प्रेम ।। साहिब जी

क सहज–सहज सब कोई कहें, सहज न चीने कोए ।
जो सहजे साहिबन मिलें, सहज कहावे सोए ।। साहिब जी

1165 बिन सत्संग कुछ हाथ न आवे, संत कृपा बिन सत्संग न पावे ।
बिन सतगुरू कुछ ना भावे, सतगुरू देख यम पास न आवे ।। साहिब जी

1166 सत्संग आ सार रस पाओ, सतगुरू दर्शन रज–रज पाओ ।
उनकी आंखे सतपुरूष सहाई, संग पाओ पार हो जाओ।। साहिब जी

1167 बिन सत्संग ना जाग सके, सार–सब्द बिन नांहि मौक्ष
पल–पल ध्यान संतन चरण धरो, तांहि सूं उगता मौक्ष ।। साहिब जी

1168 सुश्मिन द्वार जब ही खुले, सार–सब्द सुरति में धरो।
उरदमुख़ि तुम ध्यान करो, त्रिकुटि में आ विश्राम करो।। साहिब जी

1169 अनहद धुन में खो कर, जोत स्वरूपी दर्शन पाओ,
आज्ञा–चक्र में जब तुम जाओ, सतगुरू में ध्यान लगाओ ।। साहिब जी

1170 संत्त की शरणी जो है आता, पाए सच्ची ठौर ।
संत की शरणी जिसने तजी, बची ना कोई ठौर ।। साहिब जी

1171 उल्टा स्वांसा सार–सब्द संग, सुशिमन खुले त्रिकुटी जा समाये ।
अष्टम–चक्र ताला खुले, सत्तगुरू दर्शन पाऐं ।। साहिब जी

1172 नर तन पाया हंसा होने को, बिन सत्संग उगे़ ना बीज ।
होश में जीना सीख़ ले, तभी उगेगा बीज ।। साहिब जी

1173 प्रेम–चदरिया जो कोई ओढ़े, उसी का उग़ता बीज ।
प्रेम बिन आकार है, यही साहिबन निज–रूप ।। साहिब जी

1174 प्यारो सब क्रिया छोड़ कर, निष्कर्म तुम हो जाओ।
चुप और मौन हो कर, सहज को तुम पा जाओ।। साहिब जी

1175 किसी को पाने के लिये, दौड़ना होता है।
पर निज में निज को पाने के लिये, सहज होना होता है।। साहिब जी

1176 जिस संग सतगुरू नाम, तिस के संवरे सब काम।
काल जाल कुछ ना करे, नाम ही करता सब काम।। साहिब जी

1177 चाह गई चिंता मिटी, सुरति सूं छूटा मन।
जिस की मांगें सब गई, संग छूटा अभिमान।। साहिब जी

1178 सत्संग विरह विराग उत्पन्न करे, सहज अवस्था आये।
सतगुरू संगति साहिब मिलें, मोक्ष पद पा जाये।। साहिब जी

1179 मान बड़ाई चाह छोड़ कर, संगत से कर प्रेम।
जो सतगुरू को पा गया, पाता साहिबन प्रेम।। साहिब जी

1180 अमृत दात सार सब्द, पारस सुरति संतन संग।
पागल संसार जानत नांहि, सत्त जानो संतन संग।। साहिब जी

क राम तुम्हारा चरित्र, स्वयं ही काव्य है।
जो जन कवि बन जाये, सहज स्वभाव है।। साहिब जी

1181 सहज सतगुरू सहज साधक, सहज का प्रचार।
जा सहजे साहिबन मिलें, मार्ग सहज सूं पार।। साहिब जी

1182 सहज सूं सहजनामा, नर पा सहज हो जाये।
सहज हो निजघर जाये, तीन लोक का संत कहलाये।। साहिब जी

1183 सत्त तप भक्ति प्रेम विराग़, सहज अंदर मान बाहर।
सहज योग गुण आ गये, होता सहज नर नार।। साहिब जी

1184 दुख सुख दोनों काल हैं, मत कर इन का ध्यान।
ईक पकड़ा दूजा संग खड़ा, पालो सार सब्द का दान।। साहिब जी

1185 निर्गुण सगुण में सहज के गुण नांहि, चार युग ईक होने की बात।
ये सब पूर्ण संत करें, सब गुण आने की बात।। साहिब जी

1186 काम गया क्रोध गया, गया लोभ मोह अहंकार।
आशा तृष्णा का संग गया, पाया साहिबन दरबार।। साहिब जी

1187 सहज बीज कबीर जी, जो हर युग जग में आये।
सहज अनेक नर प्रकटे जग में, सहज हो निजघर जाये।। साहिब जी

1188 सुरति ध्यान ही सहज है, सहज सब्द जे पायो।
स्वांस स्वांस सुरति सब्द में, सहज की जोत जगायो।। साहिब जी

1189 सहज सब्द सतलोक से आयो, सतपुरूष सुरति सूं प्रकटायो।
जिन जिन पूर्ण सतगुरू पायो, सहज पद पा सहज है पायो।। साहिब जी

1190 प्यारो काल सिर उपर है खड़ा, करो सतगुरू का संग।
जाका घर निजधाम है, ले चले अपने संग।। साहिब जी

1191 सहज धरति सहज बनराये, सहज सुन्न तत्व आकाश।
सहज नहीं पवन पानी और अग्नि, आगे बड़ने की आस।। साहिब जी

1192 सहज तो केवल संत हैं, जिन पाई सुरति की दात।
सहज सुरति, सहज के पास यह दात।। साहिब जी

1193 तीन लोक सहज मत जानो, काल का जाल ना सहज।
मन माया का संग जे पाया, सहज का छूटा जहाज।। साहिब जी

1194 सहज धरति सहज आकाश, सहज सूर्य चांद सितारे।
हर पल सहज का संदेश हैं देते, सहज 'संत' सहते दुख जग सारे।। साहिब जी

1195 मूल सब्द अमरलोक प्रमाणा, तेहि ते हंसा पावे निर्वाण।
मूल सब्द है आदि निशानी, सतगुरू सूं ले तूं जान।। साहिब जी

1196 प्यारो सो सतगुरू मोहि भावे, जो सार सब्द दे जगावे।
जा के दरसन में निजघर दरसे, मूल सब्द से घर ले जावे।। साहिब जी

1197 सतगुरू आरती सुरति में, हर पल साधक गावे।
निरति आन सुरति ही मिली, सब्द मिल हंसा बनावे।। साहिब जी

1198 सब्द पाई के तन मन वश करो, सहज योग कहलाई।
सनातन सब्द निज मूल है, आशा तृष्णा लियो भरमाई।। साहिब जी

1199 भव पार करन जो कोई चाहे, सो खेवट से प्रीत लगाये।
भव सागर भव संकट धारी, सार सूं पार प्रीत से होये।। साहिब जी

1200 शब्द से तीन लोक हैं प्रकटे, क्षर अक्षर मन सार।
सब्द सतगुरू सुरति में गाहि, तन मन से हो पार।। साहिब जी

क सहज सुन्न के आगे, तीन लोक के पार।
जहां नितान बजा वही, शब्दन की झंकार।। साहिब जी

1201 जिस सब्द से सतलोक प्रकटायो, गहि लीजे हर पल।
यह सुख सागर सहज है, देता पुकार हर पल।। साहिब जी

क सतगुरू के प्रसाद, सहज समाध लगाईये।
रीझ रहा मन नाद, देखि भेद सब जानिये।। साहिब जी

ख अक्षर है निज सार अरूपा, जा ते सब जग धरा सरूपा।
लौ लावे छिन नांहि बिसरावे, आदि अंत के मध्य पावे।। साहिब जी

1202 राजा रंक सभी मरेंगे, बिन मरे बचे ना एक।
प्यारे सोहि जीवता, जिस की जुड़ी तार संग एक।। साहिब जी

1203 तीन लोक सुरति पसार है, कोई बिरला जाने भेद।
सुरत बांध स्थिर करो, ता से सुरति निरति भेद।। साहिब जी

क पल्टु जो कोई सुने, ता के पूर्ण भाग।
उल्टा कुआं गगन में, जिस में जरै चिराग़।। साहिब जी

ख सतगुरू मोरा सूरमा, कस कर मारा बाण।
नाम अकेला रह गया, पाया पद निर्वाण।। साहिब जी

1204 स्पंदन से सुरति पवन का भेद, सार सब्द का सारा खेल।
ध्यान सार नाम स्वांसा सहज में, सहज में सहज का खेल ।। साहिब जी

क दादु मार्ग कठिन है, जीवित चले ना कोय।
सोहि चली है बापुरा, जो जीवित मृतक होय।। साहिब जी

ख मरते मरते सब मरे, मरन ना जाना कोय।
पल्टु जो जीवते मरे, सहज कहावे सोय।। साहिब जी

1205 सहज योग से आत्म हंसा, जब सहज से सहज को पायो।
सहज सार नामा, सहज सतगुरू सूं पायो।। साहिब जी

1206 सहज युग से स्वांसा सुरति का, सार नाम में वासा।
सुरति निरति मिल होई हंसा, अब साहिबन ही सुरति वासा।। साहिब जी

1207 साहिबन और सुरति स्वांस से, हर पल धरो ध्यान।
सार नाम का अमृत संग में, निज घर मिले स्थान।। साहिब जी

क तहां सिलसिली गैल, चढूं तो गिर गिर पडूं।
उठूं सुरति सम्हार, पग आगे धरूं।। साहिब जी

ख लागी मेरी सहज में, सहज साहिब सूं डौरी।
यह डौरी सार सब्द की, सतपुरूष ने दीन्ही डौरी।। साहिब जी

1208 सतगुरू सब्द ते सुरति लागी, मलीन वासना गई त्यागी।
सोते जागते कबहु ना टूटे, सुरति तारि लागी।। साहिब जी

क साधो सहज समाधि भलि, सहज से सहज में मिलो।
सतगुरू प्रताप ते जागो, नित नित अधिक चली।। साहिब जी

ख कबीरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पीछे पीछे साहिब चलें, कहत कबीर कबीर।। साहिब जी

1209 दो पाटों के बीच में, पड़ा सो ना बच पाया ।
जिस ने किली का सहारा लिया, वही प्यारा बच पाया ।। साहिब जी

1210 रोने से दुख जात ना, दुख का कारण तूं आप ।
जब मन और आपा मिट गया, सुख चारों ओर से आवे आप ।। साहिब जी

क मन की शक्ति सुरति संग, तन से लेन न देन।
सतगुरू सब्द मन पवन ईक करे, सुरति धर अधर विच कर दीन।। साहिब जी

1211 जग सूं प्रीती ऐसी करो, कोई दूजा देखे ना आप ।
आप ही हर में रम रहा, बिन उसके कोई ना साथ ।। साहिब जी

1212 अनुभव सीड़ी विशवास की, सुरति में सब्द का वास ।
उल्टी स्वांसा जब हो गई, पल में साहिबन पास ।। साहिब जी

1213 सुख दुख का साया हर दम साथ तेरे, कबहू ना छोड़े संग ।
सार सब्द में सुरत रहे, हर पल पाओ सतगुरू संग ।। साहिब जी

1214 सतगुरू तो सुरति प्रेम की, हर एक सूं करते प्रीत ।
जीव हर दम सोया पड़ा, कैसे करे संतों सूं प्रीत ।। साहिब जी

1215 प्रेम भाव जा के ह्रदय बसे, सतगुरू का पावे संग ।
सतगुरू चरणन सुरति धरे, सतपुरूष भी रहते संग ।। साहिब जी

1216 गहराई पानी की जाने बिन, भूल के भी ना डुबकी लगाना ।
सतगुरू को जाने बिना, दोष ना कभी लगाना ।। साहिब जी

1217 बिन सतगुरू उपदेश के, सुर नर मुणि नही निस्तारा ।
ब्रह्मा विष्णू महेश भी, सतगुरू दर्शन सूं पार ।। साहिब जी

1218 सतगुरू सत सब्द का देता भेद है, तीन लौक सूं करता पार ।
धन्य शिष्य धन्य भाग हैं, सार सब्द सार सुरति सूं पार ।। साहिब जी

1219 चले जो सतगुरू उपदेशों पर, उसके जागे भाग ।
कर्म धर्म सब त्याग के, सतगुरू के चरणन लाग ।। साहिब जी

1220 लौभ मोह अंहकार बिन, सतगुरू पूर्ण वो ।
संसार सागर में ज्यों रहें, माया का लेप ना हो ।। साहिब जी

1221 जो सतगुरू को सत्य का ज्ञान ना, साधक को दिया भरमाऐ ।
दोनों एक संग ना रह सकें, जग में फिरे भरमाऐ ।। साहिब जी

1222 कामनाओं से विरक्त हो कर, सतगुरू चरणन धरो ध्यान ।
मुक्ति पा जगत सूं पार हो, सुरत कमल में ध्यान ।। साहिब जी

1223 जिन सतगुरू जैसा जानिया, तिन के तैसे भाग ।
जिन सतपुरूष दात ना पाई, उनके फूटे भाग ।। साहिब जी

1224 जिन ढूंढा तिन ही पाया, लाखों जन्म के बाद ।
तो भी कृपा जानों सतगुरू की, जिन से ऊभरे भाग ।। साहिब जी

1225 साधिक पल पल करे जो सुरति, चले वह उल्टी चाल ।
बाहर के पट बंद करे, अंदर सूं जोड़े तार ।। साहिब जी

1226 गैरों से मत कर दोस्ती, ये कला कष्ट और मौत ।
सतगुरू सदा है हारता, जितने दुख सौ मोत ।। साहिब जी

1227 गिरही गुरूवा जो मिले, गिरही सा धक संग ।
दोनों कीचड़ में पड़े, ऊजले कैसे हो सकें जब कीचड़ ही संग ।। साहिब जी

1228 गुरू वेदों की महिमां गावत सुनावत, सतगुरू निज अनुभव तत्व महान।
गुरू काया नाम का दानी, सतगुरू विदेह नाम का करता दान।। साहिब जी

1229 तुम्हारा पात्र छोटा सहि, उस में छेद हैं चार ।
सागर भी उसे ना भर सके, चाहे जन्म ले लो सौ बार ।। साहिब जी

1230 काम क्रौध लौभ मोह जब साथ हों, अहंकार भी आता साथ ।
जब चारों छेद सार सुरति सूं भर गये, अहंकार भी जाता संग साथ ।। साहिब जी

1231 मन जाने से हंसा जागता, शरीर संग ना करता प्यार ।
आशा तृष्णा बह गई, हर ओर पाता सतगुरू दीदार ।। साहिब जी

1232 बाहिर सूं सम्राट ना तुम बन सको, यही है दुख की बात ।
अंदर सूं सम्राट जे तुम बनो, बिन सतगुरू बने ना बात ।। साहिब जी

1233 सुरति का बहाव नदी बाड़ सूं तेज है, पल में भरे सब पात ।
जो भी उसकी राह में आ गये, उनके जागे भाग ।। साहिब जी

1234 'मैं' के छूटते आत्म हंसा बने, मूल अक्षर के साथ ।
अब तन मन खेल सब बंद हुआ, कल सूं छूटा साथ ।। साहिब जी

1235 सतगुरू सुरति हर दम साहिबन संग है, सब गुण सतगुरू पास ।
अब और तुम्हें क्या चाहिए, जे सतगुरू तेरे साथ ।। साहिब जी

1236 अब मन माया दासा हो गये, अब चले आत्म के साथ ।
आत्म आपा जान कर, अंदर सूं साहिबन साथ ।। साहिब जी

1237 आत्म एक को ढूंढते, खुद की करी पहचान ।
एक सूं नाता जुड़ गया, सभी सूं हुई पहचान ।। साहिब जी

1238 जो सतगुरू शरणागति, उसे तरा तूं जान ।
उसे पार ले जाने में, पल की भी देर मत जान ।। साहिब जी

1239 पल पल बदलाव जे चाहिए, संसार सागर की लहर ।
लहर को पा सागर सूं जुड़े, वोहि जीवन का सार ।। साहिब जी

1240 कुछ भी खाने से पहले, सतगुरू का करो धन्यवाद हर पल ।
जिस दिया समय खाने का, इसी पल में कर याद हर पल ।। साहिब जी

1241 कल और कल जाने दे, उसकी याद का नहीं कोई लाभ ।
इसी सूं जुड़ता सार सुरति ध्यान है, सार सुरति सूं पूर्ण लाभ ।। साहिब जी

1242 सारे जीवन की कला इसी सूत्र में, इसी पल में लो राज़ पूरा ।
तुम पूर्ण सतगुरू को खोज लो, सूत्र (सार सब्द) सुरति सूं लो पूरा ।। साहिब जी

1243 छे तन मिली चदरिया, यही बंधन तूं जान ।
चार तन स्थूल, सूक्ष्म, तुरिया, तुरिया–तीत छोड़ते, अंदर की सैल महान ।। साहिब जी

1244 सतगुरू वाणी श्रवण सूं, साधक आनंदित होत मन माया सूं पार ।
शांत भाव सूं सत सुरति में बैठते, श्वांस गति विचार सूं पार।। साहिब जी

1245 आप सुखी माता सुखी, दश महीने जग प्रवेश ।
सार सुरति सतगुरू संग जोड़ तार, अब ना भूलूं तुझे करूं जग प्रवेश।। साहिब जी

1246 दुख दर्द कौसों दूर हैं, जब बन रहा होता शरीर ।
हर दम वह है सो रहा, सार सुरति सूं जुड़ी जब तार ।। साहिब जी

1247 जो बीता सो बीत गया, अब ना तोडूं तुझ संग तार ।
तुम ही सच्चे साहिब हो, मैं हंसा तूं करतार ।। साहिब जी

1248 अब जा कर उस जगत में, ढूंढू सच्ची सरकार ।
दिन रात तुझसूं सुरति जोड़े, सतगुरू सेव सतकार ।। साहिब जी

1249 जग में आने पर भी, अट्ठारहां घंटे बच्चा है सो रहा ।
हंसने मुस्काने की, चेहरे पर प्रेम की धार।। साहिब जी

1250 भूख लगे तो है रो रहा, पेट भरा तो जुड़े तार ।
हर पल तुम उस का साहिब संग, बातों से तोड़ते तार ।। साहिब जी

1251 सतगुरू चरणन में शीष रख, मांगे जगत कल्याण ।
यह जग पूरा अंधा भईया, कैसे होत जगत कल्याण ।। साहिब जी

1252 भजो साहिबन सुरति नाम को, जो सुरति जीव जगा जाये ।
बिन सतगुरू कोई अपना जग है नांहि, जो जीवन मरण सूं ले बचाये ।। साहिब जी

1253 सुरत कमल के दाता सतगुरू, सच्चा मौक्ष द्वार ।
मौक्ष द्वार मिले सतगुरू चरणन में, जो झुके सो उतरे पार ।। साहिब जी

1254 सच्चे को सुरति सूं, सच्चे जानो प्रेम प्रीत और ध्यान ।
सच्चे की सच्ची सब करनी, सुरति सूं होत सब काम ।। साहिब जी

1255 जिस का बाहिर कोई मंदिर नहीं, हर आत्म में करता वास ।
उस मंदिर में प्रति पल सांसा का झाडू बजे, सार सुरति पौचा लो साथ।। साहिब जी

1256 जो करे संग मान का, उस के संग संताप।
विश्वास से संताप गया, पाओ साहिबन साथ।। साहिब जी

1257 जो कुछ भी वे नाम हैं कहते, उस पर मत करना विचार।
अंधकार में फंस जाओगे, फिर कौन करेगा पार।। साहिब जी

1258 विश्वास विचार से आगे है, विचार में है संसार।
विश्वास सार नाम का बाण है, इसी संग उतरो पार।। साहिब जी

1259 बच्चा हो के मान सतगुरू की हर बात, पल में उतरो भव पार।
मां प्यारी हितकारी, विश्वास हो तो ले जाता पार।। साहिब जी

1260 आप भ्रम में निर्भय नांहि, पारस नाम बिन भटका खावी।
ओरन को शिक्षा तब देहि, अमृत सब्द दात जे पावी।। साहिब जी

1261 हरि नाम भगवान का, त्रिलोकि में उनके खेल।
चौरासी में भटके सदा, सार नाम बिन कैसा खेल।। साहिब जी

1262 माया नागिन सभी डसे, मांगे मिले ना पानी।
जो सतगुरू संग रहे, उसकी लिखूं कहानी।। साहिब जी

1263 मूल बांधी सर गगन समाना, उसकी लिखूं कहानी।
जीते जी ही सतगुरू समाना, वोहि पूर्ण ज्ञानी।। साहिब जी

1264 वे नाम लाये निजधाम से, सार सुरति अमृत दात।
जिसने झुकना सीख लिया, ले गया निज संग दात।
जिसने मन मान ना तजा, उसके संग संताप।। साहिब जी

1265 जो साधक सुरति में रहता, उसके संग साहिबन आप।
सहज सतगुरू सहज आप हो, फिर साहिबन भी रहते साथ।। साहिब जी

1266 जो संत कुल–लाज जगत से डरे, फिर कैसे दुखियों की पीड़ा हरे।
डरे मरे और काल के हाथ पड़े, सत्य मार्ग से पुनः नीचे गिरे।। साहिब जी

1267 जिस पर कृपा सतगुरू की होये, साधक हर पल जागा होये।
अंदर सफ़ा बाहर सफ़ा, हर पल सेवा में ध्यान होये।। साहिब जी

1268 साहिबन सब्द अमृत से मीठो, बिन चाखे भेद कहां का।
जिन चाखा वह अमर हो गये, बिन चाखे भेद कहां का।। साहिब जी

क त्रिहु गुणा विच सहज ना पाईये, त्रिगुण ही भरम भुलाई।
चौथे पद में आप सहज हैं, गुरूमुख साहिब जी पैले पाई।। साहिब जी

1269 जैसे चंदा सूं चकौर प्रीति, मृगो नाद के संगा।
तैसे लोक लाज तजि, प्यारे साधक सतगुरू संगा।। साहिब जी

1270 सार सुरति पाई विचार गये, मन का छूटा संगा।
अब संग में पारस सुरति, मन माया का कैसा संगा।। साहिब जी

1271 सार नाम वह सब्द है, सुरति निरति ले सम्भार।
सतगुरू पल पल कहत हैं, गाहो सब्द बारम्बार।। साहिब जी

1272 सुरति सब्द में, सब्द स्वांसा आन समाये।
घट–घट सब्द रमा, सब्द में रहुं समाये।। साहिब जी

1273 भाष्यो सब्द सुरति का वासा, घट–घट आन करे प्रकासा।
मूल सब्द में करो जब वासा, हर ओर प्रकटे प्रकासा।। साहिब जी

1274 सुरति डौरी चले संग साथ, मथि तत्व प्रकासा होई।
आज्ञा चक्र सतगुरू रहाई, दो से पल में एक होई।। साहिब जी

1275 इसी द्वार सुरति चढ़ाओ, सुरत कमल का भेद तुम पाओ।
त्रिकुटि आगे सुमेरू ठिकाना, चरण पड़ो निजघर को जाओ।। साहिब जी

1276 सुरत कमल सुमेरू के आगे, विहंगम चाल से चलो तुम आगे।
सुरत कमल में झलके चँदा, सुरति चढ़ाये आनंद है आगे।। साहिब जी

1277 सुरति सूं राम नाम रस पीजै, हर पल स्वांस–स्वांस नाम लीजै।
वस्तु अमोलक सतगुरू सूं लीजै, सतगुरू कृपा सूं सुख–दुख ईक कीजै।। साहिब जी

1278 प्यारो पारस नाम रस पीजै, तज संसार बैठ सतगुरू वचन सुन लीजै।
प्रेम पथ ऐसा कठिन प्यारो, सतगुरू चर्चा कर सुन लीजै।। साहिब जी

1279 सुरति सूं भजो सार नाम प्यारो, तजो जगत सूं नेह ।
बिन सतगुरू अपना कोई है नांहि, जिस सूं करूं मैं नेह ।। साहिब जी

1280 शब्दे सदगुरू, शब्द ही चेला।
सब जग अंधा, अंधों का मेला।। साहिब जी

1281 प्रेम भाव को देखता, वस्तु की नहीं पहचान।
सहज हो जो भक्ति करि, उसी से मिले निजधाम।। साहिब जी

1282 विचार ही मन, निःसब्द बिन विचार।
मन औंकार, मन भावन करावे निरंकार।। साहिब जी

1283 बिन पारस नाम दात के, कोई ना होता पार।
बिन सतगुरू यह दात ना मिलती, पाते ही हो जाओ पार।। साहिब जी

1284 मन भगाओ शेष बन जाओ, हर एक में एक ही पाओ।
ईक होकर ईक में जाओ, पल भर में निजघर जाओ।
आत्म से हंसा बन कर, साहिब में ही वासा पाओ।
मोक्ष पद की दात को पाकर, जन्म मरन से पार हो जाओ।। साहिब जी

1285 सतगुरू सुरति स्वांसा बसे, जो मांगे सोहि फल पाई।
सतगुरू पर करो भरोसा, सुरति में सतगुरू अंग संग पाई।। साहिब जी

1286 जिन सतगुरू पूर्ण पाया, जन्म मरन का लेखा मुकायो।
काम क्रौध मद्य लोभ गयो, सत सुरति सूं साहिबन पायो।। साहिब जी

1287 सतगुरू सब्द मान सब लीजै, उस पर कैसा विचार।
अंधा बहरा मत बनो, सार–सब्द बिन विचार। साहिब जी

1288 सतगुरू भाणा मान के, चलो आज्ञा मांहि।
उनके हथ में डौर दो, ले चले निजघर मांहि।। साहिब जी

1289 जा हथ कुण्झी सतलोक की, सांचा सतगुरू जान।
जब तक लगाये ना कुण्झी, खुले ना द्वार महान।। साहिब जी

1290 प्रेम प्यार का मार्ग सुरति नामा, जो दिखता अज्ञान।
जीवित मरिये भवजल तरिये, सहज मार्ग से ज्ञान।। साहिब जी

1291 कहे 'वे नाम' सुरति सूं मानिया, मन मरा तऊ साहिब जानिया।
बिन जाने अति दुख पायो, सांचा सतगुरू पाई पार हो जायो।। साहिब जी

1292 तहां जीवा कुछ काम ना आवे, जिवित मरना जगाये।
सतगुरू सूं सार नाम पाई, मोक्ष दात को पाये।। साहिब जी

1293 सतगुरू पाये जिन अति प्यारे, ७१ पीढ़ी कटुम्भ सब तारे।
धण्य भाग उन जिनके, पारस दात पा जिन सब तारे।। साहिब जी

1294 जो संत कुल लाज जग से डरे, फ़िर कैसे ओरन की पीड़ हरे।
डरे मरे और काल के अथ पड़े, सतमार्ग से पुनिः नीचे गिरे।। साहिब जी

1295 जिस पर कृपा सतगुरू की होय, साधक ऐसा बिरला कोय।
अंदर सफ़ा बाहर सफ़ा, ऐसा प्यारा बिरला ही कोय।। साहिब जी

1296 साहिब सब्द अमृत सूं मीठा, बिन चाखे भेद कहां का।
जिन चाखा सो अमर हो गयो, बिन पाये भेद कहां का।। साहिब जी

क त्रिहु गुणां विच सहज ना पाईये, त्रै गुण भरमी भुलाई।
चौथे पद मांहि सजहु है, गुरू–मुखी पल्ले पाई।। साहिब जी

1297 सहज सब्द से सहज बन जाओ, निजघर अपने जाओ।
सहज सतपुरूष है सहज सतगुरू, सहज से मिल सहज को पाओ।। साहिब जी

1298 साहिबन के निस्वार्थ भजन, साहिब ही गाते जान।
सुख पाने के लिये उत्कंठित जो, पूर्ण सतगुरू ले जान।। साहिब जी

1297 भजन नमन ध्याण श्रवण सुमिरन, सतगुरू सूं ले जान।
सतगुरू कृपा सूं बात बने, पारस सुरति में ध्याण।। साहिब जी

1298 अंदर बाहर से सांचा जो भगत, उसे सहज ले जान।
श्रद्धा विश्वास का पार जहां ना, उसे ही साधक मान।। साहिब जी

1299 सतगुरू चरण कमलों में, हर साधक की सुरति जान।
फ़िर सुख दुख का भेद गया, पायो पद निर्वाण।। साहिब जी

1300 सतगुरू के निस्वार्थ भजन में, कुण्झी साधक साथ।
भजन विधि का सार कहां से, दासापन विधि संग साथ।। साहिब जी

1301 सतगुरू कृपा दृष्टि जिन पर, उनके जागे पूर्ण भाग।
उनको काल नमन है करता, दासा–पन से बनता भाग।। साहिब जी

1302 दया भाव भजन से आये, नमन देत आनंद प्रकाश।
किसी के गुण दौष पर, मत डारो दृष्टि प्रकाश।। साहिब जी

1303 सतगुरू चरण नतमस्तक रहो, सुरत सब्द का पान।
हर जीव में आत्म वासा, उसी का करो ध्याण।। साहिब जी

1304 विषय विकार का त्याग कर, सुमिरन में धरो ध्यान।
हिरण समान मगध हो, सतगुरू सत्संग धरो ध्यान।। साहिब जी

1305 कंजूस सदा लाभ की सुनता, लाभ का करता ध्यान।
सतगुरू आत्म की सुनता, सुरति से करता काम।। साहिब जी

1306 जैसे बृहंगा लारवा को, सुरति सूं बृहंगा कर देत।
वैसे ही सतगुरू सुरति सूं, साधक को निज रूप कर देत।। साहिब जी

1307 काम क्रौध मोह लोभ गया, सतगुरू सुरति में ध्यान।
ऐसे साधक की संगत करो, तुम भी बनो महान।। साहिब जी

1308 पूर्ण समर्पण से सतगुरू चरण, जो कोई लेवे औट।
सुरति में सुमिरन करे, ना खावे काल की चौट।। साहिब जी

1309 सार सुरति में जो साधक सदा, उसकी महिमां महान ।
सत्तगुरू की महिमां वो जानता, सुख दुख का ना करता ध्यान ।। साहिब जी

1310 सतगुरू आत्म सुरत सब्द से, हंसा कर सहज बनाये।
तीन मिल जब एक हों, सुरति सहज हो जाये।। साहिब जी

1311 गुरू आत्म शब्द से सहज ना कर सके, कुछ मन संग रह जाये।
सुरति निरति के मेल से, सहज अवस्था आ जाये।। साहिब जी

1312 मूल सब्द की महिमां न्यारी, मकड़ी जाल तार सूं सुरत कमल द्वार।
ज्ञान समाधि सुरति सूं, सतगुरू संग साहिबन दरबार।। साहिब जी

1313 सब्द संभाल सहज ध्यान, पारस सुरति सहज सूं सहज।
सतगुरू सहज सब्द सहज, दोनों सहज सूं साधक सहज।। साहिब जी

1314 सात स्वर्ग सुन्न महांसुन्न, पड़े तुला ईक अंग।
प्यारो सकल मिली हल्के तुलें, सतगुरू संग सत्संग।। साहिब जी

1315 सत्संग छेः लाभ के दान दे, प्रेम शांति हंसा रूप।
हर शंका निवारण सुरति एकाग्र, आध्यात्म शक्ति स्वरूप।। साहिब जी

1316 सार सब्द कवच हर नर का, रहें आठों पहर होशियार।
काल पुरूष नां कुछ कर सके, सतगुंरू पारस सुरति सूं पार।। साहिब जी

1317 सतगुरू नाम सुरति एकाग्र करे, ज्ञान की अवस्था आये।
मन मान अहंकार का संग गया, प्रेम की जोत जगाये।। साहिब जी

क सुन्न गगन में शब्द उठत है, सो सब बोल में आवे।
निःसब्दी वह बोले नांहि, सो सत्त सब्द कहावे।। साहिब जी

ख बांधे को बांधा मिला, गाँठ छुड़ावे कौन।
अंधे को अंधा मिला, राह बतावे कौन।। साहिब जी

1318 मन बुद्धी चित्त आत्म भेद ना देत, अत्ति गुप्त ले जान।
आत्म निज का आपा, अनुभव से होता ज्ञान।। साहिब जी

1319 काया गढ़ तीर पड़ी है भाई, शातिर हाथ कमाण।
लालच लौभ मोह खड़े दरवाजे, आत्म से लेते काम।। साहिब जी

1320 वहम ही वहम चारों ओर हैं, इससे पार कोई प्यारा एक।
सतगुरू की संगत में, वहम की तार टूटे पल छिन एक।। साहिब जी

1321 मूर्ख हृदय चेतन नांहि, जो सतगुरू साहिबन रूप।
सत्संग हृदय चेतन करे, पारस सुरति सूं साहिबन रूप।। साहिब जी

1322 पूर्ण विश्वास साधक में, मोक्ष पद का दान।
अनुभूतियों का भण्डार मिले, सार सब्द दात महान।। साहिब जी

1323 आशा तृष्णा के आवरण तब हटें, जब एक भाव सतगुरू चरणन ध्यान।
बृहंगा जैसे कीट को, सतगुरू करे आप समान।। साहिब जी

1324 सत्संग से कंई लाभ तूं जान ले, पल पल अच्छे बुरे का भेद।
क्या करूं क्या नां करूं, सतगुरू देते भेद।। साहिब जी

1325 सतगुरू नाम सुरति एकाग्र करे, ज्ञान अवस्था प्रकटाये।
मन मान अहंकार का संग गयो, प्रेम की जोत जग जाये।। साहिब जी

1326 सतगुरू सब्द विरह प्रेम उभारे, साहिबन संग आन मिलावे।
मूल सब्द बिन जीव ना जागे, नांहि प्रेम गति पावे।। साहिब जी

1327 प्यारा कोई साधक महां वैराग़ी, पल में पकड़े सब्द सुरति मांहि।
ये सब श्रद्धा विश्वास से प्यारो, तन मन छूटे सब्द सुरति मांहि।। साहिब जी

1328 बिन श्रद्धा सार नाम रंग नां चढ़े, बिन तन स्पर्श मैंहदी नां लाल।
सतगुरू सब्द सुरति बिना, सीप बिन मिले ना लाल।। साहिब जी

क मन जाता है जाने दे, गाहे रख शरीर।
उतरा पड़ा कमान से, क्या कर सकता तीर।। साहिब जी

ख सतगुरू मिलन से, झगड़ा ख़त्म हो गया।
नां तो तन ही रहा, मन संग खो गया।। साहिब जी

1329 पूर्ण सतगुरू जग में आकर, आवागमण चक्र मिटावे।
ध्यान समाधि में उरझाये ना, नां अनहद भटकावे।। साहिब जी

क बाजे यंत्र नाद धुणि होई, जो बजावे सो और कोई।
सब्द सरूपी जीव पीव बूझो, छाड़ी भ्रम की टेक।
कहे कबीर और नहीं दूजा, युग युग हम तुम एक।
सत गहे सतगुरू चीन्हे, सतनाम विश्वासा।। साहिब जी

1330 जो को धन कारण गुरूआई करे, पड़े काल के जाल।
हर ईक का जाना दूर है, तोड़ो मन का जाल।। साहिब जी

क सब जग झूठा जानी के, सत्तनाम रहे सार।
सहजे सहत प्रकट भया, सतगुरू सब्द संभार।। साहिब जी

1331 पहला नियम ये जान लो, सेवा किसी से नांहि।
सब की सेव आप करो, भजन बिन भोजन नांहि।। साहिब जी

1332 अंग संग कोई भूखा सोये नां, सुरति में रख ध्यान।
निज को भौजन तब दीजिये, जब दूसरों की भीख का ध्यान।। साहिब जी

1333 निज कमाई का ध्यान दे, साधका रख ध्यान।
विषय विकार को छोड़ के, सत्त भक्ति पे ध्यान।। साहिब जी

1334 कुछ खाने से पहले, सतगुरू साहिबन ध्यान।
एक एक दाने का धन्यवाद करो, उनकी बली का ध्यान।। साहिब जी

1335 साहिब केवल आत्म से जानो, मन का खोल किवाड़।
मूल नाम आत्म परम चेतन करें, आत्म के खुलें किवाड़।। साहिब जी

1336 पारस सुरति मथनी काम करे, मन माया मथें तो आत्म रूप।
आत्म माखन समान है, सुरति अंग सूं हंसा रूप।। साहिब जी

1337 परमात्म की पहचान मन से नांहि, आत्म जागे करे पहचान।
आत्म सार नाम चेतन करे, परमात्म की पल में होत पहचान।। साहिब जी

1338 सतगुरू सेवक सुरति सूं बोलता, सात स्थान मन वास।
मन ने जीव ऊल्झाया, सार सुरति मिटावे मन वास।। साहिब जी

1339 प्यारो सुरति प्रकाशित जब, दुर्गति मन की जाये।
सब्द ही सेवें सुरति में, सोहि साधक कहाये।। साहिब जी

1340 सतगुरू ज्ञान पर कान धर, छूटे कर्म का जाल ।
संतों की संगत करो, दुखी कर सके ना काल ।। साहिब जी

1341 जब मन सूक्ष्म रूप सूं, मूल सुरति में आत्म कहलाए ।
मन का संग जब छूटता, तब हंसा कहलाए ।। साहिब जी

1342 आज्ञा चक्र में सुरति जब चले, खुलती आंखे चार ।
अब बाधा कोई ना आ सके, जाओ तुम सुरत कमल दरबार ।। साहिब जी

1343 जिस ने सब कुछ पा लिया, उसका संग करो सौ बार ।
वही गुण तुम में आऐंगे, सुरति की सुगंध सूं पार ।। साहिब जी

1344 तन से कर्म सब करें, सुरति साहिबन साथ।
मन माया का संग गया, पारस सुरति जब साथ।। साहिब जी

1345 शांत रहना सुरति का काम, मन से कहना और सुनना मान का काम।
मन मान मोह माया का काम, सब छोड़ छाड़ि चल हंसा निजधाम।। साहिब जी

1346 अमृत प्रेम पियो मेरे भाई, काल छूटे सतलोक निवासा।
बहुत आनंद प्रेम सब्द सूं, सतगुरू में आन करो तुम वासा।। साहिब जी

1347 प्रेम हद तजि जब भाई, सतलोक की हद पुनिः आई।
सुरति सूं सतगुरू संग में, सुरत कमल ले जाई।। साहिब जी

1348 सब्द खोजि मन वश करे, सहज योग है यहि।
संत सब्द निज सार है, यह तो झूठी देहि।। साहिब जी

1349 कोई पूर्ण सतगुरू ही, साहिबन संग तीन लोक से पार।
सुरत समाधि लागि, पारस नाम सुरति सूं पार।। साहिब जी

1350 त्रिकुटि महल सुरति दोड़े, कंवल दल जगमग होई।
आज्ञा चक्र सतगुरू दरसन, संग संग चक्र अष्टम पार कराई।
सहज संग सहज को पाया, सहज होई सहज घर पाई।। साहिब जी

1351 प्यारो संतन की कृपा सूं, पाया नाम आधार ।
संशय गया डर गया, ईच्छाएं दीनी वार ।। साहिब जी

1352 मन विचार सब तजो, अमृत नाम पे सब ध्यान।
स्वांसा उड़दगामी करो, सुश्मिन खुले बड़े ध्यान।। साहिब जी

1353 हर जीव में वासा साहिब का, जैसे फूल में बास ।
सार सुरति सत्तगुरू सूं मिले, जिस में साहिबन वास ।। साहिब जी

1354 हर कोई खाली बिन उस घर के – भेद ना जाने प्राणी ।
जब कोई संत मिले प्यारा – तभी भेद लो जानी ।। साहिब जी

1355 चलो बस मिलना हो चुका, खुद को पाना ही था काम ।
जागे दोनों ही भले, सार नाम सूं पार ।। साहिब जी

1356 चलो बस मिलना हो चुका, यह नहीं था निज सार ।
हर एक सोया है पड़ा, संतन से हों सब पार ।। साहिब जी

1357 जिनकी प्रीत नाम सूं लागी, सुरति सूं करें सब काम ।
सत पाने की प्रतीती जगी, संतन सुरति सूं काम ।। साहिब जी

1358 साहिब सहज सतलोक सहज, हंसा सब हैं सहज।
सहज जे सतगुरू मिले, तीन लोक हों सहज।। साहिब जी

1359 जो नर को सब्द का ज्ञान ना होई, सार नाम को माने नहीं सोई।
यही जगत को गधा भाई कहे, सतगुरू बिन दात मिले नहीं सोई।। साहिब जी

1360 पारस नाम लाद चले हम, बिन्दु पर सुरति स्वांस।
उल्टि स्वांसा हो गई, आ गये सतगुरू साथ।
साथ मूंह में प्रवेश कर, सुरत कमल संग साथ।
चरण कमल पर शीश नवाया, पहुंचे निजघर साथ।
परम सहज हंसों को पाया, सहज हो निज सहज का साथ।। साहिब जी

1361 सहज सहज कहते रहो, सहज चीन्हे ना कोई।
जिन सहजे साहिबन मिलें, सहज कहलावे सोई।। साहिब जी

1362 सार–नाम सुरति का अंग है, सब साधन हैं सुन्न ।
साहिब समाधि जब लगे, सुरत–कमल में पार जब सुन्न ।। साहिब जी

1363 जो पावे मिटे दुख मिले प्रेम आनंदा, संतन दर्शन ते बनो महान ।
जी जीव सतगुरू पा गयो, उसकी महिमां महान ।। साहिब जी

1364 सहज कबीर, सहज सतगुरू परमहंस प्यारे।
सहज से मिल सहज बनो, देखो सहज साहिब प्यारे।। साहिब जी

1365 सहज योग के नाम को, जाने ना संसार।
हर मत्त सहज की बात करे, पहचाने ना सतगुरू द्वार।। साहिब जी

1366 लाल को पाया, लाल हो गया।
सहज सब्द सूं, सहज हो पाया।
सहज सूं सहज हो, सहज में समा गया।। साहिब जी

–0–

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

4—ग गुरू व सत्तगुरू में भेद

1367 संसार सतगुरू, गुरू का भेद नांहि जाने।
दोनों को ही, एक कर माने।। साहिब जी

1368 गुरूमुख तीन लोक तज चले, मनमुख मूल दियो गंवाये।
गुरूमुख पूर्ण सतगुरू पाया, मनमुख गुरू शब्द ले मूल गंवाये।। साहिब जी

1369 सतगुरू मिला तब जानिये, मिटे मन माया तन ताप।
दुख सुख कुछ भेद ना, सार सुरति में आपे आप।। साहिब जी

1370 चंदन समान सतगुरू हैं, सर्प समान संसार।
चंदन संग लिपटे रहो, छूटें सब विकार।। साहिब जी

1371 सतगुरू मिला तब जानिये, सुरति उजाला होये।
भ्रम जाल सब तोड़ी करी, पल पल सत्त नाम सोये।। साहिब जी

1372 सतगुरू बिन अपना कोई है नहीं, उस का संग परिवार।
आशा तृष्णा संग गया, गये मन माया विकार।। साहिब जी

1373 जब कोई पूर्ण संत मिले, निज घर का भेद लो जानी।
बिन पाये भेद वे घर का, जन्म मरन संग हर प्राणी।। साहिब जी

1374 गुरूवा कहें सतलोक भेद ना जाने, तीन लोक की बात लो जान।
सतगुरू ही इस भेद को जानते, सार सब्द से देस लो जान।। साहिब जी

क राम एक तापस दिया तारि, नाम कोटि नहीं कुमति उभारी।
कहां कहां लागी नाम बड़ाई, राम ना सकहि नाम गुण गाई।। साहिब जी

1375 अंधा गुरू बहरा चेला, क्या जाने गुरू ब्ख़ान।
गुरू ने कुछ देखा नांहि, क्या करे वह ब्ख़ान।। साहिब जी

1376 पढ़ी गुड़ी वेद पुराण, सुनो पूर्ण संतन ब्ख़ान।
नाम बिन सभी झूठ, संतन बात सत्त लो जान।। साहिब जी

1377 सिमृति वेद पुराण, सुनो संतन ब्ख़ान।
नाम बिन सभी झूठ, संतन बात ले मान।। साहिब जी

1378 नाम नश टूटे नांहि, दिन हो या हो रात।
पूर्ण सतगुरू सूं पा लो, ईक सम दिन और रात।। साहिब जी

1379 सुर नर मुणि सबै भटके, मन गुरू लियो अवतार।
जाके पास पारस सुरति, तीन लोक से पार।। साहिब जी

1380 मान चाहे सतगुरू सूं, बात बन नहीं पाये।
मान तजे संतन संग जाऊं, तीन लोक से पार हो जाये।। साहिब जी

1381 प्यारो सो सतगुरू मोहि भावे, जिसके सब्द में सुरति समावे।
सुख दुख एक ही देखे, स्वांसा सुरति में सब्द समावे।। साहिब जी

1382 गुरू कथें और ध्यान लगावें, ज्योति स्वरूप भेद नहीं पावें।
सतगुरू कृपा निजधाम ले जाये, साहिबन के दर्शन पावें।। साहिब जी

1383 घट घट में मेरा साहिब, स्वांस स्वांस में वास।
हंसा पायो मान सरोवर, सुरत सब्द सूं निजघर वास।। साहिब जी

1384 तीन लोक ते न्यारा रहे, पूर्ण संत ते पावे भेद।
ध्यान जप तप करे, पढ़े शास्त्र पोथियां मिले ना भेद।। साहिब जी

1385 घट घट सुरति दीप जले, लखे नहीं अंधा जीव।
धन्य धन्य वह साधवा, जिन सच्चा सतगुरू पाया पीव।। साहिब जी

क मूल मंत्र सोहि लख पावे, जाको सतगुरू सुरति लगावे।
सुरति स्नेहि सभी विचारा, सतगुरू उपर चड़े पुकारा।। साहिब जी

1386 सतगुरू गुरू में भेद है, सतगुरू गुरू में भाव।
गुरू काल के जाल में, सतगुरू भरता सुरत सब्द का दाव।। साहिब जी

क कहें साहिब सो संत, निर्भय हुआ मेरे भाई।
जन्म और मरन का, भ्रम भाने मेरे भाई।। साहिब जी

1387 सतगुरू सत्य सब्द प्रकास, पारस सुरति सूं सुरति काज।
जन्म और मरन से पार, सार सब्द बिन सरे ना काज।। साहिब जी

1388 जो खाओ उस में त्याग देख, तुम भी त्यागी हो जाओ ।
सत्तगुरू चरणन ध्यान धरो, मन रहित हो जाओ ।। साहिब जी

1389 खाना खाने से सीख ले, समर्पण का भाव महान ।
तूं इस भौज को कैसे ले रहा, इसी से तेरी पहचान ।। साहिब जी

1390 सब्द पाए सुरति राखो, सत्तगुरू चरणन ध्यान ।
अब शेष कुछ ना बचा, जिस पर राखो ध्यान ।। साहिब जी

1391 क्या हुआ वेदों के पढ़ने से तेरा, जब सार सुरति का भेद कुछ नांहि ।
लाखों गुरूआ जग में मिलें, सार सुरति का भेद कुछ नांहि ।। साहिब जी

1392 जब लग नाता जाति–धर्म का, तब लग भक्ति सूं ना कुछ काम ।
नाता तोड़े सत्तगुरू भजें, फ़िर साहिब हाथ कमान ।। साहिब जी

1393 गुरू सब्द को बोल कर, नर को देता दीक्षा दान।
सतगुरू दृष्टि स्पर्श सुरति सूं, देता सार नाम का दान।। साहिब जी

1394 गुरू मन से बोले सुने और करे, सतगुरू बोलें सुनें करें सुरति सूं।
गुरू पारस सुरति तार नांहि, सतगुरू करें पार पारस सुरति सूं।। साहिब जी

1395 मन तरंग कल और कल में डाले, सुरति सब्द स्वांसा ईक कर राखे इस पल।
गुरू सूं खुशी माया प्रेम ध्यान, सतगुरू कृपा आनंद प्रेम सुरति हर पल।। साहिब जी

1396 सतगुरू सत्त नाम सत्त, आप सत्त जे होये।
तीन सत्त जब एक हों, विष में अमृत होये।। साहिब जी

1397 शुद्ध भाव सत्त भाव से, सत का करें विचार।
भले कर्म मंगल कार्य में, गुरू संग सत गवें सार।। साहिब जी

1398 गुरू वेदों की महिमां गावत, सतगुरू निज अनुभव तत्व महान।
गुरू काया नाम का दानी, सतगुरू विदेह नाम का करता दान।। साहिब जी

1399 गुरू का ठिकाना दशम द्वारा, सतगुरू पहुंचावे ग्यारवें द्वार मेरे भाई।
गुरू केन्द्र नाम कमाई, सतगुरू कृपा निजघर ले जाई।। साहिब जी

1400 गुरू सर्गुण निर्गुण सीमा, सतगुरू भक्ति सार नाम सुरति धार।
गुरू भक्ति कर्मन अनुसारा, सतगुरू भक्ति निर्गुण सर्गुण से पारा।। साहिब जी

1401 साधु साध सिद्ध ज्ञानी ध्यानी, मन तरंग सबै उलझाये।
बिन परमहंस सूं सब्द को पाये, कोई मन माया पार ना पाये।। साहिब जी

1402 गुरू नाम मन की सीमा, सतगुरू नाम आत्म को दान।
गुरू नाम मन का मनन, सतगुरू नाम सुरति स्वांसा ध्यान।। साहिब जी

1403 गुरू आत्म मुक्ति ना दे सके, सतगुरू आत्म को हंसा कर देत।
गुरू मन माया का संग ना तोड़े, सतगुरू मन माया सूं पार कर देत।। साहिब जी

1404 गुरू को चौथे लोक का भेद नांहि, सतपुरूष नाहिं औंकार तदरूप।
सतगुरू चौथे लोक का भेदी, सतपुरूष ही का तदरूप।। साहिब जी

1405 रूप दिखाता निज लोक में, पल में याद से जाये।
जब जब उस देस की फेरी, पल में याद आ जाये।। साहिब जी

1406 गुरू केवल धुनों का भेदी, हर धुन का अपना देस।
सतगुरू धुनों से ऊपर, विहंगम चाल सूं निज देस।। साहिब जी

1407 गुरू सर्गुण निर्गुण अटके, मान अभिमान ना छूटे ईक पल।
सतगुरू अमरपुर का वासी, संग सार सब्द की दात हर पल।। साहिब जी

1408 सतगुरू सतपुरूष के दर्शन पाता, निजधाम की करता सैल।
साधक आत्म हंसा करे, संग में निजधाम की सैल।। साहिब जी

1409 सतगुरू सब्द की महिमां न्यारी, पल पल संग सहारा।
प्यारो अदभुत सब्द सदा रखवारा, भूत पिशाच से राखे न्यारा।। साहिब जी

क नाम सिमरन तन रोग ना व्यापे, पाप ताप मिट जाई।
कहे कबीर काटूं यम फंदा, सुकृत लाख दुहाई।। साहिब जी

ख कबीर संगत साध की, ज्युं गंदी की बास।
जो गंदी कुछ देत नांहि, तो भी बास सुबास ।। साहिब जी

1410 प्यारो जब लग सुरति तन रहाई, सतगुरू सब्द ना छूटे भाई।
सतगुरू आज्ञा सुरति रहे, जैसे मणि भुजंग मेरे भाई।। साहिब जी

1411 सतगुरू बिन स्वार्थ के, सब्द का देवें दान।
जगत का कल्याण करें, सतगुरू महिमां ले जान।। साहिब जी

1412 झूठे जग में झूठ प्रचार, सच का केवल नाम।
झूठ पल पल साधक बोल रहा, फिर कैसे ध्यावे नाम।। साहिब जी

1413 सतगुरू भक्ति अटल ध्यान अडोल, सतगुरू आज्ञा पार लगावे।
पारस सुरति जब संग में, विष को अमृत कर जावे।। साहिब जी

1414 सतगुरू सेवा सब धर्मण का धर्म, इस से बड़ा जग कुछ नांहि।
जप तप योग दान, पूजा पाठ लाभ कुछ नांहि।। साहिब जी

1415 सतगुरू सत्त तो नाम सत्त, साधक भी सत्त होत।
तीन सत्य जब संग में, अमृत वर्षा होत।। साहिब जी

1416 सत्संग में बैठना, सतगुरू भक्ति ले जान।
ये ध्यान भजन से आगे, बिन सत्संग कैसा ध्यान।। साहिब जी

क भक्ति स्वतंत्र सकल गुण खानी, बिनु सत्संग ना पावत प्राणी।
भक्ति निरूपण विविध विधाना, क्षमा दया सत्त शील निधाना।। साहिब जी

1417 सतगुरू सब्द सदा सत्त मानो, पाओ भृंगी मत ज्ञान।
आशा तृष्णा का संग गया, काग़ा अब हंसा ले जान।।

क गुरू समाना शिष्य में, शिष्य कर लिया नेह।
बिलगाये बिलगे नांहि, एक रूप दो देह।। साहिब जी

ख भृंगी जो आन कीट को, खुद रंग लगावे।
आवाज़ अपनी आन, सिक्ख कान सिखावे।। साहिब जी

1418 बिन सतगुरू कृपा के, कैसे कोई जावे देस रे।
निकसे भिन्न भिन्न धुण चिराग़ से, कोई भेदी पावे भेद रे।। साहिब जी

1419 सतगुरू बन केवट नाव चलाता, हर एक को करता भव पार।
कोई भूला भटका नाव पर, अंदर नांहि कल और कल विचार।। साहिब जी

1420 आत्म ज्ञान आनंद की देन, आत्म शत्रु मित्र नांहि।
सतगुरू आत्म लीन, जिन बिन आत्म ज्ञान नांहि।। साहिब जी

1421 सार सब्द बिन सब झूठा ज्ञान, सब्द बिन सब थोथा ध्याण।
सब्द छोड़ काल में ध्याणा, यह सबै अज्ञानी ले जान।। साहिब जी

1422 सार–सब्द सदा रख़वारा, भूत–पिशाच का करे निस्तारा ।
सुरत–कमल मौक्ष द्वारा, सत्तगुरू करें जग सूं न्यारा ।। साहिब जी

क सात दीप नौ खण्ड में, सतगुरू से बड़ा ना कोये।
करता करे ना करि सके, सतगुरू करे सो होये।। साहिब जी

1423 जागे को हीरा मिले, सुरति का मूल ज्ञान ।
अब पत्थर–हीरा एक सम, सत्तगुरू की यही पहचान ।। साहिब जी

1424 ह्रदय का अंधकार नष्ट हो, शंकाओं का हो निष्करण ।
सार–नाम की शक़्ति सूं, सब शंशाओं का हो विनाष ।। साहिब जी

1425 गुरू केवल राह बतावे, सतगुरू सच्चे घर ले जावे।
गुरू शब्द बोलन लिखन पढ़न में आवे, सतगुरू सब्द विदेह पूर्ण मोक्ष दे जावे।। साहिब जी

1426 सुरति से सतगुरू साधक को, करे आप समान।
ज्यूं बृंहगा अपनी सुरति सूं, करे कीट आप समान।। साहिब जी

1427 जब तक तुम्हारा अपना साक्षी ना जागे, निज को अंधा जान।
सपने भीतर ईक सपना, माया के भीतर कर्ता जान।। साहिब जी

1428 सतगुरू के सानिध्य में, अनुभूतियों का सुरति आधार।
सतगुरू में सुरति डाल दो, कृपा बरसे हर द्वार।। साहिब जी

1429 सतगुरू कृपा मन माया से दूर करे, सुरति कवच आधार।
तीन लोक विस्तार यह, सब माया आधार।। साहिब जी

1430 पांच तत्व का तन नर तेरा, स्वर्ग नर्क भुगताया ।
बिन पूर्ण सतगुरू, मोक्ष पद ना पाया ।। साहिब जी

1431 सतगुरू बदलें रक्षा करें, चुनरी मोरी रंग लाई न्यार।
सुरति से हर जीव प्यारे, काल नासे महां विज्ञान आधार।। साहिब जी

1432 गुरू जानो राह बताने वाला, सतगुरू सच्चे घर ले जाने वाला।
'गुरू' शब्द लिखन पढ़न में आवे, 'सतगुरू' सब्द विदेह मोक्ष देने वाला।। साहिब जी

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

सत्तगुरू परमहँस जी की महिमां व सहज/सत्त मार्ग
सत्तगुरू देवायः नमः

भावार्थ : गुरू ही जीवन को निख़ारने में सहायक, पथ प्रदर्शक ही नहीं, विचारों और कार्यों को करने में संग निभाता है । मानव जीवन में मात–पिता और सम्बंधि ही पहले गुरू होते हैं । फ़िर संसार के भौतिक जग़त गुरू, सांसारिक कला और गुण प्रधान करते हैं जिससे अनेक अनुग़ामी/शिष्य आने वाले जीवन में जीविका अर्जित कर सकें । आज के भौतिक युग में विद्या का ज्ञान भी धन कमाने का एक साधन बन के रह गया है, तभी तो भौतिक विद्या देने वाले अध्यापकों के प्रति आदर बहुत कम, लगभग ना के बराबर रह गया है । अध्यापक और शिष्य एक दूसरे पर कर्तव्य ह्ीनता का लांछन लगाते हैं ।

प्राचीन काल में विद्या जीवन यापन का साधन तो था पर उस समय गुरू/अध्यापक विद्या ज्ञान के बांटने के पुनीत कार्य को श्रद्धा भाव से करते थे ताकि उनके शिष्य आने वाले जीवन में श्रेष्ठ् व सत्त गुणों से भरपूर जीते हुए समाज का उद्धार कर सकें । आज के भौतिक युग में गुरू–शिष्य–परम्परा का पतन हो गया । विद्या का ज्ञान व्यवसाय बन के रह गया । इसमें लेष मात्र भी सेवा कल्याण भाव नहीं रहा । तभी तो बड़े–बड़े श्रेष्ठ् से श्रेष्ठ् अध्यापक ग़ण और शिष्य दोनों ही विचलित और असन्तुष्ट् रहते हैं जिससे सारा समाज असन्तुष्ट् हो चुका है । पर भौतिक समाज से दूर आज भी आध्यात्म की दुनियां में, जगत कल्याण ओर परमार्थ की भावना से ज्ञान को प्रधान और ग्रहण किया जाता है । भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान में बहुत अधिक असमानता है । भौतिक ज्ञान हम्हें संसार के सुख़ साधन इक्ट्ठा करने को प्रेरित करता है और संसार की चकाचौंध की तरफ़ हमारी वृत्तियों को बड़ाता है और इसका अदान–प्रदान दोनों तरफ़ से अपने स्वार्थ सिद्धी के लिए होता है । पर दूसरी तरफ़ आध्यात्मिक ज्ञान हम्हें भौतिक जगत से समेट कर अपने भीतर के ज्ञान को जानना यानि अंतरमुख़ी होने को प्रेरित करता है । इसका लक्ष्य अपने मूल अर्थात आत्म स्त्रोत कुल मालिक को जानना, जिन्हें सहज मार्ग/सत्य मार्ग के संतों ने साहिब (सत्तपुरूष) नाम से सम्बोधित किया, को पाना ही एक परम उद्धेष्य है । जग़त गुरूओं ने निराकार को परमात्मा, ईश्वर, ख़ुदा, अल्लाह ना जाने किन–किन नामों से सम्बोधित किया । जगत गुरूजन, सर्गुण या निर्गुण (निराकार की भक़्ति) भक़्ति करने वाले तो अनगिनत संख़्या में हर काल में विद्यमान होते हैं । कोई बिरला ही, सहज/सत्य मार्ग का अनुग़ामी ही लम्बे समय उपरान्त जग़त में साहिब (सत्तपुरूष) की महिमां का बख़ान करने आते हैं । निराकार अर्थात निर्गुण को भजने वाले अपने आप को साकार भक़्ति अर्थात देवी–देवों की पुजा से श्रेष्ठ् समझते हैं जो सर्वथा सत्य से परे है । साकार अर्थात निराकार दोनों ही निरंकार की ही भक़्ति है । जो जिस रूप में भजता है निरंकार उसी रूप में उसकी मनोकामनाएं पूर्ण करते हैं । जग़त में जितने भी आराध्य व इष्ठ् हैं वे सब निराकार के ही रूप हैं । निराकार अर्थात देवी–देवों का गुणगान करने वाले

गुरूजनों का अपना अनुभव अर्थात आध्यात्मिक उन्नत्ति/उपलब्धि कुछ भी नहीं होती । वो तो अधिकांश समय प्रायः प्राचीन पुस्तकों, वेदों, उपनिषदों, शास्त्रों, रामायण, गीता व अपने–अपने पंथ के ग्रंथों और पूर्व ऋषि–मुणियों के प्रवचनों से पढ़ा–सीखा सिख़ाया पाण्डितय ही अपने अनुयायियों और शिष्यों को उपदेश में देते हैं । वह जो भी प्रवचन देते हैं वह उनकी अपनी कमाई तो होती नहीं अपितु रटि रटाई वाणी/पंडिताई पर ही आधारित होती है । इनमें सभी परम्परा से चली आई गद्दियों के वारिस होते हैं जो किसी पूर्व ऋषि मुणि और सिद्ध पुरूषों की कमाई से अर्जित यश–रूपी धरोहर होती है । इनमें से अधिकतर तो पूर्व गद्दी नशीनों के पुत्र–पुत्रियां, रिश्तेदार या आज्ञाकारी शिष्य ही गद्दी पर विराजमान होते हैं । यह आध्यात्मिक कम, जग़त माया में ज्यादा आसक़्त रहते हैं ।

अपने अपने आश्रमो ं ओर अनुयायियो ं की धन सम्पत्ति से ही भौतिक सुख़ साधनों से भरपूर मज़े का जीवन जीते हैं और इनका ध्यान, आश्रमों से अर्जित की हुई दौलत और चढा़वे के धन पर होता है, जिसका लेख़ा–जोख़ा वे अपने अनुयायियों द्वारा अपनी निरिक्षता में रखने में ही व्यस्त रहते हैं और इनकी चेष्ठ्ा अपने अनुयायियों की बढ़ोतरी करने के साथ–साथ उच्च अधिकारियों के साथ मेल जोल बड़ाने में होती है । यह अपने यश और गुणगाण सुनने की अभिलाषा से ग्रस्त और तीव्र ईच्छा रखते हैं । खुद तो मन माया में डूबे रहते हैं परन्तू अपने अनुयायियों को अपने प्रवचनों द्वारा मन को मिटाने और जगत चकाचौंध से दूर रहने की शिक्षा देते हैं और इस प्रकिया में वे मन को कौसने और बुरा कहने के लिए अभद्र भाषा तक का प्रयोग करने से भी परहेज़ नहीं करते ।

निराकार के दायरे के गुरूजन अपनी मान बड़ाई और यशोगान सुनने के सदा अभिलाषी रहते हैं और अपनी अनुशंसा के विपरीत बातें या अपनी निंदा सुन कर अक़्सर अपना आपा खो बैठते हैं, ऐसा करने वालों को मूर्ख, पागल यहां तक कि धर्म से गिरा हुआ मर्यादाहीन मनुष्य घोषित कर देते हैं और कभी कभार तो मार पीट पर भी आ जाते हैं । ऐसा कुछ समय व काल वश मन की अवस्था से ग्रसित होने पर व्यवहार करते हैं अर्थात मन–माया से वो कभी भी पूर्णतया मुक्त नहीं होते । ऐसा नहीं कि वो सयंमी व शीलवान नहीं होते अपितु इन गुणों से वो मालामाल होते हुए भी मन वश कभी कभी मन की ही तरंग में बह जाते हैं, निराकार दायरे के गुरू खुद भी माया से ग्रसित होते हैं । ये सभी गुरूजन जानते हुए भी की उनके आध्यात्मिक मार्ग से संपूर्ण मुक्ति सम्भव नहीं , मगर गद्दियों के मर्यादा जंजाल वश, इस बात का अपने अनुयाइयों से ज़िक तक भी नहीं करते । संसार चाहे ना चाहे, फिर भी चन्द बडभागी विरले जन स्वार्थ रहित भक्ति करते हुए, पूर्ण सतगुरू परमहँस जी की शरण में आकर समर्पण भाव से सहज मार्ग के अनुयाई बन 'सार/सुरत सब्द' की दीक्षा पाकर, खुद तो मोक्ष प्राप्त करते ही हैं साथ ही अपनी ईक्कतर पीढ़ियों को भी मौक्ष दिलाने का साधन बनते हैं ।

पूर्ण संत सत्तगुरू परमहँस जी, सहज मार्ग के अनुग़ामी कूट वचन और निंदा करने वालों पे क्रौधित होने के स्थान पर दया भाव दर्शाते हैं और उनकी दशा पर तरस खाते हैं क्योंकि वह इस बात को पूर्णतया सत्य मानते हैं कि ही प्राणी में साहिब सत्तपुरूष जी का अंश 'हंसा' मन में लिप्त आत्म रूप में विद्यमान है । कोई भी मानव नितकृष्ट नहीं, उसके कर्म और प्रालब्ध वशिभूत, उससे ये उचित/अनुचित कर्म कराते हैं । वह अपने मूल हंसा रूप को नहीं पहचानता । यह भ्रम ही उसके पतन का कारण है । उसके लिए सत्तगुरू परमहँस जन, सत्तपुरूष से कृपा दृष्टि् और उसे सत्तमार्ग प्रधान करने की प्रार्थना करते हैं । वह सर्वत्र जीवों को उस मालिक का अंश मानते हुए, सर्वत्र के कल्याण में ही अपना कल्याण है, ऐसा मानते हैं । जब सभी प्राणियों में साहिब सत्तपुरूष जी की अंश 'हंसा' विद्यमान है तो कोई भी नितकृष्ट् कैसे हो सकता है अर्थात वह सब जीवों में सत्तपुरूष जी को ही देखते हैं । सहज मार्ग/सत्तभक़्ति मार्ग राग द्वैष से रहित सबके उत्थान के लिए सत्तगुरू परमहँस जन प्रयत्नशील रहते हैं और सहज मार्ग के अनुग़ामियों को मुख़ से जप, धूप, अगरबत्ती, निश्चित पूजा आसन, हवन सामिग्री और नाना प्रकार की किसी भौतिक वस्तू की ज़रूरत नहीं होती । सहज मार्ग में भक़्ति अंताकरण के शुद्ध भाव से की जाती है । यह कहीं भी,

किसी भी तरहं के आसन, सोते, जागते, सुबह, शाम, दोपहर, नहाए हों या ना हों, किसी भी अवस्था में की जा सकती है । सहज भक़्ति में साधक सुरति द्वारा सत्तगुरू परमहँस जी से चौबीस घंटे जुड़े और स्मिरण में रहते हैं । सहज मार्ग के सत्तगुरू परमहँस जी हमेशा शांत, एंकात–मयी धुन में लीन रहते हैं । उनकी दिनचर्या में साहिब भक़्ति ओत–परोत होती है और वह जो भी बात करते हैं उसमें सत्तपुरूष की महिमां का ही बख़ान होता है । इसलिए सहज मार्ग भक़्ति बिन पूर्ण सत्तगुरू की शरणी में जाए संभव ही नहीं । सत्यपुरूष जी, सत्तगुरू रूप में ही साधकों को मिलते हैं अर्थात सत्तगुरू परमहँस जी ही सतपुरूष जी का स्वरूप होते हैं ।

बड़े–बड़े महान ऋषि मुणि, ज्ञानी व साधू जन भी मन–माया से ना बच सके । वे जिन देवी–देवताओं, गुरूओं व पीर पैग़म्बरों की पूजा करते हैं वह सब मन रूपी निराकार निरंझन भगवान का ही स्वरूप हैं अर्थात अगर जग़त गुरू कोई उच्च अवस्था भी प्राप्त करे तो भी मन रूपी काम क्रौध में लिप्त होने की शंका बनी रहती है और निराकार दायरे के जगत गुरू अपने अनुयायियों और शिष्यों को पूर्व ग्रन्थ/पुस्तकों में लिख़ित शब्द ही दीक्षा में प्रधान करते हैं । यह इनकी अपनी निजि कमाई से अर्जित किया हुआ कुछ भी नहीं होता । ऐसा नहीं कि जगत गुरू आदरनीय व वन्दनीय ना हों, पर वे अपने अनुयायियों और शिष्यों का ज्ञान और मार्ग–दर्शन प्रदर्शित करते हैं । जैसे ही साधक को अपने आराध्य या इष्ठ् का साक्षात्कार हो जाता है तो उनकी भुमिका ख़त्म हो जाती है । जग़त गुरूओं में ज्यादातर में अपनी कमाई तो होती नहीं, उनके शिष्यों की निज निष्ठ्। और मेहनत से अपने ईष्ठ् का साक्षात्कार करते हैं । एक बड़ी विडम्बना है, यह गुरूजन अपने को सर्व–सर्वा बताने और अपने आप को महिमां मण्डित करने में लगे रहते हैं और सभी कुछ 'मैं' करने वाला हूं , ऐसा प्रचार करते हैं । मन माया से वशिभूत अपने अनुयायियों और शिष्यों को गुरू ना बदलने की प्रेरणा देते हैं अन्यथा गुरू बदलने पर नर्क–ग़ामी होने या बहुत दुर्गति होगी, ऐसा कह कर डराते हैं । जब जीवन के हर क्षेत्र में उन्नति के हेतु गुरू बदले जा सकते हैं तो फिर आध्यात्म के क्षेत्र में क्ंयू नहीं ? ठहराव तो प्रकृति के नियमों के विरूद्ध है, निराकार की भक़्ति में चार मुक़्तियां (स्वर्ग) तो सभंव है पर पूर्ण मोक्ष (आवागमण से छुटकारा) नहीं है । इन निराकार की मुक़्तियों में यही भौग अर्थात काम–वासना और ईच्छाओं की पूर्तियां ही तो हैं जो कर्मफल समाप्त होने उपरान्त, जीव पुनः मृत्यू–लौक में जन्म लेता है, इस कारण आध्यात्मिक उन्नति अर्थात मुक़्ति प्राप्त करने के लिए समय का सद्–उपयोग करना चाहिए ।

निराकार की प्रकाष्ठ्। पर पहुंचे हुए गुरूजन जैसे महात्मा बुद्ध, उन्होंने छः गुरू किए, अवतार श्री रामचन्द्र जी ने जीवन में दो गुरू धारण किए । अर्थात आध्यात्मिक उन्नति हेतु गुरू बदलने में समय नहीं गंवाना चाहिए । हांलाकि उपरोक्त गुरू व अवतार निराकार सत्ता तक के ही हुए हैं, मगर सहज सत्त मार्ग के पूर्ण सत्तगुरू परमहँस जी मन–माया से दूर, निर्लिप्त रहते हुए, साहिब भक़्ति और सत्तमार्ग का बख़ान करते हुए सादा जीवन गुज़ार देते हैं । इनके प्रवचनों में अपना आध्यात्मिक अनुभव ही इनकी व्याख़्या का आधार होता है। इनके प्रवचन धर्म ग्रन्थों और अन्य निराकार की सत्ता के प्रवक्ताओं से भिन्न और नवीन होते हैं । यह अपना जीवन यापन अपनी निज कमाई से करते हैं और सदा स्वार्थ रहित अपने अनुयायियों/शिष्यों और साधकों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं । सहज और सत्तमार्ग के अनुग़ामी पूर्वता किसी न किसी ईष्ट् या देवी–देव के उपासक रह चुके होते हैं । आगे की आध्यात्म उन्नति (मोक्ष) के लिए वे सहज मार्ग के पूर्ण सत्तगुरू के श्री चरणों में समर्पित हो जाते हैं ।

(संत सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' ने भी पूर्व काल में चार गुरू धारण किए, पूर्ण समर्पण भाव से सभी गुरूओं की सीमाओं तक की भक़्ति (निराकार भक़्ति) में परिकाष्ठा पर रहे, उसके उपरांत स्वंय निराकार भगवान ने दर्शन देकर उन्हें सहज/सत्त–भक़्ति हेतु सहज मार्ग के संपूर्ण सतगुरू जी की शरण में जाने को प्रेरित किया । जिन की शरण में जाने के उपरांत वे अल्प काल में ही सत्त भक़्ति की परिकाष्ठा पर पहुंच गये अर्थात साहिब सत्तपुरूष

जी से उनका साक्षात्कार हुआ । इसके उपरांत सत्तपुरूष जी (साहिब) की प्रेरणा से सब जग जीवों के कल्याण हेतु साहिब महिमां का ब्ख़ान व गुणगान करने लगे)। निराकार भगवान, अपने भक़्तों की कामनाएं–ईच्छाएं उसी रूप में पूर्ण करते हैं जिस रूप में भगत जन उन्हें भजते हैं । पर सहज मार्ग में सत्तगुरू परमहँस जी के रूप में साहिब सत्तपुरूष अपने अनुयायियों का मार्ग प्रशस्त करते हैं और आध्यात्मिक उन्नति में सहायक होते हैं । बिन सत्तगुरू परमहँस जी की शरणी जाए सहज सत्त भक़्ति संभव ही नहीं क्योंकि सत्तपुरूष जी स्वयं सतगुरू परमहँस जी के रूप में विद्यमान रहते हैं । सहज सत्त मार्ग के सत्तगुरू परमहँस जन सत्तपुरूष जी के मुख़ारबिंद से प्रगट हूए 'सार सब्द' को ही 'दीक्षा' दान में देते हैं । इस दात में स्वंय सत्तपुरूष जी का ही वास होता है और यह दात कहीं किसी पुस्तक–ग्रन्थ में लिखित या वर्णित नहीं होती और ना ही किसी पूर्व संत द्वारा दी गई दात से मेल खाती है । इसी कारण 'सार सब्द' को सब्द विदेह कहा जाता है । सहज सत्तमार्ग के पूर्ण सत्तगुरू परमहँस जी ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए परिवार और जग़त की चकाचौंध से दूरी बनाए रखते हैं ।

सहज सत्तमार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहँस जी स्वयं गद्धी नशीन नां हो, निजधाम भ्रमण के उपरांत तथा परमहंस अवस्था प्राप्त होने के उपरांत ही सहज सत्त मार्ग का प्रचार प्रसार व सत्तपुरूष महिमां का गुणगान प्रारम्भ करते हैं। सहज सतमार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहँस साहिब सतपुरूष जी की सुरति सूं 'सार दात' को ग्रहण करते हैं तथा सुरति सूं ही इसे अपने जिज्ञासु साधकों को प्रदान करते हैं। इस विदेह साहिबन दात को ग्रहण करते ही जीव मन माया तरंग सूं धीरे धीरे मुक्त हो जाता है तथा मोक्ष पथ की ओर अग्रसित हो जाता है। सहज सतमार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहँस जी की शरणी में समर्पित हुऐ बिना जीव कभी भी मोक्ष पथ का पथिक नहीं बन सकता क्योंकि सहज मार्ग के सतगुरू परमहँस जी साहिब सतपुरूष का ही रूप होते हैं जो साधकों को अपने संग हंस रूप बना के निजधाम ले जाते हैं जिस से जीव का आवागमण कट जाता है और फिर जीव कभी भी गर्भ में नहीं आता। सत्तगुरू परमहँस जी मन की सत्ता व सृष्टि् को नश्वर मानते हुए हमेशा ऐकांत या अपने अनुयायियों के साथ आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। उनकी दृष्टि् में सब कुछ नाशवान, माया रूप है । यह तन व मन–माया, रिश्ते–नाते माया, भौतिक जग़त माया, सारे जग़त के सुख साधन माया, ये अण्ड–मण्ड–ब्रह्माण्ड यहां तक कि स्वंय निराकार आद शक़्ति, देवी–देव व सारे ईष्ट् भी यह सब काल के अधीन होने के कारण अपने समय अनुसार क्रमबद्ध नष्ट् हो जाएंगे ।

विराट महांप्रलय के समय ये सब कुछ सतलोक में ही समा जायेगा। ऐसा नहीं की निरंकार सत्ता के गुरू जन व साधु महात्मां जन जगत को नश्वर नां कहते हों, पर उनका आचरण और उद्येष्य इसके विपरीत आश्रमों और अनुयायियों की संख्या बड़ाने में तथा बड़े बड़े अधिकारियों व नेताओं को अपना शिष्य बनाने में संलग्न रहता है ताकि उनकी महिमां, यश और धन दौलत निरंतर बड़ती रहे। इसके विपरीत सहज सत्तमार्ग के सतगुरू परमहँस जी और उनके अनुयायी साधा व साधारण जीवन ही व्यतीत करते हैं। सहज सत्तमार्ग के सतगुरू परमहँस जन इस भक्ति के आधार होते हैं। बिन पूर्ण सतगुरू परमहँस जी की शरणी जाये व पूर्ण समर्पण किये सहज भक्ति संभव ही नहीं। इस मार्ग में सतगुरू परमहँस जी के अपने निज अनुभव और साहिब सतपुरूष जी के साक्षात्कार बिना कोई संपूर्ण सतगुरू परमहँस हो ही नहीं सकता और नां ही सहज सतमार्ग में कोई गद्यी प्रथा होती है। जो निजधाम सतलोक जायेगा वोहि सहज सतमार्ग का पूर्ण सतगुरू परमहँस बन के आयेगा।

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

5 संतों का प्रेम पथ

1433 विश्वात्मां सतगुरू, गाते झुकते हर पल।
साधक यह नहीं जानते, झुकने से मिलता फल।। साहिब जी

1434 मन मारो सुरत सब्द सूं, टुक टुक बह जाये।
टूटे पीछे आन जुड़े, बीच गांठ पड़ जाये।। साहिब जी

1435 गुलाम भाई बोलें विचारी, मोक्ष दात साहिबन सूं पाई।
ये सब्द पल में काटे फेरी चौरासी, जब सतगुरू सूं दात हो पाई।। साहिब जी

1436 हीरा पा ले पूर्ण सतगुरू सूं, सुरति में रख ना खोल।
हल्की थी सतगुरू संग यह, पूरी भई मत तोल।। साहिब जी

1437 पूर्ण सतगुरू उपदेस ले, जो माने परतीत।
कर्म भरम धर्म त्यागि के, सतगुरू सूं ही प्रीत।। साहिब जी

1438 संत न चाहें मुक्ति को, नांही पदार्थ चार ।
संत तो चाहें प्रेम रस, भूला मुक्ति द्वार ।। साहिब जी

1439 साहिब तो संतन आंख हैं, जब देखें सो आप ।
साहिब संतन इक डौर हैं, हर दम रहते साथ ।। साहिब जी

1440 जे दूध सो माख़न चाहिए, दही करो तत्काल
बिन बिलोनी माख़न नहीं, मथो स्मिरण तत्काल ।। साहिब जी

1441 साहिब की भक्ति संत की संगति, सार–सब्द आधार ।
सुरति सूं स्मिरण करें, तांहि पहुंचें साहिबन दरबार ।। साहिब जी

1442 हम तो केवल आंखे हैं, साहिब संतन जोत ।
ईक उसी आंख की सुरति सूं, पाओ मौक्ष की जोत ।। साहिब जी

1443 दर्शन सूं प्रतीती जागे, संत चरण में ध्यान ।
उन्हीं चरणों में पाईए, मौक्ष पद का ज्ञान ।। साहिब जी

1444 अपरमपार–पार–परमपुरूष, ये ग़ति बिरला ले जान ।
संतन पायो दात साहिबन सूं, साहिबन महिमां जान ।। साहिब जी

1445 सब्द संग हंसा घर जाई, काल देखता ही रह जाई ।
ऐसा सब्द साहिबन का, काल से लेत छुड़ाई ।। साहिब जी

1446 परिचय न होता साहिबन सूं , लिख़ता कैसे भेद ।
कृपा न होती साहिबन की, कैसे मिलता निज भेद ।। साहिब जी

1447 सब तरें संतन कृपा सूं , सब्द सूं उतरें पार ।
सब संतन हैं एक मत, संतन शरण सूं उतरो पार ।। साहिब जी

1448 'वे नाम' वही चदरिया, ज्यूं की त्यूं धर लीनी ।
झीनी–बीनी–झीनी चदरिया, सार नाम रस पिनी ।। साहिब जी

क एक कबीर जतन सूं लीनी, और उजली कर दीनी।
झीनी–बीनी–झीनी चदरिया, अमृत नाम रस पिनी ।। साहिब जी

1449 'वे नाम' औढ़ी प्रेम चदरिया, हर थां प्रेम ही छाया ।
हर किसी को प्रेम वो बांटें, कोई ना रहा पराया ।। साहिब जी

1450 सतलोक में रहनी साहिबन की, जानें संत निज धाम ।
जो कोई आवे संत शरण में, पावे घर निजधाम ।। साहिब जी

1451 दास कहिए तिस को प्यारो, जा की आस गई मेरे भाई रे।
जो कोई राखे़ सार सब्द सुरति ईक संग, वो ही साधक भव पारा रे।। साहिब जी

1452 साधो कर्ता हम नांहि, करता केवल संत।
तूं सब सतगुरू पे छोड़ दे, वह ही सच्चे संत्त ।। साहिब जी

1453 सत–मार्ग कठिन मेरे भाई, जीवत चला न जाए ।
सोहि चला जगत में, जो जीवित मृतक हो जाए।। साहिब जी

1454 पारस छूते ही लोहा, पल में कंचन हो जाये।
साहिब बजे सोहि बड़ा, जाति न पूछो कोये ।। साहिब जी

1455 चार दिन का जीवना, करता क्यूं गुमान ।
सूरमा मिले हैं ख़ाक में, खाऐ तीर कमान ।। साहिब जी

1456 मत भूलों प्रेम प्यारे को, आत्म अंदर जुड़ी ईक तार ।
वह तो पल–पल करे पुकार, आत्म जागे तो ही पार ।। साहिब जी

1457 हंसी–खुशी और ग़म में, नांहि कोई मलाल ।
कर दिया सार–सब्द दात ने, मुझको मालामाल ।। साहिब जी

1458 साहिब जी के भजन बिना, कोऊ न उतरे पार ।
यही सुमरे 'वे नाम' तरि गया, जो सुमरे सो पार ।। साहिब जी

1459 जन्म मरण छुटकारा नांहि, जे ना जाना निःअक्षर नाम ।
पर–उपकारी संत आते जग मांहि, देते निःअक्षर सब्द का दान ।। साहिब जी

1460 कर्म धर्म का त्याग कर, करो तुम सब सूं प्रीत ।
सतगुरू सब को जगा रहे, यही संतन की रीत ।। साहिब जी

1461 मन सब पर असवार है, आशा तृष्णा देत प्यारो।
मन पे वै ही सवार हैं, जो भूत–भविष्य तज देत प्यारो।। साहिब जी

1462 माया–दीपक नर–पतंग है, दोनों बंधे प्रेम की डौर ।
पूर्ण संत मिलाप ते, सार–सब्द सूं सुरति डौर ।। साहिब जी

1463 रैहनी बोली संतन परख़ है, तां से पाओ अमृत धार ।
संतन प्रवचन सूं प्यारो, बहती अमृत धार ।। साहिब जी

1464 मत कोई निंदे जीव को, जैसा भी सो होए ।
पल–पल तां को बांधिए, जे सत पुरूष घर जाना होए ।। साहिब जी

1465 मैं आया सतलोक सूं, जन–जन करने उद्धार ।
जे कोई बैठे नाम जहाज पे, ले चलूं तीन लौक सूं पार ।। साहिब जी

1466 सब्द सुरति सूं जो चलें, पल में होत निहाल ।
सुरत कमल सतगुरू को पाकर, पल में होत जग पार ।। साहिब जी

1467 मन निर्मल होत संगत सन्तन सूं, ओर न कोई उपाए।
कोयला होत नांहि उझला, जैतों करो उपाए ।। साहिब जी

1468 अति कठिन प्याला प्रेम का, पिए जो संतन हाथ ।
मुक़्त होई जग में रहे, चले संतन के साथ ।। साहिब जी

1469 सब घट साहिबन वासा, खाली घट नांहि कोई ।
सांचा घट वो ही जानिए, जहां आत्म हंसा होए ।। साहिब जी

1470 सहज–सहज सब कहत हैं, सहज ना जाने कोए ।
जो सहजे में मिले, सहज सूं सहज जा होए ।। साहिब जी

1471 संत सुनार शिष्य तार है, सुहाग़ा सिरजन हार ।
सुरत सिला पर तराशिए, निख़रे रंग सुनैर ।। साहिब जी

1472 मेरा–मेरा सब कहें, मेरा तो कुछ नांहि ।
जो कुछ मेरा होई रहा, अब वह भी मेरा नांहि ।। साहिब जी

1473 सब कुछ ही घर मांहि, बाहर भरम भुलाई ।
अंदर साहिब जिन पायो, सोहि सच्चा कहाई ।। साहिब जी

1474 उल्टा स्वांसा सार नाम जपें, सुश्मिन खुले त्रिकुटी समाएं ।
अष्टम चक्र का ताला खुले, सतगुरू दर्शन पांए ।। साहिब जी

क जब लग जल नाव में बड़े, और घर में बड़े अनाज ।
दोनों हाथ से डलिचायें, यही संतन का काज ।। साहिब जी

1475 संतन रूप में, मन का आपा खोए ।
उनके दर्शन पाओ तुम, सब कुछ अपना खोए ।। साहिब जी

1476 यहां पर रूक मत जाना, ये नांही सच्चा मुक़ाम ।
सुरति को उपर सरकाओ, सुरत कमल सतगुरू धाम ।। साहिब जी

1477 पल ही पल संत प्रकटाए, संग में अपने तुम्हें ले जाऐ ।
जा पहुंचो सुरत कमल, सतगुरू संग निजघर जाऐ ।। साहिब जी

1478 पल ही पल चरण कमल में, पाओ जोत महान ।
आत्म जोत तुम बनो, संग उनके निजधाम ।। साहिब जी

1479 राह में औंकार शब्द लोक, आदी लोकों से होते जाऐं ।
आत्म गति वर्णन बाहिरा, मूल सुरति से सब याद रह पाए ।। साहिब जी

1480 अब आत्म हसां हो गई, जब सार्थक हो पास ।
अब समय धारा खो गई, अब हर पल तेरे हाथ ।। साहिब जी

1481 प्रेम पथ अति कठिन है, बिन संत न पावे कोए ।
सार–सब्द दात जब मिले, तभी ये वर्षा होए ।। साहिब जी

1482 सार सब्द में थिर रहो, अस्थिर तीन लौक संसार ।
सतगुरू सुरति में रहो, पल में छूटे संसार ।। साहिब जी

1483 सार नाम जाना नहीं, जन्म अनमोल गंवाया ।
जग की माया छूटे नांहि, मन ने ऐसा भरमाया ।। साहिब जी

1484 पुरूष नाम जेही परिचय होई, सब भेषन में संत हैं सोई।
ताकि महिमां अगम अपारा, लौक वेद तज भयो न्यारा।। साहिब जी

1485 काम क्रौध मद् लौभ, छूटे ना बिन सार नाम ।
कहे 'वे नाम' सुनो मन वालो, कोई ना तेरा बिन सार नाम।। साहिब जी

1486 सागर तट पर रहती एक ऋतु, तुम्हें सागर अंदर पाना है ।
केवल सतगुरू सूं बात बने प्यारो, उन से मूल नाम को पाना है।। साहिब जी

1487 इक्कतर पीढ़ी तेरी संग तेरे, तेरी महिमां का गुणगान करें ।
तुम आगे तो वे पीछे हैं, सतगुरू जहाज तुम्हें पार करे।। साहिब जी

1488 सार सब्द सतपुरूष सुरति, करे हंसा को मन से पार।
कोई बिरला सतगुरू पाता, मन माया से पार निज द्वार।। साहिब जी

1489 सब्द हमारा सत्य है, अनुभव सूं करो विश्वास ।
बिन सतगुरू के ध्यान सूं, काल का छूटे ना साथ ।। साहिब जी

1490 जग की कथा सब छोड़ छाड़ के, सतगुरू शरणी आ ।
निज स्वरूप बिन जाने कोई, कैसे उतरे उस पार ।। साहिब जी

1491 काम क्रौध मद् लोभ ना जाए, यह सब मन आधार ।
त्याग विराग श्रद्धा को धार के, बिन सार नाम नहीं पार ।। साहिब जी

1492 प्रेम को सुरति में डाल दें, चित चंचल नाम सार ।
शील संतोष क्षमा अहिंसा, सेवा जहाज सूं पार ।। साहिब जी

1493 सतगुरू कृपा संत समागम, चरणों संग समायो।
वे नाम सतगुरू कृपा कीन्ही, कर्म भरम सुरति जौत जगायो।। साहिब जी

1494 आकर सत्संग सार रस पाओ, संतन दर्शन सूं पार।
उनके नेत्र सतपुरूष समाई, जोत वास सूं निज द्वार।। साहिब जी

1495 बिन सब्दे सुरति अंधी जान, राह ना पावे कोये ।
सब्द हमारा तूं भी सब्दे, सतगुरू सूं ले लो आये ।। साहिब जी

1496 निह तत्व भेद गुप्त प्यारो, पांच तीन से बाहर ।
सार नाम निज मंत्र प्यारो, शेष मंत्र सब छार ।। साहिब जी

1497 तप साधन कोई काम ना आवें, केवल नाम आधार ।
नाम प्रेम है दुर्लभ प्यारो, यही मौक्ष आधार।। साहिब जी

1498 सुरति मूल ठिकाना भाई, पिंड ब्रह्मण्ड से पार ।
सतगुरू जोहरी भेद बतावें, घाट घाट भेद सूं पार ।। साहिब जी

1499 निःअक्षर दात कोई विरला जाने, सार सब्द इक बाण ।
सुरति डौर को सूक्ष्म जानो, सुरति निरति संग प्राण ।। साहिब जी

1500 संतों संग समाधि भली है, दिन दिन आगे चली ।
जंह जंह डौली पैकरमा जानी, जो करो सो पूजा लागी ।। साहिब जी

1501 सहज लौक तक काल का देशा, यह भी जानो परला देश ।
आगे अमर लौक है भाई, आदि पुरूष का सच्चा देश ।। साहिब जी

1502 सुरति जाई सब्द समावे, निर्भय साधक कहवे ।
तज दे धरती आकाश प्यारे, उधर में प्रेम समावे ।। साहिब जी

1503 सार नाम की मुक्ति शिला पर, (सुरति) आसन अचल बधांवे ।
सदा आनंदित, दुख सूं न्यारा, जीवत मौक्ष दिलावे ।। साहिब जी

1504 सतगुरू पारखी पूर्णतः न्यारो, जीवत मोक्ष दे जावे ।
उठत बैठत कबहूं ना छूटे, ऐसी ताड़ी लग जावे ।। साहिब जी

1505 बिन सतगुरू भक्ति भेद ना पावे, भरम जले संसार ।
कहें साहिब जी सुनो भाई साधो, मानो कहा हमार ।। साहिब जी

1506 जंहलग बाणी मन मुख सूं, तंहलग काल का जाल ।
तीन लौक परे जो सब्द हैं, सौ सतगुरू के पास ।। साहिब जी

1507 दासा ताको जानिये, जाकी सुरति पूर्ण दास ।
सुरति सूं सब कर्म, मिटे काल की त्रास ।। साहिब जी

1508 नाम स्नेही हंसा बने, पकड़े सतगुरू डौर ।
निरखो संतन नाम सुरत से, चल निज घर की ओर ।। साहिब जी

1509 आदि नाम निज मंत्र, और मंत्र सब छार ।
कहें साहिब सार नाम बिन, जल मरा संसार ।। साहिब जी

1510 सुरत समावे सार नाम में, सब जग सोवत होए ।
अंदर की आंख दर्शन करे, अंदर में अब सोए ।। साहिब जी

1511 सत्य सब्द जपो मंत्र प्यारो, चित को देवे मार ।
निःअक्षर पर मंत्र, सकल मंत्र का सार ।। साहिब जी

1512 सत सुरति सतगुरू सूं पालो, तन मन सूं पार हो जात ।
सुरति जोत प्रेम की धारा, सतपुरूष ही हर थां साथ ।। साहिब जी

1513 स्वाति बूंद गज कान में गज मुक्ता बने, पत्थर में बने पारा।
केल पात में कफूर बने, सतगुरू सब्द में अमृत धारा।। साहिब जी

1514 राम से अधिक भरत ने, सूयश प्राप्त किया।
राम आदेश पालन किया, भरत वनवासी जीवन जिया।। साहिब जी

1515 साहिब का पाना प्यारो, निःअक्षर सब्द की राह।
भीतर सुरति भण्डार, भीतर की आंख से राह।। साहिब जी

1516 सुख दुख दोनों उत्तेजना, काल का दीप जलायें।
दोनों तुम ईक साथ तजो, काल का दीप बुझायें।। साहिब जी

1517 हर पल हर घड़ी, रहता हर जन साथ।
सोते जागते खाते पीते संग खड़ा, स्वांस स्वांस संग साथ।। साहिब जी

1518 काया सूरज जब उगे, अंदर के खोले किवाड़।
वोहि पल शुभ जानिये, सतगुरू दर का खुले किवाड़।। साहिब जी

1519 सब्द विवेकी परखिये, तहां हंसा परवे।
पारखी सुनो संदेश, सत लोक परवे।। साहिब जी

क छेः ऋतु बारहां मास, रहत जरतै दिन राति।
सतगुरू मिला जो होये, ताहि को नज़र आवे।। साहिब जी

1520 ज्ञान समाधि सुने, और कोउ सुनता नांहि।
हर घड़ी सुने, और कोउ सुनता नांहि।। साहिब जी

क खोजी होये सतगुरू को पाये, पाये सार नाम की दात।
निज घर जाये, पाई परम प्रीत की दात।। साहिब जी

ख नां कहिं गयो नांहि आयो, अपने ही उर पायो।
कहे कबीर भेदि लिया, पल में देत लखायो।। साहिब जी

1521 सुरति शक्ति महान है, स्वांसा उर्दमुखि करे ध्यान।
माया ईन्द्री जाल से निरति मुक्त, करे वासा अधर ध्यान।। साहिब जी

क अमृत योग सुरति ध्यान, सुरति निरति सब्द सूं एक।
तन मन संग छूटा, एक में समा के हुआ एक।। साहिब जी

1522 पूर्ण ध्यान स्वांसा प्रवाह, शीष उपर लेता ध्यान।
सवा हाथ उपर स्वांसा धार, स्वांसा बाहर ध्यान।। साहिब जी

1523 निरति उर्दगामी आन मिले सुरति धार, सुरति निरति मेल ईक ले जान।
आत्म हंसा हो गई, मन माया की टूटी कमान।। साहिब जी

1524 सुरति के दण्ड से प्यारे, धरे मन पवना।
पल में फेर उल्टा चले, सुरति निरति ईक हो जाना।। साहिब जी

1525 माया माया सबहि कहें, त्यागी नहीं कोई एक।
प्यारो पारस नाम बिन, निजघर जाई ना एक।। साहिब जी

क मीरां जी कहत हैं, मनवा राम नाम रस पीजै।
तज कुसंग बैठ सत्संग नित, साहिबन चर्चा कर लीजै।
काम क्रौध मद्य् लोभ बिसरे, मोह को चित से बहा दीजै।। साहिब जी

ख लग्न महूर्त झूठ सब, और बिगाड़े काम।
पल्टु शुभ दिन शुभ घड़ी, याद पड़े जब नाम।। साहिब जी

1526 बिन सतगुरू कृपा के, कैसे करे भव पार।
निकसे भिन्न भिन्न धुण चिराग़ से, कोई भेदी पावे पार।। साहिब जी

1527 दूजा तुझको जब भी दिखे, जानो खुली ना आंख ।
अंदर की आंख जब खुल गई, वही जानो साहिब की आंख ।। साहिब जी

1528 सतगुरू संगत आनंद की, सोये जागे भाग ।
लाखों जन्म के बंधन करे, तेरी आत्म के जागे भाग ।। साहिब जी

1529 संत ही जग में कपिल वृक्ष हैं, जो मांगो पाओ सौ बार ।
जिस जन देश संसार का उन पर जागे विशवास, उसी पल में पलटें भाग ।। साहिब जी

1530 कर जोरूं प्रणाम सूं, धरूं सतगुरू चरणों पर शीष ।
मेरे सतगुरू आप ही साहिब हैं, तीन लौक तारन का भार निज शीष ।। साहिब जी

1531 राम सुमिरो जानो नहीं, बिन किश्ती डूबे मझधार ।
'वे नाम' सार सागर हैं बड़े, बैठो किश्ती उतरो पार।। साहिब जी

1532 जो आवे सत्संग में, उसके चमकें भाग ।
लाखों जन्म की चद्दर धुले, हंसा के खुल जायें भाग ।। साहिब जी

1533 सुख तो कभी मिलता नहीं, पर दिखता अब आया अब आया सुख ।
सुख केवल सतगुरू संगत में मिले, जहां हर दम रहता सुख ।। साहिब जी

1534 सत्य ही देवे सत्य ही लेवे, सत्य का करता व्योपार ।
सत्य से जन्म ना हो सके, मन छूटे सत्य विचार ।। साहिब जी

1535 मुख से बोले जो जीव है, मन से बोल सो देव।
सुरति सूं बोले सो संत हैं, माथा निवावें सब देव।। साहिब जी

1536 पल में प्रकटे सतगुरू रविदास, जासे पाई सार नाम दात।
छः माह अंदर साहिबन दरस पायो, पहुंची निजघर साहिबन संग साथ।। साहिब जी

1537 प्रेम भाव ईक चाहिए, जे जाना त्रिलोकि सूं पार।
प्रेम जोत जब अंदर जगी, हो गये मन माया से पार।। साहिब जी

1538 अंदर कोई जाना चाहता नहीं, फ़िर कैसे बनेगा काम।
आखिरी परिक्षा तन खोने की होती, प्यारो आओ कर लो काम।। साहिब जी

1539 कट्टार की धार देखी, शब्दों की बरसात भी देखी।
अंदर के लालों के बिखरने की, मैनें झंकार भी देखी।। साहिब जी

1540 जिन सतगुरू पायो अति प्यारे, ७१ पीढ़ियां कटुम्भ सब तारे।
धन भाग्य उन जन के, पारस दात पा सब तरे।। साहिब जी

1541 पपीहा अपना प्राण तज डालयो, स्वाति नक्षत्र की बूंद ही मांगे।
जले पतंगा जोती आगे, प्राण तजे पर प्रेम ही मांगे।। साहिब जी

1542 राजा और रंक दोनों के घर, करे दीपक उजियार।
प्यारो मते पतंगा के, प्रेम प्रीत ही कराती पार।। साहिब जी

क काया अवधि पूरी जब होई, तब वासा पुरूष के पाहि।
सुरति सब्द डौरी दृढ़ धरहुं, छूटे देह दरस तब करहुं।। साहिब जी

1543 संत्त–जन शील संयम तथा, सत्तगुणों की खान तूं जान ।
वह समदर्शी वह वैराग़ी, वैर सूं पार तूं जान ।। साहिब जी

1544 पूर्ण संत्त हैं जब मिल गयो, दुख सुख एक समान ।
हर दम सेवा में लीन रहे, प्रेम की थामी कमान ।। साहिब जी

1545 अनजाने में काल पुरूष को सतपुरूष का, नाम देना अति अपराध ।
लोग भरमों में पड़ गये, कैसे पावें सतपुरूष की दात ।। साहिब जी

1546 प्रेम विश्वास के पहले कदम पर, मंज़िल जानो संग साथ।
मैं का साथ छूट गया, 'वे हूं' ने पकड़ा हाथ।। साहिब जी

1547 सार धार से मन निर्मल भया, जैसे स्वाति बूंद।
पीछे पीछे साहिब चलें, लिये सार नाम की बूंद।। साहिब जी

1548 ना तन से ना मन से ना सुरति सूं, मैं जपुं ना सार नाम।
सुमिरन मेरा साहिब करें, चारों ओर एक समान।। साहिब जी

क जहां जहां डोलूं सो परिक्रमा, जो जो करूं सो सेव।
तीन लोक ईक सम देखो, पूजूं और ना देव।। साहिब जी

ख सब्द निरंतर ते सुरति लागी, मलीन वासना त्यागी।
उठत बैठत कबहु ना टूटे, ऐसी तारी लागी।। साहिब जी

1549 सतगुरू रूप में साहिबन चिंतन, सुरति में चरणन ध्याण।
गुण तीत सुरति संग होकर, पारस नाम स्वांसा में ध्याण।। साहिब जी

1550 मन तरंग में जगत भुलाना, कर्मन जाल है सारा।
जो पाओ मूल नाम को, तो ही उतरे पारा।। साहिब जी

1551 सतगुरू जब सुख का विश्राम बने, प्रेम की होत बरसात।
ऐसे अनन्य भक्ति भाव की कुण्झी, सार सब्द की दात।। साहिब जी

1552 जात धर्म पंथ पद, प्रेम में जान दरार।
सार सब्द नाम दात ना ठहर सके, प्रेम तार में दरार।।। साहिब जी

1553 सुरति उसी को दो मेरे भाई, जो हो दिलदार प्यारा।
धर्म कर्म ना देखो, मिले खरीद–दार कोई प्यारा।। साहिब जी

1554 प्रेम अंदर की बात, तन का लेन ना देन।
सुरति सूं सुरति मेल जब, ईक हो निजघर जान।। साहिब जी

1555 मीरां आई मुल्तान से, मान कृष्ण भगवान की बात।
पल में प्रकटे साहिब रविदास जी, पा ली सार नाम की दात।
छे माह अंदर साहिब पायो, पहुंची निजघर साहिबन साथ।। साहिब जी

क मुरली बाजत अखंड सदा से, तहं प्रेम झंकारा है।
प्रेम हद तजि जब भाई, सतलोक की हद पुनिः आई।। साहिब जी

1556 संतन स्पर्श जिस को मिले, हर अंग चेतन हो जाऐ ।
अन्दर कचरा पल में जले, प्रेम की जोत जग जाऐ ।। साहिब जी

1557 निज संत कौटि बैठे जहां, ज्ञानी लख करोड़ ।
सार सब्द में जो रती रहे, सो विरला ईक कोये ।। साहिब जी

1558 प्रेम मुक्ति का सार, संत भक्ति आधार ।
जब दया संतन बरसे, प्रेम की बरसे धार ।। साहिब जी

1559 रोग औषधि सत्त सब्द, जो पूर्ण संतन शरणी आये ।
रोग जाते प्रेम रह जाता, पल ही पल मौक्ष दात को पाये।। साहिब जी

1560 सतगुरू साहिबन भेद नांहि, ईक कर्त्ता ईक करवाता ।
मानुष को पार लगाने, साहिब सतगुरू सूं करवाता ।। साहिब जी

1561 प्रेम सीधी चाल है, टेड़ी न चलयो कोए ।
'वे नाम' सीधी चाल सूं, साहिबन सूं मिलना होए ।। साहिब जी

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

5–क प्रेम–प्रीति–विरह तड़प

1562 जब तक विरह पीड़ न जानी, प्रेम ना उपझे कोए ।
कोटि बंदगी ख़ता है, पड़ें वह दोजख़ मांहि ।। साहिब जी

1563 चित में विरह न जागे भाई, बाहिर करे पुकार ।
यही तो भटकन जीव की, कैसे खुलें किवाड़ ।। साहिब जी

1564 बिन जागे दिन रात दुख़ी, सोना मृत्यु नहीं पार ।
जग सूं नाता तोड़ कर, सार सूं जोड़ो तार ।। साहिब जी

1565 प्रेम भाव आत्म सुरति सूं, विरह सूं सुरति ध्यान ।
एक सूं प्रतीती जब हो, दोनों हैं पुणिः राम ।। साहिब जी

1566 सार नाम सुरति धरो, ज्ञान उपझे मल जाऐ ।
आज्ञा चक्र तीनों एक जब, सतगुरू रूप दिखाऐं ।। साहिब जी

1567 मुरली धुण ब्रह्मनाद, सुन्न मंडल धरो ध्यान ।
ज्योत सरूपी ब्रह्मजोत, जगमग रूप महान ।। साहिब जी

1568 निरंकार लौकों की धुण, 'ॐ' की मधुर झंकार ।बंसुरी वी
बांसुरी वीणा सारंगी संख सिटी ध्वणि, मीन पपील चाल लोक औंकार ।। साहिब जी

1569 अब धारा, राधा बन गई, चली शिव–नेत्र पार ।
आत्म कुंवारी हो गई, लग्न–मंडल ईक धार ।। साहिब जी

1570 यही विधि मीरा सुरत कमल में,खोई सुद्ध बुद्ध तार ।
घुंघरू ताल ऐसी बाजी, खुल गए सब द्वार ।। साहिब जी

1571 राम शरीका राम है, भाई दूजा नांहि कोए।
अंदर बाहर अब राम हैं, दूजा बचा न कोए ।। साहिब जी

1572 मीरा खो के कह गई जग सूं, ढूंढो मुझे मेरे भाई ।
पायल ना ही घुंघरू ना ही, ले चली छम–छम चाल मेरे भाई ।। साहिब जी

1573 ऐसी सुरति जब बने, साहिबन ही तेरे संग ।
सब घट खाली हो गया, अब साहिबन ही तेरे संग ।। साहिब जी

1574 सुरति–निरति मन पवना, मिल के हुए एक सार।
अब तो कुछ भी और नांहि, सब कुछ से हो गया पार ।। साहिब जी

1575 एक ही तो निज धाम है प्यारो, दूजा नांहि कोए।
सब मिल एको हो गया प्यारो, दूजा रहा न कोए ।। साहिब जी

1576 नैनन तरसें दरस को, मरें यार बिना पलक झपकाऐं ।
सुरति सूं स्मिरन में, मन माया छुट जाऐं ।। साहिब जी

1577 जो अब को प्रीतम दर्शन, करें नमन नमस्कार ।
पूर्ण सतगुरू पाई के, मिला प्राण आधार ।। साहिब जी

1578 सुरति सूं घूंघट खोलो, साहिबन का करो दीदार ।
सुरति में आप ही रहते, उन्हीं से करो प्यार ।। साहिब जी

1579 जाने क्या पिलाया तूने, अमृत रस घट भीतर ।
झूम उठी रे पाग़ल दिवानी, रस में बह गई सुरति ।। साहिब जी

1580 बिन मुरली के कैसी ताना, बाजत धुण मतवारी ।
ढूंढो मुझे मैं धुन में खोई, हुआ क्या मैनें ना जाना ।। साहिब जी

1581 प्रेम तो केवल एक सूं, चाहे जहां लगाएं ।
जे लागा संसार सूं भाई, भक्ति दूर हो जाए।। साहिब जी

1582 प्रीति संग और कुछ नांहि, जिस सूं पाओ राम ।
जिस की प्रीति सतगुरू सूं, सुरति में ध्यावे नाम ।। साहिब जी

1583 बिन सतगुरू प्रीति ना जागसी, बिन प्रीति नांहि ध्यान ।
बिन सत्संग विरह ना जागसी, बिन विरह नांहि ध्यान ।। साहिब जी

1584 प्रेम–प्रेम सब कहत हैं, कोई बिरला जाने प्रेम ।
चांद चकौर की रीत सूं, जानो सच्चा प्रेम ।। साहिब जी

1585 दया प्रेम नांहि होत प्यारो, बिरला जन जाने कोए।
प्रेम है बाती जोत की प्यारो, जाग के जाने कोए ।। साहिब जी

1586 साहिबन का संग शीतलता आनंद, चंदन जैसे देत ।
निज घर वोहि संग है जाता, सुरति प्रेम आनंदित कर देत ।। साहिब जी

1587 मन और माया मैल ही जानो, सार नाम साबुन देत निख़ार।
प्रीत विरह से धोईये, निखरे रंग अपार।। साहिब जी

1588 प्रकाश–जीवन प्रेम का, जन्म–जन्म से जोड़ ।
प्रकाश जीवन बनता मिटता, प्रेम सदा बिन जोड़ ।। साहिब जी

1589 कस्तुरी सुरत द्वार पर, मूर्ख जानत नांहि ।
उर्दमुखि़ श्वांसा कर, मन माया कुछ नांहि ।। साहिब जी

1590 मन विषय सुख मांहि रमी रईयो, माया में चित लाई ।
संग सोहि जग जानिये, स्वाद तजि प्रेम उपजाई ।। साहिब जी

1591 ऐसी प्रीति करूं जग मांहि, जल और मीन समान ।
ज्यूं छूटे नाता जल संग, छोड़ी देत है प्राण ।। साहिब जी

1592 संगति ऐसी कीजिए भाई, जहां मिटे मान अभिमान ।
साहिब तहां ना बैठे कोई, जहां संतन अपमान ।। साहिब जी

1593 मान कभी न चाहिए, जीव सब से रहिए हार ।
साहिब ऐसे दास सूं, नित बड़ाएं प्यार ।। साहिब जी

1594 अस्तुति निंदा जग करे, लागे न तांहि अंग ।
प्यारो ऐसे दास को, मिलता साहिबन संग ।। साहिब जी

1595 काम क्रौध सब्द से मार मेरे भाई, तोड़ें मन माया कमान ।
साहिब ऐसे दास को, कोटि कोटि प्रणाम ।। साहिब जी

1596 आत्म प्यास जागी जब अंदर, कैसे रोकी जाए ।
चातक की तृष्णा जागी, झरना कैसे बुझाए ।। साहिब जी

1597 सांचा साहिब सांचा नाम, यही है मुक्ति दात ।
प्रीत की डौरी बांध साहिबन सूं, पाओ मुक्ति दात ।। साहिब जी

1598 जगाओ प्रेम तुम इस तरहं, हर का दुख़ तुम्हारा दुख़ ।
पत्ता गिरे जब डाल सूं, वह भी कारण दुख़ ।। साहिब जी

1599 हर जीव तुम्हारा अंग है भाई, हसां रूप सब एक ।
मकड़ी जाला जब हिले, चांद तारे हिलें बन एक ।। साहिब जी

1600 आंसू बहाना छोड़ दो, दासा पन अपनाओ ।
तांहि प्रेम बेल उगेगी, आंसू कीमत लो तुम जान ।। साहिब जी

1601 इसी पल में जो है जीवता, तन मन से पार ।
जीवित मरना जब आ गया, तन मन तज हुआ पार ।। साहिब जी

1602 साहिबा अज्ञान को दूर कर, संसार को दे जगाए ।
प्रेम न उपझे जीव संग, छूटा ना काल सूं जाए ।। साहिब जी

1603 पौथी पड़ी पड़ी पंडत मुवा, निःअक्षर ना जाना कोए ।
एक निःअक्षर प्रेम को जाने, सो साधक कहलाए ।। साहिब जी

1604 भक्ति भी सागर समाना, ऐसे सार सुरति में समाएं ।
डूब गए तो पार हो गए, बिन डूबे पार न कोए ।। साहिब जी

1605 जिस को झुकना आ गया भाई, सतगुरू संग भेद न राज़ ।
उसका जमना मरना पूर्ण, जाना मौक्ष का राज़ ।। साहिब जी

1606 प्रेम प्याला जिन–जिन पिया, उनके खुल गए भाग ।
सत्तपुरूष जिन ना लख़यो, उनके बिगड़े भाग ।। साहिब जी

1607 प्रेम गया प्रेसी गई, बस रह गया केवल प्रेम ।
सब ईन्द्रियां सखी भईं, अब नाचें हंसा संग ।। साहिब जी

क प्रेम–प्रीति सूं बांधेया, कहे दास कबीर समझाए ।
तां प्रेम मोह विवेक बिन, रहे जीव मुर्झाए ।। साहिब जी

1608 सार–नाम की दात सूं, काग़ा हंस हो जाए।
निरंझन सूं काग़ा बनयो, साहिब आत्म हंसा दे बनाएं ।। साहिब जी

1609 सहज समाधि जब लगी, भूला रचा बसा संसार ।
सगे सम्बंधी एक से हो गए, अब सब केवल प्यार ।। साहिब जी

1610 जप–तप–प्रेम साधना, सब सुरति के मांहि ।
सतगुरू ही केवल जानते, प्रेम–भक्ति सम कुछ नांहि ।। साहिब जी

1611 प्रेम–भक्ति अमृत घारा, अंतर मल धुल जाई ।
मन–माया जब बह गए, आत्म हंसा बन जाई ।। साहिब जी

1612 नाम बिन नांहि निस्तारा, संतन बिन नांहि पार ।
प्रेम को जब कोई जान ले, प्रेम की नाव सूं पार ।। साहिब जी

1613 प्रेम की धारा उर्द मुख़ी बने, सार सुरति बने धार ।
जन्म–जन्म से तुम नीचे बहे, पक्की चाल की धार ।। साहिब जी

1614 लाखों वर्ष से भूले साहिबन, जो हैं सागर प्रेम ।
तूं भी हंसा आया प्रेम सागर सूं, जग में भूला निज प्रेम ।। साहिब जी

1615 प्रकाश बिन जीवन रह सके, संग न साया कोए ।
जीवन बिन प्रकाश ना होऐ, लाख़ करे जे कोए ।। साहिब जी

1616 प्रेम आप में बसता, प्रेमी दूर चाहे होए ।
आत्म बिन प्रेम ना उपझे, लाख़ करे जे कोए ।। साहिब जी

1617 प्रकाश प्रेम ईक संग रहे, जीवन होए ना होए।
जीवन प्रकाश–प्रेम अंग, ईन दो बिन जीवन ना होए ।। साहिब जी

1618 प्रेम बनता मिटता नांहि, सदा से है निज धाम ।
हंस–आत्म भी नहीं मिटती, घर इसका निजधाम ।। साहिब जी

1619 जब जीवन प्रेम निज होत, निज में निज समाऐ ।
ये सब सहज से होता प्यारो, जो मिले संतन संग जाऐ ।। साहिब जी

1620 सतलोक प्रेम का लौकवा,बिन प्रेम तहां ना कोए ।
आत्म प्रेम ना पा सके, जे मन माया छूटी ना होए ।। साहिब जी

1630 प्रेम बाण क्रौध–लोभ–मोह छेदे, हंसा प्रेम फूल कहाए ।
हसां तो शुद्ध प्रेम प्यारो, शुद्ध में शुद्ध समाए ।। साहिब जी

1631 मैं जग पाग़ल दीवाना, प्रेम तरंग बन जाना ।
मन–माया छोड़ हंसा बनें, सहज में सहज समाना ।। साहिब जी

1632 सतगुरू आज्ञा में जो रहे, पावे मोक्ष द्वार ।
हुक़्म में उनके पल–पल रहता, पावे प्रेम भण्डार ।। साहिब जी

1633 आत्म को तूं शुद्ध कर, साहिबन को बिठाना है ।
मन–माया को तूं त्याग दे, आत्म पल में हंसा हो ।। साहिब जी

1634 सतपुरूष सत्त में सत्त स्वभाव, स्वंय काव्य कहलाएं ।
संत प्रेम ही प्रेम हैं पूर्ण, सहज ही कवि बन जाए ।। साहिब जी

1635 प्रेम किरण जब है आती, आनंद की सुवास भी संग ।
आनंद प्रेम की सुवास सुरति, कैसे साहिबन संग ।। साहिब जी

1636 आत्म हंस जब बन जाती, खुद प्रेम हो जाती ।
बिन पूर्ण संत आत्म हंसा नांहि, सार सुरति सूं बात बन जाती ।। साहिब जी

1637 प्रेम ही जब समग्र प्राणों की, सुरति जब बन जात ।
सुरत कमल द्वार प्रेम सूं प्यारो, पल में ही खुल जात ।। साहिब जी

1638 जब आखें प्रेम की हैं खुल जाती, तभी खुला द्वार दिख पात ।
प्रेम जब सत्य स्वरूप का रूप हो, पल में मौक्ष मिल जात ।। साहिब जी

1639 बूंद तो केवल बूंद नहीं, वोही सागर कहलात।
हंसा केवल हंसा ही नहीं, वही साहिबन स्वरूप कहलात ।। साहिब जी

1640 प्रेम आंखों से देखो जब, हंसा बूंद नांही ।
दोनों शुद्ध जब होते हैं, बिन सागर और कुछ नांहि ।। साहिब जी

1641 प्रेम ठण्डी आग कहलाती, प्राणों को देत जलात ।
जो तड़पता कुन्दन बन जाता, कूड़ा करकट जल जात ।। साहिब जी

1642 संतन प्रेम भी जीव तड़पाता, स्वय को देत मिटा ।
बीज मिटने से वृक्ष बन जाता, यही सच्चा प्रेम दर्शात ।। साहिब जी

1643 सरिता को मिटना पड़ता, जे उसे सागर में समाना है।
बूंद को भी मिटना पड़ता, जे उसे सागर बन कर बहना है।। साहिब जी

1644 प्रेम गया प्रेसी गई, क्रौध रहा जब संग ।
जग की माया में रंगे रहे, कैसे चड़े साहिबन रंग ।। साहिब जी

1645 प्रेम सीधी चाल है, टेड़ी न चलयो कोए ।
'वे नाम' सीधी चाल सूं , साधक भयो कबीर ।। साहिब जी

1646 प्रेम–पथ अति कठिन है, बिन संत न पावे कोए ।
सार–सब्द जब दात मिले तो, तभी यह पावे कोए ।। साहिब जी

1647 प्रेम रस कहानियाँ, बहते आँसू की लड़ी ।
तेरी विरह से ही जागे, इस सुरत की लड़ी ।। साहिब जी

1648 प्रीत करो तुम एक सूं , साहिबन भावे सोहि ।
कौटिन के तूं दर फिरे, किस–किस को लुभावे सोहि ।। साहिब जी

1649 विरह पीड़ा मन को छेदती, सुरति में पारस सुरति भेद ।
किस को सुनावें भेद को, बस यही है सच्चा भेद ।। साहिब जी

1650 प्रेम तां बिन स्वार्थ के, प्रेमी तो त्यागी होय ।
जग प्रेम कोई प्रेम नांहि, जो बिन स्वार्थ न होय ।। साहिब जी

1651 जब लग विरह न उपजे, हृदय ना उपजे प्रेम ।
धर्म–कर्म–व्रत नेम सूं, कभी ना जागे प्रेम ।। साहिब जी

1652 जाके हृदय प्रेम राती, रहा सो जन सुखी दिन राती ।
ऐसे साधक सुरत–सब्द रमे रहें, भरे जोत दिन राती ।। साहिब जी

1653 जिन–जिन प्रीति सार–सब्द करी, प्रेम में रहे लवलीन ।
दर्पन सम उझले भये, अब मन होए अधीन ।। साहिब जी

1654 प्रेम प्रीति करूं सार–नाम सूं, जो है नाम जहाज ।
प्रेम बिन नहीं भक्ति, तांहि छूटे नाम जहाज ।। साहिब जी

1655 प्रेम रस भक्ति मूल है, कोई बिरला जाने भेद ।
जो जाने इस भेद को, वो ही जाने अमर लौक का भेद ।। साहिब जी

1656 प्रेम मुक्ति का सार है, प्रेम ही भक्ति आधार ।
जब दया संत की बरसती, प्रेम रंग चढ़े अपार ।। साहिब जी

1657 बिन प्रेम नांहि भक्ति प्यारो, बिन प्रेम नहीं ध्यान ।
बिन प्रेम कमल खिलता नांहि, बिन प्रेम कहां चैन ।। साहिब जी

1658 सुरत–सब्द सूं करो तुम प्रीत, जैसे चाँद चकौर ।
एक पल भी संग ना छूटे, टूटे ना सुरति की डौर ।। साहिब जी

1659 निराकार लोक में कर्म जाल पसारा, यही भक्ति का आधार ।
साहिब के दरबार में, केवल भक्ति प्रेम–प्रीत आधार ।। साहिब जी

1659 जब लग विरह न उपजे, तब लग प्रेम नांहि ।
जब लग प्रेम न सींचरे, आंखों में अश्विन नांहि ।। साहिब जी

1660 सार–नाम से प्रीति यूं करें, जैसे नाद कुरंग ।
उसमें ऐसे डूब मरें, जैसे चातक बूंद स्वाति संग ।। साहिब जी

1661 जब मैं था तब संत नांहि, अब संत ही संत और नांहि ।
प्रेम गली अति सांकरी, जा में और न समाहि ।। साहिब जी

1662 सुरति फंसी माया जाल में, सब मन का ही कहलाऐं ।
सुरति को उरद मुखी करें, प्रेम की ज्योत जग जाए ।। साहिब जी

1663 अश्विन धारा बह चली, चरण संत के धौएं ।
अब पीछे क्या है रह गया, पल में हंसा होए ।। साहिब जी

1664 साहिब का घर शिख़र पर, जहां सिलसिली गैल ।
चढूं तो पाऊं प्रेम रस, पडूं तो खोऊं मूल ।। साहिब जी

1665 प्रेम जगावे नींद से, प्रेम छुड़ावे काल का धाम ।
प्रेम रस से भक्ति उपजे, प्रेम से पावें निजधाम ।। साहिब जी

1666 प्रेम की राह अति कठिन होत है,
कोई साहसी पग़ धरे उस ओर ।
जब मिलते हैं कांटे, बनते शूल–त्रिशूल,
जब कांटे फूल उगाते, तभी मिलता कपूर ।। साहिब जी

1667 प्रेम रसरी प्रीत की, जिसका ईक ही पांव,
जो इस पांव से चल सके, वह भी जाता पांव ।
जिस के दोनो पांव गए, भजता केवल नाम,
अब साहिब आप ही आ गए, फिर पांव का क्या काम ।। साहिब जी

1668 प्रेम भक्ति जब उरद मुखि़, जग़त से छूटे नेह ।
अब साहिबन डौरी मिले, अब उनसे मिलता नेह ।। साहिब जी

1669 प्रेम करे सच्ची राह चलें, प्रेम से बनें सब काम ।
प्रेम पुजारी जो बने, अंदर उपजावें नाम ।। साहिब जी

1670 संत दर्शन को जाइए, जब प्रेम ही हो नित भाव ।
उनके दर्शन मात्र से, तीन लोक से पार हो जाओ ।। साहिब जी

1671 मेरे साहिबा मन नीवां, मत्त (सौच) उंची बना दे ।
प्रीत करन दी, दास को जाच साहिबा सिखा दे ।। साहिब जी

1672 प्रेम भक्ति आपो अपनी, करिए ते फल पाएं ।
मांग ऐसी दास की, बहुरि न मरना होए ।। साहिब जी

1673 साहिब जी (सतपुरूष) तेरा, अंत ना पारा वार ।
किस विधि में प्रेम करूं, जिस का आर ना पार ।। साहिब जी

1674 बिन सतगुरू कुछ भी, हमें मिलता नांहि ।
किस विधि जान सकूं, किस से मिलना किस से नांहि ।। साहिब जी

1675 विरह पीड़ा मन में करती छेद, बड़े और बड़ती जाऐ ।
किस–किस को सुनावें भेद, विरह वियोग बड़ता जाऐ ।। साहिब जी

1676 जाको हृदय हर पल प्रेम बसे, सो ही करत प्रीती ।
पूर्ण संत सूं प्रीत बिन, अग़न ये जग नहीं पाती ।। साहिब जी

1677 जिन–जिन सार–सब्द प्रतीती करी, रहे प्रेम लवलीन ।
दर्पन सम उझले भये, अब मन होयो अधीन ।। साहिब जी

1678 प्रेम प्रतीती करो सार नाम सूं, जो है नाम जहाज ।
प्रेम बिन भक्ति नांहि, तांहि छूटे नाम जहाज ।। साहिब जी

1679 आकर सत्संग सार रस पाओ, सतगुरू दर्शन रज रज पाओ।
उनके नेत्र सतपुरूष सहाई, रज–रज जोत वास उर आई।। साहिब जी

1680 जब लग विरह ना उपजे प्यारो, तब लग प्रेम नांहि ।
जब लग सुरति प्रेम न सींचरे, नेत्र अश्विन नांहि ।। साहिब जी

1681 हंसा माला प्रेम की, पहनो देखें देखन हार ।
ये माला है नाम की, सुरति सूं सुरति धार ।। साहिब जी

1682 नैनन से अश्विन मोतियों की धारा, देती महां प्रेम संदेश ।
विरह अश्विन की बहती धारा, दिया प्रेम संदेश ।। साहिब जी

क रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो चटकाए ।
टूटे फिर ये न जुड़े, जुड़े गांठ पड़ जाए ।। साहिब जी

1683 सच्चे साहिब सूं हो प्रेम तभी, जब सब जीवों से हो प्रीती ।
कर्ता से प्रीती तभी होत है, जब कर्ता की कृती सूं हो प्रीती ।। साहिब जी

1684 प्रेम बिन कुछ जग है नांहि, प्रेम ही प्रेम चंहू ओर ।
तुम कमल समान जब खिल सको, कीचड़ की होत पहचान ।। साहिब जी

1685 बिन कीचड़ कमल न उग सके, जानो कीचड़ भी महान ।
इस जग में बिन प्रेम कुछ है नांही, ना जान सको बिन नाम ।। साहिब जी

1686 जिस में सत्त समा गया, वो ही हंसा जोत बनी ।
उसमें प्रेम–जोत समा गई, महां साग़र जा बनी ।। साहिब जी

1687 पूर्ण संत सतपुरूष का रूप हैं, रोम रोम में जोत बरे ।
उनकी संगत जो करें, हर ओर प्रेम जोत बरे ।। साहिब जी

1688 संत पाना ही साहिब पाना, मन माया बह जाये ।
जिस पर उनकी दृष्टि पड़े, आशा–तृष्णा मन संग बह जाये ।। साहिब जी

1689 संतन वाणी प्रेम रस बह रहा, जो सुने प्रेम रंग चड़ जाये।
उनकी दृष्टि में दृष्टि डाले, अंग अंग मेंप्रेम रस जाये ।। साहिब जी

1690 संत–स्पर्श जिसको मिले, उसका अंग अंग चेतन हो जाये ।
अन्दर का कचरा पल में जले, प्रेम की जोत जग जाये ।। साहिब जी

1691 बह रही प्रेम धार सतपुरूष की, सब जीवों की ओर ।
प्रेम अमृत का पान करि, झुको तुम हर ओर ।। साहिब जी

1692 जग में प्रेम बांटिये, हर जीव है प्रेम का अंग ।
प्रेम तो फूल की बास है, जिसका रूप ना रंग ।। साहिब जी

1693 तुम कली सूं फूल जब बनो, धारो बास का रूप ।
अब प्रेम महा–प्रेम में जा मिले, आत्म हुई हंसा–रूप ।। साहिब जी

1694 कोई ईच्छा रहे ना बाकि, जब सुरति सूं प्रीति जागी ।
जब ऊंच नीच दिखे ना, स्वांसा संग सुरति लागी।। साहिब जी

1695 पाप पुण्य ना दिन और रैन, ऐसा देश हमारा।
चांद नहीं सूरज नहीं, बिन ज्योति उजियारा ।। साहिब जी

1696 संतन वाणी प्रेम रस बह रहा, जो सुने प्रेम–मयी हो जाए ।
जो चरणी समर्पण करे, प्रेम स्वरूप हो जाए ।। साहिब जी

1697 प्रेम महिमां ना जानी, ना जाना मन का भेद।
एक सदी समान एक लम्हा, बिन प्रेम ना मन का भेद।। साहिब जी

1698 कितनी दूरी पर मंजिल क्यूं न हो, अनुभव के पँख महान ।
चलते चलते कम हो जात है, प्रेम काटे दूरी पल क्षण आन ।। साहिब जी

1699 मत भागो मन माया सूं, अनुभव बने कसौटि साथ ।
पकड़ो इनकी तार को, सार–सब्द सुरति संग साथ ।। साहिब जी

1700 कीचड़ को न त्याग, कमल उगे़ इसी संग साथ ।
पतले प्रेम धागे सूं, मन माया छूटें सार सुरति साथ ।। साहिब जी

1701 अनुभव सूं चलना आ गया, निज घर पहुँचो आप ।
हंसा प्रेम साग़र है, सब्द सूं पहुचों निज घर आप ।। साहिब जी

1702 बह रही प्रेम धारा साहिबन की, चारों ओर सदा साथ ।
सुरति में रहना आ गया, हर ओर पारस सुरति बरसात ।। साहिब जी

1703 खुशी में खुशी दिख़ती नहीं, ग़म में ग़म कुछ ना याद।
भुला दिया है प्रेम ने, गम में खुशी में कुछ ना भेद।। साहिब जी

1704 पहला प्रेम सतपुरूष सूं सब का, पाकर ही ये जाना है ।
कोई नहीं बिन आवरण के जग में, बदलियों को ही हटाना है।। साहिब जी

1705 प्रेमी प्रेसी खो जाते हैं, केवल प्रेम रह जात।
सभी प्रेम इस तन से करें, भूलें सच्ची बात ।। साहिब जी

1706 बृहंगा मत्त सुरति प्रेम की जोती, ये ही पार लगाती ।
परमपुरूष सतलौक ही मानो, पारस सुरति वहीं से आती।। साहिब जी

1707 अब तुम अपने आप को जानो, बिन अब तेरे कोई संग नांहि ।
कंई जन्मों से हंसा कैदी, हंसा बिन सतगुरू सुरति नांहि ।। साहिब जी

1708 जब लग श्रद्धा ना संग में, निजघर जाना नांहि आसान ।
सतगुरू चरणन सुरति डालो, सुरति की महिमां महान ।। साहिब जी

1709 जैसे देह पांच तत्व बिन, वैसे त्रिलौकी निरंकार बिना ।
जैसे मछली जल वहीणी, वैसे प्राणी सुरति नाम बिना ।। साहिब जी

1710 जैसे मन पांच इंद्री बिन, मोती सीप बिना।
जैसे पवन आकाश वहीणा, तैसे प्राणी निःअक्षर नाम बिना।। साहिब जी

1711 जैसे मन प्राण निरति बिना, गज मुक्ता गज बिना ।
जैसे हीरा तराशे बिन, तैसे प्राणी गुरू नाम बिना ।। साहिब जी

1712 जैसे कफूर कैले बिना, हीरा पारस पत्थर बिना ।
जैसे धरती जल वहीणी, तैसे प्राणी वो नाम बिना ।। साहिब जी

1713 जैसे तीन लौक निरंकार बिन, तन हंसा बिना ।
जैसे अमरलौक सतपुरूष वहीणा, तैसे प्राणी विदेह नाम बिना।। साहिब जी

1714 जैसे दिन प्रकाश बिन, सिंधु नीर बिना ।
जैसे मेघ बादल वहीणा, तैसे प्राणी अक्का नाम बिना ।। साहिब जी

1715 जैसे माता संतान बिन, सुरति प्रेम बिना ।
जैसे नयन दृष्टि् वहीणा, तैसे देह सार नाम बिना ।। साहिब जी

1716 जैसे काया श्वांस बिन, नौका पतवार बिना ।
जैसे सरवर जल वहीणा, तैसे प्राणी मूल नाम बिना ।। साहिब जी

1717 प्रेम भी तुम जग से करते, मिलती माटी धूल ।
सपनों से ही प्रेम करते, यही तो तुमरी भूल ।। साहिब जी

1718 जिनको तुम सुख दुख कहते, वह तो मन का जाल।
जमना मरना जग में तेरा, यही तो बंधन मूल।। साहिब जी

1719 हम सब हंसा रूप जहां, तन मन का जाल पसारा।
मन तरंग ने भरमाया, हम जागें पास किनारा ।। साहिब जी

1720 तूं आया जग में जाना ना, हीरा जन्म मिले ना बारंम्बार ।
तुम ऋतु अनुसार हो बदलते, सुख दुख भी बारंम्बार ।। साहिब जी

1721 पूर्ण सतगुरू जब संग मिले, सागर तट पास ठिकाना ।
सुख दुख अब एक समान लगें, हर ओर सूं प्रेम महकाना ।। साहिब जी

1722 आशा तृष्णा का महल भी टूटा, सब देख मन हुआ चकित।
हुआ मन तरंग का अंत, सुरति तरंग सूं औंकार चकित ।। साहिब जी

1723 सार नाम महक हर ओर उठी, जब अंदर सतगुरू पाया।
अपने देख आनंदित हुए, जब पारस सुरति का संग पाया ।। साहिब जी

1724 कोई मरा नहीं सब संग तेरे, तुम जागो तो वो जागेंगे प्यारे।
वे सुरति सूं हर पल संग तेरे, तुम निजघर वे भी संग तुम्हारे।। साहिब जी

1725 मानुष ही जग में ऐसा, जो सार नाम बिन प्यासा।
सार नाम में सुरति प्राण धरो, पल में पार हर प्यासा ।। साहिब जी

1726 कंई जन्म सूं जीव सोया पड़ा, गहरी नींद पड़ी ।
सपने भी माया के लेत, अंधी सुरति सोई पड़ी ।। साहिब जी

1727 जगत जंझाल सब झूठी सुरति, हो जा इन सूं पार।
जिसके बल सूं पार है जाना, वह तो बीच मझदार।। साहिब जी

1728 भव तरन अवसर है आयो, जागे तो होश में आयो ।
बहु जन्म के पूर्व पुण्य से, मानुष तन चोला पायो ।। साहिब जी

1729 जब लग पीड़ पराई ना जानो, प्रेम ना उपझे कोए ।
कौटि बंदगी कर्म धर्म सूं, छूटे ना बंधन कोए ।। साहिब जी

1730 हृदय विरह ना जागे, बाहिर को करे पुकार ।
यही तो भटकन जीव की, कैसे खुले मौक्ष किवाड़।। साहिब जी

1731 प्रेम तो उपझे आत्म सुरति सूं, विरह सूं सुरति धार ।
साहिब सूं प्रीति जब होये, प्राणों में प्राण आधार।। साहिब जी

1732 हर घट हंसा प्रेम का सागर, मन का घट नांहि ।
साधो शुभ दिन शुभ घड़ी, जब प्रेम बिन कुछ नांहि ।। साहिब जी

1733 सुरति निरति जब मिले, मूल सुरति प्रीत धार बन जाए ।
उल्टि स्वांसा जब चले, तन भी सुन्न हो जाए ।। साहिब जी

1734 अब धारा ही राधा (सुरति) बन गई, चली शिव नेत्र पार।
आत्म हंसा (कुंवारी) हो गई, लगन मंडल उस पार।। साहिब जी

1735 राम शरीका राम प्यारो, दूजा नहीं कोए ।
अंदर बाहिर अब राम प्यारो, दूजा बचा ना कोए।। साहिब जी

1736 मीरा खोकर कह गई जग को, डूंढो मुझे मैं खोई ।
पायल नांहि घुंघरू नांहि, ले चली छम छम चाल निज खोई ।। साहिब जी

1737 कोई साधक छेः तन तज हंसा होई, विहंगम चाल सूं पार ।
सार नाम की दात सूं, जा पहुंची साहिबन दरबार ।। साहिब जी

1738 सब हंसों ने आ घेर लिया, क्यों करी इतनी देर ।
जब कोई हंसा निज घर में, सुरति की धार हर ओर।। साहिब जी

1739 प्रेम सुरति जब बने, साहिबन संग निज साथ ।
अब घर खाली हो गया साधो, केवल साहिबन का संग साथ।। साहिब जी

1740 सुरति निरति मन पवना, मिल के बने ईक तार ।
अब और कुछ ना चाहे, सब सारन का सार ।। साहिब जी

1741 एक ही तो निजधाम प्यारो, सार नाम की तार ।
सार नाम में सब समाया, डूब के जाता पार ।। साहिब जी

1742 प्रेम निशानी मौत की, मर कर करो इसे पार ।
बिन मरे इस का भेद नांहि, मरते ही प्रेम की तार।।साहिब जी

1743 मरने के नाम सूं जग डरे, यही तो बड़ी भूल ।
बिन मरे इसे पावे नां, कौटि कर्मन भूल।। साहिब जी

1744 सोया जीव ना जाने प्रेमे, वह करता मन से बात ।
अंदर सूं सुरति प्रेम ना, करता जीवन घात।। साहिब जी

1745 सार दात पाये बिना, मन का छूटे ना साथ।
आत्म ना हंसा हो सके, प्रेम की कैसी बिसात।। साहिब जी

1746 प्रेम बिन जीवत मरना ना हो सके, सार नाम बिन बने ना बात।
मरिये तो मर जाये, तन छूटे तो बने ये बात।। साहिब जी

1747 प्रेम सागर अथाह है, इसे डूब के करयो पार ।
जो डूब गया सो पा गया, बिन डूबे विच मझेदार ।। साहिब जी

1748 सार नाम सूं मोक्ष, सतगुरू सू पावे ये दान ।
सतगुरू से प्रीति यु करें, मोह छूटे जन्म मरन समान ।। साहिब जी

1749 हंसा संग माला प्रेम की, देखें साहिब उस पार ।
यह माला नाम की सुरति, विरह में पहनो पार ।। साहिब जी

1750 नैनन सूं अश्विन की धारा, देती महां प्रेम संदेश ।
विरह अश्विन बहती धारा, देती प्रेम संदेश ।। साहिब जी

1751 अश्विना धारा प्रेम का धागा, मत तोड़ो ये तार ।
टूटे फिर कैसे जुड़े, यह तो बहती धार ।। साहिब जी

1752 प्रेम बिन कुछ जग है नांही, प्रेम ही प्रेम चहुं ओर ।
तुम कमल समान खिलो तो, कीचड़ की होत पहचान।। साहिब जी

1753 बिन कीचड़ तुम कमल ना जानो, तांहि से प्रकटे प्रेम ।
अमर लौक बिन प्रेम कुछ है नहीं, नहीं प्रेम बिन नाम।। साहिब जी

1754 तुम सूं तुम खो गये हो, कैसे उपझे प्रेम की तान ।
प्रेम ही सीढ़ी हंसा होने की, चड़ो तो सुन लो तान ।। साहिब जी

1755 प्रेम ही पूर्ण सार नाम है, निज धाम फूलों की वास ।
तुम तो कली, कली ही रह गये, कैसे प्रकटे फूलों की वास।। साहिब जी

1756 तेरा अंदर जगमग हो तो, कचरा राख बने ।
प्रेम ज्योत सार नाम सूं, महां प्रेम जोत बने।। साहिब जी

1757 प्रेम धार महां सागर में समा कर, महां सागर हो जाए ।
बिन डूबे ये पार हो कैसे, डूब के पार हो जाए ।। साहिब जी

1758 प्रेम तो ऐसी दात है प्यारो, शब्दों में कैसे समाए ।
यह तो बहती सुरति धारा, मुख मन में ना आए।।साहिब जी

1759 गृह उजाड़ एक सम देखो, भाव मिटावो दूजा ।
आंख ना मूंदो द्वार ना रोको, बिन साहिबन दिखे ना दूजा।। साहिब जी

1760 जीव स्वंय को तन है मानता, यही है उसकी भूल।
आत्म को स्वंय सूं बिन है मानता, यही हमरी भूल।। साहिब जी

1761 जो कोई रहे सदा सन्तोष में, हर्ष शौक़ का नांहि ध्यान ।
उपकारी–दानी प्रेम की जोती बने, जा का संत चर्ण में ध्यान ।। साहिब जी

1762 अब केवल सुरति है, मन नांहि प्यारे जान।
सुरति गली अति सांकरी, तहां ना दो ले जान।। साहिब जी

1763 पारस सुरति संतन के पासा, विशेष शक्ति इस में जान।
सतगुरू सुरति बदले जीव की, इसे सुरति ध्यान ले जान।
ध्यान ही आत्म रूप है, सुरति निरति का मेल इसे जान।। साहिब जी

1764 मन मिटता माया मिटती, अंदर केवल ध्यान।
ईन्द्री जाल सब मिट गया, बचती सुरति महान।। साहिब जी

1765 जो जीवित मरने को राजी हुआ, सोहि पाता सच्चा प्रेम।
प्रेम मृत्यु जान लो, यही मृत्यु जगाती प्रेम।। साहिब जी

1766 तीन लोक से भिन्न हो गये, सुरति की धुन में खो गये।
मोत पल पल हो रही, स्वांसा भी पल पल में खो गई।। साहिब जी

1767 सेवा किसी से नांहि, सब की सेवा आप।
भजन आरती समय अनुसार, निज की सेवा आप।। साहिब जी

1768 बिन वैराग नहीं निस्तार, प्रेम भक्ति बिन नहीं होत भव पार।
प्यारो ताका करो विचार, पूर्ण सतगुरू मिले तो पार।। साहिब जी

क संत स्नेहि नाम है, नाम स्नेहि संत।
नाम स्नेहि संत, नाम को वही मिलावें।
वे हैं वाकिफकार, मिलन की राह बतावें।। साहिब जी

1769 सुमिर सुमिर नाम, होये अंदर उजियारा।
हर पल रहो सुरति में, जाओ भव सागर पारा।। साहिब जी

1770 स्वांसा सुरति और नाम एक, उर्दमुखि स्वांसा मेरे भाई।
स्वांसा पलट खात है, पल में सुश्मिना खुले मेरे भाई।। साहिब जी

1771 प्रेम के पहले ही कदम पर, मंज़िल होती संग साथ रे।
जब सतगुरू पारस सुरति रे, संग साथ रे।। साहिब जी

1772 स्थिर कारज चन्द्र नाड़ी सूं, सार सब्द सुरति ध्यान चेतन स्वर कहलाये।
सुरति धारा अब उर्दमुखि हुई, नाभी में गिर नहीं पाये ।। साहिब जी

1773 ईड़ा पिंगला स्थिर होत जब, उल्टा चले श्वांस ।
ज्यों ज्यों पग आगे धरे, गिरे और उठे श्वांस ।। साहिब जी

1774 शुन्य छोड़ स्वर सुरत कमल में आवे, लग गया संतन तीर ।
जो पहुंचे पूर्ण सतगुरू को पावे, धरे चरणन शरीर ।। साहिब जी

1775 मीरां आई मुल्तान पुर से, मान के कृष्ण भगवान की बात।
पानी भरने आई थी, कियो कमाली का साथ।। साहिब जी

1776 सांकरी स्वांसा का भेद है, जे तूं जाना भव पार।
सार नाम सुरति स्वांस ईक कर, पल छिन पहुंचे पार।। साहिब जी

1777 नहर छोड़ दरिया बनो, जिससे जुड़ता संग साथ।
नहर समान कर्म नित करते, कैसे हों साहिबन संग साथ।। साहिब जी

1778 सतगुरू का कुछ नां कहना, करते हैं हल चल का काम।
विश्वास करना कोई आसान नांहि, फ़िर भी जगाने का करते काम।। साहिब जी

1779 प्रेम पारस प्रेम परम गुरू, प्रेम भक्ति प्रेम पार।
प्रेम प्रकटे साधक उभरे, बिन प्रेम जाये यम द्वार।
पूर्ण प्रेम जब बना, हंसा बन निजघर द्वार।। साहिब जी

1780 भावना बिन मन से पार नां, संत संगति भई तो क्या भया।
अमृत नाम की दात संग, बिन भावना सब गया।। साहिब जी

1781 भावना संग जिन जिन ढूंढा, तिन ही तो पायो।
बिन भावना क्या ढूंढा, किस किस ने पायो।। साहिब जी

1782 तेरे अंदर सांच जब, बाहर क्या दिखलाये।
जागा नर जानत सबो, अंदर की जोत जग जाये।। साहिब जी

1783 नैना मेरे नां बस में, सतगुरू दरस बिन जल द्वार।
वह नीचे धरातल आतुर, जैसे बहे नैना नीर।। साहिब जी

1784 वह तो जाई समात उसी में, प्रेम जोत संग रे।
लोचन त्रिवेणी समान रे, ला अथा प्रीत साहिबन संग रे।। साहिब जी

1785 दोनों का कहना कुछ, काल का संग पा गयो।
सुरति से सब दे गया, प्रेम की बरसात कर गयो।। साहिब जी

1786 प्रेमी वैर विरोध कुछ ना जाने, बिन प्रेम कुछ और ना जाने।
इस के अंदर बाहर है प्रेम, बिन प्रेम सुरति कुछ ना जाने।। साहिब जी

1787 सब्द ही सुरति का द्वार तुम जानो, इस में भेद भाव मत जानो।
स्वांस सब्द साधि चढ़ो आकाश, त्रिकुटि मध्य तत्व को जानो।। साहिब जी

1788 त्रिकुटि मध्य तत्व है भाई, तहां सुरति सूं देखो जाई।
त्रिकुटि मध्य आत्म रहाई, इसे मथि आगे को जाई।। साहिब जी

क राम जी ने प्रेम भाव से, शबरी की प्रीत को जाना।
बिन विचार सहज भाव से, शबरी के अटूट प्रेम को जाना।

ख फ़िर खाकर झूठे बैर शबरी के, शबरी की सच्ची प्रीत पहचानी।
करूणानिधि प्रभु ने युग–युग में, भगतों को प्रीत प्रेम से जानी।

ग फ़िर पल ही पल में, सब भगतों का किया कल्याण।
फ़िर भी जन्म मरन का बंधन ना छूटा, यह बंधन अति महान।

घ सहज पथ के सतगुरू बिन, मिले ना मोक्ष पद का दान।
जागो तो ही जानो, चौथे लोक की महिमां महान।। साहिब जी

1789 दो आंसू बहाना आता नहीं, प्रेम का संग कहां।
साहिब पे भरोसा आया नहीं, सुख का संग कहां।। साहिब जी

1790 बिन भक्ति कर्म धर्म बेकार, भजन भाव समर्पण दया का।
मन मान तजे सार नाम सूं, सुरति में वासा सतगुरू का।। साहिब जी

1791 नैनन ना मेरे बस में रहें, सतगुरू दरस जल बूंद बहें।
वह नीचे को धरातल आतुर, वैसे ही नयन बहें।। साहिब जी

1792 वह तो जाई समात उद्धि में, प्रेम प्रीति संग साथ।
लोचन त्रिवेणि समान, लाह अथः प्रीति का संग साथ।। साहिब जी

1793 जैसे चांद चकौर की प्रीति, मृगी नाद के संगा।
तैसे प्रीति साहिबन संग, लोक लाज तजि संगा।। साहिब जी

1794 भक्त और सतगुरू कर्म वचन, सुरति भाव ईक जान।
दोनों का वियोग अति भारी, प्रेम रोग औषधि प्रेम जान।। साहिब जी

1795 स्वामी सुरति में वास करे, वियोग कैसी देन।
हर स्वांस में वासा साहिब का, सतगुरू की यही देन।। साहिब जी

1796 मां से बिछड़े बच्चे बिलख़ते, साधक की दशा ले जान।
ऐसा होकर जो पुकारे, साहिब को अंग ले जान।। साहिब जी

1797 जागे को खुशी में खुशी नहीं दिखती, ग़म में ग़म नहीं साथ।
भुला दिया है प्रेम ने सब कुछ, बिन सतगुरू नहीं कुछ साथ।। साहिब जी

1798 पहला प्रेम सतगुरू सूं सब का, पाकर जानो ये ।
आत्म केवल प्रेम का अंग है, मन माया बादल रे।। साहिब जी

1799 प्रेमी प्रेसी कहां है रहते, प्रेम बास बने ।
तन का प्रेम प्रेम नांहि है, प्रेम महासागर बने।। साहिब जी

1800 तीन लोक में मन है राजा, तन मन संग समाया है।
अब तुम इतना जान लो प्यारो, आत्म ही प्रेम की धारा है।। साहिब जी

1801 नानक कबीर रे दास प्यारे, प्रेम की जोत जला दी है।
सच्च प्रेम आनंद की ज्योती, वे तो प्रेम के सागर हैं।। साहिब जी

1802 सुरति से सुरति जगाना, पूर्ण सतगुरू ही कर पावे।
मन से बात बने नांहि, मन जग में ही भटकावे।। साहिब जी

1803 सतगुरू आगे समर्पित होना, साधक का काम बन जावे।
सांचा दिलदार कोई ही प्यारो, सांचा खरीद–दार बन पावे।। साहिब जी

1804 सांचा खरीद–दार पाने को, भृंगा बारम्बार ढूंढन आवे।
फेरे पे फेरे लगा रहा, कोई प्यारा दिलदार मिल जावे।। साहिब जी

1805 हिन्दु या मुसलमान सिख प्यारो, हमशक्ल बन जावे।
मन माया का लेप गया, सुरति में सुरति समावे।। साहिब जी

1806 संत जगत हितकारी हैं, जिसे पाया उसी की करते बात।
श्रद्धस विश्वास प्रेम से पार, धागे में गांठ की मत कर बात।। साहिब जी

1807 जो कोई करे संगत संत्त की, दिन–दिन बड़े प्रेम ।
मन–माया सब छूटते, सार–सब्द सूं आनंद–प्रेम ।। साहिब जी

1808 सतगुरू चरणन सुरति को डारो, तो बात कठिन जाने।
प्रेम भाव अति भयो भीतर, ताला खुले तो जाने।। साहिब जी

1809 पपीहा आपन प्राण तक त्यागे, स्वाति नक्षत्र की बूंद ही मांगे।
लजे पतंग जोति आगे, प्राण तजे और प्रेम ही मांगे।। साहिब जी

1810 राजा और रंक घर, दे दीपक उजियार।
प्यारो मत्ते पतंगे के, प्रेम ही करता पार।। साहिब जी

1811 बिन तड़प के विरह ना जागे, बिन विरह प्रीत ना होई ।
प्यारो प्रेम मिलावे पीव से, बिन प्रेम ना अपना कोई ।। साहिब जी

1812 जब तक विरह ना उपझे प्यारो, तब लग प्रेम नांहि ।
जब तक सुरति प्रेम ना सींचरे, नेत्र अश्विन नांहि ।। साहिब जी

1813 पहला प्रेम कभी ना मिटता, प्राणों का साथ निभाता ।
हंसा परमपुरूष की ज्योति, ये सब वे नाम से जाना जाता।। साहिब जी

1814 'दास' हूं मैं दासा–पन मुझ को भाए, सब जीवों का मान ।
यही दासा–पन सतपुरुष को भाए, सब जीवों में छूटे मान।। साहिब जी

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

परमहँसों का प्रेम पथ

भावार्थ : संत/सतगुरू परमहँस जी सदा सब संसारी जीवों को प्रेम भरी निग़ाह से देखते हैं । जो भी मनुष्य/जीव इस चराचर जगत में हैं, संत/सतगुरू परमहँस जी सब को उसी मालिक का रूप अर्थात हर प्राणी में मालिक का अंश–आत्मां ही मानते हैं । संत सतगुरू परमहँस जी को कोई मानव यदि कूट वचन अथ्वा अच्छे वचन भी कहे, वे शांत भाव से ही सुनते और शांत भाव से ही उत्तर देते हैं अथ्वा उनकी वाणी अमृत समान उपयोगी होती है । जब भी कोई उदविग्न होकर बुरा बर्ताव क्यूं ना करे तो भी वह उसके दुर–व्यवहार व अंहकार को नज़र अदांज़ करके उसके अंदर, आत्मां के सत्तपुरूष अंश को ध्यान में रखते हुए कौध के स्थान पर दया भाव दर्शाते हैं, क्योंकि कर्म तो शरीर करता और भोगता है जबकि आत्मां अज्ञानता वश सिर्फ साथ ही निभाती है । क्योंकि लाखों जन्म लेने के कारण आत्मां खुद को शरीर मान बैठी है, वह तो अपनी असल सत्ता तक को भी भूल बैठी है ।

इसी कारण संत सतगुरू परमहँस जी मानव को अपने आप को जानने का उपदेश देते हैं क्योंकि वे अक़्सर उस एक ही मालिक साहिब सतपुरूष जी की महिमां व सत्ता का बख़ान करते रहते हैं । संसारी मानव मोह माया ग्रस्त हुआ, उसी साहिब सत्ता, जिसका अंश वह खुद आत्म रूप में है, को जानने व अपने मूल को पाने की चेष्ठा तक भी नहीं करता, यही संतो की चिंता का मूल कारण होती है जिस कारण वह अक़्सर मानव को मालिक की ओर अग्रसर होने अर्थात आध्यात्मिक उन्नति करने को प्ररित करते रहते हैं ।

कोई बिरला ही उनके प्रवचनों को सुनकर जीवन में अपना उद्धार करता है । क्योंकि जगत माया के महाजाल में मानव संसारी सुख को ही सब कुछ मान बैठा है और उसकी सारी चेष्ठा जगत भौग पदार्थ इक्कट्ठा करने में लगी हुई है । जबकि यथार्थ को जानते हुए भी कि सुख के बाद दुख आते हैं जैसे दिन के बाद रात आती ही है । अच्छा और बुरा तो दोनों एक दूसरे के बाद लगातार आने ही आने हैं परन्तू फिर भी वह केवल सुखी ही सुखी रहना चाहता है, दुख से तो अति दूर भागने को तत्पर रहता है जिसे तो वह देखना भी नहीं चाहता । सुख के समय अहम वश अपनी उपलबधियों को अपनी क्रिया द्वारा अर्जित किया हुआ बताना, ऐसी डींगें हांकता है और दुख क्लेश व परेशानी के समय सब मालिक का किया धरा है उस पर दोष आरोपन करने लगता है । जबकि सत्य तो यह है कि इस जीवन के अधिकांश सुख–दुख (लगभग दो–तिहाई) तो उसके प्रालब्ध यानि उसके पूर्व जन्मों के संचित कर्मों के फ़ल परिणाम होते हैं । अर्थात इस जीवन के अधिकांश सुख दुख तो प्रालब्ध के कारण प्राया भोगने को मिलते हैं ।

बावजूद इसके अच्छा होने को मेरी मेहनत और कभी बुरा घट जाए तो मालिक की देन समझना व कहना सर्वथा उचित नहीं है । इस सबके बाद भी मानव अच्छे–बुरे कर्म करने के लिए स्वतंत्र है । इसी कारण भौतिक प्रलोभनों वशिभूत हुआ मनुष्य कर्म करते करते अंततः महांकाल जाल के चौरासी चक्र में फंसता चला जाता है । जो कोई अगर अपने विवेक से पूजा पाठ, यज्ञ–तप, उपवास, तीर्थ, व्रत अथ्वा निराकार की भक़्ति या अपने

अपने आराध्य को भजने का दिखावा करते प्रतीत होते हैं, अधिकतर तो जगत भौग विलास ही मांगे जा रहे हैं और जो बाकी चन्द, दान–पुण्य स्वर्ग की अभिलाषा से कर रहे हैं, सांसारिक भौग घर सम्पत्ति, काम–वासना ही जगत में भोगते हैं । अगर स्वर्ग भी चले जांए तो वहां भी तो यही सब है, काम–वासना के लिए युवा अप्सरांए, खाने को मनचाहा भौजन–फल, सारी ऐश मौज परस्ती बिना बाधा के उपलब्ध होती है पर अच्छे कर्म फल समाप्त होने पर फिर मृत्यू और जन्म बन्धन में मानव फंस जाता है। युगों युगों से मानव इस त्रासदी में उलझा हुआ है । कोई बिरला जन ही अपने अहम को तज के संपूर्ण सतगुरू परमहँस जी की शरणी में अपने मूल अर्थात सहज सत्त मार्ग भक्ति की ओर अग्रसित होता है ।

सर्व मानव समाज का स्वभाव व आचरण, सदा मन माया में ही मग्न रहना परमहँसों की चिंता और व्यथा का एकमात्र कारण है। सहज सत्त मार्ग के संत सतगुरू परमहँस सारा जीवन मानव की आध्यात्मिक उन्नति के लिए ही प्रयत्नशील रहते हैं, ताकि जीव अपने आप को जाने और अपने मूल में जा समाए और मोक्ष को पा कर आवागमण के ईस क्रूर कष्टप्रद माया मोहनी जाल से सदा सदा के लिये मुक्त हो जाये।

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

6 'सार सब्द' की महिमां

1815 सब्द लिया जिन सब दिया, मन मोह अंहकार ।
सब्द सूं जोडो सुरति को, भागें काम क्रौध अंहकार ।। साहिब जी

1816 सब्द–सब्द बोह अन्तरा, सार–सब्द सुरति धरें।
सार–सब्द निज साहिब हैं, सुरति में ध्यान धरें ।। साहिब जी

1817 मूल सुरति सतगुरू रूप है, मूल पूजा सतगुरू पांव।
सार नाम सतगुरू पारस सुरति है, सतसुरति सुरति भाव।। साहिब जी

1818 सार सब्द निज सार है, तन मन झूठी माया।
निज दर्पण देखी मांझ के, झूठी माया झूठी छाया।। साहिब जी

1819 कहे 'वे नाम' नाम की महिमां जान, मत बन तीन लोक मेहमान।
मन शब्द का मेल ना, नाम से निज को तरेया जान।। साहिब जी

1820 संसार मीठी नींद है दे रहा, कैसे उतरो उस पार ।
सार नाम सूं मिलते सत्तपुरूष (साहिब) हैं, तांई सूं हात उस पार।। साहिब जी

1821 सात्विक ईक–निष्ठ वैराग युक्त, सार सब्द कर देत।
देह बुद्धि विकार रहित हो, प्रेम विरह पार कर देत।। साहिब जी

1822 जैसा मिले सो पहन लें, जैसा मिले सो खाएं।
सार–नाम ये दात है, सब कुछ ही मिल जाए ।। साहिब जी

1823 सार–नाम लिया तिन सब लिया, सब ग्रन्थों का भेद ।
बिन पाए नरकें गए, बिन संतन मिले ना भेद ।। साहिब जी

1824 पत्ता टूटा डाल से, लिया पवन उड़ाए ।
साथ छोड़ा सज़र (वृक्ष) का, अंतिम पत्ता जाए ।। साहिब जी

1825 सजर कहे पत्ते सूं, तुझ बिन कैसे डाल ।
पत्ता कहे सजर सूं, इक जाए तो दूजा उस डाल ।। साहिब जी

1826 जे चिन्ता सतनाम की, मन की छोड़ें तरंग ।
जो चित्तवे सतनाम को, मन का छूटे संग ।। साहिब जी

1827 माया में सोया हर जीव पड़ा, संत शरणी में नींद ।
संत कृपा बिन सब्द ना पावे, बिन सब्द कटे ना नींद ।। साहिब जी

क लोहा चुम्बक प्रीत सूं, लोहा लेत उठाए ।
ऐसा सब्द साहिबन का, क़ाल से लेत छुड़ाए ।। साहिब जी

1828 दुख़ सुख़ एक समान हों, तभी जागा तूं जान ।
सत–सब्द सुरति धरें, मन में रहे ना मान ।। साहिब जी

1829 निज स्वार्थ सेवा करें, जागें पल छिन एक ।
मूल सब्द को पाए कर, सहज बने पल छिन एक ।। साहिब जी

1830 सुरत–सब्द सूं मन माया गई, आत्म हंसा रूप ।
सार–सब्द की दात से, पाओ सच्चा (हंसा) रूप ।। साहिब जी

1831 बिन मांगे मोती मिलें, जब सार–सब्द से प्रीत ।
बिन रीत की प्रित से, साहिब की बरसे प्रीत ।। साहिब जी

1832 माया मन की मोहिणी, पल–पल दे भरमाए ।
सतगुरू सब्द जे संग में, क़ाल–जाल मिट जाए ।। साहिब जी

1833 प्रीती लगी सतनाम सूं, ईक पल भी बिसरे नांहि ।
सुरति ऐसी हो गई, अब लागी छूटे नांहि ।। साहिब जी

1834 जो पावत सब्द–सत दानी, नांहि पड़त नरक की ख़ानी ।
सार–सब्द सब्द विदेही, काटे नर्क की खानी ।। साहिब जी

1835 सार–नाम निज दाम से आया, साहिबन कीन निवास ।
जो जन सब्द को पाए, निजघर पाए वास ।। साहिब जी

1836 सार–सब्द भरि पिया, रम गया गुरू ज्ञान ।
बाजा नगाड़ा सब्द का, सुरत कमल सतगुरू धाम ।। साहिब जी

1837 अक्का नाम जानेगा सतगुरू सूं, सतपुरूष ही आन समाई
लिखा ना जाई पड़ा ना जाई, सुरति मांहि पाई ।। साहिब जी

1838 जब अंदर बाहर नाम ही रम गया, जित देखो तित नाम ।
नाम बिन कुछ जग है नांहि, आत्म जीव में सेतु प्राण ।। साहिब जी

1839 चिन्ता मन की मोहिणी, काड क़लेजा खाए।
सार–सब्द की दात सूं, पल में शांत हो जाए ।। साहिब जी

1840 सार–नाम की दात सूं, जाओ सत्तलौक संग–सरकार ।
हुक़मो–हुक़म चलाए, वही सच्ची सरकार ।। साहिब जी

1841 चिन्ता मन की मोहिणि, जग में सबै भरमाए।
सार–सब्द की दात सूं, हर भ्रम मिट जाए ।। साहिब जी

1842 आत्म ज्ञान होते ही, अन्दर का खुले किवाड़ ।
दात पाई तब जानिए, जब अंदर भयो उजियार ।। साहिब जी

1843 दात पाई तब जानिए, जब अंदर भया उजियार ।
जो सूनी वो ही होई, अंदर के खुलें किवाड़ ।। साहिब जी

1844 अधर तत्व में सब्द निवासा, उसी में करो तुम वास ।
सार–सब्द में रहो समाये, खुलें द्वार निजधाम हो वास।। साहिब जी

1845 सात सुरत का सक़ल पसारा, बिन सुरति कुछ नांहि न्यारा ।
सार सुरति आत्म चेतना, आत्म सूं हंसा रूप प्यारा ।। साहिब जी

1846 सार–नाम की दात सूं, मन मर्कट हो जाए ।
सत सुरति नित ध्यान धरें, सुख़ ही सुख़ समाए।। साहिब जी

1847 दुख़ सुख़ आवत जात है, दुख़ से करो तुम प्यार ।
जब दुख़ ही संगी साथी है, सार सुरति सूं बहती धार ।। साहिब जी

1848 निरंकार है देता जीव को, अन्न पानी का दान ।
तांहि तो जीव है क़ैद में, सार सुरति सूं चेतन प्राण ।। साहिब जी

1849 श्वांसा डौरी बांध कर मन, आत्म भरमाए ।
जीते जी भेद को जान लो, मन ना सके भरमाए ।। साहिब जी

1850 काया क़जरी जग भावे, मन कुंझर चले दसों ओर ।
अंकुश सार–सब्द सूं, आत्म ले चले मन सूं दूर ।। साहिब जी

1851 सार सुरति के बिना, मन तो केवल काग़ा ।
सार–सब्द की दात सूं, छूटा यह मन काग़ा ।। साहिब जी

1852 मन उरजाए दुख़ पास में, कौटि कुक़र्म कराए ।
अपने किए कुछ होत ना, अक्का–सब्द पार कराए।। साहिब जी

1853 छोड़ काग़ज और लेख़नी, निःअक्षर सब्द को पाले ।
पौथी पुस्तक छोड़ी के, निर्वाण पथ तूं पा ले ।। साहिब जी

1854 मन–माया तूं त्याग दे, सुरत–सब्द का ध्यान ।
निःअक्षर–सब्द सुरति धरे, पल छिन में निर्वान ।। साहिब जी

1855 सार–नाम लिया जिन सब लिया, सब जन्मों का भेद ।
बिन नामें जग में रहे, काल–जाल संग नांहि भेद ।। साहिब जी

1856 साहिब की महिमां साहिब जाने, और ना जाने कोई ।
उनका आदि और अंत न कोए, अंदर बाहर एको होई ।। साहिब जी

1857 चाहे लाख़ यत्न करो, छानो चाहे ब्रह्मण्ड ।
बिन सार–सब्द छूटे नांहि, देह घेर का दण्ड ।। साहिब जी

1858 सार–नाम स्मिरो सुरति सूं, होए दुख़ों का नाश ।
कलि–क़्लेश नासें स्मिरन सूं, प्रेम फैले चंहु ओर ।। साहिब जी

1859 साहिब मन मरगट भया, जब सत्त–सब्द हो पास ।
निःअक्षर–नाम बांधे बिना, मन छोड़े ना आत्म साथ ।। साहिब जी

1860 लागी डौरी सार–सब्द की, चड़े हंसा लिए उजियारा ।
सतगुरू दया जब होत है, हंसा चले संग लिए उजियारा ।। साहिब जी

1861 अधर तत्व में सब्द निवासा, तांहि में साधक करे निवास ।
जो साधक धियावे सुरति सूं, पल में निज घर वास ।। साहिब जी

1862 सार–सब्द के नाम का, जहां नांहि लवलेस ।
पानी तक तहां ना पीजिए, घर हो या विदेस ।। साहिब जी

1863 सार–नाम जिन जानेया, तिन घर आवे संत सपूत ।
एक साहिब के भजन बिन, काग़ा फिरे कपूत ।। साहिब जी

1864 माया मोह सब त्याग कर, सत–सब्द धरो ध्यान ।
तारा मण्डल बौध के, अमरपुर देस निज धाम ।। साहिब जी

1865 मन की तरंग चंहु ओर है, कैसे छूटे संग ।
सार–नाम की दात सूं, उल्टी चले तरंग ।। साहिब जी

1866 काम–क्रौध–लोभ–मोह–अंहकार में, सभी उलझ के रह गए ।
साहिबन सार–नाम दात बिना, चौरासी मांहि रहे भरमाए।। साहिब जी

1867 मनवा जाई दरी पर बैठा, सार–नाम रस पाग ।
अब मन भी देता सार तरंग, आत्म के संग लाग ।। साहिब जी

1868 अक्का–नाम सुरति चेतन करे, आशा–तृष्णा छोड़े संग ।
तब बुद्धि वश में होत है, मन के छल–कपट छोड़े संग ।। साहिब जी

1869 सार–सब्द सूं सुरत लगा ले, सतपुरूष मिल जाई ।
मानसरोवर मल–मल नहाना, मन मैला छुट जाई ।। साहिब जी

1870 नाम बिन नांहि निस्तारा, बात कंहु मैं तोहे ।
सब्द है कुण्झी मन दियो ताला, सतगुरू सूं सब होए ।। साहिब जी

1871 किसी की नाव कौन खेवेटिया, काहे को नाव रची ।
सत्त की नाव, सुरत–सब्द खेवेटिया सत्तगुरू नाव रचाई ।। साहिब जी

1872 मन से मन पूर्ण ना मिटे, कौटिन करो उपाए ।
सत्त–सब्द की दात सूं, पूर्ण मन मिट पाए ।। साहिब जी

1873 सब्द पाई मन वश करें, सहज को पावें सहज ।
सतगुरू सब्द निज मौक्ष है, सहज योग निज सहज ।। साहिब जी

1874 जागा उसी को जानिए, सब्द बाण जिन ओर ।
धन–धन जानो उस जीव को, जिस पाई मौक्ष की दोड़ ।। साहिब जी

1875 जग सूं उसकी प्रीत ना, ध्यान में दिखे़ सतगुरू उभरी प्रीत ।
सार–सब्द की दात सूं, मन बनता संगी उभरे प्रीत ।। साहिब जी

1876 सार–सुरति जे पास हो, पूर्ण मन बह जाई ।
नाद सुने निराकार जोत दरशे, जीवन सफ़ल हो जाई ।। साहिब जी

1877 विश्राम पाना कोई सहल ना, पा लो होत कमाल ।
शरीर सुन्न हो जात है, सत्त–सब्द का ये कमाल ।। साहिब जी

1878 मन–माया के देश ये, कर्म धर्म उलझाए ।
बिन नाम सूं छूटे नांहि, कौटिन करो उपाए ।। साहिब जी

1879 सार–सब्द सूं सुरति जोड़ो, सुरत–कमल संतन ध्यान ।
पल ही पल साहिबन दर्शन करो, पल में पहुंचों निजधाम ।। साहिब जी

1880 सार–सब्द में सुरति धरो, मलीन वासना जाए ।
सहज सूं सहज धारा बहे, वासना त्यागी जाए ।। साहिब जी

1881 बिन सार–नामें कमला फिरे, कभी ना जागन होए ।
नाम ना जाने उस गांव का, जे निज घर भूला होए ।। साहिब जी

1882 भरिए माटी सूं पैर–तन–देह, पानी सूं उतरे खेह ।
मूत पलीती कपड़ा तन होई, साबुन सूं लईए ओह धोए ।। साहिब जी

1883 पापी मन मति भरि कुमति, सार–सब्द सूं शुद्धी होए।
हंसा आत्म तब बने, सतगुरू संग जब होए ।। साहिब जी

1884 सार–नाम ही सांचा प्रेम है, क्रौध–मोह–लोभ को धोत ।
निज स्वार्थ सब बह गया, सार सब्द सूं शुद्धी होत ।। साहिब जी

1885 सार–नाम जहाज है, चढ़ो तो उतरो पार ।
जो सुरति सूं सेवते, मन–माया मिटे उतरे पार ।। साहिब जी

1886 सार–सब्द सच्चो साहिब हैं, जो देवे सो संत ।
सुरति में डाले सो साधक, श्रद्धा समर्पण संत ।। साहिब जी

1887 सार–सब्द पाई नाव सतगुरू, खुद ही खे़वन हार ।
जो साधक नाव में बैठ गया, संत पार लगावन हार ।। साहिब जी

1888 हंसा हमारी जात है, मात–पिता हैं साहिब ।
राह हमारी केवल सतगुरू, सार–नाम मिलावे साहिब ।। साहिब जी

1889 दृढ़ विश्वास सार–नाम ध्यावे, सो सिधावे सत्तलौक ।
इस लौक में बहुरि ना आवे, जन्म–मरन का छूटे लोक ।। साहिब जी

1890 अनहद धुन में खो जाओ, निरंकार के दर्शन पाओ।
आज्ञा चक्र में जब तुम जाओ, सतगुरू चरणन ध्यान लगाओ ।। साहिब जी

1891 'दास' गया और आया सतलौक से, पाई सार–सब्द की दात ।
पालो सार–सब्द की दात प्यारी, चलो परम पुरष के पास ।। साहिब जी

1892 आत्म रूप हर जीव है, माया रूप संसार ।
पारस रूपी संत हैं, आत्म को करें भव पार ।। साहिब जी

1893 जो साधक नाम दान है पाता, निज घर का पता पाता ।
मन को तज अमृत है पाता, उल्टे जाप का राज़ पाता ।। साहिब जी

1894 सार–सब्द प्रेम जिन लागा, सोही उतरे भवजल पार ।
बिन सार–सब्द की दात के, कोई न पावे मौक्ष द्वार ।। साहिब जी

क सार–सब्द हृदय धरा, भयो पाप का नाश ।
जैसे चिंगी आग़ की, पड़ी पुराने घास ।। साहिब जी

1895 सार–सब्द से सुश्मिना जागे, जागे त्रिकुटि द्वार ।
आज्ञा–चक्र में पहुंच कर, करें सतगुरू दीदार ।। साहिब जी

1896 जिन सार सब्द को जानेया, वोहि भव निधि सूं पार ।
सार–सब्द एक जहाज है, जो चढ़ें सो उतरें पार ।
जो ना जहाज पे आ सकें, वो कैसे उतरे पार ।। साहिब जी

1897 सुरति हृदय में वासा, निरति स्वांसा सेतु रूप ।
स्वांस में सार–सब्द को डाल दे, पा ले हंसा रूप ।। साहिब जी

1898 दीपक नाम सूं जग गया, महल भयो उजियार ।
सुरति रमी सार–नाम में, नाम का तेज निख़ार ।। साहिब जी

1899 सब्द सूं जग़मग़ हो गया, साहिबन दिया दीदार ।
सौलहं सूर्य ज्योति प्रकटे, संग पहुंचे दरबार ।। साहिब जी

1900 सब्द–सुरति सूं बोलिए, जिस के हाथ ना पांव ।
सुरति सूं देता औषधि, बिन सुरति देता घाव ।। साहिब जी

1901 आदत सार–सुरति सूं छूटती, अच्छे बुरे सपनों साथ ।
सत–सब्द सुरति में डालें, सुरति सांसा ईक साथ ।। साहिब जी

1902 सुरति में रह प्रेम को बांटिए, चेतन दिया जले इसी पल ।
सार–सब्द निज वासा साहिबन, अमृत झरे हर पल ।। साहिब जी

1903 सक़ल रोग की औषदि, केवल सार–नाम ।
रोग–सोग दुख़ व्यापें नांहि, सुरति में धरें ध्यान ।। साहिब जी

1904 सार–सब्द है जा के पासा, सहज मार्ग सूं जाई ।
बिन सतगुरू कोई पावे नांहि, बिन सतगुरू भक़्ति न होई ।। साहिब जी

1905 मन–पवन सुरति संग बांध कर, सत्त–सब्द पर धरो ध्यान ।
सार–सब्द निज औषधि्, ले पहुंचे निज धाम ।। साहिब जी

1906 सत्तनाम मुक़्ति सार है, जो पाए निजघर जाए ।
जैसे तिल में फूल सुगंध, बास वो देता जाए ।। साहिब जी

1907 सत्तगुरू दीन दयाल हैं, जो देते नाम का दान ।
जो सुरति सूं स्मिरन करे, निज घर पावे मान ।। साहिब जी

1908 सांचा–सब्द जब पा लिया, सांची सुरति में ध्यान ।
मन–माया सब बह गये, अंदर पाओ रूप महान ।। साहिब जी

1909 काग़ा पलट हंस हो जाओ, सार–सब्द की दात जब पाओ ।
काल फांस का बंधन छूटे, आत्म को हंसा बनाओ ।। साहिब जी

1910 सार रत्न अनमोल है, सुरति सूं करो ध्यान ।
आत्म सूं मन–माया बहे, हंसा बन पाओ निर्वाण ।। साहिब जी

1911 तन–मन सब दुख़ों की उपज, जान लो मेरे भाई ।
सार–सब्द सूं मन छूटे, पूर्ण सत्तगुरू सूं पा लो भाई ।। साहिब जी

1912 जो सार–सब्द पा लेत है, वह सब्द का ही हो जात ।
ब्रह्न्गा जब कीट् (लारवा) को, अपनी सब्द सुरति है देत ।। साहिब जी

1913 वह लारवा सुरति पा कर, बृह्न्गा रूप ही हो जात ।
ऐसी शक़्ति सार–सब्द की, जीव को अमरपुर ले जात ।। साहिब जी

1914 सार—सब्द को पाकर, सार—सब्द में ही जा समात ।
काल—जाल सब छूटता, कर्म—व्रत—तीर्थ भी छूट जात ।। साहिब जी

1915 सार—सब्द विदेह सर्वोपरि, जब कोई पावे दात ।
'वे नाम' कहे काल सूं छूटता, शेष रहे ना बात ।। साहिब जी

1916 सार—सब्द सूं बुझे प्राणी की प्यास, मन—माया का छूटे संग ।
मन—माया में रहना छोड़ दो, संतों का कर लो संग ।। साहिब जी

1917 'मैं' की मोमबत्ती तभी है बुझती, सार—सब्द की दात जब संग ।
पूर्ण सत्तगुरू तभी हैं मिलते, जब छूटे मोह—माया का संग ।। साहिब जी

1918 सार—सब्द को ध्या कर, पावें सत्तगुरू दीदार ।
अब जग़मग़—जग़मग़ हो रहा, साहिबन का दरबार ।। साहिब जी

1919 बिन सत्तनाम के मानवा, लौहार की धौंकनी समान ।
जो बिन प्राण सांसा ले रहा, बुझे कोयले में भर दे प्राण ।। साहिब जी

1920 सार—नाम आप ही साहिबन जानो, करे सुरति सूं सब काम ।
संत संग ना छोड़ना, सत्तगुरू सब्द करे सब काम ।। साहिब जी

1921 'वे नाम' लाए संदेस हैं, सार—सब्द है सुरति प्राण ।
सार—सब्द भुजाता प्यास है, मन—माया का ना कोई काम ।। साहिब जी

1922 जब काल —जाल सूं संग गया, लौभ मोह का रहा ना काम ।
अब आत्म हंसा हो गई, पल में जा पहुंचो निज धाम ।। साहिब जी

1923 आत्म हंसा कर देना, संतों का जग में यही काम ।
सार नाम की दात सूं, मौक्ष पद का देते दान ।। साहिब जी

1924 सार—नाम बिन हरि ना तज सको, मन—माया का जाल महान ।
सत्तगुरू को सब कुछ सौंप कर, सार—सब्द पर धरो ध्यान ।। साहिब जी

1925 सत्तगुरू समान कोई है नांहि, ऐसा मारें सुरति बाण ।
नाम का बाण सब छेदता, पल में पाओ पद निर्वाण ।। साहिब जी

1926 सार—दात का पाना, अति कठिन तूं जान ।
मन—माया मानत नांहि, तांहि कठिन है काम ।। साहिब जी

1927 मौक्ष पद का दान दे, सत्तगुरू करें जग़त कल्याण ।
ध्यान धरो सदा सब्द में, पाओ निजघर आन ।। साहिब जी

1928 अब कोई साधक ना रहा, जब पाया साहिबन प्यार ।
सार–सब्द बिन सूझे कुछ और ना, यही है प्रेम आधार ।। साहिब जी

1929 मन हंसा को तन मन में, पल–पल रहयो उलझाए ।
सुरति–निरति बिन सत्त–सब्द के, मन से छूट ना पाए ।। साहिब जी

1930 सार–सब्द की दात सूं, सुरति–निरति आत्म हो जाए ।
पारस सुरति जब बनी, आत्म हंसा हो जाए ।। साहिब जी

1931 मन–माया अब बह गये, अमरपुर द्वार खुल जाए ।
काल–जाल सब बह गये, मौक्ष पद मिल जाए ।। साहिब जी

1932 सुरति सूं जग में ऐसे रहो, जैसे जीवा मुख मांहि ।
जग में अपना कुछ है नांहि, सार–सब्द पाने को जग मांहि ।। साहिब जी

1933 शुद्ध चेतन सत्ता जाका अंश है, वाको जानो साहिब ।
बिन पूर्ण सत्तगुरू सब्द के, कोई ना जाने सच्चा साहिब ।। साहिब जी

1934 सार–सब्द ज्ञान दीपक है, प्रकाश न्यारा सत्त उजियारा ।
अंताकरण में जग़मग़ हो रहा, मिटे अज्ञान अंधियारा ।। साहिब जी

1935 सुरति मन में जा समावे, निरति प्राणों के संग साथ ।
सार–सब्द जब दात मिले, सुरति–निरति होत संग साथ ।। साहिब जी

1936 पारस सुरति जब बने, आत्म हंसा बन जावे ।
पारस सुरति आत्म को हंसा करे, सत्तलौक ले जावे ।। साहिब जी

1937 सार–सब्द सत्तपुरूष सूं आया, शब्द अक्षर सूं जो है पारा ।
'वे नाम' को दात मिली है, जग को करे उस पारा ।। साहिब जी

1938 'वे नाम' देत पुकार है, ले लो भाई दात ले लो रे ।
जिस में वासा साहिबन, साहिबन प्यारी दात रे ।। साहिब जी

1939 सत्तगुरू ब्रहन्गा सब्द सूं, मानव को देते निज रूप ।
पूर्ण अपने रंग में रंगें, देत पूर्ण हंसा रूप ।। साहिब जी

1940 ईंगला के घर पिंगला जाई, सुश्मिन सम हो जाई ।
ओह्म–सोह्म ना ध्यान धरो, जब सार–सब्द मिल जाई ।। साहिब जी

1941 भिखारी–पन नांहि छूटता, जे ना जानो निज रूप ।
सार–सब्द बिन कोई जागे नांहि , जिसमें साहिबन रूप ।। साहिब जी

1942 कंई नाम संसार में, तिन से मुक्त ना हो पाए ।
सार–नाम जो गुप्त है, पूर्ण सत्तगुरू सूं कोई पाए ।। साहिब जी

1943 गुप्त–नाम वह दात है, जो सत्तगुरू सूं ही मिल पाए ।
ये तो नाम विदेह है, बोला लिखा ना जाए ।। साहिब जी

1944 जब तक सार–सब्द ना पास में, जीव पल–पल भटका खाऐ ।
मन–माया हाल बेहाल करे, मौक्ष नांहि मिल पाऐ ।। साहिब जी

1945 अक्का–नाम वह दात है, सुरति में ही इसे ध्यायें ।
बिन जाने निज घर नांहि , दात पावे निज घर जाये ।। साहिब जी

1946 सत्तगुरू ही सत्त के दाता, देवें मौक्ष पद की दात ।
बिरला जन जाने इस भेद को, बढ़–भागी पावे दात ।। साहिब जी

1947 सत्तगुरू बिन दात ये ना मिले, सत्तगुरू सूं जोड़ो तार ।
छूटे ना कर्मों का बंधन, जे सत्तगुरू सूं जुड़े ना तार ।। साहिब जी

1948 आत्म ज्ञान बिन ना जाग सके, चाहे घूमो चारों धाम ।
सार–सुरत–सब्द जब पास हों, बिन इच्छा पहुंचो निजधाम।। साहिब जी

1949 चित चंचल मन भ्रम में, किस विध पांऊ राम ।
जब चेतना बाहर ही बह रही, कौसों दूर हैं राम ।। साहिब जी

1950 चेतना उर्दमुखी करो, खुद ही खुद में राम ।
बिन सार–सब्द की दात के, कौसों दूर हैं राम ।। साहिब जी

1951 सतनाम की दात सतगुरू की, काग हंसा कर जावे।
जा की सुरति नाम से लागी, निज घर को वह जावे।। साहिब जी

1952 कहन सुनन देखन, सब अक्षर में जान।
गुप्त निःअक्षर दात सतगुरू संग, सुरति सब्द महान।। साहिब जी

1953 जो कुछ देखन में आवे, ताको है सब नाष।
मूल नाम पंच सब्द से बिन, सार सब्द प्रकाश।। साहिब जी

1954 तीन लोक से पार है, अमरपुर निजधाम।
सार सब्द सुरति स्वांसा से ध्यायो, करो तहां विश्राम।। साहिब जी

1955 सार नाम जग से न्यारा, महिमां कहि ना जाये।
आदि नाम की अदभुद महिमां, सुरति निरति दे जगाये।। साहिब जी

1956 नाम होये नवग्रहों का वश नांहि, भूत प्रेम संग नांहि।
सुमिरन सुरति लगाई के, बिन सतगुरू संग कोई नांहि।। साहिब जी

क अदभुत नाम की अदभुत महिमां, सुरत निरति से पाई।
साहिब कबीर अमरपुर वासी, हंसा लोक पठाई।। साहिब जी

ख अविगत पार ना पाये कोई, नाम से पार हो जाई।
अविगत नाम पुरूष का जानो, हर थां पर देखा ना जाई।। साहिब जी

1957 यही बड़ाई मूल सब्द की, जैसे पतंग ज्योति प्रीत।
बिन सार सब्द पार ना एक, कैती करो प्रीत।। साहिब जी

क जब ही नाम ह्रदय धरा, भयो पाप का नाष।
जैसे चिन्गी आग की, पड़ी पुराने घास।। साहिब जी

ख खोजी जो सार सब्द का, धन्य संत जन सोये।
कहे साहिब गहि सब्द को, कबहुं ना भरमाये।। साहिब जी

1958 खर अक्षर संसार है, निःअक्षर साहिबन सरकार।
निःअक्षर जब पावहि, पल में भव सागर पार।। साहिब जी

1959 सोच विचार कुछ ना करें, कर्म पसार महान।
दुख सुख ईक समान ले, सतगुरू सब्द महान।। साहिब जी

1960शांत होना ही पाना है, अमृत सब्द का काम।
झूठ सच्च दोनों गये, सुरति में रहना सांचा काम।। साहिब जी

1961 कुछ पाने को है नांहि, जब संग जग का तारणहार।
पर सोया नर लाखों जन्मों से, बिन पारस नाम नहीं पार।। साहिब जी

1962 खर से निज को दूर करें, बहु बोलना निवार।
पल पल पारखी में ध्यान धरं, सार सब्द की धार।। साहिब जी

1963 सत सब्द संत बोलें वाणी, तासे छूटे प्राणी।
गहै सब्द जब सुरति लाई, काल से ले छुड़ाई प्राणी।। साहिब जी

1964 सुन्न समाधि सुरति सूं, मीठे सांझ और भौर।
पूर्ण सतगुरू आज्ञा चक्र में, अष्टम चक्र पार।। साहिब जी

1965 तेरे पास धन पूण्जी सतगुरू की, भाग बड़े जिन लियो जान।
कहे गधा भाई आय नांहि शेष, नित सतगुरू सुरति में ध्यान।। साहिब जी

1966 सब्द की ओट में चोट लागत नांहि, तत्व झंकार ब्रह्मण्ड मांहि।
कहत कमाल कबीर जी को बालका, भोग सब भोग त्रिलोकि नांहि।। साहिब जी

1967 सत सब्द सतगुरू सूं पाईके, सुरति जागी छूटी मन प्रतीत।
काग कुमति तजि दे सभी, चली भव जल जीत।। साहिब जी

1968 सत पाये अक्षर गहे, अक्षर सतगुरू उपदेस।
अक्षर डौर पकड़ मेरे भाई, अक्षर पाओ निजदेस।। साहिब जी

1969 गांजा भंग मदिरा का नशा, छिन छिन चड़ि उतरे भाई।
सार नाम अमल पल पल बड़े, यह कभी ना उतरे भाई।। साहिब जी

1970 बिन निःअक्षर लग झूठ है, निःअक्षर से भव पार।
निःअक्षर दात से पावई, हंसा रूप से पार।। साहिब जी

1971 सब्द सब्द बहु अंतरा, सार सब्द सुरति से ले।
जा सब्दे साहिब मिलें, सोहि सब्द गहि ले।। साहिब जी

1972 दीपक भरा नाम का, महल भया उजियार।
महल भरा उजियम, रन का तेल विराजा।
सब्द किया प्रकास, मानसर उपर छा जा।। साहिब जी

1973 सुरति संभाले काज है, तूं मत भरम भुलाये।
मन सयय्‌ाद मन लहर में, बहत कतहुं ना जाये।। साहिब जी

1974 सुरति निरति ध्यान से एक, विदेह नाम समाई।
ताकि महिमां कहि ना जाई, ता में सतपुरूष रहाई।। साहिब जी

1975 सुरति निरति सार नाम से, हंसा रूप है पाना।
नाम बिन नांहि निस्तारा, मन माया में समाना।। साहिब जी

1976 प्यारो कौटिन नाम संसार में, मुक्ति से लेन ना देन कोये।
प्यारो मूल तो गुप्त है, विरला जन पाये कोय।। साहिब जी

क धर्मदास मैं कहुं बुझाई, बिन भेद लीके नहीं जाई।
अंधी सुरति सब्द बिन जानो, लोक दीप कैसे पहचानी।। साहिब जी

ख स्वतः सहज वह सब्द है, सार सब्द कह सोए ।
सब सब्दों का सब्द है, सब का कारण सोए ।। साहिब जी

1977 बिन संतन कोई कैसे पावे, फिर फिर काया धार ।
सार सब्द की सनक ना पावे, फिर कैसे भवसाग़र पार ।।

1978 चिंता तो सत्तनाम की, और ना चितवे दास ।
जो कुछ चितावो सार–नाम बिन, सोहि काल की फ़ांस ।। साहिब जी

1979 सार सुरति हल्का करे, सूखे पत्ते समान ।
अब कुछ भी हाथ में है नांहि, पवन के हाथ कमान ।। साहिब जी

1980 जब तलक सार सुरति पास ना, मन मिटता नांही महान ।
जब तलक जीव विचारे का, प्रेम आनंद सूं जुड़ें ना प्राण ।। साहिब जी

1981 कालपुरूष सूं नाता तोड़ कर, पाया सार–सब्द का दान ।
सार–सब्द में सुरति धरूं, सुरत–कमल में ध्यान ।। साहिब जी

1982 मूल मंत्र जे कोई जान ले, हो जाए आवागमण सूं पार ।
पांच क्या शब्द में जो ध्यान लगाये, वे कभी ना उतरे पार ।। साहिब जी

1983 जुड़ा रहे सत सब्द सूं, सभी बंधन ले तोड़ ।
भीतर दृष्टि् डाल कर, मन भी रहे हथ जोड़ ।। साहिब जी

1984 कुछ सोहं को नाम कहें, कुछ ररंकार माने सार नाम ।
निःअक्षर सब्द जो जान ले, वही जाने सच्चा नाम ।। साहिब जी

1985 सार नाम निःअक्षर रूप है, लिखा ना बोला जाए ।
संत स्नेही महिमां कहें, नाम सुनते ही पार ले जाए ।। साहिब जी

1986 जिस घर पर पहरेदार हो, ज़रा दूर से चलते सब ।
तेरे भीतर दिया जो जला रहा, सार सब्द सूं दूर हैं सब ।। साहिब जी

1987 आशा तृष्णा बह गई, जब मूल सब्द हो पास ।
अब तुम पंछी बन गये, चारों ओर करो परवाज़ ।। साहिब जी

1988 अब बहते पानी संग चलो, सतगुरू का नाम जब साथ ।
अब कुछ भी तुझे करना नहीं, सार सब्द तुझे ले चले साथ ।। साहिब जी

1989 मूल सब्द जब तेरे संग में, पाप ताप का ना रहता साथ ।
अब उल्टा चलना आरम्भ हो गया, मंज़िल की करो ना बात।। साहिब जी

1990 आशा तृष्णा ने बांधा हमें, यह सब मन का काम ।
सार सुरत सूं मन को बांध दा, मूल सुरति सूं लो तुम काम।। साहिब जी

1991 सतगुरू सार सब्द की सोजी बताई, जिसमें साहिब हैं आप ।
सब्बन जियां का वह दाता, उसी को जानों आप ।। साहिब जी

1992 बुरा भला जग में ना कोई, बुरा मत मन को तुम जानो ।
सार सब्द की दौलत पा लो, मूल सुरति सूं निज को जानो।। साहिब जी

1993 जे आस रहे सार सब्द में, सुरति सतगुरू चरणन ध्यान ।
फिर निजधाम ही मंज़िल है तेरी, जब मन का टूटा मान।। साहिब जी

1994 अंदर के मोतियों का बिख़रना, देखना अति कठिन है काम।
बिन पारस सुरति दात के, प्यारो कैसे बनेगा ये काम।। साहिब जी

1995 प्यारो ये तन जात है, कर ले सांचा कुछ काम।
सार सब्द की दात को पा ले, सुरति स्वांसा सूं नाम।। साहिब जी

1996 माया तजनी सब कहें, चीन्हे नाहि कोई एक।
प्यारो सार नाम की दात बिन, उतरे पार ना एक।। साहिब जी

1997 बिन सार नाम अंदर अंधेरा, ना जागे ना चूके फेरा।
पारस दात से मिटे अंधेरा, ताहि फिर चूके अंधेरा।। साहिब जी

1998 प्यारो ये तन जात है, कर लो दो चार काम।
सार सब्द की दात को पा लो, सुरत सब्द सूं काम।। साहिब जी

1999 संत केवल जगत हितकारी, जिसे अपनाया उसी की करते बात।
श्रद्धा विश्वास प्रेम से पार, मूल नाम सूं ही बने बात।। साहिब जी

2000 सार नाम सूं अमृत वर्षा, सुरति ही पार लगाये।
बूंद बिछड़ी आद की है, सागर में जा समाये।। साहिब जी

2001 सत्य नाम बिना मन सूं कोई पार ना पावे, सतगुरू शरणी बिन नांहि पार।
आठों पहर सुरति सब्द में, नाम जहाज सूं पार।। साहिब जी

2002 सार सब्द सब शब्दों से पार है, सबका कारण सोये।
अनुभव सहज सुरति में, संतन चरण आधार।। साहिब जी

2003 नाम सत्त तो सतगुरू सत्त, सत्त में सत्त समावे।
सत्य दात जब साधक संग, नाम सुरति स्वांसा सत्त भावे।। साहिब जी

2004 सुरति से संदेश साहिबन का, पल पल अच्छे बुरे का भेद।
क्या करूं क्या नां करूं, सतगुरू सब्द सूं मिलता भेद।। साहिब जी

2005 निःअक्षर में करूं वासा प्यारो, ईसी में साहिबन वास।
कोई बिरला जाने भेद को, पावे निजघर वास।। साहिब जी

2006 निःअक्षर नाम न्यारा प्यारो, ताहि में करो वास।
सतगुरू से सुरति ऐसे जोड़ो, जैसे नटवा डौरी साथ।। साहिब जी

2007 निःअक्षर नाम से सब हंसा, तीन लोक में आये।
जो नर सार नाम को पावे, तीन लोक से डौरी टुट जाये।। साहिब जी

क निस–संशीक होय जो कोई, संशय काल रहे नांहि कोई।
रहे निर्लेप कतहु नहीं लागे, सत्त सब्द गहि आत्म जागे।। साहिब जी

ख बहु बंधन ते बांध्या, ईक बैचारा जीव।
जीव बैचारा क्या करे, जे ना छुड़ावे पीव।। साहिब जी

2008 देवी देव जपुं नां औंकार जपुं, मन से कहुं नां नाम।
मेरा साहिब मौ को जपे, सुरति में मेरी नाम।। साहिब जी

2009 जीवा को विश्राम दें, बहु शब्द करें परेशान।
ये सब मन का काम, बिन पारस नाम नां टूटे मन बाण।। साहिब जी

क सब्दी मरे तो मरि रहे, फिर मरे नां दूजि बार।
सब्दे ही तो पाईये, हरि नाम लागे प्यारू।
बिन सब्दे जग भूला फिरे, मरि जन्मै बारोबार।। साहिब जी

2010 बिन सब्द जग भूला फिरे, मरे जन्मे बारम्बार।
सतगुरू सब्द पाई के, आवागमण सूं पार।। साहिब जी

क सब्द खोजि मन वश करें, सहज योग है येहि।
संत सब्द निजसार है, ये तो झूठी देहि।। साहिब जी

ख कहे कबीर सोई धुण जागै, सब्द बाण उर अंतर लागो।
मन मान की टूटी कमान, सुरति ध्यान जब लागो।। साहिब जी

2011 भव सागर पार उतरे ना कोई, बिन सार नाम की दात।
ता सब्द की महिमां अपार, सतपुरूष सुरति की दात।। साहिब जी

2012 सत्य नाम बिना मन सूं कोई पार ना पावे, सतगुरू शरणी बिन नांहि पार।
आठों पहर सुरति सब्द में, नाम जहाज सूं पार।। साहिब जी

2013 मृत्यू कसौटि जीवन क्या तिन की, जे सतगुरू सूं मिली हो दात ।
सतपुरूष खुद लेने आ गये, पाओ जे सत सब्द की दात ।। साहिब जी

2014 जीवन में सत्त–दात को जे पा लिया, मोत सूं रहा ना कोई काम ।
खुशी खुशी वो तन छोड़ता, जावे परमपुरूष के धाम ।। साहिब जी

2015 जब सुरति चेतन नांहि हो रही, सार–सब्द की दात नांहि पास ।
सार–सब्द विकसित सुरति करे, मूल–सुरति सूं आत्म साफ ।। साहिब जी

2016 मन से लड़ना छोड़ दो, ये करे फूल संग कांटों का काम ।
पूर्ण सत्तगुरू सूं दात लो, पल में मिटे मन का मान ।। साहिब जी

2017 बिन पाए भेद उस घर का, कोई ना उतरे पार ।
सार–सब्द नाम जहाज है, पाओ तो उतरो पार ।। साहिब जी

2018 जब लग घट मोह माया बसे, चारों ओर अंधियार ।
जब कोई प्यारा संत मिले, सार–सब्द सूं उतारे पार ।। साहिब जी

2019 नाम प्रेम प्याला जो पिये, बिन आशा तृष्णा के ।
लोभी आनंद ना पा सके, बिन दात सार सब्द के ।। साहिब जी

2020 सार–सब्द ही कुण्झी जानिए, जां सूं खुलें किवाड़ ।
पल में पहुंचो निजघर में, सतगुरू ही खोलें किवाड़ ।। साहिब जी

–0–

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

6—क 'सुरत सब्द' सुरति की महत्वता

2021 सुरति—समाधि् सब्द सूं, सब्द में साहिबन वास ।
आठों पहर सुरति में रहो, पल में साहिबन पास ।। साहिब जी

2022 सब्द सुरति कटार है, माया का करे विनाष।
सतगुरू शरणी जो तजे, मन माया की ना छूटे आस।। साहिब जी

2023 सुरति अमृत धार है, लोहा चुम्भक सार ।
ऐसा सब्द सत्तलौक का, काल जाल सूं करता पार ।। साहिब जी

2024 जग़त जाल में मत फंसो, निस दिन भजो तुम नाम ।
सुरत—सब्द में ध्यान धरो, सीधे हों सब काम ।। साहिब जी

2025 सुरत सब्द की सुरति सूं, खुले गगन किवाड़ ।
जगमग जगमग हो रहा, साहिबन का दरबार ।। साहिब जी

क सुरति फंसी संसार में, तां से पड़ गया दूर ।
सुरति बांध स्थिर कर, आठों पहर हुजूर ।। साहिब जी

2026 साधो सुरति एक है, यही है तेरा रूप ।
भावें सतगुरू में डाल दे, देखो सच्चा रूप ।। साहिब जी

2027 दर्शन—वाणी—स्पर्श सूं, मिले सुरति भंडार ।
सुरति सहज समाधि भली, मन—माया के पार ।। साहिब जी

2028 संतो की सुरति आंख सूं, अमृत बरसे अपार ।
सच्चे साधक निज भजते, मिले भक्ति भण्डार ।। साहिब जी

2029 इंगला पिंगला सम कीजे, तो खुले त्रिकुटि द्वार ।
सुरति सब्द में डाल दें, चलें सतगुरू धाम अष्ट्म पार ।। साहिब जी

क इंगला—पिगंला सुश्मिना भूजे, आपे अलख लगावे।
उसके उपर सांचा सत्तगुरू, अनहद सुरति—सब्द सुनावे ।। साहिब जी

2030 हंसा–सुरति सात हैं, तन चेतन कर जाएं ।
सुरति–निरति एक कर, सार–सब्द रम जाए ।। साहिब जी

2031 सुरति चेतन हो गई, सुश्मिन पार कर जाऐ।
त्रिकुटि महल में जा रमे, सुख की सेज बिछाऐं ।। साहिब जी

2032 सुरति–निरति मन–पवन, सब एको हो जाई ।
उल्टी श्वांसा हो गई, अब सुरत–कमल में जाई ।। साहिब जी

2033 सार–सब्द की सुरति से, कटें सकल कलेश ।
सुरति–निरति एक कर, छूटें कर्म कलेश ।। साहिब जी

2034 सुरति सूं सब प्राकृति प्यारो, मूर्त्ती–ज्योति–निरंकार ।
जीव चौरासी के चक्र में प्यारो, कर्म–धर्म सूं नांहि पार ।। साहिब जी

2035 सुरति ही बीज मूल प्यारो, सुरति ही सब सार ।
सात सुरति सात चक्र लखाई, सार सुरति सूं पार ।। साहिब जी

2036 सुरति–निरति एकाग्र करो, पारस सुरति बन जाए ।
खुद को जाना तो जग जाना, निजलौक में जा समाए ।। साहिब जी

2037 सत्तगुरू के मूल नाम सूं, विहंगम चाल मिल जाए ।
हंसा अमर जोत प्यारो, पल में निजघर जाए ।। साहिब जी

2038 सुरति सूं रचयो संसारा, सुरति सूं उतरो तुम पार ।
विहंगम चाल ही सच्ची चाल है, तां सूं मिले साहिबन द्वार ।। साहिब जी

2039 देख अजूबा सार–सुरति का, पल में पहुंचो निजधाम ।
वै देश त्रिलौकी सूं भिन्न, सूर्य–चन्द्र बिन प्रकाश महान ।। साहिब जी

2040 सत्तगुरू की पारस सुरति सूं, साधक सुरति चेतन हो जाऐ ।
दोनों ईक मिक हो गये, साहिब ही संग समाऐ ।। साहिब जी

2041 जिस को कछु नांहि चाहिए, जगत का वो ही सम्राट ।
आशा–तृष्णा मिटे जाकी, वो सम्राटों का सम्राट ।। साहिब जी

2042 भिख़ारी पन नहीं छूटता, जो ना जाना निज रूप ।
सार–सब्द बिन आशा तृष्णा ना छूटे, जानो सच्चा रूप ।। साहिब जी

2043 सुरति मन माया फंसी, तां से पड़ गयो दूर ।
सुरति सार–सब्द में डालें, हर पल साहिब हुजूर ।। साहिब जी

2044 सार–नाम की दात प्यारी, मन–माया सूं दूर ।
आत्म सुरति जब चेतन हो गयी, अब निज घर नांहि दूर ।। साहिब जी

2045 मोह पसारा जब मिटे प्यारो, मन पवन हो एक ।
सुरत–कमल में सुरति मिले, तांहि पाओ पुरूष अलेख़ ।। साहिब जी

2046 ज्ञान और विज्ञान देहि सूं, विहंगम चाल सूं पार ।
इसी विहंगम चाल सूं, हंसा साहिबन संग पार ।। साहिब जी

2047 सुरति सूं बांधू संत चरण को, कृपा सिंधु वह रूप ।
आज्ञा चक्र में सुरति रमे, पाओ दरश साहिबन रूप ।। साहिब जी

2048 आठों पहर सुरति रहे, जैसे स्वांसा डौर ।
पल भर भी टूटे नहीं, सुरति स्वांसा डौर ।। साहिब जी

2049 सतगुरू सुरति यूं धरो, आत्म हो पर नूर ।
मकरतार प्रवेश का, खोले द्वार पर नूर ।। साहिब जी

2050 श्रम ही से सब होत है, जे सुरति भी हो संग ।
श्रम से ख़ोदा कूप जो, जल प्रकटे सुरति संग ।। साहिब जी

2051 अब सब खाली हो गया, सुरति में सुरत समाऐ ।
अब धारा राधा हो गई, प्रीतम संग रास रचाऐ ।। साहिब जी

2052 आत्म कुंवारी साहिबन संग में, पल में दोनों एक ।
अब सुरति ही केवल बची, दोनों मिल घर एक ।। साहिब जी

2053 सुरति सूं गंगा धारा, साग़र में जा समाऐ ।
उल्टी धारा जो चले, कुंवारी हो पार हो जाऐ ।। साहिब जी

2054 सुरति खुमार ऐसा चड़े, सुरती ही रह जाऐ।
जन्म–मरण की डौर भी, काल संग मिट जाऐ ।। साहिब जी

2055 सुरति फंसी संसार में, प्यारो मन माया के संग ।
सुरति बांध स्थिर करो, भाई छूटे मन का संग ।। साहिब जी

2056 आत्म सुरती संत चेतन करें, मन–माया सूं पार ।
सुरती संभाल पग़ आगे धरो, करें साहिबन दीदार ।। साहिब जी

2057 अब दोनों मिल एक होई रहे, बूंद सिन्धू में समायो ।
जब दोनों एक होई रहें, सिन्धु बूंद समायो ।। साहिब जी

2058 वस्मी घाटि सुश्मिन द्वार की, चढ़े तो गिर–गिर पड़े ।
सुरति संभाल पग़ आगे धरें, अब पहुचें उस पार ।। साहिब जी

2059 सुरति निरति जोड़े तार को, प्राण सुरति संग समाऐ।
सहज योग समाधि बने, सतगुरू संग समाऐ ।। साहिब जी

2060 ध्यान भजन में बैठ कर, हिले डुले न शीष ।
मन पर सुरति डालिऐ, सुरति बनी बिन शीष ।। साहिब जी

2061 कमर को सीधा राखिए भाई, सुश्मिन का खुले द्वार ।
श्वांसा में भजन चलता रहे, मन से न हो विचार ।। साहिब जी

2062 सक़ल पसारा समेट कर, सुरति में धरो ध्यान ।
मन–माया को जाने दो, अंदर धरो सार सुरति ध्यान ।। साहिब जी

2063 धैर्य से सब होत है, जे सुरति राखें़ धीर ।
धीरज सूं सुरति जगे, प्यारो संतन सब्द की औट ।। साहिब जी

2064 सुरति एक सूं लागी रहे, भाई सुरति आत्म आंख ।
नाम की सुरति यूं जगे, ज्यूं पलकों संग रहे आंख ।। साहिब जी

2065 सुरति लागी जगत सूं, जब जाना ना जीवन सार ।
सुरति–निरति मन–पवना एक, तब पाओ निज सार ।। साहिब जी

2066 जागत सुरति सोवत सुरति, सतगुरू धरो ध्यान ।
सुरति सूं सार सब्द में, सुरत कमल में ध्यान ।। साहिब जी

2067 भजन तो केवल भाव है, प्यारो कर्म काण्ड ये नांहि ।
भाव बने स्वभाव जब, सुरति में रमो मन नांहि।। साहिब जी

2068 स्मिरन सुरति लगाऐ के, कण्ठ मुख मन से कुछ ना बोल ।
ऊंची तानो सुरति को भाई, कोई सुने नांहि बोल ।। साहिब जी

2069 दास बांस की पोली पौंगरी, सुरति सूं उभरे तान ।
सुरति तान सूं बांसुरी बाजे, तभी जागें सोए प्राण ।। साहिब जी

2070 यह तान है अग़म की, प्यारो चेतन हों प्राण ।
जो कोई सुने सुरति सूं, प्यारो सुरति में डालो प्राण ।। साहिब जी

2071 जीव जंत सब एक हैं, सब में एक प्राण ।
सुरति सूं बोलो जब ही प्यारो, आत्म हो हंस समान ।। साहिब जी

2072 तन–मन नाचे संग तुमरे, सुरति छेड़े तान ।
मुरली तान है बाज रही, प्यारो अंग–अंग गूंजे तान ।। साहिब जी

2073 बिन (मुरली) तान कुछ सूझे नांहि, सब सुध–बुद्ध ख़ो जाई।
अब सब कुछ ही ख़ो गया प्यारो, केवल धुन ही रह जाई ।। साहिब जी

2074 सब ईन्द्रियां सखियां भई, नाचें सुरति संग ।
नाम सुरति में समा गया, भाई 'मैं' भी डूबी संग ।। साहिब जी

2075 मैं मिली जाई पाए पिया अपने, सुरति में सुरत समाऐ ।
देखा रूप–अरूप प्यारा, अंग–अंग चेतन हो जाऐ ।। साहिब जी

2076 सार–सब्द की सुरति निज धार, खुला सुरत–कमल किवाड़ ।
चल गई चाप चली जो धारा, ज्यूं मकड़ी मुखतारा ।। साहिब जी

2077 तन–मन वचन सुरति सूं, प्यारो पल में थिर हो जाए ।
सुरत–कमल सतगुरू मिलें, पल में निज घर जाएं ।। साहिब जी

2078 सुरति सूं जो जपे, भाई वो साधक कहलाए ।
सुरति सूं जो सार–नाम में, वही भग़त कहलाए ।। साहिब जी

2079 सुरति छुड़ावे मन माया सूं, सुरति सूं ध्यावे नाम ।
सुरति महिमां अपार है, भाई ले पहुंचे निजधाम ।। साहिब जी

2080 सुरति मांहि विरह जागे, नैनन छलके नीर ।
साहिब सूं जुड़ गई डौर जो, प्यारो चली पतंग उस ओर ।। साहिब जी

2081 प्रीति संग और कुछ है नांहि, जिस से पाओ राम ।
जिस की प्रीति सतगुरू सूं, सुरति में ध्यावे नाम ।। साहिब जी

2082 सुरति का खेल न्यारा प्यारो, सुरति सूं रचा संसार ।
सुरति है नैना सुरति है काना, सुरति हाथ पांव पसार ।। साहिब जी

2083 चला जो तीर तर्कश सूं, सुरति का बाण बने ।
मन–माया को छेद कर, आत्म पल छिन में हंसा बने।। साहिब जी

2084 सुरति औस बूंद धारा बने, भाई कभी न छूटे धार ।
सुरति आत्म संग जोड़े तो, चांद–चकौर अनुसार ।। साहिब जी

2085 तन–मन दोनों एक हैं भाई, दोनों दें भरमाऐ ।
सुरत–सब्द की दात सूं, दोनों ही मिट जाऐं ।। साहिब जी

2086 सुरति के हारे हार है प्यारो, सुरति के जीते जीत ।
सच्ची दात सूं पाईए प्यारो, सुरति की प्रतीत ।। साहिब जी

क तन थिर मन थिर, सुरति–निरति थिर होए ।
कहें साहिब उस पल को, क़ल्प न पावे कोए ।। साहिब जी

2087 मन–माया सूं मल उपजे प्यारो, सुरति सूं मल धोऐं ।
संत वचन सुरति साद्ध सूं, मन माया छूट जाऐ ।। साहिब जी

2088 ध्यान ही आतम ध्यान ही सुरति, बिन सुरति कुछ नांहि ।
बिन सुरति जग है नांहि, सुरति संग मन माया नांहि ।। साहिब जी

2089 सुरति ऐसी कीजिए प्यारो, मन मैला छुट जाए।
सुरति–निरति एक हों, सब दाग़ मिट जांए।। साहिब जी

2090 क़ाया कसो सुरत कमान सूं, सुरति बने निज बाण ।
चले तो मन मृग मिटे प्यारो, धर्म कर्म टूटे कमान ।। साहिब जी

2091 साहिब सच्ची करनी जग़ सूं, सुख़ उपझे चहुं ओर ।
समुंद्र पार संतन चरण सुरति धरें, आ पहुंचें चहुं ओर ।। साहिब जी

2092 साहिबन सुरति सूं मन निर्विकल्प होत है, जब सार–सब्द में ध्यान ।
आत्म चिंतन में परिवर्तित, सुरत–सब्द में ध्यान ।। साहिब जी

2093 खेल–योग–व्यायाम–संगीत को, सुरति सूं जोड़ो तार।
तन–मन शुद्धि धारते, सुरति सूं जुड़े जब तार ।। साहिब जी

2094 धरती आकाश सूं निज दूर है, साहिब सब्द निर्वाण ।
तहां साधक निज सुरति सूं, काल सूं छूटें प्राण ।। साहिब जी

2095 जग़ में वही पूत–सपूत हैं, जो जपें सार नाम तरंग ।
जन्म–मरन सूं छूटता, अजर अमर होई संग ।। साहिब जी

2096 सुमिरन सुरति लगाए के प्यारो, दूजा लखें ना कोए ।
होठ ना हिले कण्ठ ना बोले, सुरति बिन पार ना कोए ।। साहिब जी

2097 मेरा जन्म इक दास का प्यारो, प्रातः उठ भजूं सार–नामा ।
अंदर सुरति जागी रहे, कर्म सूं सुरति नामा ।। साहिब जी

2098 बोल तो गारि समान है प्यारो, करनी विष समान ।
क़थनी सुरति सूं करो भाई, करनी अमृत समान ।। साहिब जी

2099 मन जीते जग जीत है प्यारो, मन से ना जीता जाऐ ।
सार–सुरति मन को, शान्त करे राह लगाऐ ।। साहिब जी

2100 मन की बात ना मानिए भाई, मन देता आसार तरंग ।
सुरति सूं सार–सब्द ध्यान जब, पल में छूटे तरंग ।। साहिब जी

2101 मन पल–पल भरमा रहा प्यारो, पल–पल बदले रंग ।
आत्म मन वश ऐसे पड़ी, माने मन की तरंग ।। साहिब जी

2102 मन माया ही बंधन प्यारो, सबै रहा भरमाई ।
सार रस सुरति सूं प्यारो, छूटे माया मिटे भरम भलाई ।। साहिब जी

क मन ही सरूपी काल निरंझन, सबे रहा भरमाई ।
हंस तूं तो अमरलौक का, पड़ा क़ाल वश आई ।। साहिब जी

2103 सार–सब्द सुरति सूं धोवें, मन के छूटें विकार ।
सतगुरू सत्संग निर्भय करें, खोलें मौक्ष द्वार ।। साहिब जी

2104 गुरू शिष्य भौतिक शरीर, तां में भेद तूं जान ।
सार–सब्द आत्म संग, सुरति सूं एको जान ।। साहिब जी

2105 उलटा कुंआ सवा हाथ सर उपर, सुरति त्रिवेणी घाटी ।
दीपक में एक जोत दरशे, जोत में जोत समाती ।। साहिब जी

2106 मन को चीने कोई बिरला प्राणी, चलता पवन समान ।
सुरति सत्त–सब्द में डालो प्यारो, मन को करती आप समान ।। साहिब जी

2107 सुमिरन द्वार है मन्दिर प्यारो, आज्ञा चक्र हंसा वास।
उंची घाटी निरालम्भ राम की, सुरत सूं पहुंचे दास ।। साहिब जी

2108 मन ही माया मन ही काया, पवन में मन प्राण ।
सहज अवस्था मन काल सूं दूरी, सार–सुरति सूं ध्यान ।। साहिब जी

2109 काम–क्रौध–मद–लोभ मिटे तो, सुरत–सब्द में ध्यान ।
त्रिगुण–पाप–तप सब जांए, सतगुरू सब्द सुरति ही ध्यान ।। साहिब जी

2110 सूरा हो के सन्मुख उपजे, सत–सब्द संग भाई ।
सुरति तार मत तोड़ो प्यारो, आवागमण मिट जाई ।। साहिब जी

2111 सार सुरति सूं देखो प्यारो, जो भी उठें विचार ।
सुरति निरीक्षन ही मंत्र है, बनो मालिक (मन) विचार ।। साहिब जी

2112 जब मन के मालिक़ हो जाओ, नकारात्मक बहता बाहर ।
सुरति सार–सब्द में डालो, अन्दर पाओ अमृत धार ।। साहिब जी

2113 आत्म शुद्धि कार्य संघर्ष ना, सहज सुरति का काम ।
सहज सुरति डौरी को बांध कर, करो सुरति सूं काम ।। साहिब जी

2114 सुरति उपर चढ़ाना कठिन, नीचे धारा बहत रे ।
ये सब कार्य संघर्ष पूर्ण, गिरे तो टूटे तार रे ।। साहिब जी

2115 साहिब पाया तन बिसारा, जब सुरति धरिया ध्यान ।
पाप संताप सब मिटें, जब सुन्न में किया अस्नान ।। साहिब जी

2116 सुरती–निरत सब्द–पवना, पलट कर हो जांए एक ।
सुरत–सब्द में ध्यान डाल के, देखो साहिबन रूप अनेक ।। साहिब जी

2117 सब की माला सांस है प्यारो, पल आवे पल जाए ।
सब को ऐसा चाहिए प्यारो, सुरत–सब्द में ध्यान लगाएं ।। साहिब जी

2118 हंसा सुरति सात हैं प्यारो, तन चेतन कर जांए ।
सुरति–निरति एक कर, सार–सब्द रम जाए ।। साहिब जी

क लाख कौस जे संत बसें, सुरति देयो पटाए ।
शब्द तुरी असवार है, क्षिण आए क्षिण जाए ।। साहिब जी

2119 सुरति का खेल ये सारा, सुरति का है सग़ल पसार ।
सुरति बिन कुछ नहीं न्यारा, सुरति फंसी माया संसार ।। साहिब जी

2120 अनुभवों की ओड़ो चदरिया, ज्यूं की त्यूं धरो संग साथ ।
चढ़ो महल लिए संग सुरति, खुलें किवाड़ इक साथ ।। साहिब जी

2121 ईक जाना तो सब ही जाना, सब जाना ईक जाए ।
ख़ीर में नमक़ का मेल ना भाई, जो चाखे़ पछताए ।। साहिब जी

2122 सच्चे साधक को हर पल, रहता सुरति ध्यान ।
वह हर पल निज में रहकर, सुरति में धरे ध्यान ।। साहिब जी

2123 सच्चा सब्द सुरति में, पल–पल दे जगाऐ ।
जे तूं सुरति धार ले, मन माया दास बन जाऐ ।। साहिब जी

2124 ना हरि ना त्रिदेवा, निरंकार देस से पारा।
सब्द सुरति अचल अविनाषी, खर अक्षर से पारा।। साहिब जी

2125 सुरति ने यह क्या कर दिया, निज की याद भी गई।
मन माया संग छूट गया, आंसू की धारा बह गई।। साहिब जी

क ब्रह्म नाम ते राम बड़, वरदायक वरदानी।
राम चरित्र सत कोटि महं, लिये महेस जिय जानी।। साहिब जी

2126 सुरति ध्यान कथा कीर्तन में, सतगुरू रहते संग प्राण।
घट घट महके पारस सुरति, साहिब सब्द मोक्ष प्रदान।। साहिब जी

2127 मन में विचार ईक आये ईक जाये, दो से भटका खाये।
मान अपमान दोनों तजे, सुरति में रहे समाये।। साहिब जी

2128 सुरति के तल पर आना, निज स्वभाव में जीना।
पल पल में सुरत सब्द स्वांसा संग, सतगुरू ध्यान में खो जाना।। साहिब जी

2129 आंख कान हौंठ विचार, सब बंद कर।
सुरत सब्द में सुरति बाण, सुश्मिन खुले तो पार।। साहिब जी

2130 सतनाम में सात हैं ताले, सतगुरू सूं मिलता भेद।
सात सुरति का भेद है इसमें, ताले खोलो तो मिलता भेद।। साहिब जी

2131 सतगुरू को शीष अर्पित करि, लीजिये सब्द का दान।
सतगुरू दया से मुक्ति फल मिले, भव पार उतारे सुरति बाण।। साहिब जी

2132 सब्द निरंतर से सुरति लागी, आशा तृष्णा वासना त्यागी।
सोते जागते कबहु ना टूटे, सुरति ताड़ी लागी।। साहिब जी

2133 कहें साहिब कबीर सुरति मांहि, कर सतलोक परतीत।
करहूं एक की टेक, मुक्ति नहीं बिन परतीत।। साहिब जी

2134 सतगुरू मारा बाण सुरति भरि, सुरति निरति से हंसा रूप।
मन माया सब बह गये, नाम अकेला निज रूप।। साहिब जी

2135 पारस नाम महिमां अपार है, मन को तार तार कर दे।
नाम प्रकटे सुरति में, सकल भ्रम तज दे।। साहिब जी

क विविध रूप की भक्ति में, फिर फिर धरे सरीर।
एक नाम बिन मुक्ति नांहि, ऐसी कहे कबीर।। साहिब जी

ख सुमिरन सुरति लगाये के, मुख से कुछ ना बोल।
बाहिर के पट बंद कर, अंदर के पट खोल।। साहिब जी

2136 जग के हर कार्य में, सुरति का काम महान।
सुरति ध्यान में देखें सुनें, समझें और जाने खेल महान।। साहिब जी

2137 धर से अधर सुरति स्वांसा ले चले, सुरति निरति का संगम आलोकिक जान।
दोनों मिल ईक समान, करें लोकिक आलोकिक कार्य महान।। साहिब जी

2138 काया मध्य स्वांसा सार, शून्य से नाभि तल आई।
हाथ पांव वाके नांहि, सुरति से पकड़ो भाई।। साहिब जी

2139 सुरति सूं सार नाम रस पीजे, सतगुरू कृपा सूं पायो।
प्यारो सतगुरू कृपा सूं, सुरति में रह गुण गायो।। साहिब जी

2140 शून्य में सार नाम स्वांसा ले चले, नाभि का चक्र महान ।
सुरति निरति तहां संगम हो गया, बिन प्रयास यह कार्य महान।। साहिब जी

क सकल पसारा मेट कर, मन पवन कर एक।
उल्टि तानो सुरति को, तहां देखो साहिब आलेख।। साहिब जी

ख निस दिन सुरति संग, रहत मग्न जी।
पक्की होती जाती डौरी, उतारे भवसागर पार जी।। साहिब जी

2141 प्यारो सुरति से, सार रस पीजै।
मन माया तजि सत्संग बैठ, अमृत रस पीजै।। साहिब जी

क जपा मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाये।
सुरति समानी सार सब्द में, वाको काल ना खाये।। साहिब जी

ख सुरति के दण्ड से, घेर मन पवन को।
फेर उल्टा चले, धर और अधर विच ध्यान लावे ।। साहिब जी

2142 सुरति से सतगुरू साधका को, पुनः उत्पन्न करे पार लगाये।
सुरति सुहागन हो गई, सतगुरू संग निजघर जाये।। साहिब जी

क सुरति करो मम साईयां, तीन लोक भव जल मांहि।
कभी पार ना पाओगे, जो नहीं सुरति पाई।। साहिब जी

2143 आदर देना सीख़ लो, बोली सूं मत ला काम ।
सुरति भाषा पूर्ण तेरी, उसी सूं लो तुम जान ।। साहिब जी

2144 नाम की शक़्ति सत्संग में दर्शन, सुरति की महिमां महान ।
सत्संग की महिमां संगत का प्रेम, मन शांत सुरति महान ।। साहिब जी

2145 सुरति रहस्य से हम भरे, जीवन सुरति हो जाए ।
सिद्धान्त हाथ में जब आयें, सुरति रहस्य खो जाए ।। साहिब जी

2146 सोच विचार मन की भटकना, बिन सार सुरति भटकाव ।
आठ पहर सार सुरति रहे, आ सत्संग छूटे मन भटकाव ।। साहिब जी

2147 विवेक के कारण आत्म हंसा बने, अविवेक से कौवा जान ।
सार सुरति सूं विवेक जगे, काल नाम सूं सोया जान ।। साहिब जी

2148 सुरति में सार सब्द के स्मिरण सूं, दुख का नहीं कोई काम ।
जो मुख मन से सुमिरण करे, उस का ना सुख से कोई काम ।। साहिब जी

2149 पत्ते की सुरति आनंदित हो रही, वर्षा की पड़े जब धार ।
मनवा लाखों जन्म सूं सोया पड़ा, अमृत सुरति बिन कैसे पार ।। साहिब जी

2150 सातों सब्द कानों में बाजते, उनमें सुरति डाल ।
तेरा मंदिर खाली हो गया, सतगुरू सूं सुरति डाल ।। साहिब जी

2151 भृंगा सुरति पाते ही, मन हंसा होने दो ।
जब मन की करनी गई, अब मुक्ति दूर नाको ।। साहिब जी

2152 पारस सुरति मन को, आत्म से करती बाहिर ।
पारस सुरति मन सूं खाली हो गई, अब हंस हो मन सूं पार ।। साहिब जी

2153 एक क्षण भी सुरति जब विदेह सब्द समाई, ताकि महिमां कहि ना जाई ।
सार नाम सतगुरू सूं मिले, नाम की दात ही भव पार कराई ।। साहिब जी

2154 तुम्हारी मूर्छा ही बंधन तेरा, उसी से सब उलझाव ।
सुरति मार्ग बाधा नहीं, सब छूट जाते उलझाव ।। साहिब जी

2155 जितनी प्रीती पुस्तक लेखनी सूं, उतनी सुरति में डाल ।
भूल चूक क्षमा सतगुरू करें, तूं सुरति निःअक्षर में डाल ।। साहिब जी

2156 मन मिटाओ सुरति जगाओ, सतगुरू सूं होत सब काम ।
मन सूं कुछ बात बने ना, सार सब्द सुरति सूं भजो तो हों काम ।। साहिब जी

2157 सतगुरू संग पारस सुरति का सुरति सूं मिलना, सतगुरू का कैसे करूं ब्खान।
यह अवसर मत खोईये, बिना मूल सब्द होत ना सुरति ध्यान।। साहिब जी

2158 जे सार सब्द में हर दम सुरति, चौथे लोक की होवे सुद्धि ।
सुमिरन सूं मन ना करे लड़ाई, मन की अब ना माने बुद्धि ।। साहिब जी

2159 सुरति ध्यान सूं नर ना भटके, सतगुरू हर पल रहे सहाई ।
मन सूं अब ना रहा संबन्ध, जब सार सुरति में ताड़ी लाई ।। साहिब जी

2160 सुरति दात निजधाम सूं आई, ईस बिन नर ना निजघर जाई।
सुरति आधार भक्ति का द्वारा, ईस नाम सूं नर भवसागर तरि जाई।। साहिब जी

2161 ध्यान ही आत्मां ध्यान ही सुरति, सार सब्द में ध्यान को डाल ।
जाप मन का छोड़ कर, श्वांस में सुरति डाल ।। साहिब जी

2162 डर पारस डर परमगुरू, डर भक्ति डर पार।
डरत रहे साधक उभरे, बिन डरे यम द्वार।। साहिब जी

2163 बिन भावना मन से पार नां, सत्त संगति भयी तो क्या भया।
सार नाम की दात संग, बिन भावना सब कुछ गया।। साहिब जी

2164 भावना संग जिन जिन ढूंढा, तिन तिन पाया।
बिन भावना क्या ढूंढा, क्या कहां पाया।। साहिब जी

2165 तेरे अंदर सांच जब, बाहिर क्या दिखलाये।
जागा नर जानत है, अंदर की ज्योत जगाये।। साहिब जी

2166 सुरति विचार गयो, मन का छूटा संग।
संग में केवल ध्याण रहा, माया का कैसा संग।। साहिब जी

2167 आत्म ज्ञान में प्यारो, बाधक केवल मन।
सार सुरति, स्वांसा सब्द सूं पार।। साहिब जी

2168 सुरति सब्द स्वांस ईक तार, तांसे निकसे नाद प्रकाश।
सतगुरू पारस सब्द सुरति सूं, बने आत्म जोत प्रकाश।। साहिब जी

2169 सब्द निरंतर सूं ताड़ी लागी, मलीन वासना त्यागी।
उठत बैठत कबहु ना टूटे, निरंतर ऐसी सुरति लागी।। साहिब जी

2170 मैं हूं कौन कर्म हैं काको, जीव नहीं जानत प्रभुता की।
गूंगा ज्ञान विज्ञान प्रकास, सार रस वाणी सुरति की।। साहिब जी

2171 बिन नामें हृदय शुद्ध हो कैसे, ये सब मन आधार।
सुरति संभाले बात बने, मन छूटे सुरति धार।। साहिब जी

2172 अहम था तो सतगुरू नांहि, अब सतगुरू हैं मान नांहि।
सुरति मार्ग अति सांकरा, तामे दो कैसे समाहिं।। साहिब जी

2173 स्वांसा सुरति के मध्य में, कभी उजियारा ना होए ।
ऐसा साक्षी रूप प्यारो, सुरति–निरति सूं होए ।। साहिब जी

2174 सुरति फंसी संसार में प्यारो, तां से पड़ गयो दूर ।
सुरति में हर पल रहो मेरे भाई, संग में रहें हजूर ।। साहिब जी

2175 सीप में स्वाति बूंद, मोती बने, मृगा नाभि में वीर्य कस्तूरी।
बदले सतगुरू सुरति साधक की, संग प्रेम की डौरी।। साहिब जी

2176 कुछ भी जब खाने लगो, सार और सुरति सब्द से ले तूं काम ।
सतगुरू चरण सुरति डाल कर, उनके महा दान का कर ब्ख़ान।। साहिब जी

2177 सतगुरू सुरति का आभास कर, महां दानी पदार्थ पावे मनुष्य की देह ।
जब योनियों से बच कर वह, पावे दुर्लभ मनुष्य देह ।। साहिब जी

2178 सगल पसारा मेट कर प्यारो, सार नाम सूं मन–पवा हो एक ।
अब सुश्मिना धार बह गई, सुरति सूं दर्शन एक ।। साहिब जी

2179 अच्छे दिन आ गये प्यारो, पाओ सुरत–सब्द का ज्ञान ।
अच्छा बुरा सब लुप्त हो गया, संतन–चरण में ध्यान ।। साहिब जी

2180 सार–सब्द सांसा बसे, सुरत में धरें ध्यान ।
सुमिरन द्वार को खोल दो, तब चले सुरति अष्टम द्वार ।। साहिब जी

2181 जापा मिटे अजपा मिटे, अनहद् भी मिट जाऐ ।
सुरति सार सब्द में जब, अमरपुर हंसा जाऐ ।। साहिब जी

2182 सतगुरू पाया सूरमा, भर मारा पारस सुरति बाण।
निःअक्षर नाम अकेला रह गया, पायो 'वे नाम' नाम।। साहिब जी

2183 ध्यान ही आत्म ध्यान ही सुरति, बिन सुरति जग नांहि।
बिन सुरति कुछ भी नांहि, सुरति संग मन माया नांहि।। साहिब जी

2184 सार सब्द सुरति सब्द, दो बार एक एक कर दीनी।
सतगुरू दात है संग में, सतपुरूष दात ही दीनी।। साहिब जी

2185 जब कोई संत्त साहिबन संग प्यारो, सत्तलौक को जाऐ ।
मूल–सुरति सब याद है रखती, चित से महान कहलाऐ ।। साहिब जी

2186 साहिबन सत्तगुरू रूप धरें, प्यारो मिले मौक्ष द्वार ।
जगमग जगमग हो रहा, साहिब का दरबार ।। साहिब जी

2187 सुरति जब तुरिया तीत सूं पार, महिमां कही ना जाए ।
यही सुरति सार–सब्द संग, पल में निजघर ले जाए ।। साहिब जी

–0–

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

सार सब्द और सुरत सब्द व सुरति महत्वता

भावार्थ : दीक्षा में गुरूओं द्वारा अपने अनुयाईयों को शब्द/मंत्र देने की प्राचीन परम्परा चली आ रही है । जगत गुरू प्रायः अपने किसी भी अनुयायी द्वारा मांगने पर अक़्सर आसानी से अकेले में या समूहों में दीक्षा दे रहे और देते रहे हैं । निराकार दायरे के जगत गुरू दिक्षा देने में ज़रा भी देरी नहीं करते, क्योंकि सभी गुरू अपने अनुयाईयों की संख्या व आश्रमों को बड़ाना चाहते हैं और अपने मंचों पर अक़्सर नेताओं, बड़े सरकारी अफ़सरों और धाण्डय व सम्पन्न लोगों को आमंत्रित करते रहते हैं ताकि उनका मान सम्मान बड़ता रहे। वही नेता, अफ़सर और सम्पन्न लोग भी अपनी पहुंच व यश के लालच–वश उनके समागमों की शोभा बड़ाते रहते हैं, क्योंकि निराकार को भजने वाले गुरूजन सुख–सुविधा से भरपूर जीवन यापन करते हैं अथ्वा इसकी इच्छा से ग्रसित होते हैं और अपने अनुयाईयों को सादा जीवन जीने और दान पुण्य करने का ही उपदेश देते हैं । खुद तो सुख सुविधाओं वाला जीवन जीते हैं और दूसरों को मन की ईच्छाओं से बचने का उपदेश देते हैं । इन में से कुछ तो पूजा स्थलों के स्वामी, बड़े–बड़े आश्रमों या परम्परा से किसी पूर्व साधु महात्मा की कमाई से अर्जित गद्दियो के स्वामी होते हैं । इनका अपने अनुभव या कमाई से अर्जित किया कुछ भी नहीं होता । ज्यादातर तो पण्डित यानि कुछ पुस्तकों, ग्रंथों के शोध व स्वाध्याय कथा वाचक ऋद्धियों–सिद्धियों और तांत्रिक शक़्तियों के स्वामी होते हैं । भक़्ति व साधना वाले तो चन्द ईक्का–दुक्का ही होते हैं और ये सभी जो भी दीक्षा में शब्द देते हैं वह वेदों–ग्रंथों या धार्मिक पुस्तकों में वर्णित होते हैं । ज्यादातर तो अपने गुरू से प्राप्त शब्द ही आगे दीक्षा में देते हैं जो कि उनकी अपनी कमाई द्वारा अर्जित किया हुआ नहीं होता ।

इन सब से परे साहिब सत्तपुरूष की महिमां का बख़ान करने वाले संत सत्तगुरू परमहँस जी अपनी कमाई से ही जीवन का निर्वाह करते हैं और हर कार्य को करते हुए भी मालिक से जुड़े रहते हैं । यहां कोई गद्दी परम्परा नहीं होती । तभी तो सहज व सत्त मार्ग की गद्दिया परम्परागत नहीं होती । जो–जो संत जन सत्तलोक जा के आते हैं वोहि सिर्फ साहिब सत्तपुरूष सत्ता और उनके गुणों का बख़ान करते हैं । सहज व सत्त मार्ग के सत्तगुरू परमहँस अपने द्वारा जो सब्द देते हैं उसे 'सार सब्द' और 'सुरत सब्द' कहते हैं। 'सार सब्द' साहिब सत्तपुरूष की सुरति सूं प्राप्त किया होता है, तभी तो ये कहा जाता है कि जो निजधाम हो के आएगा वही पूर्ण संत सत्तगुरू परमहँस कहलाएगा । परमहँसों द्वारा अपनी कमाई व अनुभव से अर्जित सब्द को 'सार सब्द' या सब्द–विदेह, अक्का–सब्द, सत्तनाम और भी कंई नामों से संबोधित किया जाता है । 'सार सब्द' सतगुरू परमहँसों का निज–सब्द, किसी पुस्तक, ग्रंथों में वर्णित नहीं होता और उनके अपने सतगुरू से दिए गये सब्द से भिन्न होता है जो उनके निज अनुभव से अर्जित होता है । 'सार सब्द' में साहिब सत्तपुरूष का वास होता है और 'सुरत सब्द' में साहिब व सत्तगुरू परमहँस जी का वास होता है । 'सार सब्द' साहिब सतपुरूष जी के मुखारबिंद से प्रकट होता है और 'सुरत सब्द' सत्तगुरू परमहँसों के अपने अनुभव से प्रदान किया जाता है, ये दोनों सब्द विदेह होते हैं । 'सार सब्द' साधक अपने सत्तगुरू परमहँस जी से समर्पण व सेवा भाव से ही पाता है और फिर जो साधक इस 'सार सब्द' को सुरति से ध्याता,

स्मिरता और आत्मसाध करता है उससे क्रौध, काम, वासना, अंहकार, लालच, आशा–तृष्णा व अन्य विकार तुरन्त छूटते चले जाते हैं ।

सहज मार्ग के साधक या अनुयाई अगर इस सब्द दात का स्मिरण न करें और अंहकार को तज समर्पण न करें तो यह सब्द प्रभावहीन हो संत सत्तगुरू परमहँस जी के पास वापिस लोट आता है । निराकार रूपी मन और उसकी कर्म व ज्ञान ईन्द्रियों का प्रभाव सिर्फ 'सार व सुरत सब्द' के स्मिरण से ही ख़त्म होता है, क्योंकि किसी भी सत्ता का प्रभाव उससे बड़ी सत्ता से ही ख़त्म किया जा सकता है । निराकार की भक़्ति में यह सम्भव ही नहीं, जिसके अनेक उदाहरण हैं जैसे महात्मा शुक्राचार्य जी, विश्वामित्र जी, दरवासा़ ऋषि जी, ब्रह्म ऋषि नारद जी व और भी अनगिनत नाम, अर्थात निराकार खुद ही मन रूप हैं उसे किसी भी रूप में भजने वाले मन की ईंद्रियों के प्रभाव से मुक़्त नहीं हो सकते ।

सहज मार्ग के संत सत्तगुरू परमहँस हमेशा शांत व संयमित (न अति आनंदित और न ही क्रौधित होते हैं) रहते हैं । वे किसी भी बात पे उदविग्न नहीं होते क्योंकि उन्होंने 'सार सब्द' को सिमर–सिमर कर पुर्ण साहिब सत्तपुरूष से साक्षात्कार किया होता है । साहिब सत्तपुरूष जी अपने भजने वाले संत परमहँस जनों को उनके सतगुरू रूप में ही दर्शन देते हैं, इसी लिए तो सहज मार्ग में बिन सत्तगुरू परमहँस जी के भक़्ति सम्भव ही नहीं । जबकि निराकार की सीमा के गुरूओं की भूमिका अपने साधकों व अनुयाईयों को मात्र इष्टों के प्रति ज्ञान व विधियां देने तक की ही है । साधक की भक़्ति में प्रकाष्ठता प्राप्त करने के बाद गुरू का कोई महत्व नहीं रहता अर्थात उनकी भूमिका–समाप्त हो जाती है क्योंकि साधक अपने ईष्ट का साक्षात्कार करने के उपरान्त सीधा अपने आराध्य से जुड़ जाते हैं।

मगर सहज सत्त मार्ग में साधकों को सत्तपुरूष जी सत्तगुरू परमहँस जी के रूप में ही दर्शन देते हैं और उनके हर कार्य में उसी रूप में ही उनके संग होते हैं, इसलिए सहज सतमार्ग भक़्ति, बिन सत्तगुरू परमहँस जी की शरणी जाए सम्भव ही नहीं । साधक कितनी भी परिकाष्ठा पर क्यों ना हो, सतगुरू परमहँस जी को समर्पण किए बिना उसका साहिब जी के दर्श करना व निजधाम जाना सम्भव ही नहीं । इस मार्ग में सतगुरू परमहँस जी ''जो करें सोहि होई'' ! उन की कृपा हर अवस्था में सहायक व मार्ग दर्शक होती है, इसलिए इस मार्ग में सतगुरू परमहँस जी ही सर्वोपरि होते हैं । साहिब जी रूप–रंग–गंध से परे आनंद–मय सुरति–रूप हैं । उनका बखान तो वोहि गा सकता है जो निजधाम से साहिब सतपुरूष जी से मिल के आया होता है और उन्हीं के मुखारबिंद से सुरति सूं ही उनको 'सार नाम' की दात मिलती है जो एकदम नवीन व उनके खुद के सतगुरू की दात से सर्वथा भिन्न होती है और इस दात में स्वंय सत्तपुरूष जी का ही वास होता है, तभी तो 'सार नाम' के स्मिरण से निराकार की सत्ता के मन, माया, काम, क्रौध, मोह, माया और आशा–तृष्णा से मुक्त हो के प्राणी सत्तगुरू परमहँस जी के श्री चरणों में समर्पित हो के अपने मूल 'साहिब सतपुरूष जी' को सत्तगुरू परमहँस जी के रूप में पाता है ।

'सार सब्द' सतपुरूष का वासा
जो पावे मुक्त कहलाता
सतपुरूष सूं सतगुरू है पाता
सार पारस सुरति संतन पासा
सतगुरू सुं साधक ले जाता
जो पावे मन माया सूं छूट जाता

जन्म–मरण से मुक्त हो जाता
फिर ना गर्भ जून में आता
अपने निजघर बेगमपुर है जाता
गुरू रूप साहिब संग आनंद में रहता

निराकार की भक्ति में मानव अधिकतर साधकजन मुख से बोल कर अराधना करते हैं । मुख से बोले हुए वचन ही मानव संसार समझ पाता है । परन्तू कुछ मानव मन से स्मिरण करते हैं, मन ही तो निराकार रूप है, जिस से स्मिरण करने से देवी–देव व निराकार भगवान ही सुनते हैं और अधिकतर निराकार जगत गुरू मन से स्मिरण करने को ज़ोर देते हैं क्योंकि निराकार का स्मिरण मन से ही मन रूपी देवताओं तक पहुंचता है । फिर मन से स्मिरण करके मन व मन की वृत्तियों को कैसे शांत व समाप्त किया जा सकता है । इसलिए मन को पूर्णतः शांत करना 'सार सब्द' की दात के बिना सम्भव ही नहीं । 'सार सब्द' का स्मिरण न ही मुख से और न ही मन से किया जा सकता है क्योंकि ये दोनों तो निराकार की सीमा तक की विधियां हैं जबकि साहिब जी और उनके सत्तलोक में हर ओर सुरति का ही तो पसारा है । तभी तो संत वाणियों में वर्णन है :–

बिन मुख कहे सुने बिन काना ।
बिन कर कर्म करे विधि नाना ।।
बिन मुख बोले बखता बड़ योगी ।
बिन मुख वाणी सकल रस भोगी ।।
बिन बादल जहां बिजरी चमके ।
बिन चांद सूरज जहां उजियारा ।।
सुरति का चहुं ओर पसारा ।
ऐसा निजधाम सतलौक हमारा ।।

'सार सब्द' और 'सुरत सब्द' मुख व मन से नहीं जपे जा सकते । सहज सत मार्ग के साधक अपने सतगुरू परमहँस जी की अपार कृपा द्वारा सुरति से ही स्मिरण करते हैं । मानव, मन व विचारों से परे जब कहीं अपने अंतर की ओर झांकता है तो वहां से जो सत्त भाव आत्मा–हंसा से उजागर होता है वही सुरति रूप है । प्रायः जब भी हम कोई ग़ल्त कार्य करने को होते हैं तो पहला भाव 'मन–चित–बुद्धि' द्वारा प्रकट होता है और साथ ही अंदर से सुरति द्वारा सत्त से ओत–प्रोत भाव आत्म–हंसा से प्रकट होता है, प्राणी प्रायः पहले भाव के आवेग वश ग़ल्तियां कर देते हैं और जो प्राणी दूसरे भाव से सुरति द्वारा कार्य करते हैं वह कार्य सत्त से ओत–प्रोत और सफल सिद्ध होते हैं । सुरति की महिमां अत्यंत महान है जिससे मानव पूर्ण सतगुरू परमहँस जी से 'सार सब्द' की दीक्षा उपरांत ही सतगुरू परमहँस जी से दूर होने पर भी वार्तालाप सुरति सूं कर पाते हैं । सहज मार्ग के साधक हमेशा हर कार्य सतगुरू परमहँस जी से सुरति संग जुड़े होने के कारण मन माया से परे रहते हैं । हर दिन वह माया व मन के प्रभाव 'सार सब्द' को सुरति से स्मिरन कर कम से कमतर करते चले जाते हैं । ज्यूं–ज्यूं साधक की सुरति चेतन होती है त्यूं–त्यूं साधक को कोई भी बैग़ाना नहीं लगता, और वह हर जीव में अपने मालिक को ही देखता है, कोई भी उसे अच्छा या बुरा नहीं दिखता । हर प्राणी में मालिक का अंश 'हंसा' सिर्फ सुरति वान ही देख पाता है, कोई अगर बुरा भी

हो तो भी वह क्रौध के स्थान पर तरस या दया भाव ही दर्शाते हैं, क्योंकि कर्म तो मन और काया का कार्य है, आत्मा तो भूल वश खुद को न जानने के कारण अनजान–वश साथ निभाता है, हालांकि बिन आत्म शरीर व काया कुछ भी करने में असमर्थ है फ़िर भी सहज मार्ग के साधक सब में मालिक रूपी हंसा को ही देखते हैं, उनका माया रूपी मन सहायक और कर्म व ज्ञान ईन्द्रियां मित्रता पूर्वक व्योवहार करती हैं ।

जब भी प्राणी नवीन शरीर पाने के उपरांत संसार में आता है तो वह अपने मालिक (साहिब सतपुरूष जी) से जुड़ा हुआ होता है, जन्म लेने के साथ ही सांस लेने की कला उसे सुरति से साहिब सतपुरूष जी ही प्रदान करते हैं । भूख लगने पर रोना, दूध कैसे पीना है ? यह सब वह सुरति से जान पाता है, सुरति द्वारा ही मां बच्चे के रोने पर भेद कर के जान जाती है कि बच्चा भूखा है या मल मूत्र में है अथ्वा उसकी अन्य जरूरत क्या है ? पर उस अवस्था में मां का अपने बालक से प्रेम चूंकि स्वार्थ रहित होता है जिस कारण वह सुरति से ओत प्रोत होती है। ज्यूं–ज्यूं हम जगत माया में लिप्त होते हैं सुरति से दूर होते चले जाते हैं पर हर मानव, हंसा सुरति से युक्त रहता है । मुख से किया स्मिरण दिखावा मात्र है, हम बोल कर मालिक के भग़त होने का दिखावा करते हैं क्योंकि मुख से बोलने वाली भाषा चन्द लोग ही समझते हैं और जब उस भाषा को न जानने वाले ही नहीं समझ सकते तो फिर हमारे ईष्ट कैसे सुने, पर यह सारा संसार मन से स्मिरण व भक्ति कर रहा है, मन भी निराकार का ही रूप है, मन से किया स्मिरण निराकार और उसके देवी–देव ही सुनते हैं । पर जिस साहिब सतपुरूष जी का अंश हम 'हंसा' हैं वह स्वंय भी सुरति में रहते, सुरति से कहते व सब कार्य सुरति द्वारा ही करते हैं । हंसा का 'मूल निजघर सतलोक' भी 'सुरति लोक' है । हंसा सुरति द्वारा ही संसार में आया और जब मानव, मन माया व आशा–तृष्णा को तज पूर्ण सतगुरू परमहँस जी को पाता है तो वह निजघर सुरति संग जाता, बोलता, सुनता और कार्य करता है तभी तो कुछ संतों ने यहां तक कहा है :–

सतलोक निजघर सुरति लोक है :–

सुरति से हम आऐ सारे ।
सुरति सूं वहां जाएंगे सारे ।।
सुरति से रचयो संसारा ।
सुरति से निरंकार प्यारा ।।
सुरति से आद्य्शक्ति प्रक्टायो ।
सुरति से तीन देव सुन्न बनायो ।।
सुरति से हुआ त्रिलोक पसारा ।
सुरति का ही खेल है सारा ।।
सुरति का ही सतलोक हमारा ।
सुरति का चहुं ओर पसारा ।।

सार सुरति आत्म को हंसा बनाए, सुरति संवार हंसा निज घर को जाए ।
साहिब सतपुरूष जी ही है सुरति रूप, सुरति रूप में हर थां पसारा ।।

सहज मार्ग के साधक जब भी स्मिरण में बैठते हैं तो 'सार सब्द' स्मिरणे से उनका शरीर स्थिर, कुछ समय उपरांत मन संसारी व मायावी विचारों में भाग–भाग कर शांत हो जाता है तब आत्म 'हंसा' को सुरति द्वारा साहिब सतपुरूष जी का साक्षात्कार सतगुरू परमहँस जी के रूप में होता है। ध्यान की परिकाष्ठा की अंतिम अवस्था ही सत्तसुरति रूप है तथा हंसा का मूल स्वभाव व चाल ढाल ही सुरति है ।

''संत सतगुरू जे कौसों दूर बसें, सुरति देयो पटाये ।
सुरति तुरिया सवार है, पल आए पल जाए ।।''

जब भी संसारी मानव किसी अपने प्रिय को याद करते हैं जो दूर कहीं रहता हो कि वह इस वक़्त फलां फलां काम कर रहा होगा, इतना विचार मात्र भी मानव के लिए सुरति द्वारा उसके पास जाना और वापिस आना होता है । पर अनगिनत जन्मों से कर्मों के फल और आशा–तृष्णा की तहों में दबा मानव अपनी आत्मां की महानता को समझ नहीं पा रहा है ।

मानव जब तक सत्त भक्ति के पूर्ण सतगुरू परमहँस जी की शरणी नहीं आता तब तक निराकार व जगत गुरू उसे अंतहीन महांकाल के क्रूर जन्म–मरण के बंधन में फंसाते चले जाते हैं । निराकार/देवी–देवों की भक्ति व दान पुण्य की परिकाष्ठा होने पर स्वर्ग मिलता है अर्थात भौग पदार्थ से युक्त स्वर्ग–लोक और बुरे कर्मों के फल अनुसार नर्क मिलता है और कर्म फल भौग उपरांत फिर मृत्यू–लोक में जन्म–मरण के जाल में दौबारा प्राणी फंस जाता है । मानव की इस अवस्था से संत पूर्ण सतगुरू परमहँस जन अत्यंत चिंतित होते हैं । इसलिए हे मानव, तूं अंहकार रूपी 'मै' को तज ! क्योंकि तूं शरीर नहीं, ना ही तूं मन, ना आशा–तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार और राग–द्वैष तेरे अपने स्वभाव हैं। तूं तो साहिब सत्तपुरूष जी का अंश है, यह मृत्यू–लोक तेरा घर नहीं, तेरा तो निजघर सतलोक ही है। इसलिये तूं अपना आप पहचान ! तूं तो आत्म भी नहीं, हंसा ही तेरा रूप है और सुरति तेरा स्वभाव।

सुरति फंसी संसार में, तां से पड़ गया दूर।
सुरति बांध स्थिर कर, आठों पहर हुजूर ।।

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

7 सत्तपुरूष जी की महिमां

2188 एक पुरूष अगम है, सब घट व्याप्त होई ।
ताकी जो भक्ति करें, ताको आवागमण न कोई ।। साहिब जी

2189 नांहि उत्पति नांहि प्रलय, नांहि आवे नांहि जावे।
वर्णन सूं वह बाहिरा, सुरति सूं सब्द ध्यावे।। साहिब जी

2190 जो सतगुरू दासा बने, उसके सतपुरूष दास हो जायें।
जन्म मृत्यु का चक्कर छूटता, निजघर साहिबन संग जायें।। साहिब जी

2191 नैनों की कर कौठरी, पुतली पलंग बिछाऐ ।
पलकों की चीक डाल कर, साहिब में जा समाऐ ।। साहिब जी

2192 जिनकी आंख में नूर साहिबन का, हर रूत बने बसंत ।
संतन जीवन रूत एक है, जिसको कहते बसंत ।। साहिब जी

2193 एक ज़रा सी बात पर, मत छोड़ो सतगुरू द्वार ।
एक ही से हम आए हैं, उसी से जोड़ो तार ।। साहिब जी

2194 वो ही बड़ा जो संग खड़ा, बड़ा न ढूंढो बाहिर ।
वह तो तेरे घट में रहता, तुम ही रहते बाहिर ।। साहिब जी

2195 एक में दिख़ जाए तो, जागे भक्ति प्यार ।
अनेक में वोही तो एक है, उसी से करो प्यार ।। साहिब जी

2196 संगीत जब पूर्ण हो गया, टूटें उसके तार ।
अब अन्न भी जानो राम ही, मन ईन्द्रियां नत मस्तक राम ।। साहिब जी

2197 तूं–तूं करता सुरति सूं, मन की रही न हूँ ।
सार नाम ईक रह गया, जित देखूं तित तूं ।। साहिब जी

2198 सुरति–निरती स्वांसा ध्यान एक, उल्टा स्वांसा हो आप ।
लेख समाना आलेख में, कर्ता निज है आप ।। साहिब जी

2199 जब आत्म चेतन हो गई, मन–माया नहीं साथ ।
अब साहिब ही केवल संग हैं, ले चलें निज साथ ।। साहिब जी

2200 अब जीवित मरना हो गया, साहिब सूं जोड़ी तार ।
अब साहिब ही सुरति में, जब सूं जुड़ी है तार ।। साहिब जी

2201 अब मंदिर–मस्जिद बह गए, अंदर विराजे नाम ।
मन–माया परिक्रमा करे, सुरति रमी सत्तनाम । साहिब जी

2202 तेरे लिए सब मिट गया, बिन साहिब न अब कोए ।
हंसा बन निज घर गया, निज घर ही साहिब होए ।। साहिब जी

2203 साहिब ही एक प्रेम प्यारा, सोहि सब कुछ जानन हारा ।
बन साहिब कोई नांहि हमारा, उसी की भक्ति बिन नांहि निस्तारा।। साहिब जी

2204 साहिब व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम सेतु सूं प्रकटाना ।
सार–सब्द में वासा उनका, सुरति सेतु से पार है जाना।। साहिब जी

2205 साहिब छवी सुरति बसी, मन–माया कहां समाए ।
अब अंग अंग साहिब सूं भरा पड़ा, पथिक आवे और जाए।। साहिब जी

2206 हुक्मी हुक्म चलाऐ जो, वह सच्ची सरकार ।
सार–नाम की दात सूं, जाओ सत्तलौक संग सरकार ।। साहिब जी

2207 सब घट वासा साहिबन का, कोई नहीं कंगाल ।
सार–नाम सूं जागो सभी, छूटें सब जंजाल ।। साहिब जी

2208 मुझ में तुझ में भेद है कैसा, जैसे बूंद और सिन्धु ।
बूंद तज आवागमण करे, सिन्धु से मिल हो सिन्धु ।। साहिब जी

2209 बिन देखे उस लौक की, बात करें सो कूढ़ ।
अभी ना जाना स्वंय को, भेद देत सत्तलौक ।। साहिब जी

2210 उसका उरला कण्डा, उसका परला नांहि पार ।
सतपुरूष है सबका ऐको, नांहि वह बख़ो बख़ रे ।। साहिब जी

2211 तेरा साहिब तुझ में बसे, सुरति बिन न जाने दास ।
कस्तुरी को मृग ज्यूं, फिरे–फिरे ढूंढे घास ।। साहिब जी

2212 साहिब प्रगटे सब मिट गया, बिन साहिब रहा न कोए।
हंसा बन निज घर गया, निज घर बिन साहिब न कोए ।। साहिब जी

2213 वह मेरी आंख में आंख बन के, चश्में तर में रहता है ।
अजीब मेरा मालिक़ है, पानी तर में रहता है ।। साहिब जी

2214 वोहि बीज बन गर्भ में आता, तभी तो मां को हर्शाता ।
निज रूप से सुरति मिलाता, सुरति से ही तो उनका नाता।। साहिब जी

2215 जन्म–मरन से रहित है, सतपुरूष निजधाम ।
मैं जानूं सतगुरू को, जिन भेद दिया निजधाम ।। साहिब जी

2216 जन्म–मरन से रहित है, हंसा सतपुरूष महान ।
मैं जानूं सतगुरू को, जिनके रूप में सत्तपुरूष महान ।। साहिब जी

2217 हमारे केवल साहिब हैं, दूजा काम न आऐ ।
एक ही से सब होत है, सब मिल एक न होऐ ।। साहिब जी

2218 मेरा साहिब हर थां बसे, जद वेख़न वाली आंख ।
जो जन मन–माया सूं बाहिरा, पल में पावे आंख ।। साहिब जी

2219 सभी घट साहिबन बसें, खाली घट न कोए ।
सो आत्म सुहागिनी, जा घट प्रगट होए।। साहिब जी

2220 किस सूं बैरी हो रहा, दूजा ओर कोई नांहि ।
साहिबन का तूं अंश प्यारे, जो रम रहा सब मांहि ।। साहिब जी

2221 जे देखें सब में एक ही, दूजा दिखे नांहि ।
एक ही सूं सब आए हैं, समझो तो दुख नांहि ।। साहिब जी

2222 जैसे जल रहता दूध में, त्यूं पानी में लून ।
ऐसे आत्म साहिब सूं, सुरति साधे कौन ।। साहिब जी

2223 इन सरल तरल नैनो में, साहिब छवि बनी ।
उसी से मेरी सुरति में, साहिबन जोत बनी ।। साहिब जी

2224 जग का कन–कन देत पुकार है, वो ही सच्चा दातार ।
उस को जाना सब कुछ जाना, तीन लौक सूं पार ।। साहिब जी

2225 कैसे मिलूं उस प्यारे को, दाता तारन हार ।
उसी से आए उसी में जाना, झूठा ये संसार ।। साहिब जी

2226 मैं तुम्हीं में मिल गई साहिब जी, और ना ईच्छा मोर ।
तुम तो मेरे अंग–संग समाए, खुली आंख जो मोर ।। साहिब जी

2227 दास सोवे सुरति डाल साहिबन में, साहिब हैं सेवादार ।
जो बोलूं जो भी लिखूं, साहिब करावन हार ।। साहिब जी

2228 आदि अंत हम ही सभी, सब में साहिबन वास ।
सब में वोहि रम रहे, जानो तांहि निवास ।। साहिब जी

2229 साहिबन घर सुरति भण्डार प्यारो, बहती अमृत धार ।
सार–सब्द के ध्यान सूं, कण्ठ में अमृत धार ।। साहिब जी

2230 सांचा साहिब सच्ची वाणी, सत्त में सत्त समाये ।
है वी और हौसी वी, साहिबन में जा समाऐ ।। साहिब जी

2231 साहिबन कृपा जिन पर प्यारो, छूटे मोह और माया ।
पुष्प मांहि जस बास समाना, हंसा संग सब्द समाया ।। साहिब जी

2232 माला जपो ना कर जपो, मुख से जपो ना नाम ।
सुमिरन मेरा साहिब करे, मैं पांऊ विश्राम ।। साहिब जी

2233 माला जपूं ना कर जपूं, मुख से जपूं ना नाम ।
जग में सारे काम करूं, सुरति सूं जपूं सार–नाम ।। साहिब जी

2234 वेद कतेब भ्रम में डालते, नर जाने ना साहिबन दरबार ।
भ्रम करि कर्म–धर्म ठहराया, नर जाने ना सच्ची सरकार ।। साहिब जी

2235 बाबा नानक रे दास जी, पायो सब्द निज साहिबन सरकार ।
इनकी महिमां मैं क्या कहूं, जग जीता मिल साहिबन सरकार ।। साहिब जी

2236 जग ऊंची नीची जाति नांहि, मत कोई करे अभिमान ।
सतगुरू केवल देखते, किस हृदय छोड़ा मान ।। साहिब जी

2237 भक्ति बिन दुख ना जाऐं, लागे आत्म बिन–प्राण ।
भक्ति वंत कोई नीच ना, पावे कृपा संत महान ।। साहिब जी

2238 आओ चलें निज घर हंस प्यारे, साहिब देत पुकार ।
तीन लौक में मन ही राजा, सुन रे साहिबन पुकार ।। साहिब जी

2239 माया मन निरंकार प्यारो, एक सूं आयो निरंझन एक ।
उसी एक को तूं जान ले, जा सूं आए हम हंसा अनेक ।। साहिब जी

2240 आगे–आगे साहिबन चलें, पीछे हंसा जाई ।
पल में पहुंचे निजघर को प्यारे, विहंगम चाल जो पाई ।। साहिब जी

2241 अमृत वस्तु जाने नांहि, नाम साहिबन का लेत ।
कहे दास कामना हीन सूं, जीवत मरना कैसे होत ।। साहिब जी

2242 जग में बिन सतगुरू कृपा, जपिया ना किता होई।
साहिबन की महिमां को, बिरला जन जाने कोई ।। साहिब जी

2243 ईक दाता आत्म का प्यारो, सत्तपुरूष साहिबन महान ।
बिसरुं ना ईक पल भी, पल पल धरूं ध्यान ।। साहिब जी

2244 साहिब की उपमा कही न जाऐ, सब जीवों में वही समाऐ ।
कोई बिरला साहिबन महिमां गाऐ, जिन गाई पार हो जाऐ ।। साहिब जी

2245 एक पर टेक राखो मेरे प्यारो, सुरति सूं मिले मौक्ष का धाम ।
जा की सुरति रमी रहे संतन संग, संग में पहुंचे निजधाम ।। साहिब जी

2246 होत है दीदार तब, जब कृपा संतन की होऐ ।
मिलता है सत्तलौक, जब रहमत की वर्षा होऐ ।। साहिब जी

2247 सतगुरू महिमां अग़म–अगोचर, उनकी कृपा पाऐ कोई कोई ।
कोई प्यारा ही जाने निज रूप को, और न जाने कोई ।। साहिब जी

2248 आप जी सब को देख रहे, जग़त ना जाने तोऐ ।
जब कोई पावे पूर्ण संत, पल में पावे तोऐ ।। साहिब जी

2249 दानी केवल एक है, अमरलौक उसका देस ।
लेने वाला कोई–कोई प्यारो, जा पहुंचे अपने देस ।। साहिब जी

2250 साहिब के दरबार में, मांगोगे तो कुछ ना पास ।
न मांगो तो प्यारो, सब कुछ तेरे पास ।। साहिब जी

2251 साहिब छवी नैनन बसी प्यारी, और छवी कहां समाए।
भीतर सार–सब्द रस उपजे, अब दूजा कहां समाए ।। साहिब जी
2252 सब घट मेरे साहिब जी प्यारे, खाली घट ना कोए ।
जिस घट साहिब ना उभरें, वह मसान घट होए ।। साहिब जी

2253 जो पूर्ण हो जाता प्यारो, पूर्ण में ही जा समाता ।
वह बहुरी गर्भ ना आता, प्यारे सतलौक जा समाता ।। साहिब जी

2254 सतपुरूष अर्थ नाहीं अनुभव हैं, अति जोत स्वरूप उन्हें जान ।
नाव जब मन–माया में फ़ंसी, कैसे पाओ सार–सब्द का ज्ञाण ।। साहिब जी

2255 अजर अमर सत्तपुरूष हैं एको, दूजा कोई ना जान ।
कहें साहिब सर्वज्ञ जो, सोहि परमपुरूष तूं जान ।। साहिब जी

2256 सत्तगुरू साहिब एक रूप प्यारो, दोनों ईक–मिक होई रहत ।
जे सत्तगुरू तुम जान लो, साहिब उनी में रहत ।। साहिब जी

2257 तीन–लौक से आगे भेद हमारा, जानेगा कोई साहिबन प्यारा ।
जा की सुरति जगी रहे, बने वो सत्तगुरू प्यारा ।। साहिब जी

2258 आपा खोया आप को जानो, प्यारो तब पहुंचो दरबार ।
साहिबन अपने अंग–संग पावें, करें आठों पहर दीदार ।। साहिब जी

2259 जो आवे ना जावे मरे नांहि जन्में, सोहि साहिब हमारा।
ना कोई माता ना ही पिता, ना ही कोई सृजनहारा।। साहिब जी

2260 तहां नहीं उत्पति नांही प्रलयः, नांही मोत डराये।
जन्म मरन से पार है, सार नाम पार कराये।। साहिब जी

2261 निःअक्षर मूल चेतन शक्ति ले जान, खर अक्षर के पारा।
पिण्ड ब्रह्मण्ड के पार है, साहिबन घर प्यारा।। साहिब जी

2262 स्वांस स्वांस में हर पल, आरती करे मेरा साहिब।
विश्वात्मां पल पल गा रही, सुन आरती मेरे साहिब।। साहिब जी

2263 केवल नाम पाक नाम प्रकट नाम, साहिबन नाम।
हक्का नाम अमोल नाम उग्र नाम, भी साहिब नाम।। साहिब जी

2264 सतपुरूष सुमिरो मेरे भाई, तन छोड़ निजघर को जाई।
मोह माया का बंधन छूटे, भरम छोड़ भव पार हो जाई।। साहिब जी

2265 सतनाम करता पुकार है, इसी से उतरोगे पार।
सतपुरूष हैं अग़म अपारा, ताका करो विचार।। साहिब जी

2266 निःअक्षर देत प्रमाण साहिबन, वे नाम गुलाम करे पुकार।
पावे पूर्ण मुक्ति का दान, तीन लोक से पार।। साहिब जी

2267 खेवट महिमां जाने कोई कोई, चोथा लोक खेवट का होई।
सतलोक है साहिबन देस, सतगुरू का सेवक होई।। साहिब जी

2268 सार नाम सोहि गावे, जा पर कृपा साहिबन।
संत मार्ग पर चले कोई प्यारा, सतगुरू सूं पावे साहिबन दान।। साहिब जी

2269 साहिब जी ले आये संदेस, सार नाम गहि चलो निज के देस।
सब हंसों का सहज देस, सतगुरू संग चलो निज देस।। साहिब जी

2270 सब्द पाओ सुरति राखो, जा पहुंचो निज द्वार।
कहे साहिब तहां देखिये, बैठे साहिब हमार।। साहिब जी

2271 सुख दुख के पार है, परम तत्व सुरति में रहे समाई।
सुमिरन सुरति लगाई के, सुरति निरति ईक हो जाई।। साहिब जी

2272 सुरति सुहागन सतपुरूष से आई, सतगुरू में आन समाई।
सतगुरू देत दान सुरति का, साधक में आन समाई।। साहिब जी

2273 सार–सब्द सत्तपुरूष की सुरति, वही तो संतन का बाण ।
जिस के कानों को भेद दे, उस के खुल जाऐं नैन ।
सार सुरति में जो रहता सदा, उसी को जग की पहचान।। साहिब जी

2274 तीन लोक किराए का एक मकान है, जिसे खाली करना काम ।
आ चले अमरलोक निज घर में, जो है हम सब का पक्का मकाम ।। साहिब जी

2275 सतगुरू सतपुरूष का भेद है, जो आव जाने वो ।
कहां सूं आया कहां है जाना, हंसा सतपुरूष को जाने वो ।। साहिब जी

2276 सार नाम सतपुरूष नाम है, संत पावे दात महान ।
ताकि महिमां अगम अपार, आदि नाम दात महान ।। साहिब जी

2277 सतपुरूष जन्म मरन से रहित हैं, तीन लौक से पार ।
वोहि हमारा सच्चा पिता, काल जाल सूं पार ।। साहिब जी

2278 जो सतपुरूष को जान ले, पावे भृंग सब्द का ज्ञान ।
सोहि सतगुरू तीन लौक में, मुक्त कर दे भृग सुरति दान ।। साहिब जी

2279 सतपुरूष हर घट में बसें, सार सुरति बिन चले ना काम ।
सार सुरति सतगुरू सूं पाकर, पल में होत सब काम ।। साहिब जी

2280 सतपुरूष ही दाता दान देत, भिखारी सब संसार ।
सतगुरू सूं होती बात साहिबन की, माने ना संसार माने ना संसार।। साहिब जी

2281 सभी प्राणियों का एक ही दाता, जाको सतपुरूष नांव ।
उस को मत भुलाना कभी, वही है सच्चा नांव ।। साहिब जी

2282 सतगुरू सतपुरूष की सुरति संग है, सुरति की महक अपार ।
जो भी इनका संगा करे, इन की कृपा का आर ना पार ।। साहिब जी

2283 सत्य यात्रा निजधाम की, देखो सत्यपुरूष दरबार ।
सतपुरूष दरबार जगमग जगमग कर रहा, उस की महिमां अपरम्पार।। साहिब जी

2284 हर पल रहता हूं ईक संग, मुर्दों को ज़िंदा करने का काम।
मुझे क्या कहते हो प्यारो, काश मेरे प्राण भी तेरे कुछ काम।। साहिब जी

2285 विश्वास की कुण्झी तेरे पास, वोहि कराता भव पार।
विश्वास साहिबन बाण है, पल में ले जाये उस पार।। साहिब जी

2286 मन वाणी से पार जानों, ये तो साहिबन रूप।
सुरति निरति जब प्राण में, सुरति सतगुरू रूप ।। साहिब जी

2287 सतगुरू सुरति सूं , घड़ी घड़ी निखरे जीव।
पल पल सतगुरू दे सहारा, हर पल जागे जीव।। साहिब जी

2288 मान अहंकार नर्क निसानी, सत्त भक्ति ही शुद्ध दानी।
साहिब आपे भीतर बाहर बोलें, बिरले साधक साहिबन महिमां जानी।। साहिब जी

2289 आत्म जाने दो, छेः तन से हो पार।
पूर्ण सतगुरू संग कर, सार नाम सूं होता पार।। साहिब जी

2290 काग़ पलट हंसा कर दीना, सतपुरूष की सुरति सूं लीना ।
नाम जहाज सुरति जहाज है, जो चढ़े सोहि पार कर लीना ।। साहिब जी

2291 सतपुरूष हर दम जागा हुआ, तुम सूं कहे तूं जाग ।
तूं अपना लेखा आप लिख, लेखे सूं होई ते जाग ।। साहिब जी

2292 दान दे सतगुरू लिया उभार, जा पहुंचे सतपुरूष दरबार ।
सुनी के अमरलौक की वाणी, पा लिया साहिबन प्यार ।। साहिब जी

2293 इस देह मांहि विदेह है, सतपुरूष सुरति सरूप ।
हर ओर है रम रहा, निःअक्षर सब्द सुरति सरूप ।। साहिब जी

2294 संत और साहिब एक रूप हैं, द्वैत मत तुम लाओ ।
संत में साहिब साहिब में संत, ऐसी सुरति बनाओ ।। साहिब जी

2295 'वे नाम' कहे ऐसा पाया, संत साहिब भेद ना लायो ।
ऐसी सुरति जब बनी, मौक्ष पद पा जाओ ।। साहिब जी

2296 जीव सोया कंई जन्मों सूं, कभी ना जाना राम (चौथे–राम) ।
राम तो घट में बसें, वै तो अमरपुर के राम ।। साहिब जी

2297 तूं उनका हंसा अंश प्यारे, सार–सब्द में बसें इक राम ।
पूर्ण सत्तगुरू सूं दात पाले प्यारे, जो ले चले निजधाम ।। साहिब जी

2298 आप ही आप का खेल ये सारा, आप ही पार लगावन हारो ।
सार सुरत–सब्द में वासा आपका, आप ही सुरति चलावन हारो ।। साहिब जी

2299 आप तो हैं हर बूंद में, सागर में भी साहिबन वास ।
आप तो रहते हर जीव में, निरंकार माया संग साथ ।। साहिब जी

2300 आप ही अंदर आप निज धाम, सांचो साहिबन प्यारे ।
तुम बिन कोई ना हंसों का, सच्चा सहारा साहिबन प्यारे ।। साहिब जी

2301 निराकार पंच शब्द उचारे, काया में किया ठिकाना ।
सौहंग सत्त ज्योति निरंझन, अतः ररंकार–औंकार क़ाल बीच ठिकाना ।। साहिब जी

2302 मेरी लागी एक साहिब सूं प्यारो, वे ही रहते सब मांहि ।
वे नाम तो दास सब्बन का , बिन सत्तगुरू दूजा नांहि ।। साहिब जी

2303 सुरति समाना सब्द में, अंदर देख ज्योति अनंत ।
साहिब सत्तगुरू ईक संग में , देवें सदा आंनद ।। साहिब जी

2304 मात पिता सतपुरूष हमारे, नाम हमारा 'वे नाम गुलाम' ।
गृह हमारा निजधाम प्यारो, सहज में सहज विश्राम।। साहिब जी

2305 सतपुरूष सार दात रूप हैं, सब हंसा प्यारे मीत।
सार नाम जग सूं छूटे, जो जन प्रेम पुनीत।। साहिब जी

2306 हंसा वासी उस देस के प्यारो, जहां सत्तपुरूष का धाम ।
दुख़ सुख़ की छाया व्यापे नांहि, सब पल एक समान ।। साहिब जी

2307 वह देस अति है प्यारा, जहां हर पल एक बसंत ।
आनंद ही आनंद हर ओर है, हर ओर देखो संत ।। साहिब जी

2308 सतपुरूष अरूकाल के मध्य में, सतगुरू धाम ।
सार सब्द की डौर सुरति सूं, देवें सत सब्द का दान ।। साहिब जी

–0–

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।

(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

7–क हंसा / सतलोक (निजघर महिमां)

2309 अब शेष कुछ नांहि रहा, निज रूप में बूंद समाए ।
हेरि–हेरि हे सखि, अब बूंद कब हेरि जाए ।। साहिब जी

2310 जो निरंकार, अंहकार छोड़, सार सब्द को पाएगा ।
वो ही जीव कर्मजाल से मुक्त हो, निजधाम को जाएगा ।। साहिब जी

2311 साहिबा जो मैं आप से बिछरूं, तो मूल सब्द खोई जाये।
मूल सब्द हंसों की निशानी, सब्द जाये काल खाई जाये।। साहिब जी

2312 सुरति सूं सतगुरू–सब्द धियाईए, चित से मन ले काम ।
चित में जीव जे बह गया, बिगड़ जांए सब काम ।। साहिब जी

2313 ये संसार काजल की कोठड़ी प्यारो, बिरला ही करे इसे पार ।
बिरले जन ली चदरिया प्यारो, बिन दाग़ से उतरे पार ।। साहिब जी

2314 रचना बाहिर सत्तलौक हमारा, जिसका ना कोई पारा वारा ।
काल जाल से बाहिर वह देसा, वेद क्तेव तहां नांहि विचारा ।। साहिब जी

2315 सुख का दान सदा सुख उपजे, काल जाल से न्यारा।
सब हंसा का देस प्यारा, तीन–लौक से न्यारा ।। साहिब जी

2316 सार–सब्द सत्तलौक से आता, करे मन–माया का नाश ।
निर्गुण–निरंझन रचयो संसारा, निज भयो सुन्न–आकाश ।
तीनो लौक विस्तार किया, खुद जा बैठा आकाश ।। साहिब जी

2317 'बेग़म' देस हंसों का प्यारा, तीन लौक से न्यारा ।
निरंकार कृष्ण रूप में भेद देते, ऐसा देस हमारा ।। साहिब जी

2318 आई सुरति सत्तलौक सूं प्यारो, ले चले हंसा सत्त लौक ।
ये लौक काल है राजा, वही है दुख का मोल ।। साहिब जी

2319 योगी यति सती जान ना सके, सिद्ध साध सब सुन्न मांहि ।
अमरलौक में साहिब निज रहते, वेखन वाली अख नांहि ।। साहिब जी

2320 सत्तलौक ही आनंद सागर तुम जानो, हंसा बन आनंद सागर जाओ ।
मोह माया मन छूट प्यारो, हंसा निजघर प्यारा पाओ ।। साहिब जी

2321 धरती आकाश सुन्न से उपर, रहता सब्द निर्वाण ।
तहां साधक बिरला जाई, काल भेद नांहि जान ।। साहिब जी

2322 नैनन बिन बेखेया प्यारो, बैन बिन सुनया धाम ।
बिन हथां करेया, बिन पैरां गयो निजधाम ।। साहिब जी

2323 ध्यान धरि देखिया सुरति, नैन बिन परख़िया भई ।
पग़ बिन चलि गई निजधाम, जब दया सतगुरू की पाई ।। साहिब जी

2324 मेरा साहिब मुझ में बसे प्यारो, मै मूर्ख जानत नांहि ।
आत्म में उसी का वासा, संतन बिन कुछ नांहि ।। साहिब जी

2325 सच्चे को सब सच्चा लागे, मीठे को सब मीठा ।
सार सब्द की सुरति सूं, अमृत ही अमृत डीठा ।। साहिब जी

2326 साहिबा सुरति सूं अमरपुर जाई, जब आत्म हसां कहलाई ।
हंसा विहंगम चाल सूं अमरपुर जाई, साहिबन दर्शन पाई ।। साहिब जी

2327 साहिब जी सहज समाधि सूं, मिले निज घर में वासा ।
तन मन सुरति सूं छूटते, पावो निजघर साहिबन पासा ।। साहिब जी

2328 सब जग पानी सूं उपजा, एक दया जग सार ।
जिन जिन आत्म चीन्हयो, सोहि उतरे पार ।। साहिब जी

2329 सभी उपजे इक बीज सूं, सभी हैं एक समान ।
ईक ज्योति सूं सभी हैं उपजे, सभी हंस रूप समान ।। साहिब जी

2330 मन बुद्धि चित अंहकार, जब चारों सो गए।
ऐसी दशा जब मनुष्य धार ले, शेष हंसा कहलाए ।। साहिब जी

2331 सभी काम क्रौध लोभ मोह अंहकार में, उलझ के रह गऐ ।
साहिब की सार नाम दात बिन, चौरासी फंस रहे भरमाऐ ।। साहिब जी

2332 मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक ।
जो पूर्ण संत्त सतगुरू सूं मिले, पल में छूटे मन संग ।। साहिब जी

2333 कौन पग़ बिन मार्ग है चलता, कौन चक्षु बिन दृष्टि ।
कौन कर्ण बिन श्रवण होत है, कौन मुख बिन सन्तुष्टि ।। साहिब जी

2334 जो जीव घटता बड़ता नाहीं, वह मृतक कहलाए ।
जो जीव उन्नति करें, वही हंसा बन जाए ।। साहिब जी

2335 अमरपुर आप साहिब हैं, हंसों का देश प्यारा।
ना धरती ना गगन पवन ना पानी, ना रवि चांद सितारे।। साहिब जी

2336 सतलोक अमर है धामा, रहते सतपुरूष निःअक्षर नामा।
तीन लोक में मोक्ष का पाना, चौथे लोक हंस ठिकाना।। साहिब जी

2337 सतगुरू सिंह की एक जात, जीवित ही लुभाये।
भावहीन जीवत कहां, मन माया में फंस जाये।। साहिब जी

2338 मुक्ति फल भक्ति कर्म, चार मोक्ष के धाम।
सगुण निर्गुण भक्ति से, पावे जीव ये धाम।। साहिब जी

2339 जो जो वस्तु दृष्टि् में आवे, सोहि काल धरि खावे।
पारस सुरति दान देते प्राणधारी, काल के हाथ ना आवे।। साहिब जी

2340 सब्द सतगुरू का सुरति हृदय में, निरति स्वांसा मिल सुरति से ईक।
हंसात्मां अष्ट्म चक्र से, निजघर एक में रहें अनेक।। साहिब जी

2341 जाके उर सार नाम निस पल, सो जन जाने सुरति प्रीत।
सोहि पहुंचे निजघर अपने, झक मारे संसारी मीत।। साहिब जी

2342 सब्द सुरति और निरति, इन्हें एक ही जान।
सुरति निरति मिल हंसा बने, सब्द से निजघर जान।। साहिब जी

क सतनाम निर आस पद, सतलोक को जाये।
झूठ आस संसार की, जेहि लागि जीव धाये।। साहिब जी

ख साहिबन सब्द जो जन जाने, लिखत पड़त में ना आवे।
वह साहिब सब कहें कोई, मन मुख पकड़ ना पावे।। साहिब जी

2343 हंस होये सत जीव जो, करे देस की आस।
जिन प्रतीति है सब्द की, करिहे सो सुख बास।। साहिब जी

2344 खस खस के दाने अंदर, देस साहिबन का बसता ।
नैनन मध्य से रस्ता उसका, अष्ट्म चक्र में खुलता।। साहिब जी

क शून्य शिखर चड़ बीन बजाये, साहिब जी दौड़े आये।
पल में खुले द्वार सत घर का, परम हंसा दौड़े आये।। साहिब जी

2345 कौटि ज्ञान सूं बिन पसारा, सार नाम जो जानी ।
सत्त सूं हंसा उभरे, ली हो हंसा पहचानी ।। साहिब जी

2346 तेरा भारी पन ना जा सके, जब बाहिर को खुलते नैन ।
बिन पग़ चले जब आत्मां, अंदर के खुलते नैन ।। साहिब जी

2347 अंदर के कान जब–जब खुलें, सुरति सूं खुलते अंदर के नैन ।
सार सुरति सूं पुकारते, सत्तगुरू सूं जुड़ते प्राण ।। साहिब जी

2348 कालपुरूष ना कुछ कर सके, पुरूष नाम जे पास ।
सतगुरू चरणन ध्यान धरें, सतगुरू पर पूर्ण विशवास ।। साहिब जी

2349 सब हंस पुरूष रूप हैं, सतपुरूष सूं करते प्रीत ।
सतगुरू की कृपा सूं पार हो, जब सतगुरू सूं सच्ची प्रीत ।। साहिब जी

2350 जब मन सूक्ष्म रूप सूं, मूल सुरति में आत्म कहलाए ।
मन का संग जब छूटता, तब हंसा कहलाए ।। साहिब जी

2351 इतना बड़ा तूं हंसा प्यारे, मांगे गली गली ।
सतपुरूष का अंश होकर भी, सतगुरू सूं ना जानी प्रेम गली।। साहिब जी

2352 सतगुरू संजीवन नाम को बांटे, सतपुरूष सूं सुरति में लाए ।
यही नाम मन माया सूं पार करे, जा के बल हंस घर जाए।। साहिब जी

2353 तूं ही तो कपिल वृक्ष है, छेः तन सूं बाहिर लो जान ।
तूं हंसा है मूल सुरति में, मूल सुरति कपिल वृक्ष जान ।। साहिब जी

2354 मृत्यू का भय जब कभी सताने लगे, सार सब्द में सुरति ध्यान धर ।
मृत्यू का समय हंसा का महांसागर सूं, बूंद का मेल तूं जान।। साहिब जी

2355 जब सार सब्द में सुरति चले, मृत्यू सूं होता प्यार ।
मृत्यू तो निर्वाण का संदेश, जब जग में तन मन सूं प्यार ।। साहिब जी

2356 एक नाथ पत्र लिखा, बिन लेखनी साथ ।
संदेश वाहक ने पत्र दिया, निवृति नाथ के हाथ ।। साहिब जी

2357 विवृति नाथ ने पत्र पढ़ा, पूरे प्रेम रस साथ ।
ध्यान पूर्वक इसे पढ़ कर, दिया पत्र मुक्ता भाई हाथ ।। साहिब जी

2358 मुक्ता भाई ने भी पढ़ा, स्नेह और प्रीती साथ ।
फिर संदेश वाहक को कहा, हमारा उत्तर भी ले जाओ साथ।। साहिब जी

2359 वोहि पत्र कौरा दिया, संदेश वाहक को बोला लिए पत्र हाथ ।
पत्र तो कौरा खाली है, लेखनी ने लिखी ना बात ।। साहिब जी

2360 इस में आप ने क्या पढ़ा, बिना लिखे उत्तर भेजा मेरे हाथ ।
निवृति नाथ ने भी कहा, अनलिखे की क्या करूं बात ।। साहिब जी

2361 इस ने भी उत्तर दे दिया, आप कहते हैं सच्ची बात ।
साहिब बोलें लिखें सुरति सूं, सुरति सूं करते सुनते बात ।। साहिब जी

2362 त्रिलोक में खेलने आये हम, मन माया का साथ।
खेल के हमको पार है होना, मान लो 'वे नाम' की बात।। साहिब जी

2363 निरकार के तीन लोक, ईक्कीस आकाश तूं जान ।
साहिब लोक सीमा रहित है, कोई और ना छोर तूं जान।। साहिब जी

2364 निराकार के तीन लोक, मन का रूप तूं जान ।
साहिबन अमर पुर सत्य आनंद, प्रेम लोक तूं जान ।। साहिब जी

2365 साहिब सतपुरूष ना ले अवतारा, साहिब अवतार जे माने कोई।
वेद विमुख और पामर होई, इस भेद को जाने कोई–कोई।। साहिब जी

2366 सुरति निरति की सुद्धि ना पाई, सो नर पशु पक्षी है भाई।
जो गाहे सब्द सतलोक सिधाई, भौर ना काल जाल में आई।। साहिब जी

2367 पूर्ण लोक दिखता निज लोक में, पल में चित से जाये।
जब जब सुन्न देस की फेरी, पल में चित में आये।। साहिब जी

2368 वे नाम जी साहिबन संग, किया जोत दीदार।
संग संग औंकार लोक में, पाया पत्र जन्म मरन से पार।। साहिब जी

2369 कोई पूर्ण सतगुरू ही, साहिबन संग पहुंचे सुन्न द्वार।
सुरत समाधि जब लागी, सुरति सब्द स्वांसा सूं पार।। साहिब जी

2370 सुनहरे रंग का जगमगाता ये लोक, संतों को देत पुकार।
सतलोक औंकार लोक से भिन्न, तहां नहीं पांच तत्व की धार।। साहिब जी

2371 पारस सुरति संतन जहाज, जो चढ़े सो उतरे पार।
औंकार मन ही जानिये, प्रलयः में सब मिटने को तैयार।। साहिब जी

2372 गुरू का शिष्य दसवें द्वार से जाये, स्वर्ग लोक में वासा पाये।
सतगुरू साधक ग्यारवें द्वार से, जाये सतलोक में वासा पाये।। साहिब जी

2373 लोक लुकांतर दीक्षा पंच शब्द, पंच मुद्रा कहलाते औंकार का धाम।
चोथा लोक भिन्न तीन लोक से, सतपुरूष का प्यारा धाम।। साहिब जी

2374 दसवें द्वार से जीव जब जाये, स्वर्ग लोक में वासा पाये।
ग्यारवें द्वार से आत्म निकासा, अमर लोक में वासा पाये।। साहिब जी

2375 गुरू भक्ति तीन राम की, सतगुरू भक्ति चोथे राम निर्लम्भ की।
गुरू चार मुक्ति की पहचान बतावे, सतगुरू सैल करावे निजलोक की।। साहिब जी

2376 सुन्न तत्व का है दिया, जिस का आर ना पार।
आत्म चले या ठहरे, हंसा रूप से पार।। साहिब जी

2377 मित्र शत्रु 'वे नाम' के नांहि, हर ओर केवल साहिबन आप।
कोई कंहा सुख दुख का दाता, सब जग भरम में ही आप।। साहिब जी

2378 मैं कुछ नांहि कुछ नांहि मेरा, चारों ओर अज्ञान ने घेरा।
जो कोई पावे ज्ञान अनमोला, पल में छूटे काल का घेरा।। साहिब जी

2379 सिक्के के हैं दो पहलू, एक दूजे के पूरक,
दिन है तो रात, जन्म है तो मृत्यू भी है साथ ।
झूठ है तो सत्य है, कैद है तो मौक्ष,
तैसे ही मृत्यू लौक है तो सत्तलौक भी है साथ ।।

क आदि अंत तब नांहि था, नांहि बोल शरीर ।
सब्द सरूपी बीरवा, तहां हंसा बसे कबीर ।।

2380 अमरलोक सत स्वरूप प्रकाश, हर हंसा का प्रेम निवासा ।
अमरलोक अदभुत शांत निवासा, सब हंसों का आनंद में वासा ।। साहिब जी

2381 बिन देखे और बिन जाने, लेते हो क्या नाम ।
पूर्ण संत सूं सार रस पाओ, पल में पहुंचो निजधाम ।। साहिब जी

2382 मुक्त हो पुनः भौर ना आवे, सतलौक रहे अति आनंद पावे ।
हंसा रूप हो अमृत फल पावे, सतपुरूष संग सेव कमावे ।। साहिब जी

2383 बिन कीचड़ कमल न उग सके, बिन तन मिले ना मौक्ष ।
हम सब हंसा निज धाम के, पाऐं सार सुरति तांहि मौक्ष ।। साहिब जी

2384 आए थे परमपुरूष भजन को, और लगे करने क्यास ।
बिन कुछ किए ध्यान लगाए, परम पुरूष पाने की आस ।। साहिब जी

2385 होमें की जोत तूं ले बुझा, परम जोत करे निवास ।
अब आत्म चेतन हो गई, तुम करो निज घर वास ।। साहिब जी

2386 आत्म हंसा जब हो गई, पल में दर्शन पाऐं ।
अब हंसा जग में ऐसे रहे, जैसे सतगुरू चाहें ।। साहिब जी

2387 आशा–तृष्णा सब छोड़ कर, सत्तगुरू चरणी सुरति वास ।
सत्तगुरू कृपा बरसी तो, हंसा पाए निज घर पास ।। साहिब जी

2388 छे तन सूं बाहिर जब आया, इंगला–पिंगला सुश्मिन विनसे आप ।
सुरत–कमल में ताड़ी लागे, हंसा निजघर जाए आप ।। साहिब जी

–0–

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

7–ख सत्तपुरूष/निराकार सत्ता भेद

2389 मन मैला तन उझला, यह नांहि भक्ति रंग ।
जीवित तन–मन छूटे नर का, तांहि चड़ेगा रंग ।। साहिब जी

2390 स्वार्थ बिन जो नर कोई कार्य करे, जा सूं आत्म आनंदित होए ।
इस उर्जा का प्रयोग कर, तां से आत्म शुद्धि होऐ ।। साहिब जी

2391 कई जन्मों सूं नर भटकता, सत्त–नाम नांहि जाना रे ।
तेरा जीवना पानी का बुलबुला, पल में मिट जाना रे ।। साहिब जी

2392 दुख़ में जो तुम धीर धरो, तो सुख़ उत्पन्न हो जाऐ ।
एक पर जे ना ध्यान धरो, चंचल मन ले उलझाऐ ।। साहिब जी

2393 लग्न मुहूर्त मन जानिए, काल उत्पन्न कर दे आन ।
हर पल हर घड़ी शुभ ही शुभ, जो पल बीतें सार सब्द ध्यान ।। साहिब जी

2394 जे तूं मन को तजें प्यारे, तब होश में आऐ ।
आत्म जोत जब चेतन हो, पल छिन मुक्ति पाऐ ।। साहिब जी

2395 जो जो जग में जाग गया, सो गया मन सूं जीत ।
काम क्रौध और लोभ गया, मन माया सूं जीत ।। साहिब जी

2396 जब जब सुख़ की ईच्छा करे, ध्यान में रहता दुख़ ।
ध्यान ही केवल मूल है, उसी से उपजे दुख़ ।। साहिब जी

2397 हर वस्तु जो जग में बनी, संसार की बड़ावे आन ।
तूं मनुष्य तो सब भौग रहा, क्या दिया इस जग आन ।। साहिब जी

2398 कई जन्मों से भटक रहा तूं, सत्त नाम को पहचान ।
तेरा जीवना पानी का बुलबुला, पल ही में विस्मित जान ।। साहिब जी

2399 कल्पनाओं में जीना आदत तेरी, झूठे सपने संग साथ ।
आज दुख़ी जो जीव है, कल कहां से आवे सुख साथ ।। साहिब जी

2400 तूं इस पल में जीना सीख ले, यही सुख़ का आधार ।
इस पल में जीना ही जीना, इसी सूं जोड़ो तार ।। साहिब जी

2401 सुरति–हंसा सत्तलौक से आई, मन्‌माया ली भरमाई ।
सब हंसों का सत्तलौक है वासा, काल–निरंझन लिओ भरमाई ।। साहिब जी

2402 माया चेरी संतन की, बंद करे सत्तलौक दरबार ।
सार–सब्द की दात सूं, कचरा जले खुले दरबार ।। साहिब जी

2403 साहिब–हसां सत्तलौक का, पड़ा काल निरंझन जाल ।
अनेक उपाऐ पार नांहि उतरे, बिन सार सब्द पतवार ।। साहिब जी

2404 पांच तत्व के मेल सूं, तीन लोक की रचना जान ।
सुर–नर–मुणि सब ठगे, बचे जिन पाया सतगुरू दान ।। साहिब जी

2405 इस माया सब भरमाया, केवल बचे पूर्ण संत ।
संत ही जग से पार लगावें, जब अक्का–सब्द रहे संग ।। साहिब जी

2406 पांच–शब्द सूं रचयो संसारा, जो सब नज़र में आऐ ।
तीन–लौक पार पुरूष पुरातन, संतन दर्श को आऐं ।। साहिब जी

2407 सोहंग सत्त ज्योतिनिरंझन अलखनिरंझन रंरकार औंकार काया में समाए।
अक्का–नाम विदेही, बिरला जन ही कोई पाऐ ।। साहिब जी

2408 मुख–कण्ठ–हृदय सूं जपा, सबका होता अन्त।
जा का जप अजपा अनहद, अंत में होता अन्त ।।
सुरति सूं सार–सब्द का, कभी न होता अन्त ।। साहिब जी

2409 मीरां सुन्न को धार कर प्यारो, सैल करि आस्मानी ।
सार–सब्द को पाकर, भाई अनहद सुनी मस्तानी ।। साहिब जी

2410 घट–घट तेरे साहिब हैं प्यारे, तूं कहां वहां खोज रहा ।
बाहर तो तेरे सपने रहते, साहिब तो अंदर पुकार रहे ।। साहिब जी

2411 ये तन–माया जाल है, आत्म फिरे लिऐ उसे साथ ।
आत्म हंसा जब हुई , छूटा मन–माया का साथ ।। साहिब जी

2412 कलयुग साधु हमने जाना, झूठ शब्द दोहराई ।
अक्का–नाम मूल सब्द है प्यारा, सतगुरू सूं लो इसे पाई ।। साहिब जी

2413 चाहे सींचरे प्रेम रस प्यारो, चाहे राखो मान ।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना ना कान ।। साहिब जी

2414 साहिब के हम रूप हैं प्यारो, निरंकार सूं पाया मन ।
दोनों एक ना हो सकें, ताका करो निधान ।। साहिब जी

2415 तीन–लौक मोह–माया जाल में, झूठी झिल–मिल होई ।
मृग तृष्णा जगत देखि सब, सत्त फिर जाना सोई ।। साहिब जी

2416 ज्ञानी जन जग बहुत हैं, पंडित–मौलवी–पाई अनेक ।
निःअक्षर सब्द की दात को, पावे बिरला कोई एक ।। साहिब जी

2417 सार–नाम ही मूल नाम है, गुप्त मिले निजधाम ।
काल–निरंझन पंच शब्द हैं, तीन–लौक का धाम ।। साहिब जी

2418 गुरू सतगुरू में भेद है, एक मन एक आत्म भेद ।
सतगुरू पाता दात सतपुरूष सूं, सार–सब्द का देता भेद ।। साहिब जी

2419 सतगुरू साहिब की वाणी सूं, मिलता आंख में उनका नूर ।
गुरू तो मन मुरीद़ जानिए, अंदर आत्म का ना पाया नूर ।। साहिब जी

2420 साहिबा मन के रंग अनेक, बदलें गिरगिट समान ।
एक रंग में जो रहे, ऐसा नर महान ।। साहिब जी

2421 जो सांसा संग करे ध्यान को, सांसा संग सुरति लगाए ।
मार्ग दोय जग मांहि, एक मौक्ष दूजा कल और कल में जाए ।। साहिब जी

2422 प्रभुता के लिए सभी हैं भज रहे, सतगुरू भजे बिरला कोए ।
जो कोई सतगुरू में सुरति डालता, तां सूं प्रभुता होए ।। साहिब जी

2423 सुरति सूं मन निर्विकल्प होत है, जब सार–सब्द में ध्यान ।
आत्म सुरति सूं परिवर्तित होत है, सुरत–सब्द में डालो ध्यान ।। साहिब जी

2424 अलख़–निरंझन लखे जे कोई, पड़े काल वश आई ।
पूर्ण सत्तगुरू बिन ना छूटे, अति दुख़ मिले जग मांहि ।। साहिब जी

क मन झूठा जग झूठा है, सबको लिया मन लूट
बिन सार–सब्द कोई ना बचे, पल में मन ले लूट ।। साहिब जी

2425 मन पांचो के वश पड़ा, मन की चले ना एक ।
जित देखूं तित भूख है, जित देखा तित एक ।। साहिब जी

2426 सार–नाम की दात सूं, कागा़ पलट हंस हो जाए ।
निरंझन सूं कागा़ बना, सत्तगुरू आत्म हंस बनाए।। साहिब जी

2427 मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक ।
जो संत्त सतगुरू सूं मिले, पल में छूटे मन तरंग ।। साहिब जी

2428 तीन–लौक में सभी जन अटके, रहबर सयाने सभी जन अटके ।
सत्तगुरू समान जग दाता नांहि, तारें सभी जन भटके ।। साहिब जी

2429 सतगुरू शिष्य और जीवड़ा, तां में भेद तूं जान ।
सार–सब्द आत्म संग प्यारो, सुरति सूं एको जान ।। साहिब जी

2430 सार–सब्द सुरति सूं, हृदय प्रकाशित जान ।
अब मन पाप कर्म सूं बच रहा, बुद्धि चित–शांत तूं जान ।। साहिब जी

2431 मन सुन्न रूप है नांहि, सुन्न तत्व रमा निरंकार ।
मन रूपी मूल का सुन्न तत्व सहारा, सब्द–सुरति सूं साहिब सरकार ।। साहिब जी

2432 साहिब जी कौन पेड़ है, बिन डाल रे ।
मैं न जानू सुन्न तत्व, है कौन–सम आकार रे ।। साहिब जी

2433 साहिबा कौन पक्षी, बिना पंख उड़े ।
सत्तगुरू कृपा बिन, कौन बिन काल मरे ।। साहिब जी

2434 प्यारे साधको ध्यान सूं जान लो, पवन पेड़ बिन डाल ।
सुरति सूं तुम जान लो, मन पंछी बिन पंख–पेड़ बिन डाल ।। साहिब जी

2435 सत्तगुरू देत ज्ञान ये, है बिन आकार निराकार ।
यह भी सुरति में डाल ले, सुन्न तत्व बिन कैसे निरंकार ।। साहिब जी

2436 साहिब जी कहां से उत्पति होई प्राणी, कहां से मन का आना ।
कहां से उत्पति होई वाणी, कहां वाचा वलीन तूं जाना ।। साहिब जी

2437 अवगति सूं प्रगटयो प्राणा, प्राण उत्पति सूं मन ।
प्राण उत्पति सूं वाचा प्रगटयो, वाचा विलय है मन ।। साहिब जी

2438 प्यारो स्थिर मान सरोवर उस पार, किस विधि छूटे जम जाल ।
यह जग कैसे छूटे हंसा, मन सुन्न तत्व संग जाल ।। साहिब जी

2439 सतगुरू की महिमां जानो प्यारो, सच्चा साधक जाने सोऐ ।
जो जाने सो खो जाऐ, अमृत वर्षा हो जाऐ ।। साहिब जी

2440 साहिब जी कहां से उत्पन्न हंसा, और कहां जा समाई ।
आदि मध्य अंत न जानू, पूर्ण भेद न पाई।। साहिब जी

2441 तिल में जैसे तेल समाया, लकड़ी में अग्नि का वास ।
फूल में जैसे बास बसत है, जीव में आत्म वास ।। साहिब जी

2442 मन हंसा में भेद यह कैसा, जीव में जीवन का वास ।
मन को कैसी प्रीति तन सूं, हर कार्य में कौन देत है साथ ।। साहिब जी

2443 चार रूप में मन भरमाता, मन–बुद्धि चित–अहंकार ।
मन तो केवल निर्देश देता, आत्म कर्म सात सुरति अनुसार।। साहिब जी

2444 सतगुरू जग सूं न्यारा प्यारो, पायो साहिब सूं सार–सब्द अनमोल ।
तीन–पांच–पच्चीस का पिंजरा टूटा, छूटा मन सूं हंसा रूप अनमोल।। साहिब जी

2445 तीन–लौक काल का देसा, अमर लौक महान ।
आत्म मन–माया तज हंसा बने, पावे पद निर्वाण ।। साहिब जी

2446 चल हंसा तूं निज देस प्यारे, साहिब देत पुकार ।
सत तो केवल सत्तलौक है, झूठा त्रिलोकी पसार ।। साहिब जी

2447 'वै हूं' कंई जन्मों से, निरंकार को ही जाना निज रूप ।
इस बार ध्यान दिया सतगुरू का, सत्तपुरूष को जाना मम रूप।। साहिब जी

2448 तीन लौक तीन राम हैं, तीनों राम व्यवहार ।
चौथा राम–अमर धाम है, ताका करो विचार ।। साहिब जी

2449 निराकार जोत स्वरूप है, परम पुरूष जौतों के जौत स्वरूप ।
निराकार सत्ता अनहद झंकार है, सतपुरूष सार–सुरति भण्डार।।साहिब जी

2450 तीन लौक ओ+ई+म से प्रकटायें, जिन मिल बावन (52) अक्ष़र बनायो ।
सतपुरूष सत्ता ना आयी ना गयी, जैसी थी वैसी ही रेईयो ।। साहिब जी

2451 जब लग घट मोह–प्रार्थना, चारों ओर अंधियार ।
जब कोई प्यारा संत मिले, सार–सब्द दे उतारे पार ।। साहिब जी

2452 सार–नाम प्रेम प्याला जो पिये, बिन आशा शरीर की देह ।
लोभी भी पार पा सके, सार–नाम की दात जब ले ।। साहिब जी

2453 निरंकार के तीन लोक में, भजूं तो किसको भजूं रे ।
मैं न भजूं न तजूं, सार सुरति में रहूं मग्न रे ।। साहिब जी

2454 मूल सुरति जब चेतन, संग साधक के रहती ।
इतनी तीव्र गति से चलती, लाखों जन्म की याद समाती ।। साहिब जी

2455 प्राकृति अनित्य हर सुर–नर को, निरंकार में लिए भरमाती ।
आत्म ज्ञान हंसा पा कर, साहिब में समा निज में रहती।। साहिब जी

2456 निरंकार लौक में कमर्ण जाल है, और यही भक्ति आधार ।
साहिब के दरबार में, प्रेम–भक्ति भाव आधार ।। साहिब जी

2457 देख तेरे हंसा की हालत, क्या हो गई सत्तनाम ।
निरंकार मोह जाल में ऐसा उलझाया, भूल गया निजधाम । साहिब जी

2458 जीवन–उर्जा प्रेम की डौरी, भय का नांहि कोई काम ।
मन के मतवाले गुरूओं ने, भय द्वार ही जाना सच्चा धाम ।। साहिब जी

2459 धर्म गुरू युग युग से जग हैं आते, पर दे पाए ना सच्ची राह ।
कबीर रे दास वे नाम ने, जग को दिखाई सच्ची राह ।। साहिब जी

2460 सभी संतों ने दी प्रेम पुकार, मत करो संतों सूं भय ।
जग में भय का कारण नांहि, हर जीव सूं करो तुम नेह ।। साहिब जी

2461 जब साहिब निज स्वतन्त्र आप हैं, हंसा भी मालिक आप ।
मन–माया जाल में भरमे सभी, तांहि सूं हुआ जीवन घात ।। साहिब जी

2462 यम को आते देख कर, ईन्द्रियां करें पुकार–पुकार ।
सत्त–सब्द दात पाई ना, अब कौन सुने पुकार ।। साहिब जी

2463 सुरति योग धारण करो, लगन मुहूर्त नांहि धरो ध्यान ।
योगेश्वर गौरख नाथ–शुकदेव–व्यास, औंकार–शब्द धरा ध्यान ।
अनहद धुनों को परमात्म जाना, सब्द–विदेह का ना दिया ध्यान ।
काल–जाल में अटके रह गये, मौक्ष पद का ना पाया ज्ञान ।। साहिब जी

2464 मन ही आत्म भरमावता, काल का छूटे ना साथ ।
'साहिबा' त्रिवेणि घाट पर, आत्म छोड़े मन का साथ ।। साहिब जी

2465 हृदय–चक्र से उठता, अनहद शब्द झंकार ।
भंवर गुफा सुन्न में आए, सुने शब्द झंकार ।। साहिब जी

2466 अनहद की धुन भंवर गुफ़ा में, मधुर ध्वणि झंकार ।।
बंसरी वीणा सारंगी संख सीटी, ध्वणि सुनी मन झंकार ।। साहिब जी

2467 आंख–कान मुख़ बन्द कर, कान की धुन सुनो ।
तन–मन को तुम स्थिर करो, उंची सुरति धार सुनो ।। साहिब जी

2468 कान की बंधता छोड़ दो, अनहद नाद सुनो ।
सुरति–निरति–प्राण को ईक कर, मन–माया सूं पार चलो ।। साहिब जी

2469 बंसरी–वीणा शंख–घंटी झंकार सुनो, कंवल दल जगमग हो ।
भिन्न–भिन्न रंग निरंकार जोत अति चेरी, त्रिकुटि जगमग हो ।। साहिब जी

2470 पांच रंग सूरज उजियारा, कंवल–दल जगमग हो ।
ऐसी अवस्था जब उपझे, शुरू सैल आसमानी हो ।। साहिब जी

2471 पपील–मीन की चाल सूं, सुन्न–महासुन्न की सैल करो ।
ऐसी सुन्न–समाधि सूं, सुन्न लौकों की सैल करो ।। साहिब जी

2472 वेद व्यास बूचरी मुद्रा में, औंकार–शब्द योग किया ध्यान ।
शुकदेव अग़ोचरी मुद्रा में, अनहद धुनों पर धरा ध्यान ।
सुन्न लौक में पाया वास, तो भी आशा–तृष्णा संग साथ ।। साहिब जी

2473 चाचरी मुद्रा में ज्योति–निरंझन, शब्द साध् किया ध्यान ।
आवागमण ना मिट सका, जब सार–सुरति सूं ना किया ध्यान ।। साहिब जी

2474 घंटी नाद जब बाजती, सुन्न–महल के द्वार ।
झीनी–भीनी धुणों सूं, मन से होता पार ।। साहिब जी

2475 'संतो' सुख समाधि भली, जिस में पाओ राम ।
बिन सुन्न धारे खाली रहें, कैसे मिलेंगें राम ।। साहिब जी

2476 हर्ष–शौक–दुख नांहि, त्रिवेणी के घाट ।
सुन्न सफ़र नब्बे मिण्ट का, ध्यान संग अनहद नाद ।। साहिब जी

2477 प्यारो वेद चारों नहीं जानते, सतपुरूष का देश।
पूर्ण सतगुरू चारों लोकों को जानते, सब हंसों का देश।। साहिब जी

2478 ज्योति स्वरूप निरंझन नांहि, ऊँ सब्द से न्यारा।
हर थां प्रकटे पर दीसत नांहि, मूल सब्द में प्यारा।। साहिब जी

2479 बावन अक्षर में तीन लोक संसारा, निःअक्षर सूं सीमा रहित पसारा।
श्वेत रंग का देश, हंसों का देश प्यारा।। साहिब जी

2480 नर निर्बंधन बंधा रहे, सतगुरू दास कहलाये।
कर्म करे कर्ता निज नांहि, साहिबन का हो जाये।। साहिब जी

2481 जिन जिन ध्यान निरंझन किया, युग युग भटका खाया।
सुन्न तक सीमा काल की, सहज कहां से आया।। साहिब जी

2482 खर अक्षर शब्द से आये, मुख से प्रकटाये।
निःअक्षर दात सुरति की, सतपुरूष सुरति सूं प्रकटाये।। साहिब जी

2483 चिंता चित मत लायें, सार सब्द सुरति ध्यान।
ईन्द्री पसारा मेट के, सतगुरू चरणन में ध्यान।। साहिब जी

2484 सार नाम सुरति साहिब अंग, गूंझती हर पल भीतर और बाहिर।
सच्चा धन सुरति ध्यान, ले चले तीन लोक पार।। साहिब जी

2485 सतगुरू चोथे लोक का वासी, सहज में सहज का वासी।
तीन लोक काल पुरूष का न्यारा, सब हंसा उस देस के वासी।। साहिब जी

2486 सहज लोक तक काल पुरूष है कर्ता, यही है ईक्कीसवां लोक ।
सहज ते एक असंख प्रवाना, तहां आदि परमपुरूष का लोक ।। साहिब जी

2487 सब संसार काल ही को सतपुरूष मानता, जो रहता हर एक में ।
इसी की खोज हर धर्म है कर रहा, जो बैठा हर एक में ।। साहिब जी

2488 सोये सोये हरि याद करे, यह नहीं सच्चा नाम ।
सतगुरू मिले सतपुरूष मिलावे, मूल नाम में सुरति ध्यान ।। साहिब जी

2489 वृक्षों पर कंकर फैंकना तो देखा था, झील में पत्थर फैंकने का काम।
हृदय पर शब्दों के बाण, सुरति करती साहिबन का काम।। साहिब जी

2490 निरंझन नाम काल पुरूष का, निरलम्भ राम सतपुरूष जी।
खर अक्षर काल पुरूष के, निःअक्षर दात सतपुरूष जी।। साहिब जी

2491 संशय भ्रम धर्म सिद्धांत, काल पुरूख के।
सत्य सुरति आनंद धर्म, सिद्धांत सतपुरूष के।। साहिब जी

2492 सुन्न 'V' वी तर्ज द्वार चराग़ में, पूर्ण सतगुरू सूं खुले कुल्फ़ किवाड़।
संग में सतपुरूष जब, पल में खुले द्वार।। साहिब जी

2493 सगुण निर्गुण पंच मुद्राओं की भक्ति, ग्यारवें द्वार का भेद ले जान।
बिन दया सतगुरू की, कोई ना पावे मोक्ष का दान।। साहिब जी

2494 आत्म देव निर्लेप सर्वशक्तिमान साहिब जी, स्त्री पुरूष नहीं जान।
जमना मरना घटना बड़ना नांहि नित्य, इसे ले जान।। साहिब जी

2495 किसी भी देस काल अवस्था में, आत्म का नाष नांहि।
आत्म बूढ़ी जवान होती नांहि, भूख प्यास भी नांहि।। साहिब जी

2496 पृथ्वी पानी वायु अग्नि, शूण्य संसार नाषवाण।
बिन आत्म सब का नाष, चौथा अमरलोक ले जान।। साहिब जी

2497 शब्द आकाश मत जानो, ये तो वायु पृथ्वी आधार।
आत्म पंच तत्व से पार है, सतलोक जान आधार।। साहिब जी

2498 आत्म कबहु ना उपझे, कबहु नांहि विनाषे।
जन्म मृत्यु से पार, मित्र शत्रु नांहि पास।। साहिब जी

2499 'वे नाम' सुरति धारा भाई, सुरति सब्द सूं निजधाम।
निजधाम खाली पड़ा, साहिबन संतन धाम।। साहिब जी

2500 बिन सतगुरू कोई पावे नहीं, केता करो उपाये।
लाखों जन्म गीता पड़, निजघर कभी ना जाये।। साहिब जी

2501 सतगुरू सा प्रेमी जग है नहीं, जिस सूं सुरति जगाएं।
वह ही पूर्ण साहिब हैं, तीन लोक सूं पार हो जाएं।। साहिब जी

2502 बिन दीपक अंदर हुआ उजियारा, आत्म हुई मन सूं साफ ।
कोटिन–सूरज हुआ प्रकाशा, 'ऊं' की धुन सुनी ईक साथ ।। साहिब

2503 हरि के दर्शन पाईए, तुरिया पद के ध्यान ।
तुरिया–तीत में सूरति सूं, सैल आस्मानी ध्यान ।। साहिब जी

2504 राजा जनक उनमुनि मुद्रा में, गुरू शब्द पर धरा ध्यान ।
सार–सब्द की अनमोल दात ना पाई, खोया मौक्ष पद का दान ।। साहिब जी

2505 'वे नाम' मोह–लोभ मद्–मान नष्ट कर, सत्त–भक्ति का देते दान ।
सार–सब्द जगत सूं न्यारा, मन–माया का मिटता मान ।। साहिब जी

2506 अच्छे दिन जब पास थे, सत्तगुरू ना ढूंडा कोए ।
अब पछताए क्या भयो, जब यम ने बांधा तोए ।। साहिब जी

2507 सार–सब्द ध्याये जो कोई, मौक्ष पद को पाऐ।
बिन पूर्ण सत्तगुरू कृपा के, सार–सब्द ना पाऐ ।। साहिब जी

2508 'वे नाम' कहें, मानव निज दुखों का, स्वयं ही कारणहार।
निरंकार ने माया जाल रचा, हंसों को किया बे–हार ।। साहिब जी

2509 तन मन संसार दिया, भौग विलास संग साथ।
मानव जग में ऐसा रमा, दुखी रह कर भी ना छोड़े साथ।। साहिब जी

2510 सब संत पुकार जग को देत हैं, छोड़ दे मीठी नींद का साथ।
निरंकार भी जग अवतरित हुऐ, मानव छोड़े ना मन माया साथ।। साहिब जी

2511 निरंकार भी सब छोड़न को तैयार, वचन कारण ना होत आज़ाद।
झूठी माया झूठी छाया, सतसुरति सतनाम संग होत आज़ाद।। साहिब जी

–0–

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।

(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

साहिब सतपुरूष जी की महिमां,
सत्तपुरूष सत्ता/सतलोक व निराकार सत्ता के भेद

भावार्थ : यह जगत सारा माया रूप, यह तन माया, मन माया, भौतिक जगत माया, यह अण्ड–मण्ड सभी द्वीप नौ–खण्ड, सूरज, चांद, सितारे, सारा ब्रह्माण्ड और विशाल सुन्न भी माया, यहां तक कि सभी देवी–देव भी माया, हर तरफ़ माया ही माया पसरी है । यह सारा माया का खेल साहिब सत्तपुरूष जी के अंश 'हंसा' को मन साथ देकर, आत्म–रूप में परिवर्तित कर निराकार की मोहिणी माया ने काया और कर्म बन्धन देकर भ्रमित किया हुआ है । जिसके फलस्वरूप 'आत्म' काल वषिभूत हुआ और अपने मूल साहिब सत्तपुरूष जी की सत्ता से अनभिग् हुआ अपने आप को असहाय् मानते हुए खुद को 'मन' ही समझ बैठा है । इसी आत्मां को निराकार–रूपी माया की अधीनता से आज़ाद करवाना ही मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य है अर्थात अपने मूल, साहिब सत्तपुरूष जी में जा समाना ही उसका परम–ध्येय् है ।

हम यह काया तो नहीं, मन भी नहीं, भौतिक जगत अण्ड–मण्ड–ब्रह्माण्ड भी नहीं, हम तो केवल साहिब सत्तपुरूष जी के निज–अंश 'हंसा–रूप' हैं । यह सारा जगत, देवी–देव, सभी तो नाषवान हैं, काल–वषिभूत अंतिम विराट प्रलयः उपरान्त एक समय ऐसा आएगा जब सारा संसार, धरती, सूरज, चांद–सितारे, सारा अंतरिक्ष, नक्षत्र, ग्रह सहित सारा महांसुन्न, सारे देवी–देव और अण्ड मंण्ड ब्रह्माण्ड भी पूर्णतः नष्ट होकर सत्तपुरूष रूपी सत्तलोक में ही जा समायेगा। जगत के सभी ग्रंथ और गुरूआजन इसे महांप्रलयः कहते हैं । ऐसा भी नहीं कि आज की भौतिक रूपी त्रिलोकी, सत्तलोक से अलग है अपितु यह सब आज भी अपनी अपार विशालता लिए हुए, सत्तलोक से ही चहुँ ओर से घिरी हुई है । सम्पूर्ण निराकार की त्रिलोकी माया नगरी अपने स्वरूप सहित 'सत्तलोक' का ही एक छोटा सा हिस्सा भर है :– जैसे सागर में बूंद के समान !

संत परमहँसों के सतत् प्रयत्नशील जीवन के उपरांत भी इस जगत माया में मग्न मानव मोह–माया के मोहिणी रूप से छूटने का प्रयास तक भी नहीं करता । मोह–वषिभूत मानव संतों और सहज मार्ग के अनुग़ामियों को पागल, पथ–भ्रष्ट, परमपराओं से भटका हुआ तक कहने में भी संकोच नहीं करते और ना जाने किन–किन सम्बोधनों से सम्बोधित करते हैं क्योंकि निराकार के गुरू जनों को तो कोई साधारण सा व्यक़्ति सहजता से मिल नहीं सकता और अगर मिलने पर उनसे असहज कटु वचन कह दे तो यह गुरूजन एकदम क्रौधित होकर अभद्र वार्तालाप पर आ जाते हैं यहां तक कि उनके अनुयायी तो गाली–गलौच पर उतर आते हैं और गुरू के अहम पर मर मिटते हैं क्योंकि निराकार के गुरूजन बड़े–बड़े आश्रमों, धन–सम्पदा से युक्त मठों के गद्दी नशीन होते हैं । उनके राजसी ठाठ–युक्त जीवन साधकों के दान पर ही निर्भर होते हैं । ऐसा सब वो मन–माया वशिभूत ही तो करते हैं । निराकार भक़्ति में मनरूपी माया–काम–क्रौध से बचा ही नहीं जा सकता । निराकार की भक़्ति में स्वयं सारे देवी देव व इष्ट् भी माया रूप हैं तो इनसे कैसे बचा जा सकता है ।

जबकि संत सतगुरू परमहँस जन तो सहज मार्ग साहिब सत्तपुरूष जी की भक़्ति में लीन रहते हुए भी अपनी जीविका खुद अपनी कमाई से चलाते हैं। अगर प्रेम वश कोई भेंट व धन प्राप्त हो तो वह भी सहज मार्ग के पूर्ण संत जन, साधकों के कल्याण हेतु लगा देते हैं, स्वयं पर तो वे एक पैसा भी किसी से ले कर खर्च नहीं करते और अपना सर्वस्व जन कल्याण हेतु अर्पण कर देते हैं । वे तो केवल भक़्तों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए ही प्रयासरत रहते हैं । उन्हें ज्यादा साधक बनाने की भी अभिलाषा नहीं होती । ज्यादा साधकों की ईच्छा भी तो माया ही है। हां, जो आत्मां स्वयं के आध्यात्मिक कल्याण हेतु शरण में आती है, ऐसी विभूतियों के उत्थान के लिए

तो वे सदा तत्पर रहते हैं । जो साधक अहम को तज शरणागत आ जाते हैं उनकी उन्नति ही उनका एकमात्र लक्ष्य होता है । सहज मार्ग के संत परमहँसों के शरणागत वोहि आता है जिसके पूर्ण भाग जागते हैं, जिन्होंने इस जन्म या पूर्व जन्मों में अपने ईष्टों को बिना स्वार्थ बिना किसी मांग के भजा या पूजा होता है । निस्वार्थ/स्वार्थ–रहित पूजा करने वाले भक्तों को निराकार खुद पूर्ण संत परमहँसों की शरणी में पहुंचाते हैं । जगत में क्योंकि कर्म प्रधानता है, कर्मों के फल अर्थात आशा–तृष्णा ही जन्म–मरन का कारण बनती है। मांगें मांगने पर मानव अपने–अपने ईष्टों से फल तो पाता है पर यही उसे अंततः माया–जाल के अंतहीन बंधन में फंसा देती है । कोई बिरला जन ही मांग रहित पूजा करता है, जैसे कोई पिता अपने बच्चों की उन्नति पर प्रसन्न होता है वैसे ही यह देवी–देव भी अगर कोई सहज मार्ग की ओर अग्रसर हो तो उसके सहायक व उससे प्रसन्न होते हैं । जग भ्रम तो देखो सब जगत गुरू व संसारी इस भ्रम से ग्रसित हैं कि यह सब ईष्ट रास्ता रोकते हैं और क्रौधित होते अर्थात भक्ति में बाधा बनते हैं ।

यर्थाथ से परे सत्य यह है कि मानव अपने ईष्टों से बार–बार मांगें ही मांगें मांग रहा है, इस क्रम में अपने ईष्टों से मांग पूरी होने में विलम्भ होने पर मिन्नते, चढ़ावा और अनेक प्रकार के प्रलोभन उनके आगे भी रखने से भी नहीं हिचकिचाता और सारा संसार ऐसा करता ही प्रतीत होता है । वाह रे मानव जिस ईष्ट् से फल चाहिए, उसी ही की अनदेखी व अपमान ! भक्ति भाव का यह निम्न स्तर ? अपने ईष्ट् से प्रीत के स्थान पर इतनी बेरूखी ! अजीबोगरीब व महा मूर्खतापूर्ण प्रथा देखें, संसारी जन अपने कष्ट क्लेशों को हरने के लिए स्वंय पूजा मंत्र जाप ना करके, अपने धन के बल पर पण्डित पुरोहितों से अनुष्ट्ठान करवाते हैं। पंडित पुरोहित पूजा मंत्र जप का अनुष्ट्ठान करें और जिसके कल्याण हेतु अनुष्ट्ठान करें, वह खुद तो संसार के अपने कार्यो में व्यस्त और लीन रहे । वाह रे मनुष्यों, तुम्हारे धन सम्पदा के अहंकार ने मालिक की पूजा भी व्योपार बना कर रख दी । मन्नतें मांगने और फरियाद करने के लिए भी किराए के गुलाम लगा दिए। अपने ईष्ट्रों से भी यह दूरी ! यह पूजा प्रेम व मालिक भक्ति ना हो के एक धोखा व दिखावा नहीं तो और क्या कहें ? मन्नतों द्वारा भौतिक सुख़ सुविधाएं ही सारा संसार मांगे जा रहा है, इसी कारण मानव अंतहीन कर्मफल कौष से अच्छे कर्मों के फल सरूप, देवी–देवों और ईष्टों से मांग में प्राप्त कर के अंततः दुख़ों को आमंत्रित कर लेता है । क्योंकि देवी–देव व सारे ईष्ट ही इस सृष्टि् को चलाऐमान रखने में सहायक होते हैं, इनका काम आप के कर्मों का ही फल देना है । ये सभी यहां तक कि स्वंय देवी देव भी इस मानव देह के लिए तरसते हैं । अपने कर्तव्य से बंधे महांप्रलय काल तक जगत व्यवस्था को चलाने के काम को करने को बाधित और वचनबद्ध् हैं । जब हम देवी–देवों से मन्नत मांग कर व प्रलोभन देकर पूरी लग़न से जगत के भौतिक सुख़–साधन ही मांगे जाते हैं और कहीं लेष मात्र भी मालिक की निस्वार्थ भक़्ति की कामना तक भी नहीं करते तो वे तुरन्त हम्हें हमारी मांग अनुसार फल देकर इस माया–जाल में फिर से उलझा देते हैं जिसके लिए वास्तव में हम खुद ही इस बंधन में बंधने के ज़िम्मेदार हैं अतः सारे का सारा दोष निराकार पर ही डाल देते हैं । अंततः काफ़ी कुछ हम पर ही निर्भर करता है कि हम ऐसा कुछ करें कि जिस से सहज मार्ग के संतों की शरणी में आकर निस्वार्थ भक़्ति द्वारा इस माया–जाल से मुक़्त हो पांए । इसलिए भक्ति मार्ग पर पहला कदम तो हे मानव पूर्ण रूप से तुझे ही उठाना है ।

क्योंकि हम सब साहिब सत्तपुरूष जी के अंश जिसे संतों ने 'हंसा' कह के सम्बोधित किया है और जब इसमें निराकार रूपी मन मिश्रित हो जाता है तो इसे आत्मां कहा गया है । मन–माया से छूटना अर्थात मौक्ष पाना – पुनः 'हंसा' रूप ही पाना मानव का एकमात्र उद्देष्य है पर विडम्बना देखें कि देवी–देव व निराकार, साहिब सतपुरूष जी के अंश नहीं, वे तो केवल शब्द पुत्र हैं और मजबूरी वश अपने–अपने जगत संचालन के कर्तव्य को चाहे अनचाहे निभाये चले जा रहे हैं, यह सारे ईष्ट कर्मफल के इलावा कुछ भी नहीं दे सकते हैं । वह तो अपनी अवस्था से खुद ही दुख़ी हैं फ़िर भी जग–मानव अज्ञानता वश अपने आप को मन–शरीर मान कर अपने से नितकृष्टों से ही मांगे जा रहा है ।

इन ईष्टों की महानता देखें, यह मानव की मांग पूरी ना होने पर मानव द्वारा कूट वचन, गालियां और जगत गुरूओं द्वारा इन्हें महां–ठग, क्रूर, इन के मन रूप को मार मुकाने और दुर्भावना भरी बातें कहते रहते हैं, इतना सब होने पर भी यह सभी वन्दनीय, आदर–योग्य देव अपनी–अपनी नेमतें सभी मानवों को बिना राग द्वेष भाव से एक–सी सब मानवों को प्रधान करते हैं जैसे प्रकाश, वायू, जल आदि । पर मानव की मांगें कंई बार प्रालब्ध में कर्मफल जमा ना होने से आराध्यों/ईष्टों द्वारा अनसुनी कर दी जाती हैं क्योंकि वे चाह कर भी कर्तव्य से विमुख नहीं हो सकते । समय–समय पर मानव को धरा पर उपदेश देने हेतू अर्थात सही मार्ग दिखाने के लिए महांपुरूष और अवतार जो देवी–देवों का रूप हैं, जग में आते रहते हैं जैसे राम व कृष्ण नारायण अवतार हैं (निराकार के अनगिनत नामों में से एक नाम नारायण भी है) पर जग इन्हें पंडितों द्वारा अल्प ज्ञान के कारण विष्णू–अवतार कहते हैं । विष्णू के सभी अवतारों (जैसे वामन अवतार, नरसिंह, कच्छ, मछ, वरह, परशुराम अवतार)को भजने वाले बैकुण्ठ जाते हैं, इसी तरहं राम को भजने वाले भरतपुर और कृष्ण को भजने वाले गौ–लौक, निराकार को भजने वाले सुन्न–लौक और आद्य–शक़्ति के अनगिनत देवी रूपों को भजने वाले भागवत–लौक व योगेश्वर और महा–योगेश्वर सहस्त्रसार, सुन्न व महांसुन्न लौकों को जाते हैं । निराकार का विस्तार ईक्कीस लौकों (सात पताल लौक, सात स्वर्ग नरक व सात सुन्नलोक) तक हुआ है पर यह सब महाकाल रूपी निराकार माया–जाल ही तो है । मानव अपने असल रूप अर्थात साहिब अंश रूप 'हंसा' को ना जानते हुए माया से मलीन आत्मां, तन/काया को 'खुद' जान कर अंतहीन कष्टों व भ्रमों से ग्रसित है । अज्ञानता वश आत्मा अपने आप को काया ही समझ बैठा है इसीलिए काया को मिलने वाले सुख़ दुख़ उसे हर्षाते और तड़पाते हैं जबकि काया तो ख़ुद कुछ भी करने में असमर्थ है, अज्ञानता वश यह सब कष्ट झेले जा रहा है और ना–समझी के कारण स्वर्ग को ही मुक़्ति समझ रहा है जो कि केवल अल्प कालीक सुख़ सुविधाओं से युक्त अच्छे कर्म का एक फल मात्र ही है ना कि सम्पूर्ण मुक़्ति (मौक्ष–सदैव के लिए आवागमण से छुटकारा) । कर्मफल समाप्त होने पर पुनः जन्म–मरन के जाल में आना ही पड़ता है । निराकार स्वंय सुन्न में समाऐ हुए भी जगत संचालन में लिप्त रहते हैं और सुन्न प्रति पल निरंतर अभी भी फैलता चला जा रहा है जो अंतिम महांप्रलय तक फैलता ही रहता है फिर सब कुछ सत्तलोक में ही जा समाता है ।

निराकार का एक दिन चार अरब बत्तीस करोड़ साल और इतने ही काल की रात होती है अर्थात एक प्रलयः काल चार अरब बत्तीस करोड़ साल तक सृष्टि् रचना उत्थान के पश्चात प्रलय उपरान्त चार अरब़ बत्तीस करोड़ साल का सुन्न पसार अहोरात्री अर्थात आठ अरब चौंसठ करोड़ साल का निराकार का दिन–रात होती है । उसके उपरान्त ही पूर्वता की तरहं निराकार दौबारा सृष्टि् रचना करते हैं । निराकार की आयु सताहरां आयोजन कोड़ी तक है । एक तो निराकार का दिन–रात आठ अरब चौंसठ करोड़ साल की एक प्रलय, फिर निराकार की आयु सताहरां आयोजन कोड़ी (अनंत अनगिनत समय जो गिनती से परे है) इतने विशाल काल तक मानव, माया में कष्ट से भरपूर समय बिताने को तो तैयार है पर अपने निज रूप 'हंसा' को पाने के लिए सत्तपुरूष भक़्ति/सत्य भक़्ति की तरफ़ जाने का प्रयास तक भी नहीं करता । यही तो सहज मार्ग के संतों के दुख अथ्वा पीड़ा का मूल कारण है ।

हर सृष्टि् में चार युग और देवी–देव पूर्वता की तरहं ही रचे जाते हैं पर निराकार और आद्य–शक़्ति अपने स्वरूप को बनाए ही रखते हैं । राम और कृष्ण (निराकार अवतार) भी अपने समय अनुसार हर सृष्टि् में अवतरित होते हैं। प्रथम बार जब सृष्टि् उत्पन्न हुई, यह मात्र सत्तपुरूष के अंताकरण में कहीं ना कहीं सृष्टि् रचना का भाव था, तभी तो उन्होंने निराकार सहित 'सौलह–शब्द–पुत्रों' (16–शब्द–पुत्रों की उत्पत्ती के वर्णन अग़ामी पुस्तक 'साहिब जी के सफ़र नामे' में पड़ें) और आद्य–शक़्ति को उत्पन्न किया व निराकार को पांच

तत्व प्रदान किए और इन 'हंसों' को सृष्टि् में भ्रमण व विचरन के लिए प्रेरित किया । पर निराकार ने मन माया ग्रसित संसार रच कर महाकाल रूपी मन मोहक भ्रमजाल को रच डाला, जहां सभी 'हंसा' निराकार की क्रूर व निरअंकुश माया–जाल में फंस कर रह गये । ना जाने कितनी प्रलयों के बाद भी 'हंस' आत्माएं अपना निज रूप भूल क,` भूल–भुलेईयां में फंसी पड़ी हैं । ऐसा नहीं कि निराकार ने केवल भ्रम जाल ही बनाया हो अपितु साथ ही उसने 'हंसों' को मन और काया के साथ–साथ रहने को धरती, खाने को नाना प्रकार के पदार्थ, स्वांसा के लिए हवा और पीने के लिए शीतल जल, रोशनी के लिए सूरज–चांद–सितारे और इसके ईलावा ना जाने और कितने अन्य पदार्थ मानव व जीवों को सुग़म जीवन जीने के लिए प्रदान किए ।

माना कि निराकार ने साहिब ईच्छा की अवहेलना कर, माया रूपी मोहिणी महाकाल जगत की व्यवस्था कर डाली जिस में 'हंस' आत्मांए अपना निज रूप भूल कर साहिब सत्तपुरूष की भक्ति के स्थान पर निराकार (मन–माया) रूपी अनंत ईष्टों को भज कर भ्रमित हुई जा रही हैं। फिर भी कहीं ना कहीं 'हंस' आत्माओं में से चाहे ईक्का–दुक्का बिरले ही सही ,पूर्ण संत सत्तगुरू इस सृष्टि् में निराकार के माया रूपी, तन और मन को धारन करने के बावजूद होते रहे । उन्होंने अपने निज रूप को जाना। साहिब सत्ता की महिमां का बख़ान करने और मानव को जगाने के लिए, वे समय–समय पर इस धरती पर आते रहे । जो–जो जन उनकी शरणी आए उन्होंने मौक्ष और अपने मूल रूप 'हंसा' को प्राप्त किया । मौक्ष अर्थात अपना मूल रूप 'हंसा' को पाना ही सत्तलौक निजघर जाना है ।

निराकार ने कहीं भी सहज मार्ग/सत्त भक्ति में बाधा उत्पन्न नहीं की । जो साधक जन, जग माया प्रलोभन में कहीं नहीं आए, निराकार (मन–रूप) उनके सहायक ही हो लिए क्योंकि निरंकार ऐसा करने के लिए सतपुरूष जी से वचन बद्ध हैं। जो भी मानव जाग्रत अवस्था में मौक्ष की राह पर चलते हैं, उन सब के 'निराकार' (मन व शरीर रूप में) भरपूर सहायक और दास बन जाते हैं, यहां तक की पूर्ण संत्त सत्तगुरू की ही नहीं अपितु उनके निष्ठावान और परम शिष्यों तक की भावनाओं का भी आदर करते हैं तथा कभी भी उनकी अवहेलना नहीं करते और अपनी सृष्टि् की सभी नेमतें उन पर न्योछावर कर देते हैं।

निराकार भगवान ने भक्ति फल–स्वरूप सताहरां आयोजन कौड़ी समय तक संपूर्ण त्रिलौकी का अधिपत्य व संचालन तो प्राप्त कर लिया परन्तु इस व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने में अपने आप को अति–असहज व बंधन की स्थिति में डाल लिया है । संत्तों की वाणी अनुसार अभी तो केवल तीन आयोजन कौड़ी समय बीता है और चौथी आयोजन कौड़ी का दो–तिहाई समय अभी भी शेष है। एक आयोजन कौड़ी में सौ संख्य वर्ष काल का समय होता है ।

सताहरां आयोजन कौड़ी समय की व्यवस्था का भार उठाना, यह संपूर्ण स्थिति उनके लिए तो जैसे घौर दुख–तकलीफ़ और असहनिय बंधन का कारण बन गई है । इस संपूर्ण बंधनीय अवधि काल तक वह अपने वर के फल–स्वरूप, ना चाहते हुए भी सुचारू रूप से त्रिलौकी व्यवस्था संचालन के लिए बाध्य हैं । वह स्वयं भी इस बंधन से मुक्त हो के साहिब सत्तपुरूष जी की शरण में जाने के लिए विचलित हैं परन्तु अपने वचन की पालना के लिए विवश हैं । संपूर्ण संत्तों की वाणी अनुसार वे तो स्वयं दयनीय अवस्था में हैं अपितु कैसी भी विपरित परिस्थितियों में उनको कौसना व भला बुरा कहना सर्वथा अनुचित है । हालांकि उन्होंने बड़ी विकराल महा कर्म जाल की व्यवस्था में 'हंसों' को मन देकर आत्म–रूप में जकड़ लिया है परन्तु फिर भी मानव कहीं ना कहीं अपने स्वार्थ–वश ईस काल जाल के बंधन में फ़सने के लिए स्वयं ही ज़िम्मेदार है । निराकार ने तो सभी

आत्माओं के लिए ना सिर्फ उनके भौतिक व्यवस्थाओं की सभी सुविधाएं उपलब्ध करवाई अपितु 'साहिब–सत्तपुरूष जी' की आज्ञानुसार उनके मौक्ष के लिए भी प्रावधान खुले रक्खे ताकि वे किसी 'संपूर्ण सत्तगुरू परमहँस जी' की शरण में जाके अपने मूल स्वरूप 'हंसा' को पाकर सत्तलोक अपने निज घर को जा सकें । फ़िर किस–किस पर और क्युं दोषारोपन करें । इसलिए निराकार को दोष ना देते हुए मानव किसी भी प्रकार की अवस्था अर्थात अपना भला व बुरा कोई भी निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र है । हां, पहला कदम मानव को सहज मार्ग की तरफ खुद ही उठाना होता है, माया में रमा व्यक्ति इस तरफ जाना ही नहीं चाहता, फिर दोषी कौन ?

निराकार अपने को भजने वालों की मनोकामनाएं तो पूर्ण करते ही हैं साथ ही जो जिस ईष्ट् के रूप में उनको भजता है वह वही रूप धारण कर उसको दर्शन देते हैं । निराकार सत्ता में गुरू की महत्वता तो साधक को ज्ञान देने तक की ही है, पर सहज सत्त भक़्ति के अनुयायी और साधक–जन, सत्तगुरू परमहँस जी को सम्पूर्ण–समर्पण किए बिना सत्त भक़्ति मार्ग पर आगे बड़ ही नहीं सकते, क्योंकि साहिब सत्तपुरूष जी इस सृष्टि् के किसी भी कार्य में लिप्त नहीं होते और जो साधक सत्तगुरू परमहँस जी के सानिध्य में रह कर भक़्ति करते हैं उन्हें वे सत्तगुरू परमहँस जी के रूप में ही मिलते हैं। सहज मार्ग की भक़्ति बिन सम्पूर्ण सत्तगुरू परमहँस जी के सम्भव ही नहीं, क्योंकि साहिब सत्तपुरूष जी, त्रिलौकी जगत माया में लिप्त नहीं होते और सहज सत्त मार्ग के अनुयाईयों को सत्तगुरू परमहँस जी के रूप में दर्शन देते व उनके मनोरथ पूर्ण करते हैं। साहिब सत्तपुरूष जी अपने अंश 'हंसा' की अनंत आदि काल से मिलाप की तीव्र ईच्छा लिए हुए हैं और सदैव आत्मां के संग–संग होते हैं पर माया के अनगिनत जन्मों के आवरणों से लदा हुआ 'हंस' आत्मां उनकी तरफ़ देखता तक भी नहीं और साहिब जी से स्वयं की अवहेलना/भूल जाने का आक्षेप लगाने में एक पल की भी देरी नहीं करता । इसके उल्ट साहिब सतपुरूष जी सत्तगुरू परमहँस जी के रूप में सोई हुई आत्माओं को जगाने की भरपूर चेष्ठा् सतगुरू परमहँस जी के रूप में चिरकाल से समय–समय पर करते रहते हैं, पर मानव तन में मन–रूपी 'हंसा' उनकी ओर मुड़ के देखने की चेष्ठा् ही नहीं करता । जन्म से पहले मां के गर्भ में साहिब जी उसके संग होते हैं और मानव जन्म से पहले 'हंसा' इस जगत में साहिब को कभी ना भूलने का वचन देता है, पर काया और मन मिलने पर आशा–तृष्णा से ग्रसित मानव सब कुछ भूल कर माया में रम जाता है । अनंत काल से यही क्रम तो चला आ रहा है और साहिब सतपुरूष जी अपने 'हंसा' की बाट तभी से निरंतर जोहते चले आ रहे हैं ।

साहिब सत्तपुरूष जी ने अपने ही निज रू्प से 'हंसों' को प्रकट किया़ । इससे पहले तक सत्तलोक गहन शांतमय स्वरूप में था । साहिब सत्तपुरूष जी ने अनगिनत अनंत 'हंसों' को अपने ही स्वरूप से प्रकट किया और उन्हें सत्तलोक ही में विचरण हेतु छोड़ दिया । फ़िर अनंत काल बाद निराकार भगवान सहित सौलहां विभूतियों की शब्द द्वारा संरचना के साथ ही इन 'हंसों' के विचरण व भ्रमण हेतु, त्रिलौकी रचने के लिए निराकार (निरंझन) को प्रेरित किया, ताकि सभी 'हंसा' आनंद–पूर्वक विचरण कर सकें । मगर निराकार भगवान ने यह सारा मोहिनी माया मकड़ जाल (महांकाल विस्तार) रच डाला । तभी से 'हंस' इस माया में ही उलझ कर आत्म रूप में भटक रहे हैं । इस सारे माया भ्रम से मुक़्त होकर ही आत्मां, 'हंसा' रूप , संपूर्ण सत्तगुरू परमहँस जी की शरण में ही जा कर पुनः धारण कर सकता है । अपने निज रूप 'हंसा' को पाकर सत्तलोक में वह साहिब सत्तपुरूष जी में जा समाता है और इस मृत्यू लोक के आवागमण के चक्कर से सदा सदा के लिए मुक्त अर्थात मौक्ष को प्राप्त हो जाता है ।

–0–

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

8 जीवन में रंगों की महत्वता

2512 हरे रंग की रोशनी जब दिखे, मन स्थिर शांत हो जाई ।
हरां रंग निराकार रूप प्यारा, मन मिटता चली जाई ।। साहिब जी

2513 रंगों के सारे खेल सूं, हर प्राणी भिन्न–भिन्न कहलाए।
हरे रंग सूं नई उर्जा प्रगटे, जीवन सुख़ी हो जाए ।। साहिब जी

2514 हर प्राणी जग में न्यारा, रंगों में रंग खेल दिखाए ।
अंदर नीला रंग धारिये, मन शांत चुप हो जाए ।। साहिब जी

2515 लाल रंग का सूरज जब दिखे, मन प्रेम रूप हो जाए ।
हर दिशा प्रेम ही प्रेम प्रकटे, जीवन हरा भरा हो जाए ।। साहिब जी

2516 जब सभी रंगों का सूरज दिखे, मन अठानवें प्रतिशत मिट जाई ।
मीन पपील चाल सूं, सुन्न महांसुन्न की सैल निरंकार कराई।। साहिब जी

2517 पीला रंग पृथ्वी रंग है, भय का है प्रतीक ।
भय में रहता वह प्राणी है, दुख मिटन का ना प्रतीक ।। साहिब जी

2518 काला रंग पांच तत्व है, जा में निरंकार समाई ।
इसी को मन तुम जान लो, अंदर बाहर रहा भरमाई ।। साहिब जी

2519 सफेद रंग पानी तत्व का रंग है, जब बर्फ बन जाई ।
त्रिकुटि में केवल ध्यान सूं, सफेद बादल दर्शाई ।। साहिब जी

2520 उन पर ध्यान को डालते, मन मिटता चली जाई ।
पूर्ण मन नां मिट पाई, आडोल शान्त हो जाई ।। साहिब जी

2521 तीन लौक अंधकार में, किस–किस को समझावें ।
मान–अपमान में सब बह रहे, जीव होमा सूं बाहर ना आवे।। साहिब जी

2522 साहिब का रंग लाल ना, सुनहरी–पीला कहा ना जाए ।
उनको वो ही देखता, जो निजघर वासा पाए ।। साहिब जी

2523 आत्म का रंग मत कहो, इस को बस चेतन जान ।
रंग–रुप खुद तूं देखना, जब पाओ निर्वाण ।। साहिब जी

2524 हंसा अंग सतपुरुष का, दोनों को रंग रुप से क्या काम।
शब्द भाषा ना कह सके, वो तो अनुभव प्रीत ही जान ।। साहिब जी

2525 जग में कोई कंगाल नहीं, सब हैं माला माल ।
जो जानें निज रूप को, पाएं प्रेम आनंद लाल ही लाल ।। साहिब जी

2526 'वे नाम' भूखा जग में कोई नहीं, सब का अंताकरण है लाल ।
ग्रह खोलन नहीं जानते, तांहि तो भयो कंगाल ।। साहिब जी

2527 रंग रूप तो जग माया निरंकार रचा, रंग–बिरंगा नारंग ।
रंग रूप से सब भ्रम में पड़े, आत्म का कोई रंग ना रूप।। साहिब जी

2528 गौरा रंग है सब को भाता, काला ना भाये लगे बदरंग ।
काले बादल जो ना होते, सारी सृष्टि् होती बदरंग ।।साहिब जी

2529 रंग बिरंगा निराकार का, त्रिलौक संसार नौ–खण्ड ।
आत्म को भरमाने हेतु, रचा गया पाखण्ड ।। साहिब जी

2530 जो जाने निज रूप को, उस पर चढ़े ना रंग ।
संत सत्तगुरू शरणागत को, छू ना पाए माया रंग ।। साहिब जी

2531 सत्तगुरू ही साहिब सरूपी, प्रेम–प्रीत–विरह का रंग ।
जिन–जिन सत्तगुरू को पाया, सोहि पाए साहिबन संग ।। साहिब जी

2532 जग में 'हंसा' पहुंच कर, रम गया रंगों मे रंगा।
खुद को मन काया समझे, तां से दुखी रहे बदरंग ।। साहिब जी

2533 बिन जाने कैसे कहें, साहिब का क्या है रूप व रंग ।
ना ये पीला ना ये नीला, कैसे कहें उनका रूप व रंग ।
जो जाने निज रूप को, वो रंगें साहिबन रंग ।। साहिब जी

2534 साहिबन का रंग लाल ना, सुनहरी पीला कहा ना जाए ।
सत्तगुरू कृपा जो पाए , साहिब के रंगों में रंग जाए ।। साहिब जी

2535 आत्म का रंग कहा ना जाये, जानो चेतन रूप ।
माया रंग छोड़ हंसा बने, तो जानो निज रूप ।। साहिब जी

2536 मन और माया मैल ही जानो, सार नाम साबुन देत निखार ।
प्रीत विरह से धोईए, निखरे प्रेम रंग अपार ।। साहिब जी

2537 सारे रंग हैं साहिबन से, पर निज का रंग सफेद।
उसी से आते जाते रंग, सब मिले तो हो सफेद।। साहिब जी

क सब्द एक और ईकहि रूपा, ताहि से उपझा लाल सरूपा।
एक देख सुरति पतियाई, सभी जानिया देख सरूपा।। साहिब जी

ख लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।। साहिब जी

2538 शून्य से अंधकार उत्पति जान, अंधकार रंग कारा।
सुरति हंसात्मां संग सतपुरूष से आई, काल दिया मन रंग कारा।। साहिब जी

2539 मूल सब्द की चोरी करे, करे रंग का संग ।
कहे दास कैसे तरे, पत्थरों को साथ जे संग ।। साहिब जी

2540 सतगुरू सम कोई तीन लोक में है नहीं, जिस का करूं में संग ।
सात दाप नौ खण्ड में, और ईक्कीस सुन्दर ब्रह्माण्ड ।। साहिब जी

2541 मन से कंई कंई रंग हैं, तूं जाग कर इसको देख ।
सार सब्द की दात सूं, पल में मिटे क्लेश ।। साहिब जी

2542 दुर्बल मत किसी को जानिये, सबके अंदर लाल भंण्डार।
सुरति सूं जब वह बोलता, राख करे सब भण्डार।। साहिब जी

2543 हर जीव जग में अति अनमोला, अंदर ना देखे लाल।
पारस सुरति जे दात ना पावे, भीतर पड़ा कैसे देखे लाल।। साहिब जी

2544 लाल से मिल कर लाल हो गया, अब जित देखूं तित लाल।
पारस सुरति संग में लाया, जो पाये सो भी भयो लाल।। साहिब जी

2545 भृंगी वाणी केवल कान से, कोई प्यारा सुरति से पावे।
पहला रंग रूप गया, अब जागा जीव कहावे।। साहिब जी

2546 सतगुरू रूप रंग नां देखो, पारस सुरति महान।
सार नाम दात का दान लो, सुरत सब्द सूं महान।। साहिब जी

2547 मैंहदी हरी मेरे भाई, लालिमा तन स्पर्श से आई।
सतगुरू सब्द पारस सुरति से, आत्म पर पारस रंग दे चढ़ाई।
साधक जब सुरति एकाग्र करे, सार सब्द निखार आ जाई।। साहिब जी

2548 चौदहं लोक बसे घट मांहि, सब के अंदर लाल।
सुरति नां रंगाये ध्यानी, तन मैंहदी सूं लाल।। साहिब जी

2549 निरंकार लोक में जीव का वासना, संतों की फेरी का देस।
निरंकार तीन लोक को देखता, काला धारता भेस।। साहिब जी

2550 चौदहं लोक बसे घट मांहि, सब के अंदर लाल।
सुरति ना रंगे ध्यानी, तन रंगाये लाल।। साहिब जी

2551 सुन्न से अंधकार उत्पत्ति जान, अंधकार रंग कारा।
सुरति हंसात्मां संग, काला रंग मन कारा।। साहिब जी

2552 काले सुन्न रंग में बसें निरंकार, हर थां फेला सुन्न विशाल।
भूत भविष्य आशा तृष्णा का, विशाल जाल सुन्न–महाकाल।। साहिब जी

2553 हंसा चले विहंगम चाल, पल में पहुंचे सतलौक निजधाम।
सतलौक का रंग श्वेत, हंसों का कैसा प्यारा निजधाम।। साहिब जी

2554 बलिहारी जाऊँ सत्तगुरू अपने, जिन दीनी सार–सुरति सत्तरंग।
जित देखुं प्रेम रंग छाया, सत्तपुरूष ही प्रेम–प्रीत का रंग।। साहिब जी

2555 निजधाम जो होके आएगा, वोहि सतगुरू कहलाऐ ।
निजधाम जो जाएगा, वोहि सार सब्द को पाऐ ।। साहिब जी

2556 जा के पास सार दात है, वोहि संसार को जगावन हार ।
बिन जागे निज को कैसे कोई जाने, फिर कैसे हो पाये पार ।। साहिब जी

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

रंगों की महत्वता

भावार्थ :– सारा संसार ही नहीं, सारी क़ायनात ही नहीं, सारी की सारी त्रिलोकी रंगों से भरी नांरगी है । सारा का सार मृत्यू–लोक अनगिनत रंगों से रंगा पड़ा है । संतों की वाणी अनुसार यह धरा ही नहीं, त्रिलोकी के ईक्कीस लोक सब रंगों के चकाचौंध से जगमग हो रहे हैं । क्योंकि झूठ का प्रचार–प्रसार ही तो निराकार की जगमग रंगीन माया है जो आत्मां को छलने व भ्रम जाल में फंसाने का काम करती है ।

हम सब प्राणी निरंकार की माया नगरी में वास कर रहे हैं पर यह हमारा निज देश नहीं, हम तो सत्तलोक के वासी हंसा–रूप हैं और इस माया में मलीन होने पर आत्मां कहलाते हैं, इतना ही नहीं, हम तो 'आत्मां' हैं प्रायः सारा प्राणी जगत यह भूला बैठा है और अपने आप को इस झूठी माया नगरी की रंग–बिरंगी चकाचौंध में मग्न हुआ खुद को शरीर ही समझ बैठा है । भुग़त योनियों में तो भयंकर यात्नाएं झेलनी पड़ती हैं पर वहां भी मोह–माया में लिप्त अपने–बेगाने का रंग व शरीर, ही खुद को समझ रहा है, ठीक वैसे ही मानव माया के शौख़, तड़क भड़क वाले चटकीले रंग रूपी दुनियां में ऐसे जिए जा रहा है कि जैसे बाकि सभी को तो मृत्यू आनी है बस वो ही अमर होने का वरदान पाए हुए है । ऐसा भी नहीं कि मानव जानता नहीं कि उसे भी मरना है परन्तु मृत्यू लोक में धन सम्पदा कमाने में ऐसे संलग्न है कि 'मैं' और 'मेरी' के अंहकार में डूबा हुआ वह एक दूसरे को धोखे पे धोखा दिए जा रहा है, अपने कु–कृत्यों से धन कमा–कमा कर माया रंगों में माया ही कमा और बड़ा रहा है, जैसे माया में ही उसका ओढ़ना बिछोना व सभी कुछ हो । माया की झूठी नगरी का कमाल देखें, रंगों और भिन्न भिन्न काया वाले नरीह असहाय प्राणी को भी वह क्रूरता की ईन्तहा करते हुए मार–मार कर खाए जा रहा है । अपने स्वाद के लिए खुदा के नाम पर हलाल (आधा गला काट कर तड़पा कर मारना) अर्थात प्राणियों को अत्यन्त निर्दयिता व क्रूरता से मार कर खाए जा रहा है । माया रूपी खुदा को हत्या का साक्षी ही नहीं गुनहगार तक ठहराते हैं और धार्मिकता का पाठ पढ–पढ़ कर के हत्या कर के उसी के ही अर्पण करते हैं और खुद को दोष मुक़्त और आज़ाद समझते हैं । एक तरफ़ तो कहते हैं किसी भी जीव को सताने पर खुदा–परमात्मा सज़ा देता है । जब तुम खुद ही अत्यदिक अत्याचारी होते हो, तो अपने गुनाह के लिए खुदा व भगवान पर दौषारोपण करते हो ।

वाह रे मानव, झूठ के माया रंगों में रंगे तुम अपने मालिक व ईष्ट को मान–सम्मान की जगह गुनहगार ठहराते जाते हो । कंई तो ना जाने कैसे–कैसे डकोंसले, भूत प्रेतों, राक्षसों को देवी–देव व कुलदेव कह कर उनके नाम पर बली पर बली चढ़ाए जा रहे हैं । अपने जीव के स्वाद और मजे वश इतने घौर नीच कर्म करने व अपने ईष्ट्ों के नाम को बदनाम करने से भी तुम नहीं कतराते हो, जिसका फल केवल तुझे ही भौगना पड़ेगा ।

वाह री रंग–बिरंगी माया नगरी के कप्ट रूप में रंगे वासियो, आपकी शैतानी व चतुराई । स्वाद और नशे के वशीभूत तुम खुद, अपने व अपने सम्बंधियों के लिए कत्ल करो और इल्ज़ाम खुदा और देवी देवताओं को दे दो । इल्ज़ाम व दोषारोपन से भी परे माया रूपी क्रूरता में रंगा हुआ मानव, खुद को दुनियां–ए–कायनात का कर्ता–धरता यानि

मालिक मान बैठा है और दलील यह देता है कि अगर हम पशु–पक्षियों को मार–मार कर नहीं खाएंगे तो यह सारी धरती इन से भर जाएगी, हमारे लिए कोई स्थान नहीं बचेगा, हम कहां जाएंगे । वाह रे मानव, खुद ही जगत के संचालक बनने चल पड़े। सारी मानव जाति की विडम्भना तो देखो, आज से चार सौ साल पहले सारे संसार की आबादी लगभग चार करोड़ थी, फ़िर भी हर समय एक–दूसरे के देशों पर हमले ही हमले, धरती व धन–दौलत के लिए हज़ारों लाखों के कत्ल, बे–गुनाहों के धर्म परिवर्तन, जमीन–जयदात यहां तक कि सुंदर नारी के लिए कत्ल तक किये गये और यही सब आज भी हो रहा है । एक दूसरे का कत्ल जो आज के सभ्य मानव समाज में अभी तक लगातार जारी है ।

अब मानव की संख्या चार करोड़ से सात अरब के पार हो रही है, जिसके लिए धरती पर अब भी स्थान है । क्या मालिक–निराकार जिसे खुदा, अल्लाह, ईश्वर, सुन्न या किसी भी और नाम से पुकारो, जिसने सारे के सारे ईक्कीस लोक रचे, अगर वह मानव के लिए साधन दे सकता है और दे रहा है तो वह इतना र्निदई नहीं कि भौग योनि के प्राणियों को सब कुछ ना दे । मानव खुद कमा–कमा कर यह समझ रहा है कि 'मै' कमा कर ला रहा हूं तो ही मेरे घर वालों का भौजन व जीवन–यापन चल रहा है । हे महा मूर्ख माया रंगों से ग्रसित मानव, जिस मालिक ने बिष्ठा के कीड़े तक के लिए खाने व जीवन जीने का प्रबन्ध किया हुआ है, जिसने सब प्राणियों के लिए खाने–रहने का प्रबन्ध किया है, उसने तेरा व सारे मानवों का प्रालब्ध, मुकद्दर व किस्मत देकर सारे का सारा प्रबन्ध भी किया है । माया–रंग से बाहर निकल और कर्ता मत बन, कर्ता तो क्या, तूं तो शरीर भी नहीं, मन भी नहीं, आत्मां भी नहीं, माया के लबादे जो तूने जन्मों–जन्मों से ओढ़े हैं, उतार दे, 'मै' का अहम तज, तभी तूं अपने मूल रूप 'हंसा' को जान पाएगा । मोहिणी माया–जाल में तूं कैद है, गुलाम है, पराधीनता में है और कैसे–कैसे व्योवहार करता है, दम भरता है । इस कैद से छूटना और अपने आप को जानना ही तेरा परम ध्येय है।

जब भी मां के गर्भ में तूं होता है तो साहिब सतपुरूष जी सुरति से तेरे संग ही होते हैं और तुझ से तेरी पहचान कराते हैं। उस समय तो तुम माया से र्निलेप/साफ़ होने के कारण अपने निज–रूप 'हंसा' को जानते हुए परम पुरूष से वचन देकर सुरति से कहते हो कि मैं जग–माया में कभी भी लिप्त नहीं होऊंगा और हमेशा आप को ही स्मरण करूंगा, कभी आपका संग ना छोडूंगा । पर कैसी विडम्भना है कि अनंत काल से साहिब सतपुरूष जी तुम्हारी बाट–जोह (राह देख) रहे हैं, पर हे–मानव तुम माया के रंग में इस प्रकार रंगे रचे होने और नाना प्रकार के कचरों में लिप्त होने के कारण, स्मिरण करना तो दूर उनकी तरफ़ देख भी नहीं पा रहे हो। तुम तो भौतिक ऐशो–आराम, सुख–सुविधाओं के अधीन हो कर अपने ही निज घर जहां से तुम आए हो, को ही भूल चुके हो । साहिब सत्तपुरूष जी तो हर पल तेरे साथ रहते हैं परन्तू माया के रंगों में डूबे तुम तो बस सिर्फ ढींगे ही हांकते रहते हो। दुख तो भौग कर्मों का फल होता है जो निराकार का गहन जाल होता है जिस में मानव का साहिब सतपुरूष जी की तरफ मुड़ के देखना सम्भव ही नहीं होता, जबकि वे तो सदा अपने अंश 'हंसा' के लिए आस भरी निगाह से अपनी तरफ मुड़ने का इन्तज़ार करते रहते हैं ।

संत परमहँसों की वाणी अनुसार साहिब सत्तपुरूष जी आनंदमयी प्रेम रूप हैं, वे तो खुशियों और सुख के समय पर स्मिरण करने पर जल्दी प्रसन्न होते हैं उनके संग लेष मात्र भी दुख–क्लेश नहीं होता, इसलिए वे दुख में कैसे स्मिरे व ध्याए जा सकते हैं । साहिब

सतपुरूष जी को सदा प्रस्न्नता और सुखद समय में ही ध्याना चाहिए । साहिब परमपुरूष /सतपुरूष जी तो आनंदमयी हैं, दुख तो उनका स्वभाव नहीं । इसलिए सुखमय व प्रसन्न अवस्था में ही उन्हें स्मिरणा चाहिए, इस अवस्था में वे जल्दी प्रसन्न होते हैं । दुख तो उनका स्वभाव ही नही, दुख के समय की गई फरियाद और पुकार को वे नहीं सुनते । ऐसा भी नहीं निराकार ने केवल दुख–क्लेष से रंगा हुआ माया जाल ही दिया हो, अपितु साथ ही खुशियों भरे लम्हें व बचपन व जवानी में स्वस्थ व खुशहाल काया व और भी अनंत नेमतें प्रदान की हैं । हम ही खुशियों के रंगो रंग में ऐसे रम जाते हैं, माया ही कमाते, खाते, ओढ़ते और माया की चाह लिए ही मर जाते हैं, जन्म–जन्मांतरों से यही तो कर रहे हैं । प्रस्न्न अवस्था में पूर्ण सत्तगुरू परमहँस जी की शरणी जाना तो दूर, अपितु कहीं ध्यान में भी परमपुरूष साहिब सतपुरूष जी की तरफ़ सोच नहीं जाती । जब भी हम कष्ट व क्लेश में होते हैं तो या तो मालिक पर दोषारोपन करते हैं या दोष से स्वंय को मुक़्त करवाने के लिए क्षमा याचना करते हैं । इस कर्म–फल से भरपूर माया जाल में क्षमा व दण्ड का तो कोई प्रावधान ही नहीं, जो जैसी करनी करेगा वैसी ही भरेगा । महांकाल के नियम अनुसार अच्छे बुरे कर्मो का फल अलग अलग प्रकार से भोगना ही पड़ता है, इस से कोई भी बच नहीं सकता, यही तो निरंकार–विधि का अटल विधान है ।

समय–समय पर पूर्ण सत्तगुरू परमहँस भी इस निराकार की धरा पर होते रहे हैं, वे मानव को जगाने की भरपूर चेष्ठा करते रहे हैं । पर मानव ही अपने निज को जानने में लेष मात्र भी प्रयासरत नहीं रहता, इसके विपरीत वह तो निराकार देवी–देवताओं को पूज–पूज कर अपने लिए मांगे मांग–मांग कर इस भ्रमजाल में उलझता रहा । निराकार ने इस मनुष्य के लिए स्वंय सुन्न–रूप धरा, मगर मनुष्य ने उसके उस रूप को जानने की भी जिज्ञासा नहीं दिखाई । तभी तो निराकार ने हरे रंग में हरियाली रूप, धरती पर अपना विस्तार किया, बहुत से मानव/अनुयाईयों ने इस रंग को ही मालिक मान लिया । इस धरती पर प्रत्येक प्राणी को अलग–अलग रंग रूपी काया देकर निराकार ने आत्मां (हंसा) को भ्रमित किया जिससे आत्मां अपने आप को दूसरों से भिन्न समझने लगी, वह भूल ही बैठी है कि हम एक ही मालिक (परमपुरूष) के अंश हैं । कोई किसी से भी भिन्न नहीं । मगर यह भी तो सच है कि हम धरती पर माया में रंगे सभी काया धारियों की पहचान उनके रंग रूप से पहचान पाते हैं । मानव को हर्षाने के लिए गगन को नीला, बादल को अपने जैसा काला, सागर को ख़ारा पानी, चश्मों और नदियों को मीठा पानी, देखने के लिए प्रकाश, विश्राम के लिए रात्री व गर्मी–सर्दी सहित अनेक ऋतुएं व और भी नाना प्रकार के अनंत पदार्थ भिन्न–भिन्न रंग रूपों में निराकार ने प्रदान किए हैं ताकि मानव अपनी ज़रूरत के अनुसार इनका उपयोग कर सके । इस पर भी मानव संतुष्ट नहीं हुआ और देवी–देवों से और भी अनगिनत फरियादें और मांगे मांग–मांग कर अंतहीन कर्म–बंधन, महांकाल के क्रूर भ्रम–जाल में फंसता चला गया । विडम्बना तो देखो ज्यूं–ज्यूं माया–रूपी मांगें पूरी होती गईं, मानव संतुष्ट होने के स्थान पर और ज्यादा विचलित होता चला गया और तृष्णा बड़ती गई, अपने मूल साहिब सतपुरूष जी की परम सत्ता से दूर होता चला गया और अपना निज–रूप 'हंसा' व निजघर ही भूल गया ।

अब कैसे कोई निराकार भगवान और उसकी सारी व्यवस्था को ही एकमात्र दोषी/गुनहगार ठहरा सकता है । क्योंकि सृष्टि् की रचना साहिब परमपुरूष जी की सहमती के बिना कैसे सम्भव है । जब सब कुछ, यहां तक कि माया रंग–रूपी त्रिलोकी

के ईक्कीस लोक भी सत्तलोक का ही मात्र एक अंश हैं जो सतलोक से ही उपजे और महांप्रलय उपरांत निराकार देवी–देवताओं सहित अण्ड मण्ड ब्रह्माण्ड रूपी सारी माया नष्ट हो के उसी में ही समा जानी है, तो कौन अच्छा और कौन बुरा है । निराकार ने मानव को खुली छूट दे रक्खी है कि मानव स्वंय निर्णय करे , उसे भौतिक जगत पदार्थ लेने हेतु देवी–देवों को भजना है अर्थात अपना निज–हंसा–रूप व अपने मूल साहिब परमपुरूष जी को जानने हेतु, पूर्ण सत्तगुरू परमहँस जी की शरणी जाना है । निर्णय लेने को मानव स्वतंत्र है । जगत प्रथा अनुसार, जैसी करनी वैसी भरनी के लिए मानव स्वयं ही उत्तरदायी है । किसी भी मानव अथ्वा जगत गुरू को कोई भी अधिकार नहीं कि वह किसी देवी–देव, जीव या पदार्थ को बुरा कहें, बुराई तो हमारे अंहकार से युक़्त अहम् के कारण दिखती है, अहम् अहंकार को जो मानव पूर्णतः तज देता है वह तो सत्त हो जाता है और सत्त में ही समा जाता है । अर्थात पूर्ण मौक्ष पा जाता है ।

सुचना :– यह पहले की व्याख्यों में भी आ चुका है कि पूर्ण संत सत्तगुरू परमहँस जी (सहज सत्त मार्ग) की शरणी जाऐ बिना व सत्तगुरू परमहँस जी से 'सार दात' पाए बिना माया–अहम्–अंहकार को तजना सम्भव ही नहीं ।

–0–

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।

ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।

(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

9 ''वे नाम परमहँस जी'' के सफ़रनामे
सतलोक वर्णन

2557 हृदय को शांत कर के, मन को शांत बनाना है ।
फिर सार–सब्द की सुरति से, साहिब को जा पाना है ।। साहिब जी

2558 हमरी डौर जुड़ी सतलौक से, वही तो देश हमारा ।
हमरी डौर जुड़ी सतपुरूष से, वही तो पिता हमारा ।। साहिब जी

2559 शब्दे सुन–सुन भेस धरत है, शब्दे भेद अनंत ।
सब्दे सुन अनुरागी बनत है, सब्दे न पायो भेद ।। साहिब जी

2560 सब्दे सैल करे आसमानी, मीन पपील की चाल ।
सब्द देखे नर्क–स्वर्ग को, सब्द सूं मिलती चाल ।। साहिब जी

2561 सब्द ही देता चाल हंसा को, मीन से महासुन्न पार ।
सुरत–कमल में सुरत धरत है, विहंगम चाल से पार ।। साहिब जी

2562 जा कि सुरति विहंगम चाल चले, तांहि को जानो संत्त ।
विहंगम चाल संग साहिब के, सत्तलौक जा पहुंचें संत्त ।। साहिब जी

2563 'वे नाम' कहे सुनो संदेश, पाओ सब्द विदेह ।
सहज मार्ग सार–सुरति से जुड़ो, तो आत्म 'हंसा' हो ।। साहिब जी

2564 महासुन्न पार सत्तलौक है, जिसकी महिमां अपार ।
सुरति सहज समाधि सूं, ले पहुंचे साहिबन दरबार ।। साहिब जी

2565 साहिब का घर अति दूर, सहस्त्रसार से पार ।
वह ही तेरा सच्चा घर, हंसा चलो भव पार ।। साहिब जी

2566 बृहंगा मत्त को पा कर, जानो जीवन सार ।
सुरति सूं सुरति जगा कर, जा उड़ें उस पार ।। साहिब जी

2567 जीवित मरना जान ले, श्री गुरूचरण ध्यान ।
सुरत–कमल में हंसा, पावे पद निर्वाण ।। साहिब जी

2568 सत्तगुरू शरणी पाए कर, पाओ जीवन सार ।
सुरति सूं सुरति एक हो, ले पहुंचे साहिबन दरबार ।। साहिब जी

2569 सुरत–कमल में जाए कर, करो संतन दीदार ।
चरणों मे शीष डाल कर, करो साहिबन दीदार ।। साहिब जी

2570 जो पहुंचा सुरत–कमल में, मन–माया से बाहर ।
वो तो केवल हंसा हुआ, हुआ साहिबन संग पार ।। साहिब जी

2571 हंसा–रूप सतगुरू देत हैं, छूटे मन का साथ ।
साहिब सुरत–कमल में आए कर, ले चलें संग साथ ।। साहिब जी

2572 जो चलें विहंगम चाल सूं, धार सूरति विहंगम चाल ।
जिन–जिन लौक सूं निकासे, सो–सो ही होए निहाल ।। साहिब जी

2573 हंसा मान–सरोवर जाई, केवल साहिबन संग ।
हंसा करे आत्म श्नान तहां, तहां निज छूटे मन तरंग ।। साहिब जी

2574 विज्ञान–देही को पार कर, आज्ञा चक्र में तुम जाओ ।
सुरत–कमल में सतगुरू संग, सतगुरू घर को पाओ ।। साहिब जी

2575 सतगुरू चरणन शीश धरो, पल में निजधाम को पाओ ।
विहंगम चाल सूं साहिब संग, सोलहां सूर्य की जोत को पाओ ।। साहिब जी

2576 निजघर में अपने ही हसों सूं, मेल–जोल बड़ाओ ।
सतपुरूष ही सत्तलौक है, वहीं रहो या वापिस आओ ।। साहिब जी

2577 शून्य शिखर सूं अमृत वर्षा, अष्ट कंवल दल खिला पारस सुरति अनुसार।
सत्तगुरू मुखर में डाल कर, ले चलें सहस्त्रार पार ।। साहिब जी

2578 सुरत कमल में दीदार हुआ जब, पायो सोलह सूर्य चमक अपारा ।
संग साहिब के जा पहुंचा निजधाम, वहां देखा निज 'हंसा–परिवारा' ।। साहिब जी

2579 वहां न सूरज–चांद और तारे, वहां ना काल पसारा ।
निरंकार–औकांर न ज्योति, न वहां त्रिदेव पसारा ।। साहिब जी

2580 बिना किसी रूप रंग में हंसा, एक रूप सब सारे ।
जब चाहें अपना रूप धरें, सुरति सूं सभे न्यारे ।। साहिब जी

2581 विहंगम चाल सूं चलते सारे, सन्तोष सूं जीवन हरते ।
साहिब जो देते जब देते वह खाते, जो देते वह पीते ।। साहिब जी

2582 बिन बादल वहां बिजरी चमके, बिन सूरज उजियारा ।
बिन सीप वहां मोती उगते, बिन पवन निज देश प्यारा ।। साहिब जी

2583 सात सुरत का सकल पसारा, बिन सुरति कुछ नांहि न्यारा ।
सार सुरति आत्म रूप है, यही है हंसा रूप प्यारा ।। साहिब जी

2584 ध्यान ही आत्म, ध्यान ही सुरति ।
बिन सुरति जग है नांहि, जो करे सो सुरति ।। साहिब जी

2585 ध्यान धरि देखिया सुरति, नैन बिन परखिया भई ।
पग बिन चलि गई निजधाम, दया सतगुरू देव की पाई ।। साहिब जी

2586 जब पूर्ण सार सुरति रह गई, अब सब कुछ वोहि जान ।
विज्ञान देई पार कर, पल में पहुंचों निजधाम ।। साहिब जी

2587 'वे नाम' ब्राह्मण्ड सैल करी, साहिब संग इक साथ ।
रूप सतगुरू धार कर चल लिए, छुट गया संसार ।। साहिब जी

2588 साहिब का घर शिख़र पर, जहां सिलसिली गैल ।
चढूं तो पाऊं प्रेम रस, पडूं तो खोऊं गैल ।। साहिब जी

2589 हर नर पायो छः शरीर, तहा, तक वासा मन ।
स्थूल–सूक्षम, कारण,महाकारण, ज्ञान–विज्ञान देई सूं मन ।। साहिब जी

2590 योग अवस्था तुरिया और तुरिया–तीत है, कारण–महाकारण धारें शरीर।
विज्ञानदेई से पार, सतगुरू कृपा सूं पार बिन शरीर।। साहिब जी

2591 विज्ञान देई छटा शरीर है, जिसमें कुछ आनंद ।
विहंगम–चाल सूं निज धाम, पावें पूर्ण परमानन्द ।। साहिब जी

2592 आत्म में परमात्म दरशयो, परमात्म में ही जाई ।
'हंसा' में अब आप दरशे, आप में आप समाई ।। साहिब जी

2593 सब्दे मारा मर गया, अब मरूं नां दूजी बार ।
सब्द ते पाया साहिब जो, सत्तगुरू सब्द सूं पार ।। साहिब जी

2594 सुन्न–महल में आसन डाला, मन चुप बैठा सुरति संग ।
सब कुछ पाया सुरत–कमल में, निज घर पहुंची साहिबन संग।। साहिब जी

2595 विज्ञान देई के पार, मन पूर्ण मिट जाई ।
मान–सरोवर डुबकी लगाई के, आत्म 'हंस' बन जाई ।। साहिब जी

2596 अब मान–सरोवर जाई के, छे शरीर धूल मिट जाई ।
अब आत्म 'हंसा' हो गई, साहिब संग निज घर जाई ।। साहिब जी

2597 सार–सब्द की दात सूं, आज्ञा–चक्र में निज जाएं ।
सत्तगुरू दर्शन पाई के, संग में सुरत–कमल में जाएं ।। साहिब जी

2598 सुरत–कमल में साहिब जी प्रगटें, संग 'हंसा' निजघर जाऐं ।
आत्म 'हंसा' बन साहिब में समाऐ, बहुरि गर्भ ना आऐ ।। साहिब जी

2599 मान सरोवर जाई के, मन पूर्णता मिट जाई ।
विहंगम चाल पाई के, अमरपुर सैल साहिबन कराई ।। साहिब जी

2600 आगे–आगे साहिबन चलें, पीछे पीछे हंसा जाई ।
पल में पहुंचे निजघर को, विहंगम चाल जो पाई ।। साहिब जी

2601 हृदय–चक्र से उठत है, अनहद शब्द झंकार ।
अनहद तो निरंकार है, सत्तलौक अनहद के पार ।। साहिब जी

2602 ये सफ़र नहीं आसान, बस इतना बता दूं 'मैं' ।
लहराता साग़र है, और डूब के जाना है ।। साहिब जी

2603 पल छिन पाएं जोत को, आज्ञा–चक्र में जाऐं ।
आज्ञा–चक्र में पहुंच कर, सतगुरू दर्शन पाऐं ।। साहिब जी

2604 'सत्तगुरू' संग 'हंसा' चले, सुरत–कमल ले जाऐं ।
साहिब सत्तगुरू रूप में , अमरलौक ले जाऐं ।। साहिब जी

2605 मुझे अपना प्यार दिया सतगुरू जी, सब्द की दात मिली ।
मेरे साहिब अति प्यारे, जिन अमृत वर्षा की ।। साहिब जी

2606 यह सफ़र नहीं आसां, सहज मार्ग से जाना है
ला हथां यह साग़र है, सत्तगुरू संग पार हो जाना है ।। साहिब जी

2607 सतपुरूष को बड़ा आखियें, जो जाने बड़ा होए ।
बड़े ने बड़ा कर दिया, ऐसे ही प्रेम हंस कोई होए ।। साहिब जी

2608 हंसा (आत्म) कुछ खाता पीता नहीं, मूल सुरति सूं चलता सब काम ।
सतपुरूष सर्व चेतन सुरति सूं, मूल सुरति को चेतना काम ।। साहिब जी

2609 ज्ञान देई और विज्ञान को छोड़ते, हंसा रूप सार नाम बिन मन।
यही रूप तो कपिल वृक्ष है, सार सब्द सूं निजघर पहुंच तूं आन ।। साहिब जी

2610 सतगुरू कृपा सूं निजघर गया, दर्श पाया परमपुरूष महान ।
वह रहता था संसार में, मूल नाम का सारा काम ।। साहिब जी

2611 मूल नाम ही कपिल वृक्ष है, स्वांसा सुरति नाम से सुरति महान ।
हंसा साहिब दर्शन पाकर, निर्देश पर धर्ता ध्यान ।। साहिब जी

2612 निर्देश साहिब का पाकर, हंसा कपिल वृक्ष समान ।
कोई तन अपना चाहे या धारे, मूल सुरति सूं होता काम ।। साहिब जी

2613 अगर सार तन सुरति को भा गया, उसी पल उस मे प्राणी की तान ।
रात्री समय तीन बजे, हंसों से मेल होत कंई बार ।। साहिब जी

2614 अब सतपुरूष भी सतगुरू रूप में, दर्शन देते कंई कंई बार ।
जब हंसा उनको भा गया, सार सब्द की सुरति को देवें बारम्बार।। साहिब जी

2615 अब हंसा पूर्ण सतगुरू हो गये, जो कहते बोलते होता हर बार ।
जो प्रेम भाव सूं मांगता, अमृत वर्षा होत हर बार ।। साहिब जी

2616 कपिल वृक्ष खुद कुछ लेता नहीं, देता बदलता सबके भाग ।
जग में सतगुरू देते फिरें, बदलें सब के भाग ।। साहिब जी

2617 देश काल जात धर्म सूं पार वह, हर एक सूं एक सा व्योवहार ।
हर एक के दुख निर्वाण करे, हर एक सूं एक सा प्यार ।। साहिब जी

2618 परमहंस सतगुरू तारन को, आये लिए साहिबन संदेश ।
हर जीव उभार कर सार सब्द का देते संदेश ।। साहिब जी

2619 सत्य नाम की वर्षा करें 'वे नाम गुलाम', सुरति सूं देते संदेश ।
परमपुरूष निरालंभ नाम की दात का, सुरति सूं देते भेद ।। साहिब जी

2620 अमर दात को देत हैं, साहिब रूप करि देत ।
साधक की आपदा व्यथा सब हर लेत, हंसा रूप करि देत ।। साहिब जी

2621 'वे नाम' परम हंसा ने मौत को पाकर, करि इस की पहचान ।
मौत इस सूं उस ओर जाने का, छोटा सा अंतराल तूं जान।। साहिब जी

2622 वह आदि शुद्ध शांत, वह है प्रेम की जौत ।
जुग जुग वेसु एको, जुग जुग सुरति की जौत ।। साहिब जी

2623 वे नाम आया सतलोक से, लिए साहिबन दात।
मन माया का जाल जानो, तभी बनेगी बात ।। साहिब जी

2624 मैं आया साहिबन देस से, पारस सुरति संग साथ।
मन माया का भेद जान लो, तो चलो हमारे साथ।। साहिब जी

2625 तुम उस देस के वासी हो, जहां हंसों का वास।
सूरज चाँद तारे तहाँ ना, ना काल निरंझन वास।। साहिब जी

2626 बिन सूरज उजियारा फैला, बिन पानी बरसात।
बिन धरती हंसा चलता, बिन पंख परवाज़।। साहिब जी

2627 हद अनहद का देस प्यारो, सत्य असत्य का राज़ ना।
देवी देव तहां ना कोये, आदि शक्ति की बात ना।। साहिब जी

2628 उस देस से हम सब आये, सुन लो 'वे नाम' की बात।
चौथा लोक उस देस को कहते, अमरपुर की बात।। साहिब जी

2629 आत्मां बिन पग़ चले, सुने बिन काना देखे बिन नैना।
अन्न रहित पावे, सुरति सूं वाचे ना–ना।। साहिब जी

2630 मैं आया अमरपुर से, कहने साहिबन सुरति बात।
जो मान गया सो तर गया, सतगुरू की हर बात में बात।। साहिब जी

2631 वे नाम उसी से लेता जो पूर्ण, प्रेम बिन कुछ नहीं चाहता।
वह इतना पूरा है कि, उसमें कुछ और नांहि समाता।। साहिब जी

2632 सतपुरूष ईक सम अनादि स्थिर, सब में रहें समाई।
नां कम होई नां बड़ी, सहज सत्त सुरति रूप सम भाई।
नां कहीं आई नां कहीं जाई, हर जीव जंत वोहि समाई।
सतगुरू रूप में आन समाई, सतगुरू रूप में ही आई जाई।। साहिब जी

2633 वे नाम आया अमर लोक से, लाया पारस सुरति संग साथ।
आओ और ले जाओ प्यारो, प्रेम कीमत दो संग साथ।। साहिब जी

2634 हर एक सोया परिक्षा मेरी ले रहा, किसे जगाने का करूं काम।
किसी के काम आता नहीं, जग से मुझे नहीं कोई काम।। साहिब जी

2635 साहिबन प्यारा हारा भला, जीतन दे संसार।
हारा साहिबन संग मिले, जीता मन मान के द्वार।। साहिब जी

2636 साहिबन अमरलोक अति प्यारा, सुरति सूं है पाना ।
बिन पग़ से सफ़र है करना, बिन अखां वेखी जाना ।। साहिब जी

2637 बिन पवन के यह राह है, सांसा बिन है जाना ।
बिन हथां सब कुछ करना, बिन है कन्नां सुनना ।। साहिब जी

2638 यह अमरलोक अति प्यारा, हंसों का डेरा है ।
तहां प्यार से सब हैं रहते, वहां ना कोई अंधेरा है ।। साहिब जी

2639 बिन बादल जहां वर्षा होती, बिन सूरज उजियारा है ।
बिन डर के सभी जन आनंदित, वोही निज घर प्यारा है ।। साहिब जी

2640 जो परम–पुरूष कभी हैं देते, वही प्यार से मिल खाते हैं ।
जहां जाना मिल के जाते, संतों से प्रेम बड़ाते हैं ।। साहिब जी

2641 प्रेम भाव से सुरति से बोलें, सब वो समझ में आता ।
मैं भी यह सब समझा, मूल–सुरति से याद रह जाता।। साहिब जी

2642 जब कोई पूर्ण संत मिले, निज घर का भेद लो जानी।
बिन पाये भेद उस घर का, मूल नाम दास ना जानी।। साहिब जी

2643 वन वन डोलूं पूछत फ़िरूं, कोई ना देवत हामी।
आ पहुंचा दर वे नाम के, पल में रहा पहचानी।। साहिब जी

2644 सुशुप्ति तुरियातीत अवस्था ईक सी जानो, आज्ञा चक्र में सुरति वासा।
तहां सतगुरू दर्शन मिलें, अष्ट्म चक्र में सुरति वासा।। साहिब जी

2645 प्रेम में पूर्ण मिटना, तुरिया अवस्था से पार।
अति पीड़ा का बास है, तन मन से सुरति पार।। साहिब जी

2646 साहिब के दरबार में, कर्ता केवल संत।
कर्ता केवल संत, हुक्म में उनके साहिब।। साहिब जी

2647 बिन धरति आकाश के लोकवा, रोशन हर ईक तार।
दिन रात जलता दीप यह, कोई प्यारा करे भव पार।। साहिब जी

2648 अनुभव से तलाश का पता चले, रहस्य में सब विज्ञान ।
पानी जेकर पिया ना हो तो, कैसे होगी पानी सूं पहचान ।। साहिब जी

2649 जिसे कभी देखा नहीं, कैसे करोगे उसकी पहचान ।
मूल सुरति ही उसको है जानती, अनुभव आधार पहचान ।। साहिब जी

2650 प्रेम सूं उठाया एक पग़, कभी व्यर्थ ना जात ।
जो सुरति सूं सत्तगुरू चरणन रहे, साहिबन संग हो जात ।। साहिब जी

2651 सब ओर हंसा आत्म भेष है, तीन लोक विस्तार ।
सार सब्द की दात जब पास हो, हर जीव को ले तूं तार ।। साहिब जी

2652 ज्ञानदेई विज्ञानदेई को पार कर, आत्म की चाल महान ।
बिन पग चले सुने बिन काना, कर बिन काम महान ।। साहिब जी

2653 सत्य लोक अमर देश है, साहिब और हंसों का अमर धाम ।
वहां कोई प्रलय ना घटे, सदा बसंत उस धाम ।। साहिब जी

2654 अमर पुरूष सत्तपुरूष हैं, अमरपुर है सच्चा धाम ।
सतपुरूष ऐके सब उपर, अजर अमर देश निजधाम ।। साहिब जी

2655 परमपुरूष के लोक में, जन्म मरन कुछ नांहि ।
वहां मोह और माया है नांहि, बिन प्रेम तहं कुछ नांहि ।। साहिब जी

2656 वह लोक अमर सत्य सुरति आनंद, प्रलय की छाया नांहि ।
हंस आत्मां जब अमर है, अमर लौक बिन कोई घर नांहि ।। साहिब जी

2657 वहा सब्द आखंड होता दिन राति, सुरति सूं सुने हर हंसा ।
यह सुरति की धुन आनंद सूं भरी, आनंद ही हैं परमहंसा ।। साहिब जी

2658 सतपुरूष को बड़ा आखियें, जो जाने बड़ा होए ।
बड़े ने बड़ा कर दिया, ऐसे ही प्रेम हंस कोई होए ।। साहिब जी

2659 सब हंस पुरूष रूप हैं, सतपुरूष सूं करते प्रीत ।
सतगुरू की कृपा सूं पार हो, जब सतगुरू सूं सच्ची प्रीत ।। साहिब जी

2660 शांत रहना सार सुरति का काम, मुख से कहना कान से सुनना मन का काम।
मन मान मोह माया का काम, चल हंसा सब तज पाओ निजघर निजधाम।। साहिब जी

2661 कहे वे नाम पूरे से, मिली पूरा पायो।
भेद ये सारा, पारस सुरति सूं पाया।। साहिब जी

2662 मेरा तेरा खो गया, चहुं ओर है तूं।
अब तूं ही तूं 'वे हूं' कहें, संग रही ना हूं।। साहिब जी

2663 तहवां डौर सब्द की भाई, सुरति सूं चढ़ो देखो जाई।
सब्द सूं चलो ना करो विचारा, हंस बन निज में समाई।। साहिब जी

2664 सुरति तत्व नैन बिन देखो, ये सब सुरत कमल के आगे लेखा।
अब तुमरा मिटा सब लेखा, निजघर द्वार आगे ना लेखा।। साहिब जी

2665 पारस सुरति ले चढ़ो सम्भारी, सोलह सूर्य की ज्योति संग तुम्हारी।
स्वांस संग सुरति जो ध्यावे, प्रमाण स्वरूप खुले किवाड़ी।। साहिब जी

2666 सतगुरू भेद से, पावें यह द्वारा।
कहे 'वे नाम' सुरति से, सांचा वचन हमारा।। साहिब जी

2667 मेरा तेरा सब खो गया, चारों ओर है तूं।
अब तूं तूं 'वे हूं' कहे, संग रही ना 'मै'–'तूं'।। साहिब जी

2668 दुख सुख सह कर 'वे हूं' ने, दोनों का भेद जाना।
दोनों ही ईक से आये, इस पल में रहना जाना।। साहिब जी

2669 छोटे बड़े भी ईक से आये, दोनों का एक ठिकाना।
छोटे ना होते जग में तो, बड़ों कौ किस ने जाना।। साहिब जी

2670 पूर्ण से मिल पूर्ण होना, यही भक्ति का काम।
मन माया का जाना, पूर्ण पारस सुरति का काम।। साहिब जी

2671 सतगुरू सूं जो कुछ बहता, सब साहिबन के हाथ।
कर्म धर्म बेकार की बातें, दास साहिबन साथ।। साहिब जी

2672 मन मान कर्म का काम ना, सत्य पुरूष के लोक।
ये सिक्के सब काल के, कोई कोई प्यारा जावे निजलोक।। साहिब जी

2673 प्यारो सतपुरूष प्यारे के, सार नाम सुरति सूं लो।
परमपुरूष सतपुरूष अविनाषी, सांचे सतगुरू सूं जान लो।। साहिब जी

2674 युगन युगन हम सब, काल लोक चले आये।
सार सुरति नाम चीन्हे जो साधक, सीधा निजघर जाये।। साहिब जी

2675 खर अक्षर में वासा मन का, निःअक्षर जानत नांहि कोये।
निःअक्षर में वासा 'वे नाम' का, भव ते छूटे जन्म मरन ना होये।। साहिब जी

2676 'वे नाम' बैठे जहाज पर, गये भव सागर पार।
जे कोई आवे जहाज पर, जावे भव सागर पार।। साहिब जी

2677 कीचड़ सूं ऊपर उठकर, कीचड़ छोड़ कमल खिले महान ।
तूं भी मोह माया का कीचड़ छोड़, तो जाने हंसा रूप महान।। साहिब जी

2678 प्रकृति पार वह सब्द है, अगम अचिंत अपार ।
अनुभव सहज समाधि मे, अर्ज़ गुरू चरणन आधार ।। साहिब जी

2679 मन वाणी सूं पार है, साहिबन सब्द स्वरूप ।
सतगुरू दाता सब्द के, प्रकटावें पुरूष अनूप ।। साहिब जी

2680 गुरू सतलोक में प्रवेश नांहि, सतगुरू सतपुरूष संग प्रवेश।
सतगुरू मोक्ष पत्र को पावे, सतलोक में करे प्रवेश।। साहिब जी

2681 सुरति सब्द स्वांस ईक तार, ले चले मन माया सूं पार।
सब कुछ होत सतगुरू पारस सुरति सूं, सतगुरू सुरति महिमां अपार।। साहिब जी

2682 'वे हूं' ग़ुलाम पाया सब्द सतपुरूष सूं, पारस सुरति संग साथ।
सतगुरू सच्चा सूरमा मारा बाण, पारस सुरति संग साथ।। साहिब जी

2683 जात हमारी वे नाम है, मात पिता निर्लम्भ राम।
गृह हमारा निजधाम है, सतगुरू सुरति में विश्राम।। साहिब जी

2684 'वे हूं गुलाम' पाया सार सब्द साहिबन सूं, पारस सुरति संग साथ।
हर पल संग साहिबन सुरति, हर कार्य में संग साथ।। साहिब जी

2685 प्यारो कीट कंई कीड़े जगत में, कोई प्यारा एक हमारा।
'गुलाम' भृंग करता फेरा, कोई प्यारा पकड़े भेद हमारा।। साहिब जी

2686 'वे नाम' गुप्त देस हमारा, काहु देस अति प्यारा।
अमरपुर हंसों का देस, सतपुरूष देस प्यारा।। साहिब जी

2687 सतगुरू प्रसन्न साहिब में वासा, मन छूटा नाम का वासां।
सतगुरू रीझ रीझ रमें, तीनों का एक में वासा।। साहिब जी

2688 सतलोक से हम सब आये, प्रगट भये कौटली जम्मु देस।
ना कोई वर्ण नांहि कोई भेष, सतपुरूष अंश प्यारा देस।। साहिब जी

2689 देह धारी भव सागर प्रगटे, 'वे नाम' गुलाम नाम सुनाया पाया फेरा।
जो कोई गुलाम से दात को पायो, छूटे जन्म मरन का फेरा।। साहिब जी

क कोई कोई कीट महां सुखदाई, प्रथम सब्द गहे सुरति मांहि।
कोई दूजे कोई तीजे जाने, तन मन रहित सुरति मांहि।। साहिब जी

2690 जो दात 'वे नाम गुलाम' है पाई, तीन लोक ये जानत नांहि।
सुरत सब्द सार दात को पाया, ईस दात बिन मिलता मोक्ष नांहि।। साहिब जी

2691 'वे नाम गुलाम' किस किस को समझावे, सब्द बिन अंधे जग को।
सार सब्द की दात सूं , जग अंधा रहे ना को।। साहिब जी

2692 प्रेम विश्वास के पहले कदम पर, मंज़िल जानो संग साथ।
मै का संग छूट गया, 'वे नाम' ने पकड़ा हाथ।। साहिब जी

2693 सार धार से मन निर्मल भया, जैसे स्वाति बूंद।
पीछे पीछे साहिब चले, लिये सार नाम की बूंद।। साहिब जी

2694 नां तन से नां मन से नां सुरति सूं, मैं जपूं नां सार नाम।
सुमिरन मेरा साहिब करे, चारों ओर एक समान।। साहिब जी

2695 जहां जहां डोलूं सो परिक्रमां, जो जो करूं मैं सेव।
तीन लोक एक सम देखो, पूजो और नां देव।। साहिब जी

2696 अमृत प्रेम पियो मेरे प्यारे, काल छूटे सतलोक निवासा।
बहुत आनंद प्रेम सूं, सतगुरू में आन करो तुम वासा।। साहिब जी

2697 काया अवधि जब पूरी हो, तब वासा पुरूष के पाहि।
सुरति सब्द डौरी दृढ़ धरहूं, छूटे देह दरस तब करहूं।। साहिब जी

क कबीरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा तीर।
पीछे पीछे साहिब चलें, कहत कबीर कबीर।। साहिब जी

2698 ये भेद 'वे नाम' है पाया, तीन लोक भव सागर पार।
साहिबन संग निराकार लोक में, पाया पत्र जन्म मरन से पार।। साहिब जी

2699 जो सुने कोई संत वचन के, भावे सुरति धार।
निर्लभ राम सगल घट देखे, छूटें तीन लोक पसार।। साहिब जी

2700 पूण्य पाप 'वे नाम' संग नांहि, निर्लेप र्निद्वंद ले जान।
बंधा बंधन संग नांहि, बिन साहिबन झूठ सब जान।। साहिब जी

2701 सब जीव हंसा प्रेम प्यारे, लाखों सूर्य शरमायें।
साहिबन प्रीती हर जीव सूं, जोत में जोत समाये।। साहिब जी

2702 धरती नांहि अंबर नांहि, वह देश उस पार।
हर हंस अंग साहिबन जानो, सुरति सूं देत पुकार।। साहिब जी

2703 सुनो भाई साधो महिमां अपरम्पारा, निजधाम महिमां अपरम्पारा।
प्यारो मानो कहा हमारा, सुरति जहाज अपरम्पारा।। साहिब जी

2704 सात द्वीप नों खण्ड तहां ना, हर हंसा तहां रहता।
धुंधकार वहां सुन्न है नांहि, नीर वहां ना बहता।। साहिब जी

2705 दस अवतार वहां कुछ नांहि, नांहि रचयो पिण्ड प्रकाशा।
रोग सोग वहां है ना कोई, एक सी ऋतु उस पारा।। साहिब जी

2706 ना कोई चलता हिलता वहां पर, मीन पपील नहीं चाल।
बिन लिखे पढ़े ज्ञानी सब हंसा, सुरति विहंगम चाल।। साहिब जी

2707 यही विधी मीरां हंसा, आज्ञा चक्र में दर्श किया सरकार।
सतगुरू संग ले चले अपने, सुरत कमल दरबार।। साहिब जी

2708 यही विधी मीरां हंसा सुरत कमल में, चरणन शीष दिया।
सतगुरू कुपा ऐसी होई, जा पहुंची संग दरबार।। साहिब जी

2709 सतगुरू चरणन खो गये पल में, देखा महां ज्योति प्रकाश।
सोलहं सूर्य की ज्योति को धारा, साहिब संग साहिब दरबार।। साहिब जी

2710 चारों ओर देख के हंसा, अति आनंदित भई ।
हर कोई पूछे क्युं देर करि, मैं ना जानु क्युं देर हुई।। साहिब जी

2711 सतगुरू चरणन चित लाएं, सार नाम सुरति में।
सोही पहुंचे सतलोक, युगों युगों वासा तहां में ।। साहिब जी

2712 वह घर अगम अपार, तहां सतपुरूष आप समाई।
अति सोभा प्रकाश, महिमां कही ना जाई।। साहिब जी

2713 सगुण निर्गुण से परे, सत्य भक्ति का देश।
जो कोई पावे निःसब्द को, पहुंचे सतगुरू देश।। साहिब जी

2714 बह रही धारा प्रेम की, चारों ओर हैं आप।
सतगुरू पाकर कण–कण को देख, हर ओर संग है आप।। साहिब जी

2715 अमरपुर से हम सब आये, वह ही प्रेम ज्वाला है।
अति सुंदर अति प्यारा जलवा, सुरति–अमृत पसारा है।। साहिब जी

2716 अचल पुरूष का अचल है देशा, आदि नाम सूं होये प्रवेशा।
सार सब्द भक्ति का मूला, तन छूटे निज धाम प्रवेशा।। साहिब जी

2717 साहिब का रूप अति है प्यारा, वर्णन सूं बाहिरा है।
वे प्रकट हों या अप्रकट, यह उनकी मर्ज़ी है।। साहिब जी

2718 वे अमरलोक के स्वामी, सुरति है उनकी वाणी।
सुरति का लोक है प्यारा, सुरति ही अमरलोक तूं जान।। साहिब जी

2719 वहां बिन धरती सब चलते हैं, बिन पंखों के सब उड़ते हैं।
बिन बीज के सब कुछ होता है, सतपुरूष ही सबको देते हैं।। साहिब जी

2720 बिन सूरज वहां उजियारा, बिन बादल बरसे धारा ।
बिन भाषा बोली बोलें, सुरति सूं बहे सुरति धारा।। साहिब जी

2721 पिण्ड–ब्रह्माण्ड के पार वे, सतपुरूष निजधाम।
सार सब्द को जो कोई गाहे, पावे तहां विश्राम।। साहिब जी

2722 सतगुरू सा प्रेमी जग है नहीं, जिस सूं सुरति जगाएं।
वह ही पूर्ण साहिब हैं, तीन लोक सूं पार हो जाएं।। साहिब जी

2723 अमरपुर प्यारा है देसा, जहां नहीं यम त्रास है।
काल जाल तहां नांहि, ना वहां वेद विचार है ।। साहिब जी

2724 काम क्रौध लोभ का, विस्तार तहां नांहि।
गुण तीन प्रपंच तहां ना, वहां तो क्षमाशील आनंद।। साहिब जी

2725 कागज़ स्याहि कलम तहां ना, नांहि वेद विचारा।
इंद्री–रस सुख–स्वाद तहां ना, ना ब्रह्मा विष्णु पसारा।। साहिब जी

2726 राम कृष्ण अवतार तहां ना, नांहि निरंकार विचारा।
रोम रोम ब्रह्मण्ड कोटि, लांखों रवि उजियारा।। साहिब जी

2727 दसों अवतार तहां ना कोई, नांहि झूठ पसारा।
उल्टि हो जब चाल, हंसा निजघर साहिबन प्यारा।। साहिब जी

2728 भरमें चारों धाम काल में, काम ईक ना आवे।
तृष्णा नांहि रूप भेस नांहि, काल पहुंच ना पावे ।। साहिब जी

2729 सब्द जहाज सतपुरूष का, सतगुरू खेवनहार।
जो कोई आवे जहाज पर, वे नाम ले चलें उस पार।। साहिब जी

2730 साहिब अति प्यार हैं करते, 'वे नाम' सब जाना रे ।
कई बार मुझे समझाया, प्रेम अमृत वर्षा रे ।। साहिब जी

2731 मत कहना बुरा किसी को, जग में कोई बुरा नांही ।
पांच बार मेरे साहिब जी ने, परा भक्ति विचारी ।। साहिब जी

2732 निरंकार ने 'वे नाम' को सौंपा, सतपुरूष के हाथों में ।
सतपुरूष ने मुझे सौंपा, सतगुरू परमहंस के हाथों में।। साहिब जी

2733 यह सब काम जीव से नाहीं, सत्तगुरू कृपा सूं पावे कोई कोई ।
जिस पे सत्तगुरू कृपा होई, जावे निज धाम सोई ।। साहिब जी

2734 पूर्ण सत्तगुरू में सतपुरूष का वासा, ब्रहंगा–मत्त है जा के पासा ।
ब्रहंगा मत्त होए जा के पासा, वही सच्चा 'सत्तगुरू' कहे 'वे नाम' दासा ।। साहिब जी

क बिन पग़ चले सुने बिन काना, कर विधि कर्म करे विधि नाना।
अंग रहित सगल रस भोगी, बिन वाणी भक्ता बड़ योगी ।। साहिब जी

ख अखां बाजूं वेखना, बिन कन्ना सुनना ।
हथां बाजूं करना, बिन पैरां चलना ।
नानक हुकम पछान के, ज्यूं जीवित मरना ।। साहिब जी

2735 आज्ञा–चक्र सतगुरू दर्शन पावें, सुरत–कमल संग जाई ।
गुरू–चरणन शीष देई के, सोलहं सूरज की ज्योति पाई ।। साहिब जी

2736 सत्तगुरू कृपा सूं मन मिटे, आत्म 'हंसा' हो जाई ।
त्रिलौकी का बंधन छूटे, आवागमण मिट जाई ।। साहिब जी

2737 साहिब मिलन का राज़, सत्तगुरू से पावे सोहि ।
ये विधि पावे सोहि, जाका सतगुरू सांचा होई ।। साहिब जी

2738 पहले 'संत सतगुरू परमहंस', दूजे हैं 'वे–नाम' दास ।
कल युग में जिनसे सार–नाम प्रकटयो, पायो 'साहिबन' पास।। साहिब जी

2739 'सतगुरू परमहंस' कृपा से, 'वे नाम' पहुंचे 'सतपुरूष' पास ।
'उन्हीं' से 'वे नाम दास' ने पायो, अमर सार–सब्द प्रकाश ।। साहिब जी

2740 आत्मा के पग़ नांहि, पर चारों ओर चल के जाए ।
बिन अखाँ ये आत्म–जोत, चारों ओर देख पाए ।। साहिब जी

2741 बिन हथां वे होले डोले, बिन कन्नां वे सब सुनी पाऐ ।
मूल–सुरति चेतन हो गई, सुरति से सब पा जाऐ ।। साहिब जी

2742 गुरू चरणन में शीश धरें, अमरपुर को जाएं ।
साहिब संग में ले चलें, अपना रूप दिखाएं ।। साहिब जी

2743 अमर अविनाशी राम–साहिब जी, दिया प्रेम संदेश ।
सार–सब्द की दात का, दो सुरति संदेश ।। साहिब जी

2744 ज्ञान ध्यान तहां नांहि, नांहि जप–तप माला का काम ।
तहां ना धरती नांही आकाशा, बिन बादल के बरसात ।। साहिब जी

2745 बिन बादल जहां बिजुरी चमके, बिन पवन आकाश ।
सुन्न तत्व तहां ना कोई, मन की ना कोई बात ।। साहिब जी

2746 'वे नाम' ब्राह्मण्ड सैल करी, साहिब संग ईक साथ ।
रूप सत्तगुरू धर कर चल लिए, छूट गयो संसार ।। साहिब जी

2747 ना कोई धरती ना कुछ उगता, 'सतपुरूष' ही कर्ता आप ।
वेद कतेब तहां ना कोई, ना ही काल जाल की बात ।। साहिब जी

2748 वहाँ कोई रिश्ता नाता नांहि, सभी हँसा एक समान ।
वैर विरोध कोई जानत नांहि, आनंद में रहते एक समान ।। साहिब जी

2749 सब संत्तन संदेश ये, पावो सब्द–विदेह ।
सहज–योग–सुरति ध्यान है, जब अंदर सब्द–विदेह ।। साहिब जी

2750 सुनो भाई साधो महिमां अपरम्पारा, निजधाम की महिमां अपरम्पारा ।
प्यारो मानो कहा हमारा, सार नाम जहाज सूं पारा ।। साहिब जी

2751 कोई ईच्छा रहे ना बाकी, जब सत्तगुरू सूं प्रीति जागी ।
ऊंच–नीच दिखे ना कोए, पूर्ण संत सूं प्रीति जब लागी ।। साहिब जी

2752 मुक़्त हो पुनः भौर ना आवे, सत्तलौक रहे अति सुख पावे ।
हंस–रूप हो अमृत फल पावे, सतपुरूष संग सेव कमावे ।। साहिब जी

2753 प्यारो जो पूर्ण हो, वो ही पूर्ण में जा समाता ।
जन्म–मरन में फिर ना आता, जा सत्तलौक समाता ।। साहिब जी

2754 हम सब 'हंसा' साहिब अंश सूं उपजे, निजधाम घर हमारा ।
निरंकार है नारायण अलख–निरंझन, महाकाल विस्तारा ।। साहिब जी

2755 साहिब मिले जब से मोहे, जाना हर एक का घर निजधाम ।
तुझ बिन कोई और नां ध्याऊं, पूर्ण हुआ 'हंसा' निज काम ।। साहिब जी

2756 निजघर में अपने ही हसों सूं, मेल–जोल बड़ाओ ।
सत्तपुरूष ही सत्तलौक हैं, वहीं रहो या वापिस आओ ।। साहिब जी

2757 नैनन बिन बेखेया, बैन बिन सुनया ।
बिन हथां करया, बिन पैरां गयो निजधाम ।। साहिब जी

2758 अमर लौक है देस हमारा, यहां से हंसा आए ।
पांच तत्व की उपज शब्द सूं, तीन लौक शब्द सूं आए ।
ज्योति निरंझन मन ही जानो, आदि नाम सूं आए ।। साहिब जी

2759 आदि नाम सूं अमर लौक है, हद अनहद सूं बाहिरा ।
इसी सब्द सूं हंसा आए, जन्म मरण सूं बाहिरा ।। साहिब जी

2760 श्वेत रूप निज साहिबन निजधाम, जैसा चाहें प्रकट हो जाऐं ।
बार बार सतगुरू रूप में आते, जौत सरूप प्रकटाऐं ।
संतन पास दात साहिबन की, साहिबन दात सतगुरू सूं पाऐं।। साहिब जी

2761 आदि नाम मूल नाम विदेह नाम, अक्का नाम सार सब्द ही जानें ।
इस सा कोई सब्द ना जग में, बोला लिखा ना जाए ।। साहिब जी

2762 अमरलौक की बात बताऊं, जो पांच तत्व सूं न्यारो ।
सत ही सत हर ओर प्रकटाए, भाषा सुरति प्यारो ।। साहिब जी

2763 तन मन धन तहां ना कोई, जहां से हंसा आया ।
तहां ना जन्म मरण की छाया, तहां नहीं मोह और माया ।। साहिब जी

2764 वाणी भाषा तहां ना कोई, सुरति सूं ज्ञान प्रकटाए ।
धर्म अधर्म की बात तहां ना, जात पात ना कोए ।। साहिब जी

2765 क्रिया कर्म तहां ना कोई, भाग्य फल ना आशा ।
पुण्य पाप का लेखा कोई ना तहां, प्रेम सत की भाषा।। साहिब जी

2766 हर हंसा तहां प्रेम से रहता, केवल सत्य में सत समाता ।
काम क्रौध लौभ मोह तहां ना, दुख सुख की नांहि चिंता ।। साहिब जी

2767 समय काल की बात तहां ना, रात और दिन एक सा होता ।
आज और कल तहां ना कोई, इसी पल हर कोई रहता ।। साहिब जी

2768 शुद्धि अशुद्धि की बात तहां ना, खुशबू बदबू ना धोखा ।
प्राण पवन का चक्र कोई ना, ना जन्म मरण का धोखा ।। साहिब जी

2769 दुख शौक का भ्रम तहां ना, काम क्रौध ना लेखा ।
धरती पानी आग ना वायू, ना गिरने चलने का धोखा ।। साहिब जी

2770 सुरति सूं हर कार्य है होता, सुरति सूं बनता मिटता ।
हर हंसा सतपुरूष आज्ञा में रहता, खाने पीने की नांहि चिंता।। साहिब जी

2771 मन माया तहां काम कोई ना, केवल प्रेम और प्रेम संदेशा ।
शिव ब्रह्म का तहां ना वासा, ना आद्य्–शक्ति का संदेशा ।। साहिब जी

2772 अमरपुर से हम सब आए, वह ही प्रेम ज्वाला ।
अति सुंदर अति प्यारा जलवा, दर्श से अमृत वर्षा।। साहिब जी

2773 तीन लौक में मन है राजा, तन मन संग समाया ।
अब तुम इतना जान लो प्यारो, आत्म ही प्रेम की धारा ।। साहिब जी

2774 हाथ पांव तहां ना किसी के, फिर भी चलती बात ।
वस्त्र का कोई काम तहां ना, खाने पीने की नांहि बात ।। साहिब जी

2775 ईक दूजे को हंसा जाने, बिन प्रेम नांहि कोई बात ।
प्रेम प्रीत से सभी रहते तहां, सुरति सूं होती हर बात ।। साहिब जी

2776 साहिब का रूप अति प्यारा, वर्णन सूं बाहिरा है ।
वह प्रकट हों या अप्रकट, ये उनकी मरज़ी है ।। साहिब जी

2777 साहिब ही अमरलौक हैं, अमरलौक ही साहिबन जान ।
उनका आदि अंत कहीं ना, तीन लौक भी उनमें जान ।। साहिब जी

2778 वह अमरलौक के स्वामी, सुरति है उनकी वाणी ।
सुरति का लौक है प्यारा, सुरति ही अमरलौक बाण ।। साहिब जी

2779 वहां बिन धरती सब चलते, बिन पंखों के सब उड़ते।
बिन बीज के सब कुछ होता, पुरूष ही सब देते ।। साहिब जी

2780 बिन सूरज वहां उजियारा, बिन बादल बरसे धारा ।
बिन भाषा बोली बोलें, सुरति सूं सुरति धारा ।। साहिब जी

2781 पिण्ड ब्राह्मण्ड के पार वह, सत्यपुरूष निज धाम ।
सार सब्द को जो कोई गहे, पावे तहां विश्राम ।। साहिब जी

2782 नहीं उत्पति नही प्रलय, नहीं आवे नहीं जाय ।
वर्णन सूं वह बाहिरा, सुरति सूं सब्द ध्यावे ।। साहिब जी

2783 सब जीव हंसा प्रेम प्यारे, निजघर दर्शन पांऊ ।
महिमां साहिबा वर्णन बाहिरा, शब्द कहां से लांऊ ।। साहिब जी

2784 अंग अंग चमके जोत सरूपी, लाखों सूर्य शरमाये ।
साहिबन प्रीति हर जीव सूं, जोत में जोत समाये ।। साहिब जी

2785 धरती नांहि अंबर नांहि, वह देश उस पारा ।
हर हंसा अंग साहिबन का जानो, सुरति सूं देत पुकारा ।। साहिब जी

2786 अचल पुरूष का अचल है देशा, आदि नाम सूं होए परवेशा ।
सार सब्द भक्ति का मूला, तन छूटे निजधाम परवेशा ।। साहिब जी

2787 सार नाम सूं अमृत वर्षा, सुरति सूं पार लगायो ।
बूंद बिछड़ी आद की, सागर में जा समायो ।। साहिब जी

2788 सात द्वीप नौ खंड तहां ना, कई खण्डों की बात ।
धुंधकार वहां सुन्न है नांहि, नीर वहां ना बहत ।। साहिब जी

2789 दस अवतार वहां कुछ नांहि, रचियो पिण्ड प्रकाशा ।
सूर्य चांद तारा वहां नांहि, एक सी ऋतु उस पारा ।। साहिब जी

2790 ना कोई चलता हिलता वहां पर, मीन पपील नहीं चाल ।
बिन बादल तहां वर्षा होती, सुरति विहंगम चाल ।। साहिब जी

2791 यही विधि हंसा आज्ञा चक्र में, दर्श किया सरकारा ।
सतगुरू संग ले चलें अपने, सुरत कमल दरबारा ।। साहिब जी

2792 यही विधि हंसा सुरत कमल में, चरणन शीष दिया डाल ।
सुरति ताल ऐसी बाजी, खुल गये सभी किवाड़ ।। साहिब जी

2793 सतगुरू चरणन खो गये पल में, महां ज्योति भंडार ।
सौलहं सूर्य ज्योति को धारा, साहिबन संग साहिब दरबार ।।साहिब जी

2794 जहां पांच तत्व नांहि, वहां प्रलय हो कैसे ।
काया भी नांहि, मन भी नांहि, फिर प्रलय हो कैसे ।। साहिब जी

2795 आत्म कुंवारी हो जाए तो, साहिब सूं मिले सो बार ।
दोनों ईक मिक हो जाते जब, बहती प्रेम की धार ।। साहिब जी

2796 अमृत की तहां वर्षा होती, भीगे सुरति अंग ।
साहिब जो मिलते प्यार सूं प्यारो, प्रेम बरसात सूं भीगे संग।। साहिब जी

2797 जब कोई जाता निज घर अपने, सुध ना रहे यह देह ।
पांच तत्व गुण तीन संग ना, ऐसा सब्द विदेह ।। साहिब जी

2798 हर हंसा सतलौक में, हर पल अति व्यस्त तूं जान ।
हर लौक की खबर रखें, हर प्राणी की पहचान ।। साहिब जी

2799 हंसा आकार से बाहर, सुमिरे निःअक्षर सार ।
बिन नाद अति आनंदित, सत्य लौक विस्तार ।। साहिब जी

2800 तहां सुरति लगा वहीं, सार नाम में रहे समाये ।
निराधार आधार है, सुरति में रहो समाये ।। साहिब जी

2801 अनंत सूर्य प्रकाश है, जब देखोगे तुम जाऐ ।
एक सी ऋतु हर दम रहती, विहंगम चाल चली जाऐ ।। साहिब जी

2802 चौथा समर्थ लौक है, ताका करो विचार ।
कोई नहीं तुम से पूछता, उपझे खपे विचार ।। साहिब जी

2803 सुरत निरत पर ध्यान दो, अंदर सुरति समाये ।
सब करनी सतपुरूष की, सुरति रहे ठहराये ।। साहिब जी

2804 निह तत्व भेद यह गुप्त है, पांच तीन से न्यार ।
निह तत्वी जो हंस बने, जाये साहिब दरबार ।। साहिब जी

2805 पिंड ब्रह्मण्ड से उस पार है, सतपुरूष लौक निजधाम ।
सतगुरू सूं दात जो पाऐ, वह ही पहुंचे निजधाम ।। साहिब जी

2806 नहिं उत्पति नांहि प्रलयः, ना जन्म मरण सतावे ।
रात दिन से बिना है, तहां ना नींद सतावे ।। साहिब जी

2807 ना कुछ आवे ना कुछ जावे, नांहि प्रलयः सतावे ।
वहां केवल बस्ती ही बसती, मरघट नाम ता ना सतावे ।। साहिब जी

2808 सतपुरूष सब की पहचान रखें, उसे आन सौंपें काम ।
आज्ञा अनुसार सब काम करे, सब का भिन्न भिन्न काम ।। साहिब जी

2809 अच्छा बुरा कोई है नांहि, एक सा है व्योवहार ।
प्रेम की डौर सूं बांधे सभी, एक सूं करते प्यार ।। साहिब जी

2810 हर हंसा सुरति से करे सब काम, सुरति सूं जोड़ी तार ।
सब की सुरति सूं सब से पहचान, सुरति सूं सुरति की तार।। साहिब जी

2811 चौरासी यौनी की बात तहां ना, हर्ष शौक की नहीं बात ।
पिण्ड ब्रह्मण्ड तहां ना कोई, तीन लौक पसारे की नहीं बात।। साहिब जी

2812 काल जाल पसार तहां ना, ईन्द्री जाल की नहीं बात ।
तंत्र मंत्र की कोई चीज़ ना, सात सरोवर की नहीं बात ।। साहिब जी

2813 सतपुरूष तहां अस्थाना, अमरलौक बिन नांहि बात ।
कुछ ना रहे सतलौक रहेगा, बिन गये ना जानी बात ।। साहिब जी

2814 हंस आत्मां अमर है भाई, सब हंस ये जानो बात ।
सत्यपुरूष की आज्ञा में रहते, मानो ये सच्ची बात ।। साहिब जी

2815 रामकृष्ण कोई अवतार तहां ना, पीर फ़कीर की नांहि बात ।
कुटुम्भ कबीला परिवार ना देखा, रिश्ते नातों की नांहि बात ।। साहिब जी

2816 विहंगम चाल सूं सब वहां चलते, दास ने देखी बात ।
सभी प्रेम सुरति सूं रहते, ऐसी बेगमपुर की बात ।। साहिब जी

2817 मोज में आकर साहिब कभी, खाने पीने को देते दात ।
दास ने भी वहां कुछ पीने को पाया, स्वाद की ना जानों बात।। साहिब जी

2818 चोर चकारी का डर वहां नां, लेने देने की नांहि बात ।
भूख प्यास का काम ना, कुछ मांगन की नांहि बात ।। साहिब जी

2819 प्रदूषण कहीं वहां ना, ठंड कौरे की नांहि बात ।
पूरी शुद्धि हर ओर वहां, ठंड गर्मी की नांहि बात ।। साहिब जी

2820 'वे नाम' लाया नाम जहाज है, तुम चढ़ो तो उतरो पार ।
ये समय जो बीत गया, कौन कब देत पुकार ।। साहिब जी

2821 जो मुख से सिमरे सो मानस, जो मन से सिमरे सो देव ।
जो सुरति सूं सिमरे सो संत्त, सुरति सूं हंसा निज देस ।। साहिब जी

2822 परिचय ना होता साहिबन सूं, लिखता कैसे भेद ।
कृपा ना होती साहिबन की, कैसे मिलता मन–माया निज भेद।। साहिब जी

2823 नानक कबीर रे दास प्यारे , प्रेम की जोत जलाऐ ।
सच प्रेम आनंद की ज्योति, वे तो प्रेम के सागर ।
अति कृपा करी जग आकर, प्रेम की जोत जगाई ।। साहिब जी

2824 संत्त कबीर जी देखे, देखे संत्त रविदास निजधाम प्यारे ।
बाबा नानक जी देखे, देखीं संत्त मीरां जी न्यारी ।। साहिब जी

2825 जात हमारी 'वे नाम' है, मात पिता निरालम्भ राम।
गृह हमारा निजधाम में, पारस सुरति में विश्राम।। साहिब जी

2826 ज्युं साहिब बुलावे, 'वे नाम' सुरति सूं वही गा पावे।
अपना मेरा कुछ नांहि, उसी के बौल 'वे नाम' गावे।। साहिब जी

2827 मोह माया से आलेप है, नाहीं रूप अरूप ।
पुष्प बास से पातला, हंसा साहिब अनूप ।। साहिब जी

2828 आपे मछ मछली, आपे पत्तवार जल ।
आपे सार नाम है, आत्म आपे तारणहार ।। साहिब जी

2829 मैं आया (वेनाम) सत्तलौक से, पाये सतनाम की दात।
जो कोई पावे सार नाम को, पहुंचे साहिबन घाट ।। साहिब जी

2830 आत्म में परमात्म दरशयो, परमात्म में जाई ।
हंसा में अब आप दरशे, आप में आप समाई ।। साहिब जी

2831 साहिब मिलयो आपा खोयो, मान अपमान खो जाई ।
कहे 'वे नाम' संग होयो, तां भक्ति हो पाई ।। साहिब जी

2832 कौटिन जन्म का पंथ था, सतगुरू पल में दियो मुकाए ।
सार–नाम रस पान से, साहिबन सूं दियो मिलाए ।। साहिब जी

2833 साधो अमरपुर हमार वास है, जग की करते सेव ।
पिण्ड ब्रह्माण्ड के पार वह, जाने आने में कैसी देर ।। साहिब जी

2834 जात धर्म से उपर है, सर्वोपरि सतगुरू नाम।
साहिबन का कैसा नाम, 'वे हूं' ही साहिबन जान।। साहिब जी

2835 कहे 'वे नाम', पूरे से मिल पूरा पायो।
भेद ये सारा, साहिबन सूं मिल पायो।। साहिब जी

2836 गुरू तीन लोक में ही राखे, सतगुरू चौथे लोक ले जाता।
चौथा लोक अमर लोक है, हंसों का सच्चा घर कहलाता।। साहिब जी

2837 बार–बार साहिब जी देखे, सत्तगुरू रूप में दिखे अति प्यारे ।
बलिहारी जाऊँ सत्तगुरू पे, जिनमें रहते परमपुरूष प्यारे ।। साहिब जी

2838 'वे नाम' जा के देख लिया, तीन लौक से आगे ।
सत्तलौक ही सत्तलौक है, तीन लौक के आगे ।। साहिब जी

2839 'वे–नाम कहे' आदि–अंत का, सृजनहारा परमपुरूष प्यारा ।
वो ही शुरू वो ही मध्य, वो ही अंत उन्हीं से सब परिवारा।। साहिब जी

2840 'वे नाम कहे' सब यत्न करूं, जग जीव ना छोड़ें माया द्वारा ।
चिंता करूं सब जीवों की, कैसे जगाऊं कैसे करूं भव पारा ।। साहिब जी

2841 सतगुरू 'वे नाम' परमहंस जी प्यारे, शरणागत को तारन हारे ।
खुद को सब जीवों में देखें, सभी जीव हैं साहिबन प्यारे ।। साहिब जी

2842 आस लिए सब तारण की, साहिब महिमां सदा हूं गाता।
हर प्रयास करूं जग ना माने, तो भी प्रयत्नशील हूं रहता।
'वे नाम' कहो या 'गुलाम' कहो, 'गधा भाई' हूं कहलाता।। साहिब जी

2843 जे सुख तां साहिब भजाई,
जे नर्क भिजवाई तां क्या घटी जाई ।
जे सोहि संग रही, सुख दुख एको भाई ।
जे आप ही आपे रहें, नर्क को कौन जाई ।। साहिब जी

2844 परमहंस आत्म को, भव सागर से पार कर देत।
सतगुरू कृपा सूं, साधक को अमरपुर संग लेत।। साहिब जी

2845 सुरति जान आत्म की वाणी, काल सूं ये ना पकड़ी जाये।
अमरपुर निजधाम से आई, केवल परमहंस सूं पकड़ी जाये।। साहिब जी

2846 'वे नाम' कहें :–

सतगुरू चरणों में, दुख सुख एक समान ।

अहम तज जे सतगुरू मिलें, तो भी सस्ता जान ।। साहिब जी

2847 कुछ कुछ रूप बनाते बनाये, मूल सुरति में आन समायें।
आप विदेहि सब्द विदेहि, चेतन शांत आनंद स्वरूपी में रूप समायो।। साहिब जी

2848 हंसा देखे पर कहे कैसे, किस को रूप विदेहि प्यारा।
सुरति में रहते सुरति में समाते, जैसे दूध में घी प्यारा।। साहिब जी

2849 सतपुरूष तुल्य चार लोक कोई नांहि, जिसे करूं प्रणाम।
सत्त सब्द सुरति में डाल दो, पल में पहुंचो निजधाम।। साहिब जी

2850 सतगुरू देते आंख प्यारो, अंदर के खुलें किवाड़।
पल में आत्म चेतन होती प्यारो, जा पहुंचे साहिब दरबार।। साहिब जी

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

''वे नाम परमहँस जी'' के सफ़रनामें

प्रायः आध्यात्म की दुनियां में सफ़रनामें तो कईंयों ने लिख डाले, जो उनके अपने निज अनुभव ना हो के सुनी–सुनाई या पढ़ी–पढ़ाई बातों पर आधारित होते रहे हैं । आध्यात्म की दुनियां की बातें इस संसार की किसी भी शब्द–लिपी में कलमबद्ध करना कठिन ही नहीं अपितु असंभव है, क्योंकि अधिकांश लेखकों ने स्वयं तो आध्यात्मिक सफ़र किया ही नहीं होता और नां ही उन्हें इसका कोई लेष मात्र भी अनुभव होता है । अधिकांश ने तो निजी स्वार्थ या अपने गुरूजनों/अगुवाओं को प्रसन्न करने व उनका कृपा–पात्र बनने हेतु बड़ा चढ़ा कर उनका प्रशसां भरा गुनगाण लिख डाला । यहां तक कि अपने ईष्ट्रों को महान व दूसरों के ईष्ट्रों को कमतर लिख डाला ।

निराकार के दायरे में त्रिलौकी के सफ़रनामें, फ़िर भी कुछ ना कुछ वर्णित किए जा सकते हैं क्युंकि बहुत से देवी देव व पात्र और स्थान, सभी माया का ही रूप होने के कारण जन साधारण द्वारा कथा वाचकों से सुने होने के कारण, उनका कुछ वर्णन सम्भव हो पाता है, वे दृष्टांत भी मात्र, उदाहरण भर ही होते हैं, क्युंकि पाठक वही समझता व समझना चाहता है जो उसकी समझ बुद्धी में सरलता से समाहित हो सके ।

मानव तो जन्म जन्मांतरों से माया की गहरी नींद सोया हुआ है । माया–रूपी बातें ही उसे भाती हैं और वही बातें ही वह समझता व समझना चाहता है । अपितु एक नहीं अनेक पूर्ण सत्तगुरू परमहँस जो सहज सत्त मार्ग की सत्ता के हुऐ, उनके बताये मार्ग पे चलना अर्थात अपने निज रूप को जानने की चेष्ठा कोई ईक्का दुक्का बिरला ही करता है, संपूर्ण संसार तो माया में ही रह कर जगत गुरूओं के प्रवचनों को सुनता व मानता है । जिस में माया रूपी देवी–देवों व निराकार, सुन्न के भिन्न–भिन्न रूपों की भक्ति में संलग्न रहता है । माया की भक्ति अर्थात फलस्वरूप अल्प कालिक मुक्ति, स्वर्ग–प्राप्ति उपरान्त फ़िर से मृत्यू–लोक में आवागमण पूर्वता क्रम की तरहं चलायेमान रहता है । मगर सहज मार्ग के सफ़रनामों का अनुभव माया व मन की आशा–तृष्णा से रहित सुरति रूप में हंसा द्वारा किए जाते हैं और इनका वर्णन सुरति द्वारा प्रदान व सुरति द्वारा ही ग्रहण किया जाता है।

इसका मन–माया से लेष मात्र भी लेना देना ना होने से, संसारी जन सहज मार्ग की ओर अग्रसित नहीं होते, कोई–कोई बिरला बडभागी ही सहज सत्त मार्ग पर चलता है । मानव तो अपनी गहरी मोहिनी निंद्रा को त्यागना ही नहीं चाहता । मानव चाहे ना चाहे, सहज मार्ग के संत्त सत्तगुरू परमहँस तो निरंतर मानव को जगाने की चेष्ठा में लगे रहते हैं । मानव का रूझान ईस ओर नहीं होता देख संत्त जन अक़्सर चिंतित व असहज हो जाते हैं, फ़िर भी वे मानव के अध्यात्मिक उत्थान के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं और आगे भी रहेंगे । सतगुरू परमहँस तो जग के सभी जीवों को जगाने हेतु अथक प्रयासरत रहते हैं।

निरंतर जग मानव, मोहिनी माया में डूबे होने के कारण, सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहँसों की साहिब सतपुरूष महिमां की वाणी सुनना तो दूर, वे तो इस ओर मुड़ के देखना भी नहीं चाहते । अपने निज रूप से अनभिज्ञ मानव की ये दशा देख कर सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' अत्यधिक व्यथित रहते हैं, मानव की ये दशा देख कर वे करूणामय भाव लिए उसके उत्थान के लिए क्षण प्रति क्षण निरंतर प्रयासरत हैं।

सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के अथक प्रयासों के बावजूद भी जीवों का रूझान निज के उत्थान की ओर ना होता देख के वे अक्सर कहते हैं :–

''मैं तो गधा भाई हूं, मुझे किसी भी विषेश पद प्रतिष्ठा व मान्यता की कोई अभिलाषा अथ्वा लेष मात्र भी ईच्छा नहीं और नांहि मेरा कोई और भौतिक उद्धेष्य है । जीव–मानव जागें ना जागें, ये ''गधा भाई'' तो जीव आत्माओं के कल्याण हेतु सदैव प्रयत्न शील और 'सतपुरूष जी' की आज्ञा अनुसार अपने कर्तव्य के प्रति समर्पित है और जीवन प्रयन्त, रहेगा ।''

सहज मार्ग के अनुभव आलोकिक और अवर्णिय हैं व उन्हें शब्दों में कलमबद्ध करना असंभव है, लेकिन जगत के आध्यात्मिक उत्थान हेतु समय–समय पर सहज मार्ग के पूर्ण सत्तगुरू परमहँस निजधाम से हो के संसार में आते रहे हैं और सदा आते रहेंगे, वे अपने निजधाम सतलोक के आलोकिक सफ़रनामों के अनुभव का वृतांत अपने अनुयायियों और साधकों को उनकी आध्यात्मिक उन्नति हेतु बताते व समझाते हैं और सदैव उनका मार्ग दर्शन करते हैं।

संपूर्ण सत्तगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के आध्यात्मिक आलोकिक सफ़रनामों के अनुभव से भरी यात्राओं के बारे में अग़ामी पुस्तक ''वे नाम परमहँस जी के सफ़रनामे'' में विस्तार से पढ़ें। इसी क्रम–श्रंखला में से कुछ दोहे इस पुस्तक में भी कलमबद्ध किए गए हैं।

सूचना :— सहज सत्त मार्ग अर्थात परा भक्ति के आध्यात्मिक सफ़रनामों को लिखना व उनका वर्णन करना असंभव है, जो भी पूर्ण सत्तगुरू परमहँस सत्तलोक से हो के आयेंगें वो ही इसका वर्णन और बख़ान कर पाऐंगें । मगर श्रद्धावान साधक जन जिनकी सुरति कुछ जाग्रत होती है चाहे वे ईक्का—दुक्का व ईने—गिने ही क्युं ना हों, सदा से ही सहज सत्त मार्ग की ओर प्रेरित व अग्रसित होते रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। सहज सत्त मार्ग के 'सफ़रनामों' को कलमबद्ध करना सर्वथा संभव ही नहीं, ये तो मात्र एक चेष्ठा भर ही है !!!

नोट :— 'वे हूँ' तथा 'वे नाम' ! 'वे' अर्थात साहिब सत्तपुरूष जी का रूप। 'हूँ' अर्थात सत्तपुरूष ही हूं, 'नाम' अर्थात साहिब सत्तपुरूष जी का वर्णात्मिक उच्चारण अर्थात नाम हूं । 'वे हूँ परमहँस जी' अनुसार :— मैं तो कुछ भी नहीं ! 'वे' (सत्तपुरूष जी) ही सब में हैं व सब हंसों का मूल वो ही हैं, उन्हीं को ही 'वे हूँ और वे नाम' कह के सम्बोधित किया गया है।

—0—

सतगुरू सत्तनाम

काव्य संग्रह

''वे हूँ परमहँस जी'' की सत्तलोक सुरति
से ओत प्रोत अमृतमयी वाणी से भरपूर
काव्य संग्रह

सहज सत्त भक्ति मार्ग
के काव्य संग्रह

निरंतर जग मानव, मोहिनी माया में डूबे होने के कारण, सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहँसों की साहिब सतपुरूष महिमां की वाणी सुनना तो दूर, वे तो इस ओर मुड़ के देखना भी नहीं चाहते । अपने निज रूप से अनभिज्ञ मानव की ये दशा देख कर सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' अत्यधिक व्यथित रहते हैं, मानव की ये दशा देख कर वे करूणामय भाव लिए उसके उत्थान के लिए क्षण प्रति क्षण निरंतर प्रयासरत हैं।

सतगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के अथक प्रयासों के बावजूद भी जीवों का रूझान निज के उत्थान की ओर ना होता देख के वे अक्सर कहते हैं :—

''मैं तो गधा भाई हूं, मुझे किसी भी विषेश पद प्रतिष्ठा व मान्यता की कोई अभिलाषा अथ्वा लेष मात्र भी ईच्छा नहीं और नांहि मेरा कोई और भौतिक उद्धेष्य है । जीव—मानव जागें ना जागें, ये ''गधा भाई'' तो जीव आत्माओं के कल्याण हेतु सदैव प्रयत्न शील और 'सतपुरूष जी' की आज्ञा अनुसार अपने कर्तव्य के प्रति समर्पित है और जीवन प्रयन्त, रहेगा ।''

सहज मार्ग के अनुभव आलोकिक और अवर्णिय हैं व उन्हें शब्दों में कलमबद्ध करना असंभव है, लेकिन जगत के आध्यात्मिक उत्थान हेतु समय—समय पर सहज मार्ग के पूर्ण सत्तगुरू परमहँस निजधाम से हो के संसार में आते रहे हैं और सदा आते रहेंगे, वे अपने निजधाम सतलोक के आलोकिक सफ़रनामों के अनुभव का वृतांत अपने अनुयायियों और साधकों को उनकी आध्यात्मिक उन्नति हेतु बताते व समझाते हैं और सदैव उनका मार्ग दर्शन करते हैं।

संपूर्ण सत्तगुरू ''वे नाम परमहंस जी'' के आध्यात्मिक आलोकिक सफ़रनामों के अनुभव से भरी यात्राओं के बारे में अग़ामी पुस्तक ''वे नाम परमहँस जी के सफ़रनामे'' में विस्तार से पढ़ें। इसी क्रम—श्रंखला में से कुछ दोहे इस पुस्तक में भी कलमबद्ध किए गए हैं।

सूचना :– सहज सत्त मार्ग अर्थात परा भक्ति के आध्यात्मिक सफ़रनामों को लिखना व उनका वर्णन करना असंभव है, जो भी पूर्ण सत्तगुरू परमहँस सत्तलोक से हो के आयेंगें वो ही इसका वर्णन और बख़ान कर पाऐंगें । मगर श्रद्धावान साधक जन जिनकी सुरति कुछ जाग्रत होती है चाहे वे ईक्का–दुक्का व ईने–गिने ही क्युं ना हों, सदा से ही सहज सत्त मार्ग की ओर प्रेरित व अग्रसित होते रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। सहज सत्त मार्ग के 'सफ़रनामों' को कलमबद्ध करना सर्वथा संभव ही नहीं, ये तो मात्र एक चेष्ठा भर ही है !!!

नोट :– 'वे हूँ' तथा 'वे नाम' ! 'वे' अर्थात साहिब सत्तपुरूष जी का रूप। 'हूँ' अर्थात सत्तपुरूष ही हूं, 'नाम' अर्थात साहिब सत्तपुरूष जी का वर्णात्मिक उच्चारण अर्थात नाम हूं । 'वे हूँ परमहँस जी' अनुसार :– मैं तो कुछ भी नहीं ! 'वे' (सत्तपुरूष जी) ही सब में हैं व सब हंसों का मूल वो ही हैं, उन्हीं को ही 'वे हूँ और वे नाम' कह के सम्बोधित किया गया है।

–0–

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

1 निराकार भगवान महिमां व त्रिलौकी पसार

1 निरंकार की महिमां

पांच तत्व मन ईंद्री काया ।
मन रूप ने सब को भरमाया ।।
मन तो आत्म के वष नांहि ।
मन सब ईंद्रियों को उलझाया । ।
मन को ही निराकार निरंझन जाना ।
औंकार निरंकार का वेद बख़ाना ।।
मन ही है निरंकार महाकाल विस्तारा ।
अण्ड ब्रह्मण्ड सात द्वीप नौ खण्ड पसारा ।।
सुन्न धरती आकाश पांच तत्व पसारा ।
सब हैं निरंकार कालपुरूष प्रकाश ।।
निरंकार महान, करे साहिबन प्रणाम ।
परमपुरूष का पांचवा शब्द पुत्र महान ।।
तां को सब जगत कहे निरंकार महान ।
निरंकार की महिमां गात सब जहान ।।
निरंकार है जग माया का सृजन हारा ।
निरंकार सृजन हारा सतपुरूष प्यारा ।।

—0——

2 चौरासी विस्तार

प्रथम अण्डज चोदहां लाख पक्षी जीव जननी रचायो ।
द्वित्यम तीस लाख पिण्डज जीव ब्रह्मां जी रचायो ।।
तृत्य सत्ताईस लाख उष्मज जीव विष्णू जी रचेता ।
चतुर्थ नौं लाख अस्थावर जीव शिवजी रचेता ।।
पंचाह चार लाख मानुष योनी निरंकार रचेता ।

चौरासी लाख योनी रचा खेल ये सारा ।।
नर देह कर्म भौग की ख़ातिर ।
कर्म करो भौगो और मर जाओ ।।
मानुष देह सब से न्यारी ।
इसी देह से पार उतारा ।।
इसी में पाओ साहिबन प्यारा ।
संत्त शरणी मिले साहिबन प्यारा ।।
मनुष्य देह पाई सत्त भक़्ति में लगाओ ।
मुक़्ति पाओ व्यर्थ ना इसे गंवाओ ।।

—0—

3 अनहद भ्रम

अनहद की धुन भंवर—गुफ़ा में ।
मधुर ध्वनि प्रिय झंकार है ।।
बांसुरी, वीणा, सांरगी, शंख ।
सीटी—ध्वनि सुनी मन भरमाए है ।।
यह सब काल पुरूष की रसरी ।
सुन के मन ललचाए है ।।
जे कोई इन धुनों पे अटके ।
साहिब से नांहि मिल पाए है ।

—0—

4 कर्म—बन्धन मुक़्ति

कर्म—जाल अति भरमावे ।
जो कोई इस के जाल में आवे ।।
मुक़्ति से अति दूर वह जावे ।
कभी ना वह प्राणी सतलौक को जावे ।।
अच्छे कर्म भी बंधन का कारण ।
बुरे कर्म सो भी बंधन का कारण ।।
मोत का डर ही केवल कर्म करावे ।
बार बार जीवन मृत्यू का जाल बनावे ।।
मृत्यू का डर ही लोभ मोह में डाले ।
मृत्यू का डर ही पद प्रतिष्ठा की अकड़ डाले ।।

मृत्यू का डर ही सब को माया में डाले ।
मृत्यू का डर ही मानुष को काम प्रेम में डाले ।।
मृत्यू का डर ही मानुष को देवी–देव पूजा में डाले ।
मृत्यु का डर ही मनुष्य से नित नेम करावे ।।
मृत्यू का डर ही मनुष्य से पाप पुण्य करावे ।
मृत्यू का डर ही मनुष्य को मंदिर–मस्जिद तीर्थ ले जावे ।।
मृत्यू के डर से ही कोई योगी, जपी तपी बन जावे ।
मृत्यू के डर से ही कोई अनहद धुन में ध्यान लगावे ।।
वे ही संत कहावे जिसे जीते जी मरना आ जावे ।
संत को ही जग में जीने की कला समझ में आवे ।।

—0—

5 आशा तृष्णा

आशा तृष्णा सब घट व्यापक, कोई महल न सूना ।
संसार में जो आया सौ दुखिया, यही है सब का रोना ।
बच्चा दुखिया, जवान दुखी, बूढ़े का दुख अति भारी ।
जोगी दुखिया झंगम दुखिया, तपी का दुख अति भारी ।
संसारी कर्म बन्धन का दुखिया, जग गुरू अति दुखिया ।
एक संत सदा रहें सुखिया, संतों की गति न्यारी ।
सार नाम की दात है जिन संग, सब दुखों पे भारी ।
घर में रहो तो दुखी, जंगल में भी रहे दुखिया ।
सार नाम की दात बिन, सारा जग ही दुखिया ।
आत्म तो आज़ाद दुख से, वह तो रहती सुखिया ।
दुख तो रहता मन–शरीर संग, तांहि तो तूं दुखिया ।
वासना–तृष्णा में तूं खोया, तां से तूं है दुखिया ।
आशा तृष्णा सब घट व्यापक, दोनों दुखों के मुखिया ।
आत्म खुद को काया समझे, तभी तो जीव है दुखिया ।।

—0—

6 चौरासरी लाख योनियों का भेद

तीन देव रचि योनि चारों ।
हंसा को जीव बंधन दीनी ।।
सकल योनि जीव एक समाना ।
किसी कारण नांहि इक सम ज्ञाना ।।
नों लाख जल के जीव बख़ानी ।
चोदहां लाख योनि पक्षी पखानी ।।
किरम कीट योनि सत्ताईस लाखा ।
तीस लाख योनि पिण्ड भाखा ।।
चतुर लाख देह मनुष्य परमाना ।
मनुष्य देह परम पद जाना ।।
और योनि परिचय नहीं पावे ।
कर्म बंधन वश भव भटका खावे ।।

—0—

7 निरंकार धारा

निरंकार धारा जग में बहे ।
जिस में डूबे सब जीव ।।
निरंकार चाहे जितना भज लो ।
मुक़्त ना होवे जीव ।।
साहिब (सत्तपुरूष) भक़्ति बिन नांहि मुक़्ति ।
निरंकार खुद ही काल कराल ।।
सत्तगुरू बिन नांहि मुक़्ति ।
सत्तगुरू काटे काल का जाल ।।
निरंकार कर्म फ़ल का जाल ।
जो करो ता—सा मिलता फ़ल ।।
कर्म फ़ल से प्रालब्ध बने ।
इसी से जन्म मरन का जाल ।।
सत्तगुरू शरणी बिन नांहि भक़्ति ।
सत्तगुरू देते सार नाम की दात ।।
सार नाम की दात बिन ।
मिटे ना मन ना मिले निजधाम ।।
सत्तगुरू में साहिब बसें ।
साहिब सूं मिले निजधाम ।।

—0—

8 मानव धर्म

बार बार जमना और मरना ।
मानव तेरा धर्म नहीं है ।।

अच्छे बुरे कर्मों को करना ।
फल पाने को फिर जमना ।
मानव तेरा धर्म नहीं है ।।

सुख की चाह में दुख पाता है ।
आषा तृष्णा में रमे रहना ।
मानव तेरा धर्म नहीं है ।।

वासना अहम में डूबे रहने वाले ।
स्वर्गों की इच्छा को करना ।
मानव तेरा धर्म नहीं है ।।

देवी देवों को पूज पूज के ।
जग माया की मांगें करना ।
मानव तेरा धर्म नहीं है ।।

और पाने की चाह को करना ।
दूजे के सुखों को हरना ।
मानव तेरा धर्म नहीं है ।।

नां तूं काया नांहि मन माया ।
तूं सब से महान जग में रमना ।
मानव तेरा धर्म नहीं है ।।

तूं आत्म नांहि तूं तो हंसा महान ।
सतगुरू शरणी जा निज पहचान ।
मानव तेरा धर्म यही है मानव तेरा धर्म यही है ।।

—0—

9 पांच तत्व काया रहस्य

पांच तत्व का बना शरीरा तां में आत्म देव समाया ।
ये सब ग्रंथ वेद भी हैं माया ।
भंवर गुफ़ा मन तेरे अंदर पल पल तुम्हें जो है भरमाता ।
पर ये तो है केवल मन माया ।
मन माया तो एक है बिरला जाने कोए जो जन जाने इस भेद को ।
वो ही इस मन माया को त्यागे ।
मन रहते कोई पार ना पावे कोटिन जन्म जो ध्यान लगावे ।
पल पल तुम्हें भरमावे माया ।
कितने युगों से तप कर डाला घर छोड़ा, छोड़ी भीड़ बने सन्यासी ।
तब भी ना मन से पावत पारा ।
योगी झंगम सन्यासी और त्यागी सब पल पल गये भरमाए ।
मन की तंरग पल पल उलझाए ।
मन चीने कोई बिरला योगी जिसे पूर्ण संत ही भेद बताए ।
बिन संतन कभी ना पावत पारा ।
निरंकार पूजा ध्यान लगा कर मन माया कोई चीन ना पावे ।
पूर्ण सत्तगुरू सूं भेद ये पाए ।
काम कौध लौभ मोह ईर्षा द्वेष अंहकार मन के अंग सब तुझ में हैं आए ।
पर तूं मन के भेद को जान ना पाए ।
आत्म भी है कैद में मन के आत्म करे मन के कहे अनुसार ।
जग में सारे काम हैं करते ।
जो भी कार्य करो तुम जग में आत्म ना जाने अपना निज रूप ।
खुद को तन मान रही करती सब काम ।
हंसा तन और मन से मिल कर जीव में आत्म देव कहलाए ।
मन की आज्ञा से करती सब काम ।
निराकार की भक्ति करने वालों का पांच शब्द और पांच मुद्राओं का ।
सभी हैं करते इन्हीं का ध्यान ।
बाजीगर का बांदरा नाचे बाजीगर अनुसार ऐसे ही हंस जीव संग है मन नचा रहा
आत्म देव नाचे काल अनुसार ।
ना कुछ किया ना कर सके ना कुछ भी करने योग्य शरीरा ।
जो भी किया सो मन किया ।
मन लोभी मनसा लालची जे कोई या ते बचे उसे जानो साध ।
आत्म बल है जाके पासा सच्ची होश तांही के पासा ।।

—0—

10 मन की महिमां

सुर नर मुणि, सिद्ध और ध्यानी ।
सब ही की उल्टी है कहानी ।।
मन सब को अपनी ओर लगाए ।
सुर नर मुणि सब को उलझाए ।।
कुछ पाकर सब कुछ खो जाए ।
मन ही निरंझन सब को उलझाए ।।
मन–सुर, नर, मुणि सब को नचाए ।
मन की गति को कोई पार न पावे ।।
जो कोई मन से बचे तीन लौक से पार हो जाए ।
जन्म मरण से छूटे मौक्ष द्वार को पाए ।।

–0–

11 मन मोहणी माया

जो कोई मन से बचे ।
उतरे भव जल पार रे ।।
तन मन मिल धन्धा किया ।
हंस को आत्म रूप दिया ।।
जैसे पित्तल चांदी मिल ।
सोने का बना सुन्दर हार रे ।।
जब तक कचरा पड़े न सोने में ।
के कर बनता शिंगार रे ।।
मन कचरा मिल हंसा में ।
हंसा बनता आत्म रूप रे ।।
कचरा सोने–आत्म से जल जाए ।
पुनः धरे निज सुन्दर रूप रे ।।

–0–

12 मन वशीकरण

मन आत्म वश नांहि ।
ईन्द्रियां वश मन नांहि ।।
ईन्द्रियां पईं मिन्नत करत हैं ।
मांगें चाहत प्यारी प्यारी रे ।।
वश मन अति बलवान रे ।
जो चाहे इन से करवा लेता है ।।
आत्म चले मन अनुसार रे ।
मन से सारे गुरू व साधु परेशान रे ।।

—0—

13 माया मोहणी

आई माया तो हंसता प्राणी ।
गई माया तो रोता प्राणी ।
जिनकी पुड़िया है माया ।
दुख को दूर भगाने वाली ।।
अच्छी बीवी लाने वाली ।
अच्छा घर बनाने वाली ।
कड़की दूर भगाने वाली ।
ऐ॰ सी॰ गाड़ी दिलाने वाली ।।
टिप–टाप सूट पहनाने वाली ।
लोगों में मान दिलाने वाली ।
गर्मी सर्दी का सुख दिलाने वाली ।
अच्छे–अच्छों में गिनती कराने वाली ।।
रात को दिन बनाने वाली ।
जोगी देखे गुरूजन देखे ।
सबकी लम्बी गाड़ी चलाने वाली ।
अधिकारियों से संबंध बनाने वाली ।।

विदेश की यात्रा कराने वाली ।
संगतों में अपना रोब जमाने वाली ।
निरंकार जाल में जीवों को भरमाने वाली ।
जीवों की माया से माया बड़ाने वाली ।।

देवी देवों से अच्छी अच्छी मांग मनवाने वाली ।
उसी मांग बदले, जग मान बड़ाने वाली ।
निरंकार से भी मांगें पूर्ण कराने वाली ।
पर बदले में आत्म को नाच नचाने वाली ।।

आत्म ज्ञान से दूर ले जानी वाली ।
मोह माया में उलझाने वाली ।
पूर्ण संत से दूर भगाने वाली ।
विषे वासनाओं में उलझाने वाली ।।

हे आत्म तूं निज हंसा रूप निराला ।
तूं निजधाम अमरपुर से आने वाला ।
संत प्यारा सार रस अमृत पाने वाला ।
चल हंसा सतगुरू शरणाई जा में साहिब समाई ।।

–0–

14 अनहद झंकार

हृदय चक्र से उठत है ।
अनहद धुन की धीर शब्द झंकार ।।

भंवर गुफ़ा से सुर में आवे।
सुनो रे शब्द झंकार ।।

इस ध्वणि पर सुरत शब्द बिठाओ ।
सैल आस्मानी को जाओ ।।

मीन और पपील चाल से ।
तुरिया अवस्था को पाओ ।।

प्रज्ञा अवस्था को तुम पाकर ।
सैल आस्मानी को तुम जाओ ।।

जब चाहो तुम रूक सकते हो ।
जब चाहो तुम चल सकते हो ।।

मीन चाल से जब तुम जाओ ।
मध्य गति चाल से चल सकते हो ।।

रेल की सीटी की धुण को तुम पाओ ।
स्वर्ग लौकों की सैल को जाओ ।।
शंख ध्वणि की धुण को पाओ ।
विष्णू लौक की सैल को जाओ ।।
बांसुरी की धुण में जब तुम जाओ ।
गौ लौक की सैल को जाओ ।।
शंख डमरू की धुण संग में ।
शिव लौक के दर्शन पाओ ।।
—0—

15 अपूर्ण मुक्ति

ज्योति निरंझन चाचरी मुद्रा, सो है नैनन मांहि ।
तांहि को जाना गोरख योगी, महां तेज है तांहि ।।
मानव तो तीन शरीरों में रहते पर ।
योगी चार शरीरों को पा लेते ।।
महांयोगेश्वर चार शरीरों तक ही जा पाते ।
पूर्ण रूप से मन को भगा ना पाते ।।
इनका कुछ मन शेष रह जाता ।
तभी ये सत्तपुरूष से ना मिल पाते ।।
—0—

16 कर्म भौग

यह संसार तो प्रालब्ध प्रधाना ।
जैसी करनी वैसी ही भरनी ।।

जो व जब चाहे निरंकार करनी ।
करनी तो भरनी पड़ी उसी अनुसार ।।

पर यह जो सब कुछ है मिलता ।
तेरी अपनी करनी के अनुसार ।।

काल निरंझन के दरबार में ।
विधाता ने जो कलम चलाई ।।

उस का लिखा मिटे ना मेरे भाई ।
भोगना पड़े चले ना तेरी चतुराई ।।

तुझे तेरे कर्म फल देने हैं ।
सोहि चौरासी लाख है योनी रचाई ।।

कितने छल कपट से तूने माया कमाई ।
यही माया अज तेरी कल किसी और की भाई ।।

इस माया ने सभी जीवों को है भरमाया ।
वाह निरंकार करनी भरनी भी है तेरी माया ।।

—0—

17 चार मुक्ति विस्तारा

क्षितिज जल पावक गगन समीरा पांच तत्व का अधम शरीरा रे ।
ये हमार शरीर, (पृथ्वी,जल,वायु, अग्नि और आकाश) पांच तत्व से आया रे ।
पर जग में मन माया के चक्र में कई जन्मों से भटक रहा तूं,
सच्ची बात तूं समझ ना पाया रे ।
बार बार घौर नर्क कष्ट को पाता फ़िर भी,
निजघर जाने का भेद क्यूं नहीं तूं पाया रे ।
निरंकार कहे मैं ही हूं साकार और निराकार में विद्यमान रे ।
मैं ही हूं शुभ और अशुभ पुण्य पाप का सृजनहारा रे ।
मैं ही हूं तीर्थ–व्रत–यज्ञ–हवन जप तप और कर्म निर्माता रे ।
मैं ही हूं बैकुण्ठ व स्वर्ग नर्क और कर्म फल का देन हारा रे ।
मैं ही हूं तपस्वी व ऋषि मुणि भौगी का सिद्धी दाता रे ।
मैं ही हूं मनुष्य की मनोकामना सुख और दुख में ले जाता रे ।
मैं हां मैने ही जन्म मरण के काल व कर्म को बनाया रे ।
निरंकार की भक्ति में चार मुक्तियों का दाता मैं, तूं पाता रे ।
उन कर्मो के क्षीण होते ही तुम पुनः मृत्यू सागर में आ जाते रे ।
आओ उन चार मुक्तियों को जानें जिनका दाता है निरंकार महान रे ।।

(1) सामिप्य मुक्ति

जो जन अच्छे नेक काम हैं करते कष्ट किसी को भी ना देते रे ।
दानी ईच्छा से घर में होता अन्न माया का भण्डार रे ।
तन से देते मन से देते सुरति से जो हैं देते दान रे ।
वही तो सच्चा दानी जग में पाता हीरे मोती ख़ान रे ।
कर्म काण्ड और श्राद्ध वह करते दुखियों की वे सेव करते रे ।
मृत्यू पाने पर पित्र लौक में यथा कर्म वो स्थान पाते रे ।
इस पृथ्वी का पूरा एक साल पित्र लौक का ईक दिन है रे ।
वह तो केवल भौग लौक है कर्म कमाई कोई ना कर पाता रे ।
कर्मों के क्षीण होते ही पुनः संसार सागर में आ जाता रे ।।

(2) सालोकय मुक्ति

जो जन सत्य वचन पे चलते त्रिदेवों मे किसी एक को ईष्ट् माने रे ।
शिव महेश रामकृष्ण आद शक्ति आदि तां जीवन ईक के ध्यान में जावे रे ।
नेकी की कमाई को वो हैं खाते सभी जन को गले लगाते रे ।
मांस मंदिरा नशे का सेवन ना करते नित नेम का हैं पालन करते रे ।
मुक्ति के वह अधिकारी कहलाते जीवन अपना सुखी बनाते रे ।
मृत्यू होने पर वह भले जीव बैकुण्ठ–स्वर्ग में वासा पाते रे ।
पुण्य कर्मों का फल भौगन पर पुनः मृत्यू लौक में आ जाते रे ।
पित्र लौक का पूर्ण एक साल स्वर्ग लौक का एक दिन कहलाए रे ।
लाखों साल स्वर्ग में रहते कपिल वृक्ष का फल हैं खाते रे ।
जो चाहें वह मिलता है उनको पर जब संत को देखें दुखी हो जाते रे
मैंने ऐसा सब कुछ है देखा तभी तो ये सब लिख पाता रे ।
सूक्ष्म शरीर फरिश्तों के संग सूं कोई ध्यानी ज्ञानी वहां जाता रे ।
कई बार मैने लौक लुकान्त्तर देखे मीन पपील चाल से सैल आस्मानी करी रे ।
सोहम लौक में गुरू जगत सिहं देखे और मौहम्मद साहिब के दर्शन पाए रे।
निरंकार के सहज लौक में बाबा अवतार सिहं देखे रे ।
सहज लौक में ही गुरू अमर सिहं जी के दर्शन पाए रे ।
ये सब दास ने सैल आसमानी तब करी जब निराकार की भक्ति में लीन था रे ।।

(3) सारोप्य मुक्ति

जो लोग निर्गुण भक्ति में लीन हैं रहते और आज्ञा चक्र में ध्यान लगाते रे ।
सुन्न और महासुन्न लोकों की सैल को जाते व सौहंग शब्द पर ध्यान लगाते रे ।
अनहद की नाद को सुनते, संख वीणा बांसुरी सीटी घंटी आदि में धुनी रमाते रे ।
ओईम शब्द की ध्वणि व दर्शन करते ब्रह्मा में ब्रह्म–मय हो जाते रे ।
लाखों साल तक ब्रह्मा संग रहते ब्रह्म लौक में रमते विचरते रे ।
पुण्य फल अवधि समाप्त होने पर पुनः मृत्यू लौक में आ समाते रे ।
ब्रह्म लौक सत्तगुरू संग में सैल करी दोनों हाथ गुरू के मैं था थामे रे ।
उसके अंदर शान्ति पूर्वक रमे रहे यूं हम दोनों ने किया विश्राम रे ।
एक बड़ा सा अति श्वेत काग़ज बहता हुआ दास के पास आ पहुंचा रे ।
इस भेद को ना मैं पा सका सत्तगुरू सूं भी बख़ाना रे ।
सत्तलौक में जब मैं पहुंचा सत्तपुरूष ने प्यार से समझाया रे ।
तेरा लेखा जोखा मृत्यू लौक का निरंकार की सीमा से बाहर हुआ रे ।
जब चाहो तुम छोड़ो जग को तब तक चाहो जग में रह लो रे ।
दास तो छेः साल की आयू से ही भक्ति में ही लीन रहता आया रे ।
तीन गुरू मैने जग में बदले,
चौथे गुरू परमहंस से सत्य सब्द की दात को पाया रे।
पांच मास की अटल भक्ति करी, सत्तगुरू कृपा सूं अमरपुर में पहुंचा रे ।।

(4) सायुज्य मुक्ति

जो ज्ञानी ध्यानी महा योगेश्वर किसी एक मुद्रा के विशेषज्ञ बन जाते रे ।
चार शरीरों से बाहर आ जाते पांचवे और छठे शरीर में जा समाते रे ।
जब उनकी चाल में मीन मार्ग हो तो ऐसी अवस्था आ जाती रे ।
उस अवस्था में भी पांच प्रतिशत मल है होता पच्चानवें प्रतिशत सुरति चेतन रहती रे।
तब वह इसी सुरति सूं चल हैं पाते सुन्न महासुन्न लोकों की सैल को जाते रे।
बिन पग चले सुने बिन काना कर विधि कर्म करे विधि नाना रे ।
अनरहित सगल रस भौगी बिन वाणी वक्ता बड़ भौगी रे ।
जिस लौक में चाहे जा है सकता जहां चाहे रूक सकता रे ।
तीन रूप निरंकार के दर्शन पावे ओम शब्द जौत सरूपी के दर्शन पाते रे ।
अनहद जप को हरदम सुनता उसी की धुन में लीन रहता रे ।
ऐसा जोगी निरंकार की त्रिलोकी में किसी लोक में भी जा सकता रे ।

कयामत तक निरंकार में रहता सुख व अति खुशी वह पाता रे ।
चार अरब बत्तीस करोड़ साल समय सृष्टि् सगल पसारा रे ।
और इतने ही काल की अहोरात्री फ़िर पुनः सृष्टि् रचना रे ।
सृष्टि् का पुनः निर्माण हो तब मृत्यू लौक पुनः आ जाता रे ।
चार मुक़्तियां तो केवल माया ही का रूप हैं रे ।
मृदुगल ऋषि ने स्वर्ग में जाने से किया था इन्कार रे ।
दोष मुक़्त होऊं तो है जाना इच्छा करी पूर्ण निवार्ण (मौक्ष) की रे ।।

—0—

18 महांकाल—भ्रमजाल

दस करोड़ बार ब्रह्मां जी उत्पन्न हो के जा काल समाए ।
मृत्यू लौक का एक वर्ष पित्तर लौक का एक दिन ।।
पित्तर लौक का एक वर्ष ब्रह्मा जी एक दिन ।
ब्रह्म लौक का एक वर्ष विष्णु जी का एक दिन ।।
बैकुण्ठ का एक वर्ष शिव जी का एक दिन ।
शिव लौक का एक वर्ष माया मोहिणी का एक दिन ।।
महामाया का एक वर्ष निरंकार का एक दिन ।
निरंकार ही हैं नारायण, अलख़ निरंझन महाकाल विस्तारा ।।
निरंकार का खेल ये सारा, सृष्टि ब्राह्माण्ड विस्तारा ।
निरंकार का है सत्रहां आयोजन कौड़ी समय तक विस्तारा ।।
निरंकार भी है बार बार सौता और है जागता ।
चार अरब बत्तीस करोड़ का दिन और इतनी उसकी रात ।।
सारे ज्ञानी, ध्यानी व संत इसे महाप्रलय और सृजन काल बताएं ।
काल से परे इक सत्तपुरूष है सर्वव्यापक सर्वेश्वर प्यारा ।।
जो सदा पहले से था, है और आगे भी सदा रहेगा ।
हम सब आत्म—हंसा उसी से बिछड़े, वोही है मूल स्त्रोत हमारा ।।
निरंकार के मन माया मोहिणी रूप में फंसे, भूले सत्तपुरूष प्यारा ।
हम सब जीव उसी के अंश हैं, वोही निजघर हमारा ।।

—0—

19 जगत विस्तार

नौ लाख जल के जीव बख़ानी ।
चौदहं लाख पक्षी परवानी ।।

किरम कीट सत्ताईस लाखा ।
तीस लाख पिंडज भाखा ।।

चतुर लाख मानुष परमाना ।
मनुष्य देह परम पद जाना ।।

और योनि परिचय नांही पावे।
कर्म बन्धन भव भटका खावे ।।

—0—

20 मौक्ष रहस्य : ''वे नाम'' कहत है :—

वे नाम दास हूं, कहता हूं मैं ।
सुनो भ्रमित भटके जग वालो रे ।
सत्तगुरू की चरण शरण में आओ रे ।
सार नाम की दात को पा चेतन हो जाओ रे ।
समर्पण करो खुद को सत्तगुरू चरणों में रे ।
मैं को छोड़ो प्रीत सूं सत्तगुरू संग नाता जोड़ो रे ।
जब मैं और मेरी गई तभी प्रीत प्रेम जागे रे ।
प्रेम है जीव प्रेम सत्तगुरू प्रेम ही साहिब प्यारा रे ।
सत्तगुरू में सत्तपुरूष का वासा सत्तगुरू साहिब एक सरूपा रे ।
जो पूर्ण सत्तगुरू को है पाता वह भवसागर से तर जाता रे ।।

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

2 सत्तलोक/मृत्युलोक सत्ता भेद

1 निरंकार और सतपुरूष सत्ता

संसार के लोग मान रहे हैं
निरंकार को ही साहिब।
दास कहत हैं सुनो जग वालो
पर ये सच्ची बात नहीं ।
निरंकार तीन लौक का प्यारा
सतपुरूष है सतलौक का प्यारा।
अमर लौक है सब से न्यारा
परमपुरूष है सब से न्यारा ।
सब घट व्यापक अग़म अपारा
तां की भक्ति है महां निस्तारा ।
भक़्ति करे जो होवे भवजल पारा
सार सब्द है निःअक्षर प्यारा ।
नाम जो पावे सो ही उतरे पारा
पूर्ण संत सूं मिले सार रस धारा ।
सार नाम बिन नांहि हो निस्तारा
सार सब्द बिन मिलता यम द्वारा।

—0—

2 मानव मालामाल

इस जग में 'वे नाम जी' कोई नही कंगाल
सब के अन्दर हीरे पन्ने मोतियों का भण्डार ।
अमृत रस झरे मुख मांहि पीवत होत निहाल
अंदर ज़रा जा के देखो हीरे मोती लाल ही लाल ।
अंताकरण रस जो पीवो हो जाओ निहाल
'वे नाम' कैसे कहे जग में कोई नहीं कंगाल ।।

—0—

3 निंराकार माया

निरंकार के तीन लोक में
भंजु तो किसको मैं भजू ।
तजुं तो किसको मैं तजुं
ना मैं भंजु ना ही मै तजुं ।
मेरे तो हैं साहिब प्यारे
साहिब ये सब तूं ही जान ।
निरंकार जगत और जीव प्यारे
तेरी ज्योत से ही हैं रचे ये सारे ।।

—0—

4 अंताकरण भंण्डार

तेरे अंदर अमृत की धारा – तेरे अंदर मौक्ष द्धारा ।
तेरे अंदर सात हैं सागर – तेरे अंदर बाईस लाख़ हैं तारें ।।
तेरे अंदर पंच तत्व पसारा – तेरे अंदर मन निंरकार का वासा ।
तेरे अंदर शिव विष्णू ब्रह्मा – तेरे अंदर आध शक़्ति निवासा ।।
तेरे अंदर तेतीस करोड़ देवी देवों का वासा – तेरे अंदर अठ चक्र वासा ।
तेरे अंदर है सुन्न विस्तारा – तेरे अंदर है ज्ञान भण्डारा ।।
तेरे अंदर अनंत जोत प्रकाशा – तेरे अंदर मन तरंग का सागर ।
तेरे अंदर विरह् तड़प की धारा – तेरे अंदर सत्तगुरू प्यारा ।।
तेरे अंदर प्रीत प्रेम की बहे धारा – तेरे अंदर सत्य पसारा ।
तेरे अंदर सुरति की बहे धारा – तेरे अंदर जीवन ज्योति पसारा ।।
तेरे अंदर शाश्वत की धारा – तेरे अंदर ही निज धाम सारा ।
तेरे अंदर निरालम्भ राम का वासा – तेरे अंदर हंसों का देसा ।।
तेरे अंदर अमर जोत समाई – तेरे अंदर है सत्तपुरूष समाया ।
तेरे अंदर सच्चे संत का वासा – वोहि है पूर्ण मौक्ष विधाता ।।

—0—

5 फूल और काँटे

फूल तो फूल हैं संग काँटे भी लगे त्रिशूल ।
तुम फूल बन जाओ काँटे भी बनेंगे फूल ।।
काँटे हाथी के दाँत नांहि काटने वाले हैं शूल ।
काँटे ही तो फूल उगाते है बिन काँटे ना उगे फूल ।।
दुख़ में मालिक दिखता है दुख में ही तो याद आता है ।
वह सुनता तेरी बातें सभी पर सहायक नहीं बन पाता है ।।
वह निर्मल है शांत है सत्त है दुख तो उसके अंग संग नांहि ।
वह सुख में हरदम रहता है पर ये बात तुम को तो पता नहीं ।।
दुख जाता है सुख आता है साहिब भी तो संग आता है ।
तुम उसको तो ध्यान ना देते वह बाहिर ही बैठा रहता है ।।
अब तुम बतलाओ कोन उसे भूल जाता है पर तेरी दोष देने की आदत है ।
तूं देख छोटे बच्चे समान वह सब सुनता–देखता पर ना कुछ कहता है ।।
अब तूं ही बतला दोषी कौन है हर बार तूं दोषी उसे ठहराता है ।
कुछ करना नांहि कुछ पाना नांहि बस अपने आप ही को मिटाना है ।।
कुछ भी ना तूं करता कर्ता वोहि है अंताकरण से अहंकार मिटाना है ।
जे तूं हंस के सहे सब कुछ तो जाकर उसी में ही समाना है ।।

–0–

6 तूं और मैं

तूं तूं तूं करता जा रे तुझ में रहे ना हूं ।
जे तूं मेरा मेरी छोड़ सके तीन लौक का राजा तूं ।
आती जाती स्वांसा है तुझको ये बतला रही ।
हंसा हूं हंसा हूं हंसां हूं आत्म नांहि बस हंसा हूं ।
पर हर पल तूं कह रहा ।
मैं हूं मैं हूं मैं हूं बस मैं हूं ।।

–0–

7 मोह माया से मुक्ति

दुख़ और सुख दो अंग हैं पाए ।
ईक जाए दूजा उलझाए ।।
कभी ना तुमको चैन मिल पाए ।
यही विधि संत चरण में जाएं ।।
सार सब्द की दात को पाएं ।
मन सहित विषय विकार मिटाएं ।।
दुख सुख धारणा को दूर भगाएं ।
सार सब्द में पूरा ध्यान लगाएं ।।
काम क्रोध मद् लौभ सहयोगी बनाओ ।
उल्टा श्वांस जब हो जाए एक उसमें ध्यान लगाओ ।।
पल ही पल अनहद झंकार में खो जाओ ।
घंटा शंख वीणा बांसुरी आदि धुन पर ध्यान लगाओ ।।
खुद को खो कर सुन्न में समा जाओ ।
पल ही पल में जोत ध्यान बन जाओ ।।
जब लग विरह ना उपझे ह्रद्य ना उपझे प्रेम ।
धर्म कर्म व्रत नेम सों कभी ना जागे प्रेम ।।
दृढ विशवास सार नाम जो ध्यावे सो हंसा सत्तलौक सिधावे ।
उस लौक से बहुरि ना आवे जन्म मरण से मुक्त हो जावे ।।

—0—

8 बंधन से मौक्ष की ओर

जैसे चंचल लहरें समुंद्र की – तैसा मन चंचलता का दौर ।
पल पल बदले चाल जैसे पानी – जिस में डालो वैसा धरे रूप ।
सार सब्द की दात बिन – मन माया सूं कोई ना उतरे पार ।
सार सब्द की दात है वह – जिस में सत्तपुरूष करते हैं वास ।
जो संत सत्तलौक है जाता – वो ही इस दात को साहिब सूं पाता ।
सत्तगुरू सूं दात साधक है पाता – सत्तगुरू का संग साधक है पाता ।
सार सब्द लिखा ना जाए पढ़ा ना जाए – निःक्षर विदेह सब्द ये प्यारा ।
सार सब्द ईक सुरति है – जो सुरति सूं आत्म चेतन है करती ।
जो है इस दात को पाता – उसकी आत्म चेतन हो हंसा है बनती ।
चेतन हंसा सार सुरति सूं – गुरू रूप साहिब संग निज घर है जाती ।।

—0—

9 कुण्झी रखवारा

बिन सत्तगुरू कोई कुण्झी ना पावे – कैसे खुले कुल्फ़ कवाड़ा ।
यह दान सत्तगुरू सूं मिलता – सुरत कमल का रखवारा ।
हाथ जोड़ विनती करें – तन मन का देवें दान ।
तन–धन सत्तगुरू वापिस करें – मन भेजें मान–सरोवर धाम ।
अब जीव शांत भयो – सुरति से जपें सार सब्द नाम ।
इंगला पिंगला सुष्मिण विनसे – उर्दमुखि़ करें स्वांस ।
त्रिकुटि महल में ध्यान लगाओ – सुरति से जोड़ें सार नाम ।
आज्ञा चक्र में खिड़की खुले – गरजे़ सर उपर अनहद नाद ।
अनहद धुन में ध्यान धरो – सुन्न समाधि जा लागे ।।

–0–

10 अभाव की महिमां

सुख दुख तो पलकों का खुलना बंद होना ।
यही तो इनका कमाल साहिब जी यही तो इनका कमाल ।।
जैसे सांसा अंदर लेना प्राण भी है संग साथ ।
बाहर छोड़ो तो भी न छूटे प्राण रहते साथ ।।
बिन दुख के कोई कैसे जाने सुख की महिमां महान ।
बिन काल के कोई कैसे जाने परम पुरूष जी महान ।।
दुख न होत जो इस जग अंदर कैसे करते फरियाद ।
दुर्गन्ध जे न होती जग में तो सुगन्ध की महिमां क्या थी ।।
स्त्री न होती इस जग अंदर पुरूष की महिमां क्या थी ।
अगर न होता अभाव जीवन में पूर्ती की महिमा क्या थी ।।
खा़रा न हो सागर का पानी झील चश्मों की महिमां क्या थी ।
अगर निरंकार दिन न देता तो रात की महिमां क्या थी ।।
जे न होती रात धरा पर तो दिन की महिमां क्या थी ।
जे कर जग में चोर न होता तो साधु की महिमां क्या थी ।।
जे न होता मन तेरे अंदर तो आत्म की महिमां क्या थी ।

जे न होती भुख प्यास तो कर्म की महिमां क्या थी ।।
जे न जग में माया जाल होता सत्संग की महिमां क्या थी ।
जे न होता नर्क सृष्टि में तो स्वर्ग की महिमां क्या थी ।।
जे न होता तन ये मेरा तो मन आत्म की महिमां क्या थी ।
जे न होता तीन पांच पच्चीस का पिंजरा तो सतगुरू की महिमां क्या थी ।।
जे न होते फूल जग में तो इत्र शब्द की महिमां क्या थी ।
जे न होता बुरा कोई जग में तो अच्छे की महिमां क्या थी ।।
जे जग में न होती गर्म ऋतु तो सर्दी की महिमां क्या थी ।
जे न करता कोई बुरे कर्म तो अच्छे कर्मों की महिमां क्या थी ।।
जे न होते त्रिदेव जगत में तो निरंकार की महिमां क्या थी ।
जे न आद्यशक्ति रचते परमपुरूष तो निरंकार की महिमां क्या थी ।।
तीन लौक जे न होते तो चोथे लौक की महिमां क्या थी ।
आत्म तीन लौक कैद न होती तो सच्चे संतों की महिमां क्या थी ।।
जे आत्म काल वश न होती तो मौक्ष की महिमां क्या थी ।
आत्म मन इन्द्री वश न होती तो मुक्ति की महिमां क्या थी ।।
जग में क्रोध लोभ मोह न होते तो निर्मल शांति की महिमां क्या थी ।
अगर 'कुछ होने' की महिमां ना होती तो 'न कुछ होने' की महिमां क्या थी
अगर शरीर में क्रोध न बनता तो प्रीत प्रेम की महिमां क्या थी
अगर जग में दुश्मन न होते तो मित्र की महिमां क्या थी ।।
अगर मृत देह को न जलाते तो राख़ की महिमां क्या थी ।
कचरा जो बुरा ना होता तो उसे जलाने की महिमां क्या थी ।।
निक्कमें निर्गुणे आलसी न होते तो गुणवानों की महिमां क्या थी
जे दुख दर्द जग में न होता तो सुख चैन की महिमां क्या थी
जे लघु प्रलय संसार न होती तो महांप्रलय की महिमां क्या थी
जे जग में मृत्यु न होती तो जीवन की महिमां क्या थी ।।
मरने का राज़ समझ ना आवे तो जीने के ढंग की महिमां क्या थी ।
नास्तिक जे इस जग में न होते तो प्रभु भजन की महिमां क्या थी ।।
आज्ञा चक्र से सुरत कमल हंसा न ले जाते तो सतगुरू की महिमां क्या थी ।
अगर आज्ञा चक्र गुरू दर्श न होता निजधाम की महिमां क्या थी ।।
जे बन्देया तूं राम भजन बिन मरेया तो तेरे जन्म की महिमां क्या है ।
जे बन्देया तूं मौक्ष ना पाया तो चौरासी बंधन की महिमां क्या थी ।।

—0—

11 जग सपना

जो जागे सो यूं कहत हैं – जग खुली आंख का सपना भात ।
आंख खुली पर लेती सपने – भूला सदा निज संग साथ ।।
खुली आंख सूं तार बेतार – जीना मरना सपने साथ ।
छूटा संग दश विष हैं – अब मन माया निज संग साथ ।।
तीर्थ व्रत में पड़कर – दश गुण भार भी मन साथ ।
तेरी मान बड़ाई मन कार्य है – उसी सूं टूटा साथ ।।
सपना पल पल आए और जाए – यह जीवन जाए बिन अर्थ ।
सपने अंदर सपना है रहता – यही मन माया तेरे साथ ।।
मान में हर पल सोवत रहता – सोवे तो भी मान मन साथ ।
सारा जग इसी धारा में बहता – सब सोए हैं ईक साथ ।।
अकड़ मान सूं चलते फिरते – कर्ता बनते निज आप ।
हर कोई दोष ओरन को देता – निज को न देखे आप ।।
निंदक को दूर न राखिए – दीजिए ताको आदर मान ।
वोही छुड़ावे अवगुण आपके – वही कसौटि मान ।।
सतगुरू घोबी शिष्य कापड़ा – साबुन सार नाम है साथ ।
सुरत सिला पर धोईए – मन माया बह जाये सब ईक साथ ।।
अब हंसा प्रेम निज रूप है – निज में निज समाए ।
हंसा प्रेम तरंग है – प्रेम में मिल प्रेम ही हो जाए ।।
प्रेम और रोशनी छान लो – फिर निखरेगा प्रेम ।
ये सब संतन सूं होत है – वोही तो जगाते प्रेम ।।

–0–

12 भाव की गति

कबीर मन तो एक है – भावें जहां लगाएं ।
भावें गुरू की भक्ति करें – भावें विषय कमाएं ।।
साधू भूखा भाव का – धन का भूखा नांहि ।
सांचा हुआ तो क्या हुआ – नाम न सांचा जाना ।।
सांचा होए सांचा मिले – सांचे मांहि समाए ।
सांचा श्राप न लागी – सांचे को काल न खाए ।।

सांचे को सांचा मिला – सांचे मांहि समाए ।
चलो चलो सब कोई कहैं – पहुंचा बिरला कोए ।।
एक कनक अरू कामिणी – दुरगम घाटी दोए ।
इनको तजना कठिन है – बिरला तजे कोए ।।
कहता हूं कहां जात हो – कहा जो मान हमार ।
जाका गला तुम काटी हो – सो फिर काटि तुम्हार ।।

–0–

13 निरंकार महांजाल से पार

निरंकार की जोत में धरो – तुम अपना ध्यान ।
निरंकार के दर्शण पाओ – उपमा जा की महान ।।
यहां पर रूक मत जाना – ये नहीं सच्चा मुकाम ।
सुरति को उपर सरकाओ – संत का धरो ध्यान ।।
पल ही पल संत प्रकटाएं – संग अपने तुम्हें ले जाएं ।
जा पहुंचे सुरत कमल में – सतगुरू के धाम ।
पल ही पल चरण कमलों पर – श्रद्धा से शीष निवा कर ।
संग साहिब के जा पहुंचें निजधाम ।।

–0–

14 दान भ्रम

निरंकार भी दान है देता – तीन लौक का वाली ।
गुरू ही जग में दान हैं देते – लेते लोग अनेक ।।
यह दान केवल माया जाल है – माया में ही रह जाते ।
स्वर्ग पित्रलौक सुन्न – सहस्त्रार में चार मुक्ति फल पाते ।।
कर्म फल में फंसे – पूर्ण मुक्ति से वंचित रह जाते ।
पूर्ण मुक्ति सत्तलौक है – हंसों का प्यारा निजधाम ।।
सार सब्द है नाम की कुण्झी – पूर्ण सतगुरू देवन हारा ।
सार सब्द है सुरत कमल – पूर्ण संत है रखवारा ।।
पूर्ण सत्तगुरू में साहिब हैं बसते – सत्तगुरू साहिबन रूप ।
बिन सत्तगुरू कोई मौक्ष ना पावे – चाहे भजो अनेकों रूप ।।

–0–

15 सम्पूर्ण राम रहस्य

निरंकार सत्ता के तीन राम ।
अति प्यारे हैं सभी नाम ।
एक राम दशरथ घर डोले ।
एक राम घर घर में बोले ।
एक राम का सग़ल पसारा ।
उसी से चलता जगत सारा ।
पर चौथे राम के हम हंस प्यारे ।
उसी लौक से हम आए हैं सारे ।।

–0–

16 अपूर्ण व सम्पूर्ण मुक़्ति

निरंकार और सत्तपुरूष में – बड़ा ही अंतर जान ।
निरंकार कर्म बन्धन उलजावें – सत्तपुरूष तुम्हें हंस बनावें ।।
निरंकार चार मुक़्ति दिलावें – सत्तपुरूष तुम्हें अमर बनावें ।
चार मुक़्तियों में कुछ समय बितावें – शुभ कर्मों का फ़ल पावें ।।
पित्रलोक स्वर्ग सुन्न शुद्ध ब्रह्म में रहकर – पुनः जगत में वापिस आवे ।
जो कोई पूर्ण सत्तगुरू सूं – सार सब्द की दात को पावे ।
सत्तलौक सत्तगुरू संग जावे – साहिब के दर्शन पावे ।
बोहरी जन्म मृत्यू के जाल से – वह पूर्ण छुट जावे ।।

–0–

17 सुबह से शाम

मानुष देह थी पाई – साहिब भजन को भाई ।
माया से जो प्रीत लगाई – भूला साहिब को भाई ।।
छल कपट से माया कमाई – हो गया अभिमान ।
संत साहिब सूं प्रीती लगाई – छूट गया ये मान ।।
संत तो जग से तर गए – ओरों को ले डूबा अभिमान ।
जो जन हैं संत से जुड़ गए – वो पहुंचे निजधाम ।।
दोनों कोटिन कर्म हैं करते – करते दोनों सुबह से शाम ।
संत तो ओरों को तारते – अभिमानी को ले डूबा मान ।।

–0–

18 निरंकार और सत्तपुरूष दात की महिमां

सुन्न महल में जो शब्द उठत हैं ।
वे शब्द सब बोल में आवें ।।
वेद ग्रन्थों में लिखत पढ़त हैं ।
जगत गुरू सबको शब्द ये देते ।।
तीन लौक काल जाल है ।
सब को जा भरमाए ।।
निरंकार ही को साहिब समझें ।
सारा जग भरमाए ।।
सार सब्द ईक सुरति है न्यारी ।
जो बोली और लिखी ना जावे ।।
सुरति सूं आत्म को दी है जाती ।
सत्तगुरू सूं कोई बिरला है पाता ।।
जो चीन्हे इस सार सब्द को ।
वो निजघर अमरलौक को जाता ।।
सार सब्द की दात को पाकर ।
आत्म तब हंसा बन कर ।।
अमरलौक निजधाम है जाता ।
बहुरि कभी गर्भ ना आता ।।

—0—

19 अनहद नाद

अनहद नाद उठत ह्रदय से – भंवर गुफ़ा बाजे धुन न्यारी ।
त्रिकुटि महल में जा समाए – सुन्न महल में दे झंकार प्यारी ।।
सुरत निरत मन पवन जब हों एक – खुद की सुद्ध है तब खो जाती रे ।
त्रिकुटि महल में होए उजियारा – आंख ना मूंदे कान को ना रूंदो रे ।।
आसन पद्म लगा कर बैठो – ध्यान करो सुश्मिण आगे त्रिकुटि रे ।
त्रिकुटि महल में ध्यान जमाए – सुनो ईक नाद झंकारी रे ।।
पहले पहल ये रिलमिल बाजे – अति धीमी और अति प्यारी रे ।
झीनी धुन में सुरति डालो – सुनो नाद भरी झंकारी रे ।।
घंटा शंख सारंगी बांसुरी वीणा – वर्षा की रिमझिम धुन अति प्यारी रे ।
अनहद नाद अति हैं सुखदाई – हर्ष उल्लास दे अति भारी रे ।।
अमृत बूंद झरे मुख मांहि – जो पीवत अति सुखकारी रे ।

जिस धुन पर तुम ध्यान धरो – सैल आसमानी करो अति प्यारी रे ।।
पपील चाल (हनुमान) सूं सुन्न लौकों की – सैल करो अति प्यारी रे ।
जहां चाहो जब चाहो तुम रूक सकते हो – सुरति जैसी तुम्हारी रे ।।
घंटियां नाद में जे सुरत लगाओ – सुनो 'ओइम' नाद की झंकारी रे ।
ऐसा लागे जैसे अमृत वर्षा हो – सुनत नाद यह न्यारी प्यारी रे ।।
जै सुरति धरो इस नाद पर – आठों पहर सर ऊपर सुनो ये प्यारी रे ।
इसी नाद से महासुन्न लौकों की – सैल करो तुम आसमानी रे ।।
मीन चाल से (देव चाल) करो सैल – महासुन्न की अति रमे खुमारी रे ।
ये नांहि नां है अंतिम पराकाष्ठा – ईस में भी मन रहता शामिल रे ।।
हमको जाना है सत्तलौक साहिब के – विहंगम चाल सूं अति प्यारी रे ।
निरंकार का सब बंधन छूटा – हंस रूप अब तुम पाओ रे ।।
सुरत सब्द सूं चेतन हो कर – सैल करो निजघर सत्तलौक की रे ।
अब तुम जाओ घर अपने को – तुम हंसा हो कुछ ना रहा संसारी रे ।।
साहिब सत्तगुरू रूप धर – तुझसे मिलने आवें रे ।
अब साहिब में समा, साहिब मिलन की बेला आई रे ।।

–0–

20 अंतर दृष्टि् विकार

हे स्वार्थी मानव – तुझे तो तन भी बुरे दिखते हैं ।
देवी–देवों संग तन नांही – वह भी तो दुख़ी ही रहते हैं ।।
देवी–देव भी तन पाने की – त्रीव ईच्छा जतलाते हैं ।
अब उनको तन तो – कभी भी ना मिल पाएगा ।।
हम को तो इसी तन मन में – जीवन भर अब रहना है ।
मन माया अंग – सुख और दुख को सहना है ।।
फूलों को काँटों संग भी – प्रीत से मिल कर रहना है ।
हंसी खुशी या ग़म हो – हम हंसों को सब सहना है ।।
सत्तपुरूष हर पल संग हमारे – सत्तगुरू रूप में रहते हैं ।
किसी बात का अब डर नांहि – जब संग साहिब जी रहते हैं ।।
तन मन तुम उनको दे डालो – वह पल में हंस बनाते हैं ।
निःअक्षर सार सब्द प्यारे की – दात भी वह संग लाते हैं ।।
इस दात को काल निरंझन – कुछ भी ना कर सकते हैं ।

इस सार दात में सदा – सत्तपुरूष जी ही रहते हैं ।।
जो पल पल हर पल – सदा ही तेरा रखवारा है ।
हम आत्म हंसों का निज – मूल रूप साहिब प्यारा है ।।
तब निर्विकल्प ध्यान सूं – सुरति सार सब्द में जब डालोगे ।
छः शरीरों से बाहर आ – सुरत कमल में सुरति संत चरण में डालोगे ।।
संत के पग़ तब चले जाएंगे – सत्तपुरूष की जोत में जा समाओगे ।
हंसा अब चेतन हो विहंगम चाल सूं – निजघर वापिस जाती है ।।
एक पल में करोड़ों मील चल हंसा – पल में निजधाम पहुंच जाती है ।
साहिब सूं मिल सौलहं सूरज की रोशनी – वह अपने संग पाती है।।
हंसा चाहे अपने या किसी और – शरीर में वापिस आ सकती है ।
यह सब बातें वह मूल सुरति सूं – चेतन हंसा याद रख पाती है।।
हंसा नाक द्वार से शरीर में प्रवेश कर – वापिस तन चेतन हो जाती है ।
शरीर छोड़ सुरति सूं हंसा – डेढ़ घंटे में सफ़र कर वापिस आ जाती है ।।
यह मुक्ति सहज मार्ग है – सुरति सूं करोड़ों मील हंसा पल में चली जावे ।
पहली बार अति कठिन है–दूसरी तीसरी बार पल में जा हंसों से मिल आवे।।
अब जाने में कुछ देरी ना लगती है – जब चाहे जा सकते हैं ।
बिन बादल जहां बिजरी चमके – बिन सूरज उजियारा है ।।
बिन पग़ जहां जाना है – बिन कन्ना सुनि जाना रे ।
बिन हत्थां सब करनी होए – बिन अखां दिसी जाना रे ।।
हम सब हंस प्यारों का – सत्तलौक मूल ठिकाना रे ।
गुरू रूप साहिब संग – हम हंसों को सत्तलौक जाना रे ।।
कभी कभी कुछ – खान पान को मिल जाता है ।
जिस में डालो और बस रक्खो – पल ही पल गुम हो जाता है ।।
संत कबीर जी देखे – देखे संत रविदास जी प्यारे ।
बाबा नानक जी देखे – देखी संत मीरां जी न्यारी ।।
बार बार साहिब जी – मेरे सत्तगुरू रूप में देखे ।
बलिहारी सत्तगुरू पे मैं – जिसमें परमपुरूष हैं रहते ।।
मैं अति हर्षाया जो देखा – अति सुन्दर अति प्यारा ।
अति विशाल बड़ा सर उपर – बाकी सारा श्वेत जोत रूप प्यारा ।।
अब भी जाता हूं – और संसार में उनकी ।
सार सब्द की दात को – बांटता रहता हूं ।।
पहली बार याद है – ईक बात जो कही थी मुझको ।
किसी को भी बुरा मत – कहना तुम जग में ।।
फ़िर दूसरी बार – जो बात कही थी मुझको ।
जग में किसी से भी – बन्दगी ना करवाना ।।

सुरति सूं परमपुरूष सुनते – और हैं कहतें ।
सब ले लो रे दात साहिब की – भव से तारनहारी ।।
दास हूं साहिब का दासा पन – मुझ को अति है भाए ।
दास हूं मैं साहिब प्यारा – सोहि 'वे नाम दास' कहाँऊ ।।
परमपुरूष साहिब प्यारे की – महिमां तुम्हें बताँऊ ।
'वे नाम' कहत है – सुनो रे दुनियां वालो ।।
जो सत्तपुरूष संग – निजधाम जा के आएगा ।
वोही संत्त सत्तगुरू प्यारा – साहिब महिमां गाएगा ।।
सत्तपुरूष ही सत्तलौक है – सब माया छोड़ सत्तगुरू शरण में आ ।
सब आत्मांओं को हंस बन कर – निज सत्तलौक ही है जाना ।।
सत्तलौक है हंस प्यारों का – सत्तलौक ही है सब घट व्यापक ।
त्रिलोकी व सुन्न सहित – हर सूं ही है यह सत्तलौक प्यारा ।।
जग अण्ड–ब्राह्मण्ड ये सारा – यह सब भी हैं सत्तलौक पसारा ।
ना कहीं जाना ना कहीं आना – अन्दर बाहर ही है सत्तलौक पसारा ।।
यहीं पर ही बैठ ध्यान लगाना – जहां सुरति वहां सत्तलौक ठिकाना ।
जाग्रत होते ही सारे का सारा – जित देखो तित सत्तलौक प्यारा ।।

–0–

21 देह गुरू

जब गुरू किया है देह का, सत्तगुरू चीन्हा नांहि ।
भवसाग़र पड़ा काल के, फिर फिर गोता खाही ।।

काल गुरू के संग को, तजत ना कीजे बार ।
महिमां ना पावं सार सब्द की, आवे जावे संसार ।।

सत्तगुरू कीजिए परख़ के, सत्त सब्द की ख़ान ।
बिन जाने गुरू जो करे, छूटे ना काल का बाण ।।

भेष देख मन भरमाये, सार सब्द की परख़ महान ।
बिन परख़ कैसे होत, कंचन की पहचान ।।

–0–

22 निरंकार व सत्तलौक का भेद

''आठ अटाह की अटारी मज़ारा ।
तहां देखा पुरूष न्यारा ।।

निरंकार, आकार ना ज्योति ।
ना वहां वेद विचारा ।।

औंकार कर्ता न कोई ।
नांहि तहां काल पसारा ।।

ताको साहिब सब संत पुकारे ।
बाकी पाखंड है सारा ।।

—0—

23 झूठा है संसार

जो रक्षक तहां चीन्हत नांहि ।
जो भक्षक तहां ध्यान लगाई ।।

मानुष सर्गुण निर्गुण में अटक गए हैं ।
चल हंसा तूं देस हमारे ।।

साहिब देत सब को पुकार ।
सत्त तो केवल अमर लौक हैं ।।

काल जाल विस्तार।
झूठा है सब संसार ।।

—0—

24 अमर वाणी

धन्य कबीर परम गुण ज्ञानी – अमर भेद वांची जिन वाणी ।
सब के कर्म धर्म को काटा – काल को छोड़ा मूल सूं बांधा ।
धन्य है उनकी वाणी – उनकी महिमां कही ना जाए ।
उनकी महिमां लिखी ना जाए – उनकी चाल अनोखी अनोखी वाणी ।
उनकी वाणी सूं मोती उपझें – उनकी वाणी सूं अमृत बरसे ।
कैसी मीठी है ये वाणी – मरने का जिन राज़ समझायो ।
संग रहने का प्यार सिखायो – राज है तेरी वाणी ।
सर्गुण निर्गुण भक्ति का राज़ बताया – निरंकार महिमां गुण भी गाया ।
वाह क्या है तेरी वाणी – अनहद धुणों का भेद समझाया ।
उनकी महिमां का गुण है गाया – पढ़ो और जानो उनकी वाणी ।
देवी देवों का पूर्ण राज़ बताया – आद शक्ति की महिमां को बतलाया ।
समय निकालो ओर पढ़ो वाणी – कहां से आए और कहां है जाना ।
सृष्टि् के कण कण को है जाना – ज्ञान भरी जानो उनकी वाणी ।
तीन लौक प्रलय तुम मानो – चौथा अमर लौक तुम जानो ।
पढ़ो और जानो अमर लौक कहानी – अमरलौक परमपुरूष निजधाम ।
निजघर है तेरा आत्म प्यारे – पढ़ो और जानो उनकी वाणी ।
पांचवा शब्द पुत्र निरंकार – जिस ने तीन लौक बसाए ।
जहां तुम बंधन में पड़े हो आए – पढ़ो और जानो अपनी कहानी ।
सत्तपुरूष के हम सब हंसा – सुन लो ये सभी जीव प्राणी ।
समझो और जानो अपनी कहानी – आत्म संग वही हैं रहते ।
संत पल पल करें बखानी – तुम जिसे अपना जानो वही तुझे भरमाए ।
सत्य सुरति की महिमा है गाई – जो हर प्राणी में है समाई ।
पर तूं ना माने सच्ची वाणी – सुरति तेरे अंदर ही है रहती ।
निरति स्वांसा संग है आती –जो स्वांसा की डौर बनाती ।
धन्य कबीर परमगुण ज्ञानी – अमर भेद वाची जिन वाणी ।।

–0–

25 निरंकार से आगे का भेद

निरंकार के आगे का भेद हमारा ।
जानेगा कोई जानन हारा रे ।।

केवल यह भेद जानेगा वोही ।
जा का सत्तगुरू पूर्ण होई रे ।।

इन चार मुक्तियों से कोई आगे ना आवे ।
चाहे जीवन भर ध्यान में जाए रे ।।

जीवड़ा उठ और उठकर जाग रे ।
जाके संग से बिछड़ा वोही संग लाग रे ।।

हंसा तूं तो आनंद मांहि था ।
झीनी भीनी थी तेरी चाल रे ।।

रंग बरंग में तूं खो गया ।
भूला निजघर अमरद्वार रे ।।

सहज मार्ग से निजधाम को पाओ ।
सुरत सब्द में ध्यान लगाओ रे ।।

कोई कोई बिरला पहुंचा अमर लौक में ।
धर माया सब को खींच वापिस ले आई रे ।।

ये सिलसिली गैल पपील ताहां ना पांव धरे ।
पंडित जन थोथे ज्ञान से जाना चाहे रे ।।

—0—

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।

(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी' को प्रदत्त की गई)

3 सत्तगुरू/सत्तपुरूष महिमां व सत्तलौक बख़ान

1 सच्चा दानी

दानी तो केवल सतगुरू हैं – वही तो देते दान ।
सतगुरू दीन दयाल जी – दान दे जग को करते निहाल ।।
जो साधक दान है पाता – निजघर का वह पता है पाता ।
मन को तज अमृत है पाता – उल्टे जाप का राज़ है पाता ।।
ईंगला पिंगला सुशमिना विनसे – उड़दमुखी करे श्वास ।
त्रिकुटि महल में ध्यान लगांए – अनहद नाद गरजे सर आन।।
आज्ञा चक्र की खिड़की खुले – सुरति से जोड़े सार नाम ।
उसी में धरो ध्यान – सतगुरू की महिमां है महान ।।
उल्टा जाप जपे जग मांहि – जा पहुंचे हंसा निजधाम ।
बिन सतगुरू कोई कुण्झी न पावे – कैसे खुले निजधाम ।।
यह दान पूर्ण सतगुरू से मिलता – सुरत कमल के हैं रखवारे ।
सत्तगुरू चरणों में शीश धरें – जा पहुचो निजधाम द्वारे ।।
हाथ जोड़ विनति करें – और तन मन देवें गुरू को दान ।
तन न सतगुरू वापिस करें – मन को भेजें मान सरोवर धाम ।।
सत्तगुरू की कृपा ऐसी बरसी – छूटा मन का धाम ।
अब जीव शांत भयो – सुरति से जपें सार सब्द ज्ञान नाम ।।

–0–

2 अनमोल दात

जो अमृत सुर नर मुणि जन खोजत ।
सो संतन चरण में पाओ ।।
यह दात मिली सत्तगुरू कृपा कीनी ।
कोई कीमत ना इसकी लगाओ ।।
सार सब्द है अमर ज्योत ।
जो सुरत सब्द से अन्दर जागे ।।
इस सुरति पर ध्यान धरो तुम ।
पल छिन भक्ति अन्दर जागे ।।

–0–

3 सार रहस्य

सार सब्द सत्तपुरूष का वासा ।
सार पारस सुरति संतन पासा ।।
सत्तगुरू सूं साधक है पाता ।
जो पावे वह निजधाम है जाता ।।
जन्म मरन से वो बच जाता ।
फ़िर ना गर्भ जून में आता ।।
अपने निजघर बेग़मपुर है जाता ।
साहिब संग आनंद को पाता ।।

—0—

4 मौक्ष दात

जिस दात की बात करूं, वह 'वे नाम' के पास ।
तीन लौक में ना मिले, कहूं 'मैं' सच्ची बात ।।

जब वह दात पास हो तो, मन छोड़े आत्म साथ ।
अंदर बाहर सब खाली हो, केवल सच्ची दात ।।

भय और संशय हैं बह जाते, केवल सुरति साथ ।
पूर्ण सुरक्षा पा लेता साधक, मूल सब्द जब साथ ।।

आशा तृष्णा बह जाती सब, कल और कल का साथ ।
इसी पल जीना आ गया अब, सुरति का संग साथ ।।

विदेह सब्द कहां से आया, सत्तपुरूष महिमां साथ ।
'वे नाम' को दात मिली, जब पहुंचा अमरपुर साहिबन साथ ।।,

आत्म सूं हंसा करें, विहंगम चाल सूं ले जाऐं साथ ।
अब पूर्ण मौक्ष को पा लिया, जन्म मरण का छूटा साथ ।।

—0—

5 प्रेम रहस्य

प्रेम जगावे नींद से – प्रेम छुडावे काल का धाम ।
प्रेम से भक्ति उपझे – प्रेम से पावें निजधाम ।।
प्रेम मिलावे पीव से – प्रेम की राह अति कठिन है ।
जो कोई साहसी – पग धरे इस ओर ।।
जब मिलते है कांटे – बनते है शूल–त्रिशूल ।
जब कांटे फूल उगाते हैं – तब मिलता है कफूर ।।
जो कोई साहसी तज मोह माया – बड़े साहिब की ओर ।
उसी को सत्तगुरू का प्रेम है मिलता – बड़े प्रेम चहुं ओर ।।

–0–

6 आस्था

आस्था ही है प्रेम – आस्था है विरह ।
आस्था ही तो तुम्हें जगावे ।।
आस्था तेरे मन के अंदर है जात ।
जगावे तुझे और साहिब से आ मिलावे ।।
मेरा प्यार जो मुझे तुम से है बांधता ।
शब्द बोल में ना कहा जावे ।।
मैं हर पल ही हूं तुझकी ।
कोई और मुझे नज़र ना आवे ।।
मेरा प्यार है कमल के फूल जैसा ।
जो कीचर से भी उभर के आवे ।।
'मैं' महल में हूक है उठती ।
वज्र की चोट ही आन जगावे ।।
मेरे अंदर अब कुछ भी नांही ।
आत्म जोत तुम्हारी ओर ही खिंची जावे ।।
मैं हर दम तुम्हें ही निहारूं जैसे ।
चाँद चकौर की दृश्टि् से ना जावे ।।
यही तो है आस्था विशवास की प्यास ।
साहिब आप आवे और प्यास बुझावे ।।
बिन पिए कैसे जानोगे ।
किस की है प्यास पीते ही पता लग जावे ।।
साहिब आए हैं या नांहि ।

इस की चिंता तुम ना करो ।।
बच्चा जग में आता है पता नांहि ।
कौन कहता है तूं चिंता ना करो ।।
भूख लगी तो रो है पड़ता ।
साहिब सुरति सूं सब कह पावे ।।
मां के स्तन को मूंह में डाल कर ।
कोई कहता है रोना बंद कर और रोना बंद हो जावे ।।
भूख प्यास मिटी और तृप्ति हुई ।
सुरति सूं कोई कहता और पीना बंद हो जावे ।।
जब प्यास ही भूख बन जावे ।
रेगिस्तान से भी नीर खोजा जावे ।।
आस्था प्रीत तड़प साहिब ख़ोजन की हो ।
परमपुरूष खुद चल सत्तगुरू से दे मिलावे ।।

—0—

7 जीते जी मरना

जीते तो हैं वो ही जो ।
मरने की कला जान लेते हैं जो ।।
मरने की कला आवे जिन को ।
जीने की राह सवार देते हैं वो ।।
जिसे मरना जीना आ गया ।
संयमिक जीवन वो पा गया ।।
संयमिक जीवन आत्म को हंसा करे ।
वो मौक्ष पद को जीते जी ही पा गया ।।
तभी कहें अंदर सफ़ा बाहर सफ़ा ।
जिसे सफ़ा करना आ गया वै सब कुछ पा गया ।।
अब साहिब ही हैं अंग संग तेरे ।
फ़िर मरना व जीना सब खो गया ।।
अब पाने को क्या है बचा ।
जब बूंद ने साग़र ही पा लिया ।।
अब सिंधु बिंदु मिल एक हुए ।
प्रेम ही प्रेम को प्रेम सूं पा गया ।।
अब प्रेमी गया प्रेसी गयी ।
बस प्रेम ही प्रेम केवल रह गया ।।

ईसी को अब तुम जान लो ।
है जीने में मरना पा लिया ।।
मरने की कला जब आ गयी ।
तेरा जीवन सार्थक हो गया ।।
प्रेम परम निशानी मोत की ।
जब तन मन तूं अपना खो गया ।।
तेरी हौमा मिटे तो तूं मिटे ।
ईब साहिब को तूं पा गया ।।
जब तक है तूं तो प्रेम नांहि ।
तूं मिटे तो प्रेम ही प्रेम रह गया ।।
दीपक गया और बाती गई ।
जोत ही जोत में समा गई ।।
आत्म सुरति परम आत्म में समा गई ।
जीने में मरना और मरने में जीना आ गया ।।

—0—

8 साहिब सर्वत्र

साहिबन के दरबार में ।
केवल भक्ति प्रेम प्यार ।।
समर्पण भक्ति प्यार सूं ।
साहिब रजा़ में हूं राज़ी ।।
जब सुख हों तो साहिब भजाई ।
साहिब आनंदमय ख़ुशी में होत सुनाई ।।
साहिब सत्तपुरूष तो पूर्ण परमानंद हैं ।
जो साहिब सूं मिले आनंदमयी हो जाई ।।
जब साहिब में साधक रम गया ।
स्वर्ग–नर्क–सत्तलौक में कोई अंतर ना पाई ।।

—0—

9 प्रेम की माला

यह मिलाप है प्रेम का ।
अब प्रेम की माला बन गई ।।
अब टूटन का डर नांहि ।
जब बूंद समुंद में समा गई ।।
अब प्रेम ही प्रेम सब सूं छा गया ।
जब पूरा साग़र बूंद में समा गया ।।
सिंधु बूंद जब एक हो गये ।
अब मृत्यू ही जीवन हो गया ।।
यह प्रेम तो है ईक तेज कट्ार की धार ।
जो मन को तुझसे छूड़ाने का आधार ।।
आशा तृष्णा तुम तज डालो ।
सार सब्द की सुरति सूं ।।
अतीत की यादें भविष्य के सपने ।
माया चक्की के हैं दो पाट ।।
पिघला दो तुम इसे सार सुरति सूं ।
मन माया के हैं दो ये पाट ।।
अहंकार तजो जो है आवागमण बंधन ।
हौमा जला कर राख करो तो कटे प्रालब्ध बंधन ।।
अब तुम केवल ईक हंसा हो ।
आत्म चेतन हो सुरति सूं ।।
अब तो जीते जी ही मरना हो गया ।
अपना कुछ ना रहा सब साहिबमय हो गया ।।
सत्तगुरू दात बिन तड़प विरह प्रेम ना उपझे ।
तन मन जल धारा बने ईस प्रेम सुरति सूं ।।

—0—

10 सुरति पसार

सुरति का है खेल ये सारा ।
सुरति का है सग़ल पसारा ।।
सुरति बिन कुछ नांहि न्यारा ।
सुरति फ़ंसी संसार में तां से पड़ गया दूर ।।
सुरति सभांल कर एक करो ।
पल में साहिब प्रकटायो ।।

—0—

11 परम सुरति चाहत

हम सब उस परम को पाना चाहते हैं ।
जिसे पाने पर कुछ शेष ना रहता ।।
वही तो हमारी सुरति का स्वामी ।
जो हमारी सुरति में ही रमा रहता है ।।
सौलह सूर्य की श्वेत—रूपी रोशनी देता ।
संग में हंस विचरते हैं रहते ।।
पग पग साथ और आदेश मिलता ।
कैसे जग को सम्बोधित है करना ।।
संत कबीर जी, रविदास जी, नानक जी व मीरा जी ।
सत्तपुरूष सत्तगुरू रूप में ध्यान बैठते चले आते जी ।।
रामकृष्ण भी मिलने को हर्ष से आते ।
दर्शन करते और दर्शन दे जाते ।।
सार नाम की दात पाते ही आते ।
ऋषि—मुणि जिन्होंने काया छोड़ी रे ।।
प्रातः सुबह तीन बजे हैं आते रहते ।
सार सब्द की मांग हैं करते ।।
र्स्वग लौक से जो भी आया मैने उनको नाम दिया ।
छः मास तक ध्यान कर सभी ने है निजधाम को पाया ।।

मेरे पित्र भी दीक्षा लेने आए ।
पल में पाया भेद दात का सारा ।।
उनको भी मैने दीक्षा दीनी ।
अति आनंदित वह आए और दात को पाए ।।
अपने समय की वेष भूषा में ।
प्रातः तीन बजे आते और दीक्षा को पाते ।।
जो तुम को है अच्छा लगता ।
उस दात को तुम पल छिन पा लो रे ।।
आत्म से परमपुरूष को पा लो ।
मानव जन्म अति अनमोल रे ।।
करोड़ों जन्मों से बिछड़े साहिब सूं ।
अब का जन्म साहिब के लेखे कर दो रे ।।

—0—

12 सत्तलौक किवाड़

दूर समुंद पे जा जे गुरू बसें ।
निज सुरति उनमें दे पटाए रे ।।
सुरति में चढ़ असवार हो ।
पल छिन आवे छिन जावे रे ।।
सुरति का है खेल सब सारा ।
सुरति स्थिर कर तो पावे सृजनहारा रे ।।
सुरति सूं रचयो संसार ये सारा ।
सुरति सूं कुछ नांहि है न्यारा रे ।।
तेरा तो बस एक ही है काम ।
सुरति सूं हर समय सत्तगुरू का धरो ध्यान रे ।।
सुरति भटक जाए तो है बिगाड़ ।
तां कभी ना खुल पाएं सत्तलौक किवाड़ रे ।।
लख चौरासी जन्म जीव भटका खाए ।
तां कयामत तक वह कष्ट उठाए रे ।।

—0—

13 सब्द जहाज

सुरत जहाज वह सब्द है ।
सार सब्द सोहे ही जान ।।
सब सब्दों का ईक सब्द ।
सब का मूल कारण जान ।।
तीन लौक से पार सब्द ।
महिमां जाकि अति महान ।।
जो डालो पूर्ण ध्यान में ।
पल में संग ही साहिब जान ।।
बोल–विचार से पार है ।
साहिब का रूप ही जान ।।
पल में तुझको लेकर ।
ये जा पहुंचे निजधाम ।।

–0–

14 सार सूं मौक्ष

परमहंस 'वे नाम जी' दीन दयाल, सबको करें निहाल ।
सार नाम की दात को बांटें, जो काटे चौरासी जाल ।।
बिन सार नाम की दात को पाए, कटे ना चौरासी जाल ।
कोई कोई बिरला जन ही पाता, जो पात होत निहाल ।।
सार नाम का मोल ना तोल, यह तो है अनमोल ।
जो सुरति सूं सार रस पीवे, वो ही जाने मोल ।।
सार सब्द सत्तलौक सूं आया, जिसमें साहिबन वास ।
पूर्ण सत्तगुरू सूं ही मिलता, यह साहिबन प्रसाद ।।
हे जग जीवो सत्तगुरू शरणी आओ, पाओ पूर्ण दात ।
अब की बार जो छूट गये, फिर भटको चौरासी द्वार ।।
कोई कोई बिरला दात को पावे, जिसके पूर्ण भाग ।
सुरति सूं जो दात को ध्यावे, साहिब को पावे साथ ।।
दात में साहिबन वास हैं, सत्तगुरू भी हैं संग साथ ।
दर्शन दें सत्तगुरू रूप में, लें चलें संग मौक्ष द्वार ।।

–0–

15 सार महिमां

नांहि सार नाम बिन कोई पड़ाव ।
नहीं सार नाम बिन कोई ठांव ।।
नांहि सार नाम बिन पार उतारा ।
नांहि सार नाम बिन और सहारा ।।
नांहि सार नाम बिन कटे क्लैशा ।
नांहि सार नाम बिन मिटे अंदेशा ।।
नांहि सार नाम बिन सुझे कोई काम ।
नांहि सार नाम बिन दूजा कोई काम ।।
नांहि सार नाम बिन पाऊँ मैं चैन ।
नांहि सार नाम बिन लागे ध्यान ।।
नांहि सार नाम बिन कुछ और तुम्हारा ।
नांहि सार नाम बिन कुछ और सहारा ।।
नांहि सार नाम बिन मन के पारा ।
नांहि सार नाम बिन छूटे यम द्वारा ।।
नांहि सार नाम बिन काल से पारा ।
नांहि सार नाम बिन अमर द्वारा ।।
नांहि सार नाम बिन साहिब दीदार ।
नांहि सार नाम बिन मिले मौक्ष द्वार ।।

—0—

16 सार सब्द मुक़्ति प्रदाना

संतन सेव करे जे कोई — परोपकार में सुरति देई ।
अंदर बाहर एको सोहि — ऐसी अवस्था प्रेम विरह से होई ।।
जब सूं यह विधि है आई — प्राण सुन्न गगन में जा समाई ।
पर पूर्ण ज्ञान बिना कभी ना — ऐसी अवस्था पावे कोई ।।
मुक्कर भिम्भ देखे ना कोई — संत्त कृपा बिन ज्ञान पावे ना कोई ।
सत्तगुरू पूर्ण को पाई के — पाले सार सब्द का ज्ञान ।।
सांस सांस पर सार सब्द — सुरति सूं सब्द पर धरो ध्यान ।
सुरति निरति मन पवन जब एक हों — सुश्मिन द्वार खुल जाए ।।

अब उल्टा हो चले जब स्वांसा – सारा शरीर सुन्न होता जाए ।
मृतक शरीर सब हो रहा – आत्म हंसा पहुंचे सुरत कमल के धाम ।।
सत्तगुरू रूप साहिब धर के – संग में ले पहुंचें गुरूधाम ।
शीश धरो गुरू चरणों पर – हंसा चले अब निजधाम ।।
आशा तृष्णा मन सब जात है – अब सार सब्द में ही रहे ध्यान ।
मन बुद्धि चित जब एक हों – आत्म चेतन हो गई सब्द में रहे ध्यान ।।
ज्ञान से छूटें सभी माया कर्म – कर्म जब छूटें मुक़्ति उपझाए ।
सार सब्द बिन मन निर्मल ना होई – चाहे कितना ही ध्यान लगाई ।।
सार सब्द है मुक़्ति प्रधाना – बिन सार सब्द सब कर्म प्रधाना ।
जब तक कर्म ना छूटे – तीन लौक तब तक ना छूटें ।।
जब तक तीन लौक ना छूटें – तब तक आवागमण ना छूटे ।
जब तक आवागमण ना छूटे – प्रलय काल की अहोरात्री ना छूटे ।।
बस तेरा मान अभिमान ना छूटे – काल का जाल कभी ना छूटे ।
मान अभिमान तुम तज डालो – तभी छूटे काल का सब झंझाल ।।
सत्तगुरू से सार सब्द को पाकर – काल कटे पाओ पद निर्वाण ।
सार सब्द सत्तपुरूष का वासा – जो निजधाम की राह दिखाता ।।
निस दिन जीते जी जो हैं मरते – वोहि प्रेम का राज़ हैं पाते ।
सच्चे साधक प्रेम सीढ़ी सूं – निजघर सत्तलौक है जाते ।।
खाली होना आता नहीं जिसको –आशा तृष्णा वापिस ले आती उसको।
जे तूं सार नाम से जला दें अपनी वृत्तियां – छूट जाएं सब विपत्तियां।।
बिन सत्तगुरू इस मार्ग में – सहायक हो ना कोए ।
निजधाम पहुंचे वोहि जिसका सत्तगुरू पूर्ण होई ।।

–0–

17 जग सपना सार

गुरू द्वार है केवल एक की ओर जाना ।
गुरू द्वार आना है एक को ही पाना ।।
मन मंदिर में एक को ही बिठाना ।
पर हम्हें इन दोनों से पार है जाना ।।
उसके पार ही ईक में ईक हो जाना ।
सच्चे सतगुरू बिन न हो निज घर जाना ।।
जीवन का मात्र लक्ष्य है सत्तगुरू पाना ।
जन्म मरण से मुक्त हो निजधाम है जाना ।।
बिन सत्तगुरू ना हो भवजल पारा ।
गुरू चरणों में मिले मुक़्ति मौक्ष द्वारा ।।

–0–

18 सार सब्द सर्वोपरि

जागत जागत अब मन जागा ।
जब झूठा लगा सब संसारा ।।

मन सहायक बने सुरति का ।
जब सार सब्द हो संगा ।।

बिन सार सब्द मन ना जागे ।
चाहे अनेकों करो उपाए ।।

सार सब्द बिन सारा जग अंधा ।
सब्द बिन जीने मरने का छूटे ना फंदा ।।

सब्द ही सूरती सब्द ही मूरती ।
सब्द बिन मन नां हो चंगा ।।

सब्द भेद संतन सूं पाओ ।
सब्द सूं ही सुरति में जा समाओ ।।

सब्द कर्म बंधन को काटे ।
सब्द सोए जीवों को जगाए ।।

सार सब्द निज मूल सब्द है ।
बाकी सब को देयो बहाए ।।

सार सब्द सत्तपुरूष का वासा ।
सिमर सिमर छूटे मन वासा ।।

सार सब्द बिन सब थौथा ज्ञान ।
सार सब्द बिन रहे माया ही में ध्यान ।।

सार सब्द है निज औषधि ।
जो चाखे सो भवजल पार ।।

सार सब्द बिन मत भजो रे कोई नाम ।
'वे नाम' करे सत्त का बख़ान ।।

—0—

19 सार सब्द महिमां

पुर्ण संत से सार सब्द को पाओ ।
पल में मन इन्द्रियों को शांत बनाओ ।।
सारी शक्ति आत्मा में वापिस ले जाओ ।
देखते देखते शांत निर्मल हो जाओ ।।
सार सब्द को सुरति–निरति में डालो ।
स्वांसा अपनी को उरदमुखि़ बनाओ ।।
सारी देह को सुन्न बनाओ ।
पल ही पल में आत्म तत्व में जाओ ।।
आत्म तत्व (हंसा) बिन पग़ चले सुने बिन काना ।
बिन मुख बैन करे बिन हत्थां सब करी जाना ।।
पल ही पल निजधाम को जाओ ।
सत्तपुरूष के दर्शन पाओ ।।

—0—

20 सत्तगुरू प्रीति : 'संत वे नाम' कहत है :—

सत्तगुरू मेरे सत्तपुरूष रूप हैं – जिन की महिमां अपरम्पार है ।
उनकी आँखे़ सत्तपुरूष की आखें – उनकी आँखों में दृष्टि डाल रे ।।
उनकी चाल में सत्तपुरूष हैं रमते – चरणों में सर को डाल रे ।
उनके चेहरे पे सत्तपुरूष नूर है – चेहरे पे दृष्टि डाल रे ।।
उनके सत्संग में सुरति निरति बहती – मन पवन को एक कर डाल रे ।
बिन मांगे बिन होले डोले – पल में पहुँचोगे निजधाम रे ।।
जे ये भेद तूं जान ले – पल में जाए निजघर रे ।
आठ पहर सत्तगुरू निरख़ते रहिए – जैसे चाँद चकौर रे ।।
सुरति इक पल भी टरत नांहि – जैसे पतँगा की दीपक लौ से रे ।
सत्तगुरू साधक जब ईक मिक हो गए – सत्तपुरूष ही आ समाते रे ।।

—0—

21 सहज भक्ति पड़ाव

साधक की चाल अति है प्यारी ।
चलत प्यारी चाल अति विखम है घाटी ।
तजुं मोह अंहकार तजुं तृष्णा अति कठिन है धार ।
खट्टियों तीखा बलहूं निक्का प्रीय मार्ग राखो पत्थर अपनी छाती ।
पूर्ण संत बिन ये मार्ग कठिन है संत संग लागें फूल प्रभाति ।
संत संग जा पहुंचे अष्ट्म चक्र पावे साहिब विरमी घाटी ।।

—0—

22 सतगुरू की वेदना

मानव जन्म जो तुम्हें मिला है, इसको ना गंवाना ।
यह समय जो बीत गया तो फिर पैसी पछताना ।।
आओ मेरे प्यारो हंसों पा लो सार सब्द पैमाना ।
मेरा सतगुरू देवे दात, सार सब्द का पालो भेद पुराना ।।
यह समय जो बीत गया तो फिर पैसी पछताना ।
अब की बार भूल गए तो, कभी न मिले ठिकाना ।।
ऐसे संत सदियों में आते जिनका नांहि घर न ठिकाना ।
यह समय जो बीत गया तो फिर पैसी पछताना ।।
जो मिल जाए खा लेते हैं, पहनें वस्त्र, प्रेम पुराना ।
उनके वस्त्र पर मत जाओ, साहिब दे तरंग पुराना ।।
यह समय जो बीत गया तो फिर पैसी पछताना ।
रात दिन में सेव कमावें, कभी ना पाते ठौर ठिकाना ।।
उन की महिमा मैं क्या गाऊं, जिन दिया चरण ठिकाना ।
यह समय जो बीत गया तो फिर पैसी पछताना ।।
'वे नाम' अब क्या गाए, जो है पागल दिवाना ।
सुरति बोलें सुरति सोचें, सुरति में ही रम जाना ।।
यह समय जो बीत गया तो फिर पैसी पछताना ।
यह समय जो बीत गया तो फिर पैसी पछताना ।।

—0—

23 सतगुरू प्यारे

मेरे सत्तगुरू परमहंस प्यारे ।
मुझे हैं प्राणों से भी प्यारे ।।
जिन के वचन हैं अति न्यारे ।
उनकी वाणी अमृत की धारा ।।
उनकी चाल में रहते परमपुरूष प्यारे ।
वह साहिब में रहते साहिब रूप हैं प्यारे ।।

—0—

24 सुरति सूं एक

गुरू शिष्य और साहिब, मिल कीन्हीं भक्ति विवेक ।
तीनों सुरति सूं मिले, हों सुरति सूं मिल एक ।।
सुरति निरति जब मिले, हंसा का बनता रूप ।
मन माया अब शांत हुई, सार सुरति सूं बदला रूप ।।
मन में सुरति वास है, सांसा भी सुरति रूप ।
सुरति निरति के मेल सूं, मन का छूटा साथ ।।
अब आत्म हंसा हो गई, सत्तगुरू की सुरति संग साथ ।
सत्तगुरू में साहिबन वास है, तेरा भी साहिबन संग साथ ।।

—0—

25 पूर्ण संत्त महिमां

गुरू चरणन निरखते रहो – जा पहुंचो निजधाम रे ।
संत्त सब्द मान सब लीजे – मन में कुछ शंका मत कीजे रे ।।
संत्त बड़े साहिब परमपुरूष से – तूं खुद को ले समझाए रे ।
समुंद प्यास ना भुजा सके – बादल ही प्यास भुजाए रे ।।
समुंद का पानी पानी नहीं – पर पानी का सा दिखता रे ।
पीने से प्यास चुकती नांही बड़ती – और पीने से मर भी सकता रे ।।
सत्तपुरूष आप को आप नहीं मिल सकता – सत्तगुरू कृपा सूं मिल पाए रे ।
जैसे बादल मेघ हैं लाते – नदियां नाले पानी से हैं भर जाते रे ।।
उस पानी से प्यास भुज है सकती – जो मेघ सूं है भरसता रे ।
संत तो बादल समान हैं जिनमें – परमपुरूष की जोत है समाई रे ।।

—0—

26 गुरू निरादर

'वे नाम ' सब से अर्ज़ करत है ।
सत्तगुरू सूं सदा प्रीत ही करना ।।
सत्तगुरू कृपा सूं मौक्ष मिलत है ।
वर्णा मृत्यू लौक ही है भटकना ।।
जन्म जन्म की निंद्रा से सत्तगुरू जगावें ।
बिन जागे कोई जन मौक्ष ना पावे ।।
'वे नाम' पुकार करत है।
हे हंस आत्म प्यारो ।।
सब को जगावन हारे ।
इस पल जग में दो परमहंस हैं पधारे ।।
उन की शरणी जाओ रे ।
मौक्ष को पा जाओ रे ।।

—0—

27 गुरू शरणी

आंखों से दिखता नांहि कानों से सुनाई ना देत ।
ख़ाक हो गुरू चरणों में तभी तुझे मंजिल मिले ।।
माया मोह बंधन का ख़जाना लुटा दे ।
तूं छुड़ा ले खुद को आवागमण से ।।
महा अपराधी मैं जन्म जन्म से ।
शीश से पग़ तक विकार भरे ।।
साहिब जी तुम दाता हो दुख भंजन ।
मुझ भूले भटके की करो संभाल ।।
काम सूं मग्न महां कामी हूं मैं ।
लौभ—अवगुण—माया की ख़ान हूं मैं ।।
जग में जिया मान अभिमान सूं मैं ।
अब की बार सत्तगुरू मुझपे कर्म कीजिए ।।
मुझ गुणहीन व्यसनी को अपनी शरण लीजिए ।
शरणागत हूं तेरा अब राखिए या सर काट दीजिए ।।
सत्तगुरू में ही परम पुरूष करते हैं वासा ।
जो परम हंस शरणी है आता वोही सच्चे साहिब का पाता ।।

—0—

28 बड़भागी जन

वो मानव जगत में – बड़भागी होत है ।
जो सत्तगुरू के – परम प्यारे को पात है ।।
वो ही जीव संसार में – मुक्ति दात को पात है ।
सार नाम अनमोलक जो पावे – पलटें उसके भाग।।
बिन सत्संग विवेक ना उपझे – बिन विवेक ज्ञान ना होए ।
बिन ज्ञान बुद्धी ना आवे – बिन चेतन बुद्धी सुरति ना जागे ।।
बिन सुरति विरह ना उपझे – बिन विरह ना उपझे प्रेम ।
बिन प्रेम भक्ति ना होई – बिन भक्ति मोक्ष ना होई ।।
बिन मोक्ष निजघर ना जावे – बिन जावे हंसा ना होई ।
बिन सत्तगुरू कोई विधि ना आवे – गुरू ही तुझे हंस बनावे ।।
बिन सत्तगुरू नाम ना पावे – सार नाम में सत्तपुरूष समावे ।
सार नाम सुरति सूं जो ध्यावे – हंसा बन निज घर जावे ।।

–0–

29 साधना सुमिरन विधि

जब भी तुम सिमरन में जाओ ।
ईगंला पिंघला ईक सम करो ।।
सार नाम को सांसों मे डालो ।
सतगुरू का तुम ध्यान धरो ।।
उड़दमुखि हो तुम ध्यान करो ।
त्रिकुटि में आ तुम विश्राम करो ।।
आज्ञा चक्र में जब तुम जाओ ।
पल ही पल सतगुरू दर्शन पाओ ।।
गुरू चरणों में शीश झुकाओ ।
गुरू संग निजधाम को जाओ ।।

–0–

30 पूर्ण विश्वास

संत की एक उपर आस ।
संत के अंदर पूर्ण विशवास ।।
संत की केवल सार सब्द है प्यास।
संत की दृष्टि् सब जग एक स्वांस ।।
संत जग के सब बंधनों को मुकाता ।
संत जग को काल जाल से छुड़ाता ।।
संत जनों का भोजन है ध्यान ।
संत का पल पल सत्तपुरूष में ध्यान ।।
संत उठे बैठे सोवें जागें दिखें तो कल्याण ।
संत की दृष्टि् वचन प्रवचन हैं अति महान ।।

—0—

31 सतगुरू संत की संगति

संत की संगति मिटावे मान अभिमान ।
संत की संगति मिटावे राग द्वेष ।।
संत की संगति काटे इन्द्री का जाल ।
संत की संगति धरावे एक पर आस ।।
संत की संगति मिटावे लौभ की प्यास ।
संत की संगति मिटावे काम क्रौध की आग ।।
संत की संगति मिटावे अंहकार की आग ।
संत की संगति छुड़ावे महाकाल का जाल ।।
संत की संगति छुड़ावे माया तृष्णा की आग ।
संत की संगति तोड़े कर्म बन्धन विक्राल ।।
संत की संगति जगावे विरह प्रेम प्यार ।
संत की संगति में पाओ सार रस भण्डार ।।
संत की संगति में मिले साहिब मिलन संदेश ।
संत की संगति छुडावे जन्म मरन कलेश ।।
संत की संगति ही में मिले पूर्ण आत्म संदेश ।
संत की संगति में मिले निजधाम प्यारा देश ।।

—0—

32 साहिब–रंगोली

साहिब रंग रूप अति है प्यारा ।
सब हंसो का रूप भी है न्यारा ।।
भाषा बोल में कहा ना जाए ।
शब्दों में वो लिखा ना जाए ।।
दोनों चेतन ज्योति हैं न्यारे ।
दोनों अजर अमर अविनाशी हैं प्यारे।।
हंसा साहिब का निज अंश प्यारा ।
दोनों मिल हों ईक रूप ।।
सुनने वाला बोलने वाला ।
सार सब्द मिले त्रिवेणी होए ।।
लाल रंग हरे रंग से मिले ।
नीला रंग गगन प्रगटाए ।।
चेतन सुरति हंसा रूप पाए ।
निज रूप में ही घर जाए ।।

–0–

33 कर्त्ता और कारण हार

मुझमें, संत्तों में और साहिब में – कोई ना अंतर तूं जान ।
जब बूंद साग़र से मिलती है – साग़र बूंद में अंतर ना मान ।।
अब वो ही सब काम हैं करते – मैं खुद बैठूं इस मुकाम ।
इस त्रिलौकी में जो कुछ हुआ जो होगा – मुझे ही सब कर्त्ता मान ।।
कौटिन कौटिन युग प्रलय होई – हमहीं ने किया सब काम ।
हम ही करन करावन हार हैं, हम ही कर्त्ता के कारण हार ।।
मरी हैं ब्रह्मा विष्णू महेश निरंकार – मृत्यू ना होए कभी हमार ।
सब का आदि–अंत–मध्य और सृजन कर्त्ता–'मैं' हूं ।
मैं सतपुरूष का सतपुरूष मेरे – दोनों ईक मिक जान ।
'मुझ' से शुरू, मुझ में मध्य, 'मुझ' में ही अंत जान ।।

, –0–

34 सुरति सूं सृष्टि रचना

सुरति सूं अमरलौक सतपुरूष उपजायो ।
सुरति सूं अमरलौक जोत में जा समायो ।।
सुरति सूं अमर जोत का किया उछाला ।
सुरति सूं हंस रूप हुआ विस्तारा ।।
सुरति सूं सोलहं 'शब्द पुत्र' उपजाए ।
सुरति सूं सतपुरूष 'आधशक्ति' उपजाई ।।
सुरति सूं पांचवा पुत्र 'काल निरंझन' कहाया ।
सुरति सूं तीन लौक किया विस्तारा ।।
सुरति सूं काल निरंझन आधशक्ति ने निज नाते बनाए ।
सुरति सूं त्रिदेव ब्रहमा विष्णू महेश पुत्र रूप उपझाए ।।
सुरति सूं काल निरंझन सुन्न में जा समाया ।
सुरति सूं सब हंसों को तन व मन चोला पहनाया ।।
सुरति सूं ब्रह्माण्ड लौक लुकांतरों का किया विस्तारा ।
सुरति सूं चांद सूरज व सितारों का किया विस्तारा ।।
सुरति सूं सब जीव जन्तुओं का किया विस्तारा ।
सुरति सूं सब रिश्ते नातों का किया विस्तारा ।।
सुरति सूं प्रेम जोत का किया विस्तारा ।
सुरति सूं है सब जीवों का बन्धन प्यारा ।।
सुरति सूं हर थां सुरति ही का उजियारा ।
सुरति निरती मन पवन एक कर उतरे भव जल पारा ।।
मूल सुरति सतपुरूष से आई ।
पूर्ण सतगुरू में जा समाई ।।
सतगुरू सूं बहे सार सुरति धारा ।
पाएं सार सुरति नाम निज धारा ।।
निज धाम सुरति सूं आई हंस–आत्मा।
आत्म सार सुरति पाए निज घर जाए ।।

—0—

35 'मैं कहत हूँ' 'वे नाम जी

ना कहीं गए ना कहीं आए ।
ना कहीं अटके ना कहीं भटके ।।
ना सुन्न अपनाया ना जाप ने भरमाया ।
ना अनहद में उलझे ना बैकुण्ठ जा समाया ।।
घर में ही रहा, घर में ही सब कुछ पाया ।
समुंद ही बूंद में आ कर के समाया ।।
बस यहीं बैठे बैठे निज मूल सुरति सूं ।
निज मूल रूप में साहिब में जा समाया ।।

—0—

36 साधक की अर्ज़ी

निजघर दिखाने वाला कोई न मिलया ।
जो मिलया सो ही लोभी गरजी ।।
कहे दास तीन लौक भरमाए किसको दूं मैं अर्ज़ी ।
अब मैं कहता सुन लो मेरी एक संत है जग में ऐसे ।।
जिन की शरण में जाकर उनका दो तुम अर्ज़ी ।
संत सतगुरू साहिब कबीर रूप जग में आए ।।
उनको दो तुम अर्ज़ी भाई उनको दा तुम अर्ज़ी ।
उनको दो तुम अर्ज़ी आगे तुम्हारी मर्जी ।।

—0—

37 निजधाम वर्णन

सुरति सार सब्द में डाल कर – निज घर अपने जाओ रे ।
आदि अंत ना मध्य सत्तलौक का – तहां ना काल निरंझन लगाए फेरा रे ।।
जहां ना अग्नि पानी धरती और वायू – ना वहां सुन्न का ढेरा पसरा रे ।
जहां ना जीव जंत का वासा – ना वहां देवी देव का ढेरा रे ।।
जहां ना सूरज चाँद सितारे – ना वहां पाप पुण्य पसारा रे ।
सत्तगुरू सुरति से पावे सुरत सब्द – जो हंसा वही पाता निज घर ढेरा रे ।।
संत तो केवल सेव कमाएं – नांहि चाहें मुक्ति फल सेवा रे ।
वे तो चाहें आत्म निज को जाने – चले जहां हंसों का ढेरा रे ।।

—0—

38 गुरू तो सत्तपुरूष रूप हैं 'वे नाम'

गुरू तो सत्तपुरूष रूप हैं – जिनकी महिमां है अपरम्पार रे ।
उनकी आँखें सत्तपुरूष की आँखें – जान कर गुरू आँखों में दृष्टि् डाल रे ।।
उनकी वाणी सत्तपुरूष सुरति है – गुरू के हर सब्द में सुरति डाल रे ।
उनकी चाल में सत्तपुरूष शक्ति है – चरणों में सिर को डाल रे ।।
उनका नुरानी चेहरा सत्तपुरूष नूर है – उनके चेहरे पे अपनी दृष्टि् डाल रे ।
उनके सत्संग में सुरति निरति बहती – मन पवन एक कर डाल रे ।।
बिन मांगे बिन हीले डौले – पल ही पल में पहुंचेगा निजधाम रे ।
आंखों के विकार सारे छोड़ दे – मन के सारे विचार छोड़ दे ।।
सुमिरण का झाडू लगा – दिल का उजियारा साफ़ कर रे ।
आंखों से मान अभिमान छोड़ – सुरति को साहिब से जोड़ दे रे ।।
ये भेद अगर जान सके तूं – पल ही पल में पहुंचे निज घर तूं रे ।
आठ पहर सत्तगुरू निहारते रहिए – जैसे चकौर निहारत चाँद रे ।।
सुरति इक पल भी टरत नांहि – जैसे पतंगा की दीपक लौ से रे ।
ऐसी सुरति में सत्तगुरू को बिठा – निजघर का ही तूं हो जा रे ।।

–0–

39 साहिब मिलन का सफ़र

यह सफ़र नहीं है आसान – सहज मार्ग से जाना है ।
लां हथां ये सागर है – इसमें डूब के जाना है ।।
हृद्य को सत्त करके – मन को सत्य बनाना है ।
फ़िर सार सब्द की सुरति से – साहिब ही को पाना है ।।
साहिब का अमरलौक अति है प्यारा – सुरति से ही पाना है ।
बिन पग़ से सफ़र है करना – बिन अखियां दिस्सी जाना है ।।
बिन पवन के है यह राह – बिन सांसा वहां जाना है ।
बिन हथां सब कुछ है करना – बिन कन्ना सुनी जाना है ।।
यह अमरलौक है प्यारा – वही हंसों का ढेरा है ।
वहां प्यार से सब हैं रहते – ना कोई वहां बखेड़ा है ।।
बिन बादल जहां वर्षा होती – बिन सूरज उजियाला है ।
बिन डर के वहां – सभी जन आनंदित हैं रहते ।।

जो परमपुरूष कभी देते हैं – वही सब प्यार से खाते हैं ।
जहां जाना है मिल के जाते – संतों से प्रेम बड़ाते हैं ।।
प्रेम भाव से सब कुछ बोलें – सब समझ में आता है ।
मैने भी यह सब है जाना – मूल सुरति से आता है ।।
साहिब अति प्यार हैं करते – मैने सब जाना है ।
कंई बार मुझे समझायो – अमृत की वर्षा है की ।।
मत कहना बुरा किसी को – जग में कोई बुरा नहीं ।
पांच दिन मेरे साहिब ने की – चर्चा जग विचार की ।।

–0–

40 साहिब प्रसाद

साहिब साहिब सब साधक भजें – सांसों में सार रस दो डाल ।
तेरी भक़्ति मैं ना छोड़ूं – भावें जग में दुख़ मिलें हज़ार ।।
आठ पहर निरख़त तुझे रहूं – जैसे प्रीत सूं चाँद चकौर ।
'वे नाम' मैं ऐसी प्रीती करूं – जैसे प्रीती करी 'मधु' सूं मख़ीर ।।
कमल फूल सा जग में रहूं – सब सूं फैले मेरी बास ।
चंदन सा सब को सीतल करूं – चारों ओर बिख़रे भीनी भीनी बास ।।
उठुं बैठूं होलूं डोलूं हर दम – सुरति सूं साहिब हैं साथ ।
इस जग में जो भी करूं – सब कुछ प्रीत सूं साहिब प्रसाद ।।

–0–

41 गम्य सत्य

स्वतः सहज वह सब्द है, सार सब्द कह सोए ।
वह सब्दों का सब्द है, सब का कारण सोए ।।
प्राकृति पार वह सब्द है, अग़म अचित अपार ।
अनुभव सहज समाधि में, अज गुरू चरण आधार ।।
मन वाणी सूं पार है, साहिब सब्द स्वरूप ।
भौग ज्ञान गम्य सत्य को, दर्शते पुरूष अनूप ।।

–0–

42 सतगुरू अवहेलना

सत्तगुरू को जो उल्टा वचन सुनावे – कंई जन्म कौढ़ी के वो पावे ।
संत्त के आगे जो आंख दिखावे – सात जन्म अंधा हो जावे ।।
जो सत्तगुरू पर ना लाए विश्वासा – तां को काल नर्क लेत है जाता ।
सत्तगुरू संग ऊंचा नीचा जो बोले – स्वान होवे गंदगी में डौले ।।
जो सत्तगुरू संग ज्ञान गर्व दिखावे – कौटिन जन्म कुकर का वो पावे ।
सदा गुरू की महिमां का – सु बख़ान ही है करना ।।

–0–

43 बिन लेखनी पत्र (सुरति संदेश)

एकनाथ पत्र लिखा, बिन लेखनी लिए हाथ ।
संदेशवाहक को पत्र दिया, ले जाओ इसे निवृतिनाथ के पास ।।
संदेशवाहक ने पत्र दिया, निवृतिनाथ के हाथ ।
निवृतिनाथ ने श्रद्धापूर्वक पत्र पढ़ा, बड़े प्रेम रस साथ ।।
ध्यानपूर्वक उसे पढ़ कर, दिया पत्र मुक्ताभाई हाथ ।
मुक्ताभाई ने भी उसे पढ़ा, स्नेह और प्रीति साथ ।।
फिर संदेश वाहक को कहा ठहरो, उत्तर भी ले जाओ साथ ।
कोरा पत्र संदेशवाहक को दिया, वह बोला लिए पत्र हाथ ।।
पत्र तो कोरे का कोरा है, लेखनी सूं लिखी ना कोई बात ।
इस सूं आप ने क्या पढ़ा, कोरे का कोरा पत्र मेरे हाथ ।।
निवृतिनाथ ने यूं कहा, अनलिखे की लिखुं क्या बात ।
हम ने भी उत्तर में यही कहा, आप कहते हैं सच्ची बात ।।
सुरति सूं सत्तगुरू साहिब मिलते, क्या ये सच्ची बात ।
हम ने भी यही कहा, सुरति सूं सत्तगुरू साहिबन साथ ।।
साहिब सत्तपुरूष बोलें लिखें सुरति सूं, सुरति सूं करते सुनते बात ।
सत्तगुरू परमहंसा रूप हैं, मन मुख सूं मत करो बात ।।
लिखते पढ़ते सार सुरति सूं, यही है सच्ची बात ।
परमपुरूष के लौक में, सुरति सूं करते सुनते सब बात ।।

–0–

कबीर जी वाणी अनुसार :—

जीते जी मरिये भवजल तरिये ।
फ़िर भौर ना मरना होये ।।
जिस मरने से जग डरे ।
मेरे मन अनंत ।।
कब मरूं कब पाऊं ।
पूर्ण परमानंद ।।

—0—

'वे नाम' कहें :—

सतगुरू के चरणों में. दुख सुख हैं एक समान ।
अहम तज जे सतगुरू मिलें, तो भी सस्ता जान ।।

साहिब के दरबार में, सहे जो तिल भर दुख ।
उन दुखों पे वार दूं, कोटि कोटि जन्मों के सुख ।।

सतपुरूष जी अग़म हैं, सब घट व्यापक सोई।
ताकि जो भक्ति करे, वाका जन्म मरन ना होई।।

—0—

सतगुरू सत्तनाम सत्त–साहिब जी

अमृत सार

सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के प्रति साधकों के श्रद्धा सुमन

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।
(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

1 अमृत सार

सहज सत्त मार्ग के पूर्ण सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को साहिब सतपुरूष जी से साक्षात्कार दिनांक 22–03–2012 को प्रातः लगभग तीन बजे हुआ। तभी से वह जीव आत्मांओं को जगाने और उनके कल्याण हेतु प्रयासरत हैं । मानव को इस निरंकार की मोहिणी माया निंद्रा अवस्था से जगाकर, सहज सत्तमार्ग द्वारा निज साक्षात्कार करवाने उपरान्त, आत्म को हंसा बना कर सत्तलोक ले जाने की वे लगातार पूरी चेष्ठा कर रहे हैं। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को पहले 'सार सब्द' की दीक्षा निजधाम जाने के सातवें दिन सतपुरूष जी के मुखारबिन्द से सुरति द्वारा अपनी कुटिया रिहाड़ी आश्रम में मिली ।

पूर्ण संत सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को 'सार सब्द' की दात साहिब सतपुरूष जी के मुखारबिंद से सुरति द्वारा दो बार मिली । ऐसा कहीं कोई भी उदाहरण नहीं मिलता कि किसी संत या सतगुरू को ये दात दो बार मिली हो । दूसरी बार ये दात सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को दिनांक 27 नवम्बर 2014 को मिली। जग में साहिब कबीर जी के उपरांत ये दात सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को ही सीधे सतपुरूष जी से मिली। संत समाज के अन्य सभी संतों व गुरूजनों को ये दात अपने अपने गुरू द्वारा ही मिली।

साहिब कबीर जी की महिमां का गुणगान क्या गायें और लिखें, उनकी महिमां अति महान होने के साथ साथ लेखनी व भाषा बोली से परे है। वे तो प्रथम प्रलय काल से ले के इस प्रलय काल के हर युग में प्रथम से लेकर अब तक भिन्न–भिन्न नामों से संसार में अवतरित होते रहे। कबीर जी सब हंसों को माया की गहरी नींद से जगाकर मौक्ष दिलाने हेतु अनेकों बार जग में आते रहे और अनंत काल तक आते रहेंगे। संसारी मानवों की विडम्बना देखें, संपूर्ण मानव समाज उनकी अपार महिमां को समझ ही नहीं पाया। क्योंकि मानव निराकार के माया मोह में सोया निज रूप को जानता ही नहीं और ना ही उनकी महिमां को कभी जान पाया । परम पूजनीय सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के सतगुरू जिन्हें हम सब भी बड़े आदर और श्रद्धा से परमगुरू जी कह कर सम्बोधित करते हैं। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' का मानना है कि काया तो दिखावा मात्र केवल साधन है तो फिर नाम से क्या सम्बोधन करना।

इसमें कोई संशय नहीं वे तो साहिब कबीर जी का ही रूप हैं। जैसे परमगुरू जी अक्सर कहते हैं कि मैं ही कबीर हूं । ''वे नाम परमहँस जी'' के अनुसार संसार में हर मानव कबीर रूप है। कबीर साहिब जी किसी सम्बोधन, नाम या पहचान के मोहताज नहीं थे, वह तो

अपने साहिब सतपुरूष जी संग ईक मिक व अपने आप में पूर्ण थे। हर मानव कबीर रूप ही है अर्थात मानव में साहिब सतपुरूष जी का अंश 'हंसा' का वास होने से सभी कायाधारी मानव एक समान हैं। इसी भाव अनुसार सभी मनुष्य ही कबीर हैं । कबीर केवल नाम ना हो के हर जीवित मानव शरीर कबीर है, बस अवस्था का अन्तर है । पूर्ण संत व सतगुरू ही जाग्रत अवस्था में होते हैं । बाकी सारे संसारी मानव माया की निंद्रा में सोये पड़े हैं । इनका कल्याण अर्थात मौक्ष ही कबीर साहिब जी व पूर्ण संत परमहँसों का एकमात्र लक्ष्य है।

''कक्का केवल नाम है, बब्बा नाम शरीर।
रर्रा सब में रम रहा, ताको कहें कबीर'' ।।

अंतर तो मानव अवस्था का है, कबीर साहिब जी जाग्रत व सुरतिवान होने से साहिब सतपुरूष जी में ईक मिक हैं। संसारी मानव मोह माया में रमा अपने सुरति को जगत कार्यों की सिद्धी में लगाये हुए है।

हे मानवों, हम करोड़ों जन्म लेकर भी काल जाल में फंसे हैं, अब तक तो मौक्ष को ना पा सके। बाबा नानक जी ने दस हज़ार बार मानव जन्म लेने उपरान्त मौक्ष को पाया । हम सभी हंसा चाहे मानव हों या भुगत भौगी कायाधारी, एक साथ ही सतलोक सूं आए। प्यारे हंस आत्मांओ, साहिब कबीर जी, साहिब रविदास जी, साहिब धर्म दास जी, संत मीरा जी, साहिब तुलसी दास हाथरस जी, पूर्ण संत पल्टु साहिब जी, साहिब दादू दयाल जी, पूर्ण संत दरिया साहिब जी, बाबा नानक जी, पूर्ण संत ब्रह्मानंद जी व और भी अन्य संत मौक्ष पाकर अपने मूल निवास निजधाम जा पहुंचे । पर हम सभी अभी तक इसी मृत्यूलौक में ही भटक रहे हैं । सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार :– **'मैं' भी तो अब की बार पूर्णतः जागा और अपने मूल को पा सका।** निराकार, मानव के अंदर मन रूप में विद्यमान है व बाहर सारा संसार भी मन का ही रूप, यहां तक की पांच तत्व से बनी काया व माया भी मन का ही रूप व अंग है। पांचों तत्व जिससे सभी जीव बने वे भी तो मन रूपी माया का ही अंग हैं अर्थात निरंकार ने आत्म को चहुं तरफ से मोहणी माया में झकड़ के रखा है। विचित्र विडम्बना देखें ये मन कुछ भी करने में असमर्थ है। आत्मां तो सब से श्रेष्ठ है, आत्मां पे मन का वश नहीं चल सकता, पर मन ने आत्मां की सुरति अर्थात चेतना को वश में कर के रक्खा है। तभी तो आत्म मन कहे अनुसार सभी कार्य व व्यवहार करती है।

संसार तो व्यस्नों, दुखों और बन्धनों का महा काल रूपी जाल है । बड़ी विचित्र मानव त्रासदी देखो, मानवों में प्रायः सभी जानते हैं कि जीवन कुछ समय उपरांत मृत्यू को प्राप्त होगा और सारे रिश्ते नाते, सम्बंधी व सम्पदा छोड़ कर जाना है। सब जानते हुए भी सारी की सारी चेष्ठाऐं इन रिश्ते नातों व सम्पदा को बड़ाने के लिए मानव किए जा रहा है

अर्थात भौतिक चकाचौंध ने इतना अधीर किया हुआ है कि आगे की सोचना भी नहीं चाहता, चलना तो बहुत दूर की बात ! बस झूठे अहम में ही सारा जीवन नष्ट् किए जा रहा है। लाखों में कोई बिरला जन ही भक्ति की ओर अग्रसर होता है। देखो यहां पर भी मानव अपने अहम (ईगो) को नहीं तजता। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार अगर मानव 'ईगो' में से 'ई' (मैं) को तज दे तो गो (चलना) रह जाता है अर्थात भक्ति मार्ग की ओर चला जा सकता है। ठीक इसी प्रकार 'अहम' में से 'अ' को तज देने पर 'हम' शेष रह जाता है (अर्थात 'अ' आगे का काल खंड, पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की शरणी में समर्पित होने पर ही निज अर्थात स्वयं हंसा रूप को जान पाते हैं)।

'मैं' को तजे बिना साहिब सतपुरूष जी से मिलने की तड़प उठती ही नहीं, और बिन तड़प के विरह नहीं जगती और बिन विरह के प्रेम नहीं उपझता, बिन प्रेम समर्पण नहीं होता और बिना समर्पण सतगुरू परमहँस कृपा संभव नहीं। बिन सतगुरू परमहँस कृपा के सहज भक्ति संभव ही नहीं और बिन सहज सत भक्ति मौक्ष संभव नहीं !

''मै'' तजे बिन तड़प ना उपझे,
बिन तड़प विरह ना जागे,
बिन विरह कभी प्रेम ना उपझे,
बिन प्रेम समर्पण ना होए,
बिन समर्पण सतगुरू ना सहाई,
बिन सतगुरू भक्ति ना होई,
बिन भक्ति मौक्ष ना होई ।

भक्ति का तात्पर्य भौतिक जगत की तरफ चलना नहीं, उल्टा अंदर की ओर चलने का नाम भक्ति है, संसारी होना बाहिर मुखी होना है। इस की शुरूआत तो संसारी रिश्ते नातों से दूरी बना कर सतगुरू परमहँस जी की शरणी में समर्पित हो जाना ही भक्ति की ओर पहला कदम है। बिन अहम (अहंकार, मैं और मेरी) को तजे भक्ति संभव ही नहीं। एक अहम ही हमारे चार युग और योनियों को खा जाता है। माया निंद्रा में सोया मनुष्य, मानव–जन्म को व्यर्थ में नष्ट कर देता है। मानव जन्म भौतिक जगत की चकाचौंध में रमने व मर जाने के लिए नहीं मिला, बल्कि मौक्ष प्राप्ति का एक सुनहरा अवसर मिला है। इसलिए हे मानव, अहम तज कर पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की शरणी जा के मौक्ष प्राप्त कर, अन्यथा इस मानव जन्म के व्यर्थ होने पर तुझे चार योनियां जलचर, थलचर, नभचर व

जड़ योनियां ही नहीं अपितु चार युगों सतयुग, द्वापर, त्रेता व कलयुग तक में भटकना पड़ेगा। इसलिए ये मानव चोला मौक्षदाई होने के कारण अनमोल है व बारम्बार नहीं मिलने वाला है ।

हे मानव, इसी मानव तन में ही सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी में 'मै' को तज के समर्पित हो जा। सहज सतमार्ग के संपूर्ण सतगुरू परमहंस जी की कृपा से ही 'सार नाम' की दीक्षा को प्राप्त होगा । इस 'विदेह सब्द' के स्मिरण से ही सारा माया रूपी कर्म जाल कट जाता है और साहिब सतपुरूष जी सतगुरू परमहंस रूप में दर्शन दे के अपने संग सतलोक ले जाते हैं । सतलोक पहुंचने पर आत्म 'हंसा' कहलाता है । तब हंसा को पता चलता है कि 'विदेह सब्द' हर 'हंसा' को मानव जन्म से पहले गर्भ में ही साहिब सतपुरूष जी द्वारा सुरति सूं मिला होता है। तभी तो जन्म होते ही माया रहित अवस्था तक सभी कार्य सुरति सूं ही होते हैं जैसे, बच्चे का दूध पीना, किसी ज़रूरत पड़ने पर रोने लगना आदि, कोई सिखाता नहीं । साहिब प्रदत सुरति द्वारा ही वह सभी कार्य करता है। माया में रंगते ही वह इसी सुरति को भुल कर 'मै' युक्त हो जाता है ।

साहिब सतपुरूष जी तो अपने सब 'हंसों' की बाट जोह रहे हैं । एक प्रलय में सात मानव–जन्म तो निरंकार के कर्म जाल अनुसार मिलते हैं, सदा हर मानव–जन्म से पूर्व गर्भ में साहिब जी निज अंश 'हंसा' को निज रूप की पहचान कराने के साथ साथ 'विदेह सब्द' भी देते हैं ताकि मानव माया जाल से मुक्त होके सतलोक लौट सके । जगत में आते ही माया जाल में लिप्त होने पर भी समय समय पर सतपुरूष जी पूर्ण सतगुरू परमहंस के रूप में इस दात को जगत जीवों को बांटते फिरते हैं । जगत माया की चाह में मानव इस ओर पीठ किए है अर्थात मुड़ के देखता तक भी नहीं । इतना सब होने पर भी अपने अंश 'हंसों' की निजघर वापसी के लिए लगातार बाट जोह रहे हैं।

मगर सहज मार्ग में साधक का गुरू श्री चरणों में स्वयं को पूर्ण रूप से समर्पित कर देना ही भक्ति की पहली सीढ़ी है । जहां निराकार के दायरे में गुरू की महिमां सिर्फ ईष्ट साक्षात्कार तक ही सीमित है । ईष्ट साक्षात्कार के उपरांत साधक और ईष्ट ईक मिक हो जाते हैं पर सहज मार्ग में सतगुरू परमहंस जी की महिमां अपरम्पार है क्योंकि यह भक्ति सतगुरू परमहंस जी के समर्पण से शुरू हो के निजधाम के सफर तक उनकी कृपा के बिना संभव ही नहीं। यहां इस मार्ग में सतपुरूष जी सतगुरू परमहंस रूप में ही मिलते हैं । सहज मार्ग और निराकार भक्ति दोनों ही ईंगला पिंगला सम हुए बिना संभव ही नहीं । सहज मार्ग में तो ईंगला पिंगला सम के उपरांत सुश्मिन द्वार खुलने के बाद ही भक्ति का प्रारम्भ होता है क्योंकि सहज सत मार्ग की भक्ति में मन और मुख से

स्मिरन किया ही नहीं जाता । सुश्मिना द्वार खुलने के उपरांत स्वांसा द्वारा सतगुरू परमहंस जी द्वारा प्रदत 'सार सब्द' का स्मिरन किया जाता है । 'सार सब्द' में स्वंय सतपुरूष का वास होने से साधक जन छे मास से कम समय में ही सुश्मिना में सुन्न को पार कर के प्रकाश पुण्झ के दर्शन करते हैं । निराकार के दायरे में तो साधक जन कंई कंई साल इस सुश्मिना की भंवर गुफा में ही भटकते रहते हैं।

सुश्मिना मध्य स्वंय निराकार सुन्न (कफ) रूप में विराजमान होते हैं और निराकार दायरे के गुरूओं द्वारा दी गई दीक्षा–सिमरन से इसे पार नहीं किया जा सकता । निराकार मन रूपी सत्ता से उपर की सत्ता, सहज सतमार्ग के संपूर्ण सतगुरू परमहंसों द्वारा प्रदान किये गये 'सार सब्द' सिमरन से ही इस भंवर गुफा को पार किया जा सकता है । इसके उपरांत सहज मार्ग के साधक जन अष्टम चक्र में सुरति द्वारा 'सार सब्द' और 'सुरत सब्द' का सिमरन करते हैं । कुछ समय उपरांत लगातार अष्टम चक्र में सुरति से सिमरन करते हुए वे अपने सतगुरू परमहंस जी को प्रकट कर लेते हैं और सतगुरू परमहंस जी की कृपा से उन्हीं संग सुरत कमल में जा पहुंचते हैं जहां सतगुरू परमहंस जी के चरणों में, शीष झुकाते ही उनके चरण चले जाते हैं और सतपुरूष जी सतगुरू परमहंस रूप में प्रकट हो के साधक को हंसा रूप में अपने संग सतलोक ले जाते हैं। सतपुरूष जी के सतगुरू परमहंस रूप में प्रकट होते ही सौलह सूर्य की रोशनी 'हंसा' संग हो लेती है। यह सौलह सूर्य का प्रकाश ही 'हंसा' को सुन्न व महासुन्न लोकों के घौर अंधकार को पार करने में सहायक होता है। सुन्न व महासुन्न लोकों तक निरंकार की सत्ता है परन्तु 'हंसा' को इससे पार अपने निजघर सतलोक जाना है, जो सभी जीव आत्मांओं (हंसों) का एकमा़त्र अपना निजघर है जहां से ये 'हंसा' आत्म रूप में बिछड़े थे और वहीं वापिस पहुंचना अर्थात मौक्ष पाना ही सब जीव आत्मांओं का एकमात्र लक्ष्य है । सतलोक पहुंचते ही हंसा अपने निजघर को पहचान लेता है और वहां सभी हंसों में विचरने लगता है । मानवों में, कोई बिरले जन ही भक्ति मार्ग की ओर अग्रसित होते हैं। कहने को तो सारे का सारा जगत ही गुरू धारण किए हुए है पर बड़ी विचित्र विडंबना देखें :–

''गुरू चेला दोनों अन्धे''

अर्थात जिन गुरूजनों ने जगत में प्रचलित ग्रंथों, गद्दियों, और स्वयं–घोषित गुरू जनों (जिनका कुछ भी निज अनुभव नहीं, कोई ऋद्धि सिद्धि से युक्त या ग्रन्थों व गुरूओं की वाणी से प्रवचन करने वाले) को धारण किया हुआ है अथ्वा सत्य भक्ति से सर्वथा अनभिज्ञ हैं । ये गुरूजन स्वयं भी कर्म बंधन व माया को ना तजे हुऐ, दूसरों को मन तजने व निस्वार्थ कर्म करने का उपदेश देते हैं । ये

सब के सब निराकार भक्ति करते हुए पित्र लोक या स्वर्ग लोक को प्राप्त होते हैं । कर्मफल समाप्त होने के उपरांत फिर इस आवागमण के चक्कर में वापिस लौट आते हैं । निराकार भक्ति की अवस्था में केवल चार शरीरों तक छूटना ही संभव है । मौक्ष तो छः शरीर छूटने पर ही प्राप्त होता है ।

——

2 मानुष के छेः शरीरों का वर्णन

प्रथम स्थूल शरीर जिस से हम प्रायः भौतिक जगत के सभी कार्य करते हैं, दूसरा सूक्ष्म शरीर जो निंद्रा अवस्था में सभी कार्य करता है, निंद्रा अवस्था में हमारा शरीर तो सो जाता है मगर दिमाग व ईन्द्रियां अपना अपना काम करती हैं । जो मानव भक्ति द्वारा दो शरीरों से पार हो जाता है, ऐसी तुरिया अवस्था में दो तत्व धरती और जल उसके दास हो जाते हैं अर्थात वह जहां भी पहुंचता है उसे रहने के लिए स्थान व जल सहजता से उपलब्ध होते हैं । तीसरे शरीर की अवस्था तुरिया में मानव गहरी नींद की अवस्था में होता हैं जो प्रायः मध्य रात्री से प्रभात बेला तक का समय होता है, इसे सुशुप्ति अवस्था भी कहते हैं, ऐसी अवस्था प्राप्त हुआ मानव अपने हर कार्य या भक्ति में इतना संलग्न हो जाता है कि उसे किसी आने जाने वाले की होश तक भी नहीं रहती। ऐसा अक्सर देखने में आया है कि परीक्षा के दिनों में विद्यार्थी इसी तीसरे शरीर तुरिया अवस्था में पढ़ाई करते हैं अर्थात पूरी तरहं से एकाग्र होते हैं और उन्हें उनके आसपास की गतिविधियों तक की भी खबर नहीं रहती । इस अवस्था में स्मरण शक्ति अति तीव्र होती है और साधक की पपील मार्ग से रूहानी यात्राऐं भी शुरू होती हैं, यहां तक कि कभी कभार अपने ईष्ट का भी वे साक्षात्कार करते हैं । बहुत से भक्त जन इसे भक्ति की प्रकाष्ठा मान कर अपना निज प्रवचन देना आरम्भ कर देते हैं । इस अवस्था को गृहस्थ जीवन जीने वाले गुरूआजन भी प्राप्त कर लेते हैं । इस अवस्था में चार तत्व पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु उसके सहायक हो लेते हैं । ये अवस्था प्राप्त भक्त/साधक पित्रलौक व स्वर्ग में अपने कर्म फल भौगने उपरांत राज योग से युक्त होकर राजा या उच्च अधिकारी व अति उत्तम गुणों से युक्त हो जग में जन्म लेते हैं । यहां एक बात अक्सर देखी जाती है कि इस अवस्था वाले अधिकतर महां अहंकारी होकर बड़े बड़े फेसले लेने की समर्थता तो रखते हैं पर माया वशीभूत इनके नब्बे प्रतिशत कर्म गल्त हो जाते हैं जिससे ये दौबारा नरक गामी होते हैं ।

एक कहावत जगत प्रचलित है :– ''राजों नरक, नरकों राज''

यही तो महांकाल रूपी निराकार जाल है। इस अवस्था प्राप्त वाले मानव चार तत्वों से मुक्त हो बहुत कम व संयमित वार्तालाप करते हैं । इस अवस्था में भी अभी बीस प्रतिशत मन संग रहता है ।

तीन शरीरों से आगे चौथी अवस्था को तुरियातीत अवस्था कहते हैं । ये अवस्था सन्यासियों या गृहस्थ भौगने उपरांत सन्यासी जीवन जीने वालों को ही प्राप्त होती है। चौथा शरीर अर्थात तुरियातीत अवस्था गृहस्थ जीवन जीने वाले प्राप्त नहीं कर सकते । इस अवस्था को योगी और योगेश्वर व उच्च अवस्था प्राप्त गुरूजन ही प्राप्त कर सकते हैं। इस अवस्था को प्राप्त गुरूजन अब मीन चाल से रूहानी सफ़र कर सकते हैं और सुन्न, स्वर्ग व पित्र लोक में कहीं भी आ जा सकते हैं और महांयोगेश्वर इनसे आगे महांसुन्न लोक को प्राप्त होते हैं। वर्तमान काल तक केवल सात महांयोगेश्वर ही हुए हैं। जिनमें इस मृत्यु लोक से महांयोगेश्वर गुरू गोरख नाथ जी, महांयोगेश्वर संत दत्तात्रे जी, महांयोगेश्वर सुखदेव जी और महांयोगेश्वर वेद व्यास जी हुऐ हैं। इनके ईलावा महांयोगेश्वरों में त्रिदेव ब्रह्मां, विष्णु और महेश जी भी हैं। त्रिदेवों से भगवान विष्णु जी व ब्रह्मां जी सृष्टि् संचालन में लीन होने के कारण वे भी महांयोगेश्वर की अवस्था तक ही पहुंच पाये, जिससे वह स्वर्ग नरक व सुन्न, महांसुन्न लोकों तक ही आ जा सकते हैं। वे महांसुन्न से पार नहीं जा सकते।

इन योगेश्वरों के ईलावा सहज मार्ग के 'पूर्ण सतगुरू ''वे हूँ परमहँस जी'' भी सुन्न व महांसुन्न लोकों की यात्राऐं कर चुके हैं, अपितु मन की सत्ता से आगे सहज सत्त मार्ग के पूर्ण संत व सतगुरू परमहंस, योगेश्वर और महांयोगेश्वरों की अलंकृत अवस्था से बहुत उच्च अवस्था में होते हैं। इसी कारण वश चार शरीरों से आगे छटे शरीर से भी आगे की अवस्था को प्राप्त होते हैं। चार अवस्थाओं तक में भी मन पूर्णतः नहीं मिटता । यहां तक की अवस्था को प्राप्त गुरू जन भी माया से नब्बे प्रतिशत मुक्त होने पर भी मन से युक्त होते हैं अर्थात दस प्रतिशत मन अभी भी शेष होता है । इस अवस्था को प्राप्त होने पर, कोई भी अगर प्रवचन में 'मै' शब्द का प्रयोग करे तो वह भी अहंकार ही होता है यहां तक की चार अवस्थाओं तक निराकार के दायरे के भक्तों का पहुंचना संभव है । पूर्ण सतगुरू ''वे हूँ परमहँस जी'' ने यहां तक के सारे रूहानी सफ़रों को सैंकड़ों बार निराकार के दायरे की भक्ति में रहते हुए किया, जिनका वर्णन अग़ामी ग्रन्थ ''साहिब जी के सफ़रनामें'' में किया जाएगा। इसके आगे के आध्यात्मिक अनुभव व सफ़रनामें सतगुरू ''वे हूँ परमहँस जी'' ने सहज मार्ग भक्ति में आने के उपरांत किए, क्योंकि आगे के सफ़र सहज सत भक्ति मार्ग में ही किए जा सकते हैं जो कि निराकार की भक्ति के दायरे में संभव ही नहीं । निराकार के दायरे में अल्प कालीन चार मुक्तियां, पित्र लोक, स्वर्ग लोक, सुन्न व महांसुन्न लोकों की अवस्था तक जाया जा सकता है। निराकार की भक्ति में चार शरीरों तक को ही तजा जा सकता है, पांचवां व छटा शरीर इस भक्ति में तजा ही नहीं जा सकता जो केवल सहज मार्ग की भक्ति में ही सम्भव है, इस कारण पूर्णतया मन से मुक्त नहीं हुआ जा सकता, इससे आगे की भक्ति

निराकार के दायरे में सम्भव ही नहीं । निराकार भक्ति की उच्च अवस्थाओं, मुद्राओं व चार मुक्तियों को विस्तार पूर्वक अंतिम पृष्ठों में दिए गये 'मुक्ति व मुद्राओं के चार्ट' में देखें ।

आगे के सफ़र सिर्फ सहज मार्ग के पूर्ण संत परमहंस जी द्वारा प्रदत 'सार सब्द' के सिमरन से ही किए जा सकते हैं । बिन 'सार सब्द' सुरति के चार शरीरों से आगे जाया ही नहीं जा सकता और बिन सतगुरू परमहंस जी के सानिध्य और कृपा के चौथे शरीर से आगे निकलना संभव ही नहीं, इस अवस्था को तुरिया तीत (ज्ञानदेही) या पांचवी अवस्था का शरीर भी कहते हैं। अष्ट्म चक्र से थोड़ा उपर, सतगुरू–लोक (यह सतगुरू लोक केवल सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंसों का लोक है) में ध्यान लगाते ही सतगुरू जी प्रकट हो जाते हैं। सतगुरू जी के प्रकट होते ही साधक जन उन संग तुरियातीत अवस्था में पहुंच जाते हैं, यहां उनका लगभग 98 प्रतिशत मन छूट जाता है और बृहंगा चाल से आध्यात्मिक सफ़र शुरू हो जाते हैं। पांच शरीरों से मुक्त होने पर भी मन लेष मात्र यानि लगभग 2 प्रतिशत साथ रहता ही है। इस अवस्था में भी 'मै' शब्द का प्रयोग प्रवचनों में मन का ही प्रतीक है।

इसके आगे छटा शरीर तुरियातीत के पारा (विज्ञानदेही) है । भक्ति की प्रकाष्ठा होने पर प्रारम्भिक काल में सहज सत मार्ग के पूर्ण संतों को स्वयं सतपुरूष जी उनके सतगुरू परमहंस रूप में प्रकट हो के अपने संग मान सरोवर और सतलोक भ्रमण को ले जाते हैं। यह अवस्था बिन सतगुरू परमहंस जी की कृपा के संभव ही नहीं, क्योंकि प्रारम्भिक भक्ति में साधक, सतगुरू परमहंस रूप को आत्मसात कर लेता है जिससे आगे के सफ़रों में सतपुरूष जी सतगुरू परमहंस रूप धार कर संग हो लेते हैं। मान सरोवर पहुंच कर हंसा से मन पूर्णतया छूट जाता है और सब हंस उसे और वह सब हसों को पहचान लेता है। यहां कुछ देर रूकने के उपरांत 'हंसा' (साधक) सतपुरूष जी के संग सतलोक पहुंच जाता है। सतलोक पहुंच कर 'हंसा' **'परमहंस'** कहलाता है और यह परमहंस सब परमहंसों को तुरन्त ही पहचान लेते हैं। पूरे का पूरा सतलोक व सभी परमहंसों को वह निज रूप में पहले से ही जानता है क्योंकि सतपुरूष जी भी हंसों और परमहंसों के साथ साथ सभी जीवों में फंसे 'हंसात्मांओं' को निज रूप में जानते हैं तथा सतपुरूष जी का अंश होने के कारण सभी 'हंसा' 'हंसों और सतपुरूष जी' को पहले से ही जानते हैं।

एक बड़ी विचित्र बात जो जगत में आम प्रचलित है कि हंसा (आत्मां) सतपुरूष जी में विलीन हो जाता है और अपना निज अस्तित्व खो देता है जो सर्वथा सत्य से परे है। सभी परमहंसों का सतपुरूष जी में विलीन होने पर भी अपना निज अस्तित्व बरकरार रहता है क्योंकि सारे का सारा सतलोक ही सतपुरूष है । सतलोक पहुंचने पर परमहंस सुरति सूं, सुरतिमय अवस्था में विचरण करते हुए सदैव परम आनंद में रहते हैं। सहज मार्ग के सभी संत सतगुरू परमहंस इन शरीरों से आगे दो तीन बार सतलोक के सफ़र करने के उपरांत परा–विहंगम चाल को पा लेते हैं जिससे वे ध्यान में जाते ही तुरंत सतलोक पहुंच कर वापिस आ जाते हैं।

पूर्ण सतगुरू ''वे हूँ परमहँस जी'' ने निराकार भक्ति की उच्च परिकाष्ठा उपरांत व सहज मार्ग में साहिब सतपुरूष जी के साक्षात्कार उपरांत भी प्रचार करना शुरू नहीं किया। तो सतपुरूष जी ने 'सार सब्द' सुरति सूं प्रदान करते हुए उन्हें साहिब महिमां का प्रचार करने का आदेश दिया । सतपुरूष जी के आदेश को शिरोधारी करते हुऐ सतगुरू ''वे हूँ परमहँस जी'' ने प्रवचन व सत्संग करना शुरू किया। सतपुरूष जी के आदेश से पहले उनके निज विचार में कभी भी प्रचार व सत्संग करने का लेष मा्त्र भी ध्यान नहीं आया।

छे शरीरों के पार सतलोक की सैल उपरांत जो भी संत सतगुरू परमहंस अपने प्रवचनों में 'मै' शब्द का प्रयोग करते हैं वह उनके निज के लिए ना हो के सतपुरूष जी का प्रसांगिक संबोधन होता है। तभी तो उनके प्रवचन किसी ग्रंथ व महापुरूषों की वाणियों से ना होके आलोकिक व नवीन होते हैं । जहां जहां 'मै' शब्द का प्रयोग होता है वे अहंकार ना होकर प्रवचन की जरूरत भर होते हैं। अहम ? (अहंकार) तो मन वालों की अवस्था है, सहज मार्ग के संत व साधक जन तो मन की उपर की सत्ता साहिब सतपुरूष जी की भक्ति में कण्ठ, मुख व मन से ना होके यह भक्ति तो सुरति द्वारा की जाती है। तभी तो सहज सत्त भक्ति मार्ग के अनुगामी मन माया रूपी अहंकार अथ्वा अहम से रहित होते हैं। निराकार भक्ति से मन कभी नहीं छूटता, चार शरीरों तक के गुरूजन और साधक 'मै' युक्त अहंकार व क्रौध रूपी मन को तज ही नहीं सकते। सहज सत्त मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस मन की सत्ता से परे हर पल सुरति में रहते और सुरति सूं ही सारे व्योव्हार करते हैं ।

इस सृष्टि् में इस काल में सतगुरू ''वे हूँ परमहँस जी'' के ईलावा कोई भी संत व सतगुरू इन अनुभवों से युक्त नहीं है। वर्तमान काल में सतगुरू ''वे हूँ परमहँस जी'' सर्वोपरि हैं अर्थात उनका कोई सानी इस जगत में नहीं है। सतपुरूष जी द्वारा प्रदत 'सार सब्द' की दात को कोई संपूर्ण सतगुरू परमहंस ही जगत में जीव आत्मांओं के आध्यात्मिक कल्याण हेतु दीक्षा द्वारा बांटता है। जिन संतों व सतगुरूओं ने छः शरीरों की अवस्था और अनुभव को प्राप्त किया होता है, उन्हें ये दात सतपुरूष जी अपनी सुरति द्वारा

स्वंय जगत के जीव आत्माओं के कल्याण हेतु प्रदान करते हैं। बिना इन छेः शरीरों के अनुभव के जो गुरूआजन जिस 'सार दात' को बांटते हैं वह उनके सतगुरू परमहंस जी द्वारा प्रदान किया हुआ 'सार सब्द' होता है ना कि सतपुरूष साहिब जी द्वारा दिया हुआ ! बिन निज अनुभव तथा साहिब सतपुरूष जी से निज दात ग्रहण किये, सहज सत मार्ग का कोई भी संत सतगुरू दीक्षा नहीं दे सकता। सहज सत मार्ग के सभी संत व सतगुरू परमहंसों को तो सतलोक का निज अनुभव होता है तभी तो वे सभी सतगुरू 'परमहंस' के सम्बोधन का प्रयोग अपने नाम के साथ करते हैं।

सहज सत मार्ग के संतों की वाणी अनुसार :–

''जो संत सतगुरू सतलोक हो के आयेगा,
वो ही जगत में परमहंस कहलायेगा।''

हां, बहुत से साधक जन सतगुरू परमहंस जी के प्रति पूर्ण समर्पित हो के हर कार्य करते हुए, जीवन तजने उपरांत, सतगुरू परमहंस जी की कृपा से मौक्ष पाते हैं। यह साधक जन शरीर छोड़ने उपरांत छेः मास या उस से अधिक समय तक सतपुरूष जी की शीतलमयी जोत में रह कर 'सार सब्द' का सिमरन करते हुए, मन को मानसरोवर में तज के साहिब सतगुरू परमहंस रूप में ही सतपुरूष जी के संग सतलोक निजघर की ओर प्रस्थान करते हैं। मानसरोवर रूकने तक वह **'हंसा'** कहलाते हैं और सतलोक पहुंचने पर वे **'परमहंस'** ही हो जाते हैं।

सतगुरू **''वे हूँ परमहँस जी''** की वाणी अनुसार, मान सरोवर कोई जल स्त्रोत ना होकर, सतपुरूष जी की शीतलमयी जौत स्वरूप प्रकाशमयी आभा स्त्रोत है, जिसमें सिमरन करने से साधक जनों का मायावी निराकार रूपी मन का अस्तित्व पूर्णतः मिट जाता है। जहां वे, आत्म से हंसा रूप को प्राप्त होते ही मौक्ष को पाते हैं ।

(हंसा + मन = आत्मां) (आत्मां – मन = हंसा)

——

3 सुरति निरति महिमां

हे मानव, साहिब जी ही निरति द्वारा हर जीव को प्राण (चेतना) प्रदान करते हैं, ये निरति हर जीव की अलग–अलग होती है और साहिब जी की महिमां देखें निरति अपने–अपने गणतव्य जीव को ही मिलती है, जब भी कोई मानव श्वांस लेता है यह निरति अर्थात प्राण ही मन में कैद सुरति को चेतना प्रदान करती है ।असंख्य जीव और हर जीव की अपनी निरति ! ये निरति बिना किसी बाधा के लगातार अपने लक्ष्य अर्थात

जिस जीव की निरति उसी जीव तक हर श्वांस द्वारा पहुंचती है । अगर किसी मानव ने 'सार–सब्द' की दीक्षा पूर्ण सतगुरू परमहंस जी से प्राप्त की हो तो ये 'सार–सब्द' मन में कैद आत्म सुरति को चेतन कर मूल सुरति में परिवर्तित कर देती है । क्योंकि 'सार–सब्द' में स्वयं सतपुरूष जी का वास होता है। जब भी कोई गुरूमुख श्वांस द्वारा सिमरन करता है तो उसकी श्वांसा द्वारा निरति संग साहिब सतपुरूष जी की सुरति, मन में कैद आत्म सुरति को मूल सुरति में परिवर्तित कर देती है । मूल सुरति बनते ही सातों सुरतियां एक साथ इसमें समा जाती हैं। जब मन में कैद आत्म–सुरति मूल सुरति में परिवर्तित हो जाती है, सारी की सारी सातों सुरतियां इसमें समाहित हो जाती हैं, जैसे कि किसी जल स्त्रोत तालाब या झील के मध्य से कुछ जल निकालने पर सभी दिशाओं से जल तेजी से उस रिक्त स्थान को भरने के लिए उमड़ पड़ता है, वैसे ही आत्म सुरति के मूल सुरति में परिवर्तित होने पर सभी सुरतियां उसी पल उस में समाहित हो जाती हैं, **निरति चित्र अंतिम पृष्ठ पर देखें।**

ये मूल सुरति ही तो आत्मां को मन की सत्ता (कैद) से आज़ाद कर आत्म को हंसा बनाती है । 'हंसा' (आत्मां–मन = हंसा) बन आत्म निज रूप को पाती है और सतगुरू परमहंस जी की कृपा से सतलोक जा पहुंचती है जो हंसों का अपना निज लोक है । मन की सत्ता निरंकार भक्ति से छूटना कभी भी संभव ही नहीं, क्योंकि निराकार ही सभी देवी देवों और ईष्ट रूपों की सर्गुण व निगुर्ण भक्ति करने वालों की मनोकामनाएं उनके ही ईष्ट रूप में पूर्ण करते हैं और उन्हें दर्शन देते हैं । काल रूपी मन की पूजा द्वारा मन से मुक्ति संभव ही नहीं ।

माना निरंकार ने हंस (आत्मां) को भरमाने हेतू यह त्रिलौकी का क्रूर महापाश, मोहिणी माया रूपी बंधन रच डाला । इसमें उलझ कर हंस मोह माया वषिभूत हुआ अपना रूप खो के आत्म रूप में परिवर्तित हो गया । (हंसा जब मन माया में लिप्त हो जाता है तो वह अपना निज रूप भूल के मन के अधीन हुआ सारे कार्य करता है । इस हंसा रूप को आत्मां कहते हैं)। इस हंस आत्मां की सत्ता, निराकार और मन से उपर की सत्ता होने से, निराकार व मन माया से श्रेष्ठ है । निराकार इस पे कोई हुक्म ही नहीं चला सकता जब तक हम कोई जगत वस्तू की कामना व ईच्छा अर्थात कोई मांग नहीं करते । क्योंकि निराकार ने हंस आत्मां को लेते समय उसकी सारी सुख सुविधाओं को उपलब्ध करवाने का सतपुरूष जी को वचन दिया है । वचन बद्ध होने के कारण यह सारी सुविधाएं उन्हें चाहे अनचाहे प्रदान करनी ही पड़ती हैं। मानव जैसे ही काया में आता है तो माया वषिभूत मांगें ही मांगें करता है । एक मांग मांगी ही नहीं कि निराकार मन रूप में उत्पन्न होके आत्मां की सुरति (चेतना) को अपने वषिभूत कर लेता है और इसी निरंकार की मोहिणी माया वषिभूत हुई आत्मां अंतहीन जन्म मरन के चक्रव्यूह में फंस जाती है । चार आयोजन कौड़ी समय बीतने को है और ये आत्मांऐ इसी अंतहीन महाकाल के चक्र में फंसी हुई हैं । जो मानव बिना मांग के अपने ईष्ट को भजता है वोहि इस माया जाल के चक्र से निकल कर सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जा कर अपने मूल अर्थात मौक्ष को पाता है ।

जगत गुरूजन तो निराकार और उनके मन रूप को ना जाने क्या क्या कह के कौसते रहते हैं जो सर्वथा उचित नहीं है, जब हम क्रौध वश इस मन को भला बुरा कहते हैं, ये क्रौध भी निरंकार का महा काल रूपी जाल है जिसमें हम और उलझते ही चले जाते हैं । हम्हें तो इस काल रूपी बंधन को तज, निज को जानने की तरफ चलना है। मोह–माया आशा–तृष्णा छोड़ खाली हो हम्हें तो उनके काल जाल के मोहिणी रूप से स्वयं को बचा के सहज मार्ग की भक्ति की तरफ़ आगे बड़ना है। अगर मानव बिना स्वार्थ और मांग के किसी भी रूप में निराकार की भक्ति करता है तो उस को वह अपने दायरे में रख ही नहीं सकते । ऐसे जीव आत्मां को सहज सत मार्ग अर्थात पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जाने से वह रोक ही नहीं सकते, नां ही कोई बाधा डाल सकते हैं, क्योंकि भगवान निराकार भी सतपुरूष जी से वचनबद्ध हैं जिसकी उनके लिए भी अवहेलना करना असंभव है ।

निराकार स्वयं अपने वरदान रूपी सताहरां आयोजन कौड़ी काल के लिए त्रिलौकी संचालन को विवश हैं जिससे वह चाह कर भी मुक्त नहीं हो सकते। अभी तो केवल तीन आयोजन कौड़ी समय ही बीता है, चौथी आयोजन कौड़ी काल अभी चल रहा है। इतने लम्बे काल की विवशता, फिर भी जीव को जीने के लिए नाना प्रकार के साधन बिना भेद भाव के उपलब्ध करवाना। उन्होंने मानव के लिए दो मार्ग भी निर्धारित कर दिए, एक तो मोहिणी माया रूपी मार्ग त्रिलौकी और दूसरा इस माया को तज कर निज रूप को जानने का मार्ग सहज सत मार्ग है। मानव दोनों में से कोई भी मार्ग अपनाने में स्वतंत्र है । अब मानव इसी माया को ही चुने तो किसको दोषी कहें ? मन को तो इसके ऊपर की सत्ता अर्थात 'सार–सब्द' द्वारा ही प्रभावहीन कर सकते हैं यानि मुक्त हो सकते हैं। इसलिए जब तक हम पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी नहीं जाते, तब तक 'सार–सब्द' नहीं मिलता और बिन 'सार–सब्द' मौक्ष संभव नहीं। इसी कारण मानव जन्म को दुर्लभ और अनमोल कहा गया। आत्म को ये जन्म एक प्रलयः काल (यानि आठ अरब चौंसठ करोड़ साल) में केवल सात बार मिलता है मगर मानव मोह माया की निंद्रा से जागना ही नहीं चाहता। सहज मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस मानव को इसी नींद से जगाने का प्रयत्न करने हेतु जग में आते रहते हैं। सतगुरू 'वे हूँ परमहँस जी'' वर्तमान काल में जग को जगाने हेतु प्रयासरत हैं।

निरति, श्वांस मन से मिलने पर (श्रवण शक्ति) सुनने की क्षमता आ जाती है। निरति आत्मां से मिल कर सुरति बनती है यह सुरति से ही हम बोल पाते हैं। श्वांसा का महत्व इतना अधिक है कि हमारा जीवन और मृत्यु काल (श्वांसा) से बंधा है, श्वांसा जो हम ले रहे हैं इसे निरति कहते हैं। यह निरति इतनी सामर्थशाली होती है कि अपने जीव की पहचान कर के उसके नाक द्वारा प्रवेश कर सुश्मिणा को पार कर के आज्ञा चक्र और ह्रदय चक्र से होती हुई नीचे की ओर नाभी तक जाती है। आज्ञा चक्र में आत्मां चेतन होती है और मन में निरति मिलते ही मूल सुरति में परिवर्तित हो जाती है। सुश्मिना में निराकार का वास होता है जो सुत्र (कफ़)

रूप में भक्ति में बाधक होता है, काफ़ी लम्बे प्रयत्न से ही साधक सुश्मिणा को पार करके आज्ञा चक्र में प्रवेश करते हैं, आज्ञा चक्र से थोड़ा उपर सतगुरू जी का वास होता है सुश्मिणा पार करने में कंई लोगों को छे मास से एक साल तक का समय लग जाता है । निराकार दायरे के अधिकतर साधक जन इस सुश्मिना को पार ना कर पाने के कारण या यहां लाल रंग का प्रकाश देखने पर इसे निराकार का दर्शन मान कर साधना त्याग देते हैं और इसे निराकार का सुन्न रूप दर्शन मान लेते हैं जो सत्य से परे है, कोई कोई बिरला ही निराकार दायरे का भक्त सुश्मिना को पार कर पाता है ।

कंई साधक जन तो सुश्मिना मध्य में सुन्न (अंधकार) के पार ना होने पर सुन्न के ही अंधकार में बादलों को देख भगवान दर्श मान लेते हैं या ध्यान विधि छोड़ देते हैं, निराकार सत्ता में तो भगत/साधक सुश्मिना को पार कर के त्रिकुटि से होता हुआ सहशास्त्र से होकर ही आज्ञा–चक्र (दश्म द्वार) में पहुंचता है। बिना ईंगला पिंगला सम किए हुए सुश्मिन द्वार ही नहीं खुलता, जिसके बिना आज्ञा–चक्र में जाया ही नहीं जा सकता। ध्यान और आज्ञा चक्र में जाने पर ईंगला पिंगला स्वयं सम तो होती ही नहीं। मानव को कौरा ध्यान (बिना ईंगला पिंगला सम किए) अंहकारी व अहम से युक्त कर देता है। ईंगला पिंगला सम ध्यान से नहीं हो सकती, हां पर सुरतिवान साधक जब आत्मिक हो जाता है तब उसकी ईंगला पिंगला सदा सम रहती है। सततः प्रयत्नशील साधक ही सुश्मिना से पार जा कर आज्ञा चक्र में पहुंचते हैं। निराकार सत्ता के भगत तो छेः मास से अधिक समय बाद ही सुश्मिना पार कर पाते हैं परन्तु उच्च अवस्था प्राप्त साधक जन इसे तीन से छेः मास में पार कर लेते हैं। निरंकार के दर्शन अपने–अपने आराध्य के रूप में पाते हैं। (संसारी प्राणी जिस–जिस रूप को भजते हैं निरंकार भगवान उस रूप में अपने साधकों को दर्शन देते हैं)। निराकार के दायरे में सहशास्त्र जाए बिना निराकार साक्षात्कार संभव ही नहीं है।

सहज सत मार्ग अथ्वा परा भक्ति के अनुगामी आज्ञा चक्र में अपने पूर्ण सतगुरू परमहंस जी के साक्षात्कार पा कर उनके संग आगे के भक्ति मार्ग की ओर सुरत कमल में ले जाते हैं। जहां पर गुरू के पांव अदृष्य हो जाते हैं और सतपुरूष जी के पांव आ जाते हैं और साहिब सतपुरूष जी के दर्शन सतगुरू परमहंस रूप में होते हैं। बिन सतगुरू परमहंस जी की कृपा के साधक जन सुरत कमल जा ही नहीं सकते । सहज सत मार्ग के अनुयाई सतगुरू परमहंस जी द्वारा प्रदान 'सार–सब्द' को इस सुरति से ध्याते ही मूल–सुरति प्राप्त करते हैं जो मन माया के कर्म जाल से मुक्ति का साधन बनती है। 'सार–सब्द' सिमरन से ही मन जाल कटता है और मन से पार होते ही मूल–सुरति से साधक आज्ञा चक्र में सतगुरू परमहंस जी के दर्श पाकर निहाल होते हैं।

ईंगला पिंगला जब तक दोनों नासिका से स्वांस ना चल रहा हो तो जान लो सहज सत मार्ग की भक्ति अर्थात हम साहिब सतपुरूष जी की सत्ता की ओर नहीं बड़ रहे ।

यह ईंगला पिंगला (दोनों नासिका से बिना बाधा के स्वांसा का चलना) अगर हर समय सम ना रहे तो एक बात जो यथार्थ है कि हमारी सहज सत मार्ग की भक्ति अभी शुरू ही नहीं हुई अर्थात हम निराकार की भक्ति के दायरे में ही हैं । यह ईंगला पिंगला कैसे सम की जाती है, ये ज्ञान सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जाये बिना नहीं मिल सकता ।

पूर्ण सतगुरू 'वे हूँ परमहँस जी'' की महिमां का गुनगाण क्या गायें, पिछले चार वर्षों से उनकी ईंगला पिंगला जाग्रत अवस्था में सदा सम रहती है और सुप्त अवस्था में भी सम रहती है। पर एक बार जब वह रात को लगभग पौने तीन बजे नींद में थे तो उनकी ईंगला पिंगला सम ना होने की वजह से वे एकदम से उठ गये और उसी वक्त उसे सम किया। सत्संगों में वह साधकों को अक्सर अपनी ईंगला पिंगला स्वांसा का निरीक्षण करने को कहते हैं और अपने साधकों को भी हर समय इसे सम रखने को प्रेरित करते हैं।

निराकार के गुरूआजन तो कभी इसका उल्लेख तक भी नहीं करते, परन्तु जो कोई भी योग या योग–मत की बात करते हैं, किन्तु सत्य ये है कि बिना ईंगला पिंगला सम किए ये अधूरा ही है और सब अंधेरे में ही प्रयासरत हैं। संसारिक योग पद्द्ति एक व्यायाम भर है जिस से शरीर हृष्ठ् पुष्ठ व निरोगी होता है । हां एक बात पे सभी सहमत हैं कि निरोग व हृष्ठ पुष्ठ कायाधारी भक्ति में आम सर्वसाधारण जन से ज्यादा तीव्रता से उन्नति कर पाते हैं मगर कोई कोई ही भक्ति मार्ग की और अग्रसित होता है । योग–मत तो, ईंगला पिंगला सम ना हो, तो श्वांसा आज्ञा चक्र तक जा ही नहीं पाता, अर्थात आज्ञा चक्र जाऐ बिना सतगुरू परमहंस जी के दर्श संभव ही नहीं और सतगुरू परमहंस जी के दर्श बिना मौक्ष नहीं मिल सकता। सहज मार्ग भक्ति की पहली पहचान ईंगला पिंगला हर पल सम रहनी चाहिए, अगर ये सम ना हो पाए तो आप तब तक निराकार के महांपाष रूपी दायरे से पार नहीं जा सकते, जब तक यह दायरा ना छूटे। इस अवस्था तक भी सहज मार्ग की भक्ति का प्रारम्भ नहीं माना जा सकता ।

जगत माया की सर्गुण या निर्गुण भक्ति करने वाले गुरूजन तो स्वंय माया से ग्रसित हैं और वे तो मन रूप की ही पूजा व सेव करते हैं और इसी को भला बुरा भी कहते हैं। संसारियों को मन की ना मानने व इससे दूर रहने के उपदेश देते हैं। मन रूप की पूजा करते हुए मन से छुटकारा कैसे सम्भव हो सकता है। जब भी कोई पूर्ण संत सतलोक से होकर व सतपुरूष जी का साक्षात्कार कर के आऐगा वोहि संपूर्ण सतगुरू परमहंस कहलायेगा। वो ही सतपुरूष जी से 'सार–सब्द' की दात सुरति से पाकर जग जीव आत्मांओं के कल्याण हेतु प्रयासरत रहेगा अर्थात इस दात को बांटेगा । पूर्ण संत सतगुरू परमहंस मानवों को ये दात सुरति द्वारा शरीर को ना देकर मन की कैद में 'आत्म–सुरति' को देते हैं ।

'सार सब्द' कहीं भी किसी ग्रंथ व पुस्तक में वर्णित नहीं होता । इसे लिखा व बोला नहीं जा सकता, इसीलिए इसे 'सब्द–विदेह' भी कहते हैं। 'सार–सब्द' तो मूलतः सतपुरूष साहिब जी की ही सुरति है। सुरति सूं आत्म–सुरति चेतन हो कर मन माया के बंधन से मुक्त हो आत्मां अपने मूल हंसा–रूप को पा जाती हैं। सुरति सूं 'हंसा' सब कुछ कर, बोल व सुन सकती है, चहुं ओर देख सकती है और सुरति सूं ही चलकर सतलोक पहुंचती है। सुरति ही हंसा की भाषा और सुरति का ही सतलोक चहुं ओर पसार है। 'सार सब्द' में साहिब सतपुरूष जी खुद निवास करते हैं। बिन पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की कृपा के 'सार–सब्द' नहीं मिलता। इस दात से आत्मां मन–माया बंधन से मुक्त होकर 'हंसा' बनती है और बिन हंसा बने मौक्ष मिल ही नहीं सकता, अर्थात सहज सत मार्ग भक्ति बिन सतगुरू परमहंस जी की कृपा के तो मौक्ष संभव ही नहीं ।

——

4 सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की संक्षिप्त जीवनी

पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' का जन्म दिनांक 10 मई, 1942 को हुआ। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' का भक्ति में अपनी अल्प आयु (लगभग नौ वर्ष) से ही जुड़ाव हो गया था। निराकार की भक्ति में तभी से वह इतने लीन हुए कि हर काम को निराकार भगवान को अर्पित कर के करते थे। छोटी उम्र में ही उनके पिता जी लम्बी बिमारी के उपरांत चल बसे। उस वक्त उनकी आयू लगभग 7–8 वर्ष की थी। परिवारिक जीविका का कोई और साधन नहीं था। पिता जी की बिमारी दौरान ही उन्होंने टिकियां टाफियां जम्मू बस अड्डे व रघुनाथ मंदिर के मुख्य द्वार के सामने गा गा कर बेचा करते थे । इस दौरान इतनी छोटी उम्र में वह रोज़ाना दस से 15 किलोमीटर पैदल चला करते थे । जो भी आय होती वह उसे अपनी माता जी को घर के खर्चे के लिए सौंप देते । वह अक्सर प्रभात बेला में ही घर से निकल पड़ते, सारा दिन भूखे प्यासे रहते और सांझ ढलने उपरांत सारा सामान बेच के ही घर लौटते। सुबह का खाया और फिर शाम को ही कुछ खाने को मिलता । एक बड़ी अहम व विचित्र घटना जिसका सतगुरू परमहंस जी अक्सर ज़िक्र करते हैं कि उनके माता पिता ने कभी भी मंदिर, मस्जिद व गुरूद्वारे जा के माथा टेकने को नहीं बोला, हालांकि उनकी माता जी जय राम–जय राम का सिमरन अक्सर करती थी। सतगुरू परमहंस जी की वाणी अनुसार प्रत्येक माता पिता मंदिर, मस्जिद व अपने अपने पूजा स्थलों में जाके माथा टेकने व सजदे करने के लिए कहते हैं जो अपने आप में मात्र एक सिखावट भर ही है, यही सिखावट मानव की आध्यात्म उन्नति में बाधा बनती है। मानव सारा जीवन सिखावट पर ही तो चलता है और निज आध्यात्मिक अनुभव लेष मात्र भी प्राप्त नहीं कर पाता। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' जी अपने माता पिता का कौटि कौटि धन्यवाद करते हैं कि उन्होंने उन्हें कोई सिखावट नहीं दी, जिससे वह आध्यात्म की हर प्रकाष्ठा को प्राप्त हुए ।

जीवन भर भक्ति करते हुए व घौर ग़रीबी का जीवन जीते हुए भी उनकी किसी प्रकार की कोई सांसारिक ईच्छा नहीं हुई अर्थात निस्वार्थ भाव से ही वह उनको समर्पित रहे। यहां तक कि उन्हें बहुत बार बिना भौजन के भूखे भी रहना पड़ा। अधिकांश वक्त तो पेट भर खाना खाया ही नहीं। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की प्रारम्भिक शीक्षा श्रीनगर स्थित अनाथ आश्रम से प्रारम्भ हुई। निस्वार्थ भक्ति के फलस्वरूप वह निरंकार के दायरे में भी भक्ति की परिकाष्ठा पर पहुंचे । जिसमें उन्होंने अनेकों बार आध्यात्मिक सफर/सैल की तथा बहुत बार स्वर्ग–नर्क, सुन्न व महांसुन्न लोकों यहां तक कि 'सहशास्त्र लोक' की भी यात्राएं की। ''वे नाम परमहँस जी'' ने स्वर्ग में ही अपने पूर्व के तीनों गुरूओं को देखा और पूछा कि जब आप के पास मौक्ष दात नहीं थी तो कैसे आपने मुझे अपने तक ही रोके रखा ? ऐसा सुनने के उपरान्त गुरूजनों ने कहा कि हमारी सीमा की उच्चतम पराकाष्ठा तक पहुंचने के उपरान्त भी कोई तुम्हारा निज–स्वार्थ व ईच्छा का ना होना, जिसके फलस्वरूप हमारे पास भी शेष कुछ नहीं रहता जो कि आगे प्रदान किया जाए अर्थात यहां तक की उच्च अवस्थाओं के अनुभव ही तो तुम्हारे अगामी मार्ग में सहायक बने। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' ने शब्द लोक से गुजरते हुए ईस्लाम के आखिरी नबी को भी अपने सफर के दौरान देखा । वे शब्द लोक में बाहिर से साधारण दिखने वाली और अंदर से अति सुन्दर व सुख साधन से संपन कुटिया में निवास करते हैं । उनकी कुटिया के दोनों ओर दरवाजे व हरा भरा बग़ीचा है तथा वह स्वर्ग में कहीं भी आ जा सकते हैं । इस सफ़र के दौरान वे सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को बड़ी आस भरी निग़ाह से देख रहे थे, सतगुरू परमहंस जी ने उनकी ओर देखा और अपने सफ़र की ओर आगे बड़ गये। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' पिछले 25 वर्षों से भी अधिक समय से निरंतर ब्रह्मचर्य का जीवन ही व्यतीत कर रहे हैं। वह अपने घर में रहते हुए भी परिवार से अलग, घर में ही बनी हुई कुटिया में जीवन यापन करते और भक्ति में ही लीन रहते हैं ।

सन् 1978 की बात है उस वक्त सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' निराकार की ही भक्ति में लीन रहते थे, वह अक्सर रात को सब घर वालों के सोने के उपरांत भक्ति साधना में लीन हो जाते और उनकी सारी रात साधना में ही बीत जाती थी। एक शाम राजौरी वार्ड नः 10, अपने घर में बैठे थे तो देखते हैं कि घर की छत के मध्य में एक लकड़ी का बाला (बल्ली) जो सारे का सारा छत थामे हुए था और अन्य कोई सहारा दो मंजिल छत को संभालने का नहीं था, के पास एक श्वेत सूर्य नुमा जौत उस बाले के इर्द–गिर्द फैली हुई थी और बाला दीवार से पूरी तरहं से कटा हुआ हवा में ही था, सारा छत उसी जोत पर ही टिका हुआ था। इसके उपरांत ''वे नाम परमहँस जी'' ने छत छे मास बाद ठीक करवाया तब तक सारा परिवार उसी घर में रहता रहा। जब लम्बे समय बाद छत का बाला बदलने का काम शुरू किया तो छत ठीक करने वाले

कारीगर ने देखा कि बाला तो एक तरफ से पूर्णतया कटा हुआ है जिसको दीमक ने पूरी तरहं से खा दिया था, वह बोला कि ये बाला तो पूरी तरहं से सड़ गया है यह मकान तो कभी भी गिर सकता था, कैसे नहीं गिरा ? समझ नहीं आ रहा कि सारा छत हवा में ही कैसे खड़ा रहा।

अगले दिन ध्यान में जा कर सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' ने देखा कि स्वयं निराकार भगवान ने जौत स्वरूप बन कर पूरे छत को थामा हुआ था । सतगुरू परमहंस जी के संग एक अदभुत घटना शादी के छेः साल बाद फिर घटी। उनके घर के समीप एक मस्जिद में एक मौलवी जो कि तांत्रिक काली विद्याओं का ज्ञाता जो प्रति दिन नमाज पढ़ता था । लंबी बिमारी के बाद वह चल बसा । वह मृत्यु के बाद भी लोगों को परेशान करता था, बहुत से लोगों को वह बार–बार दिखाई भी दिया। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की धर्म पत्नि श्राविका जी को मौलवी कंई बार घर में दिखाई दिया । कंई बार सतगुरू परमहंस जी से उन्होंने इस बात का ज़िक्र भी किया। सतगुरू परमहंस जी एक दिन सुबह प्रभात बेला में उठ कर क्या देखते हैं कि मौलवी दरवाजे में ही खड़ा है। मौलवी को दरवाजे में खड़ा देख कर उन्होंने पूछा, तूं यहां क्या कर रहा है और सब को क्यूं परेशान करता है ? वह सतगुरू परमहंस जी की तरफ़ कुछ आस भरी निगाह से देखता रहा। कुछ समय उपरांत सतगुरू परमहंस जी बोले, तेरा उद्धार नहीं हो सकता, तूं आज के बाद यहां आस–पास कहीं भी दिखाई मत देना। ठीक वैसा ही हुआ फिर वह श्राविका जी के साथ–साथ किसी को भी दौबारा दिखाई नहीं दिया।

इस घटना–क्रम के बाद श्राविका जी पूर्णताः से ठीक ना हो पाई और वह अपने आप को कमज़ोर व दुर्बल महसूस करने लगी । एक बार श्राविका जी की माता जी ने सतगुरू परमहंस जी से कहा, आप किसी अच्छे तांत्रिक व सयाने को क्यूं नहीं दिखाते ? सतगुरू परमहंस जी बोले मुझे अपने मालिक पर पूर्ण आस्था है, मैं तांत्रिक शक्तियों और ऋद्धि–सिद्धियों के हक में नहीं हूं क्योंकि ये आध्यात्म से मानव को दूर करके भ्रमित कर देती हैं। इन भ्रांतियों में फंसा हुआ मानव, मालिक की भक्ति से दूर हो कर अपना जीवन नष्ट कर देता है। इतना सुनने के उपरांत फिर किसी ने इस ओर जाने की नहीं सोची ।

जब ''वे नाम परमहँस जी'' की धर्म पत्नि बिमार थी तब उनके परिवार में एक पांच साल का पुत्र और तीन साल की पुत्री थी, काफ़ी ईलाज डाक्टरों से करवाया पर वह ठीक ना हो रही थी। डाक्टर 'शर्मा' उस वक्त वहां के मशहूर डाक्टर थे जो उनका ईलाज कर रहे थे, उनके व दूसरे डाक्टरों के अनुसार उनके बचने की कोई सम्भावना नहीं थी। इसलिए उन्होंने परिवार को श्राविका जी की सेवा कर लेने को कहा। ध्यान में जाने पर निराकार भगवान फिर जौत रूप प्रकट हो कर रात को सतगुरू परमहंस जी से बोले, तूं स्वयं इसको क्यूं नहीं ठीक कर लेता ? सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' बोले मैं कैसे ठीक करूं ? तूं कर सकता है ! इतना कह कर निराकार भगवान अदृष्य हो गये।

अगली सुबह ''वे नाम परमहँस जी'' की धर्म पत्नि रोग ग्रस्त पीड़ा में बोली, अब और सहा नहीं जाता । इतना सुनते ही सतगुरू परमहंस जी ने बच्चों से 'लौटे' में जल भर लाने को कहा, जल का 'लौटा' हाथ में लिए दायें हाथ की करधनी ऊंगली से जल को स्पर्श कर निराकार भगवान से अमृत बनाने का आग्रह किया, सतगुरू परमहंस जी ने तब पहली बार अमृत बनाया और अपनी धर्म पत्नि को नहाने के लिए दिया। इसके पश्चात देखते ही देखते दो दिन में ही वह पूर्णतः ऐसे स्वस्थ हो गई जैसे वह कभी बिमार ही ना हों ।

अप्रैल 2016 की बात है, श्राविका जी थोड़ी बुखार से ग्रस्त रहने लगी । इस बीच कभी कभार वे ठीक महसूस करती और फिर बुख़ार आ जाता । जिस कारण वह अक्सर कमज़ोर महसूस करती। एक रात उनकी सेहत बहुत ज्यादा बिगड़ गई, उनके परिवार में दो बेटे और दोनों ही बहुऐं सभी डाक्टर हैं जो उनकी तीमारदारी में लगे थे। सारे डाक्टरी ईलाज करने के उपरांत व जीवन रक्षक इंजैक्शन देने के बाद भी उनकी सेहत लगातार बिगड़ती चली गई। सब को ऐसा लगने लगा कि उनका अंतिम समय जैसे आ गया हो, ऐसा होने पर रात को लगभग दो बजे के आसपास उनके बेटे ने सतगुरू परमहंस जी की कुटिया में जाकर उन्हें श्राविका जी की अवस्था से अवगत कराया। सतगुरू परमहंस जी उनके साथ श्राविका जी के पास आए तो देखा, उनके श्वास बहुत धीमें हो चुके थे व ह्रदय धड़कन भी असामान्य व प्राण त्यागने की सी अवस्था थी। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' ने एक 'लौटे' में जल ले के शुद्ध अमृत बनाया और श्राविका जी को उठा कर अमृत सेवन करवाया। अमृत पीते ही एकदम से वो शांत व अचेत हो गई, घर वालों ने समझा कि ये अब चल बसी हैं। सतगुरू परमहंस जी बोले सभी अपने–अपने कमरों में जाओ और सो जाओ, सुबह देखते हैं । सतगुरू परमहंस जी के कहने पर सभी अपने कमरों में तो चले गये पर सबका ध्यान इसी तरफ़ रहा। अगली प्रातः जल्दी ही सब उनके पास पहुंचे। उन्होंने एक अदभुत चमत्कार देखा कि श्राविका जी एक गहरी नींद व मुस्कान लिए सो रही थीं, सुबह आठ बजे जब वह नींद से जागीं तो उनके हाव भाव से लग ही नहीं रहा था कि रात के वक्त उनके साथ इतना कुछ हुआ था । कुछ ही समय उपरांत वह अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गई।

––

5 अमृत और शुद्ध अमृत में भेद

सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' से साधकों द्वारा अति जिज्ञासा व उत्सुक्ता दिखाने पर, सतगुरू परमहंस जी बोले कि श्राविका जी आज भी सारे कार्य सेवा भाव से करने के साथ–साथ बड़ी श्रद्धावान भी हैं। इसी कारण मेरी सुरति में भाव उभरने भर से ही इनकी आयू लंबी और प्राण वापिस आ गये, मुझे तो कुछ भी कहने या करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। साथ ही सतगुरू परमहंस जी ने कहा निराकार दायरे के प्रचण्ड गुरूजन भी जो 'अमृत' बनाते हैं वह भी महान होता है और सभी प्रकार के दुष्प्रभाव और बिमारियों को ठीक करता है। परन्तु किसी के प्राण वापसी और आयु वृद्धी उनसे संभव नहीं हो सकती। मगर सहज सत्त मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस तो 'शुद्ध–अमृत' प्रदान करते हैं जो जीवन दान अर्थात प्राण भी वापिस लाते हैं, क्योंकि सहज सत्त मार्ग की सत्ता निरंकार (मन माया) से आगे की सतलोक सत्ता होने से निरंकार उनके वचनों अनुसार ही कार्य करता अर्थात मान देता है। सतगुरू परमहंस जी के जीवन में एकाएक जो आध्यात्मिक सफ़रनामा बिन शरीर सुरति रूप में निराकार की भक्ति में ही हुआ। हुआ यूं कि सतगुरू परमहंस जी की अमाशय में एक जख़्म से लगातार खून का रिस्ना जारी रहने के कारण उन्हें हस्पताल में भरती होना पड़ा। दो दिन बाद दिनांक 13 अगस्त 1998 की बात है उनकी सेहत अचानक से काफी ज्यादा बिगड़ गई। सतगुरू परमहंस जी को फूड और आक्सीजन की पाईपें लगीं थी, उनके सपुत्र भी उनके पास ही थे। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' ने उनसे कहा **''मैं अब शरीर त्याग रहा हूं''** इतना कह कर खुद ही उन्होंने एकदम ही दोनों पाइपें बाहर निकाल दीं और वहीं प्राण त्याग दिए जिसके पश्चात डाक्टर व स्टाफ उनका उपचार करने में लग गये। सतगुरू परमहंस जी आत्म (हंसा) रूप में एक जौत संग मीन चाल से दो सुरंगों के समक्ष जा के रूके जहां दोनों सुरंगों से आत्मांए गुज़र रही थी। सतगुरू परमहंस जी एक 'महांसूर्य' के समकक्ष जा रूके जो स्वयं भगवान निराकार का ही स्वरूप था जिन्हे उन्होंने हाथ जोड़ कर बड़े प्यार व श्रद्धा भाव से झुक कर नमस्कार किया।

भगवान **निराकार का निज सूर्य रूप** चित्र इस ग्रंथ के प्रारम्भ में देखें। निराकार भगवान का सूर्य रूप अंदर से नीला, फिर हरा, फिर पीला, लाल, सुनहरी, काला, हर ओर से सुन्नरूप फैला था। कुछ देर तक निराकार भगवान सतगुरू जी को देखते रहे फिर बोले अभी तो तुझे जीवों के कल्याण हेतू बहुत कार्य करने हैं, इसलिए वापिस जाओ और इतना कह कर वे अंतरध्यान हो गये। जब वे वापिस लौटे तो हर तरफ़ सुन्न ही सुन्न था, उस एकांत में उन्हें अपना शरीर दिखा जिसमें वे वापिस प्रवेश कर गये । अगले ही पल सतगुरू जी देखते हैं कि सभी डाक्टर और स्टाफ वाले उनके शरीर को मरा हुआ समझ कर ज़ोर–ज़ोर से छाती को दबा रहे थे अर्थात पम्प कर रहे थे। ये सब देखने के साथ ही वे चेतन अवस्था में आ गये ।

6 मोत के बाद का सफ़र

इस घटना उपरांत सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को आगे के सफ़रनामों के अनुभव से मृत्यु के उपरांत आत्म का सफ़र में दो सुरंगों (गुफ़ाओं) को जानने का मौका मिला जिसे उन्होंने इन शब्दों में यूं व्यक्त किया :–

इन्सान शरीर त्यागने के बाद अपने मोह और तृष्णा अनुसार कष्ट पाता है, जो मानव, जीवन भर परिवार मोह में फंसा, अच्छे कर्मों से दूर रहता है वह मरने के 24 घंटे बाद तक अपने परिवार व शरीर के पास होता है, दूसरा वो इन्सान जो परिवार मोह में फंसा जीवन भर ग़ल्त कर्मों से धन (रिश्वत, छल और कपट) कमाने वाला 48 घण्टों तक परिवार और मृत शरीर के पास रहता है और तीसरा, वह इन्सान जो परिवार का पोषण तो करता रहा पर छल कपट की कमाई और दूसरों को शारीरिक कष्ट और अपने धन और बल से समाज को परेशान करने वाला बहत्तर घंटे या उस से भी ज्यादा समय तक परिवार से दूर अपने मृत शरीर की चिता या कब्र के पास ही होता है । इससे ज्यादा घौर वृति वाला प्रेत योनि में कम से कम दौ हज़ार वर्ष से अधिक वर्षों तक अपनों के आस–पास घौर कष्ट में रहता है।

पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार :–

हे जीवित मानवों हर मानव के साथ साथ दस दस प्रेत जुड़े रहते हैं जो आप सब की मृत हुई ईक्कहतर पीढ़ीयों के सम्बंधी ही होते हैं । मृत्यु उपरांत जिन–जिन सम्बंधियों के चित्र घरों में लगाऐ, वोही आप से प्रेत रूप में जुड़ जाते हैं । इतना ही नहीं ये प्रेत आप संग खाते पीते, रहते व कुछ ऐसे भी हैं जो भौग संभौग में भी साथ होते हैं । जिस–जिस ने भी अपने मृत प्रीय के चित्र पे माला चड़ाई, वह प्रेत रूप में जीवन भर उसी के ही संग हो लेता है । इन प्रेतों के कारण ही तो मानव अत्यधिक खाता है और भांती भांती के हानीकारक सेवन पदार्थ जो की लज़ीज़ व लच्छे दार खाने, इनके स्वाद वश खाता है । इसी स्वाद और मज़े की ख़ातिर वे मनुष्य से ग़ल्तियों पे ग़ल्ती करवाते हैं, जैसे एक मधुमेह रोगी को ये स्वाद व लज़ीज़ मिठाईयां खाने को मजबूर कर देते है और जैसे हाज़मा ख़राब व्यक़्ति से चने पूरी, मांस और मंदिरा नां जाने क्या क्या सेवन करवा देते हैं। इनके वशीभूत हुआ मानव ये सब करने को मजबूर हो जाता है। करवाते तो ये प्रेत ही हैं किन्तु भुगतना इस जीव को ही पड़ता है ।

विचित्र विडम्बना देखें कि ये प्रेत काया भी निरंकार का मन रूप ही है । ये अति कष्ट दायक योनि है और नब्बे प्रतिशत मानव मृत्यू उपरांत प्रेत ही बनते हैं । मांसाहारी, शराबी और अतातायी मानव इसी श्रेणी में आते हैं, तो हे मानव, तूं कहां खड़ा है

और कहां जाएगा, समझ आ रहा है क्या ? पर गहरी नींद में सोया तूं जानता समझता हुआ भी बदलने को तैयार नहीं ।

नोट :– (जिन पूर्व परिवारिक मृत मानवों को जन्म या स्वर्ग नर्क में स्थान मिल जाता है। अर्थात अपने गणतव्य को पा जाते हैं वो जीव आत्मांए वापिस नहीं आती। आते तो वो हैं जो अताताई प्रेत योनि में होते हैं) ।

जब इन्सान मृत्यु समीप होता है तो उसे दो तरहं के यम लेने आते हैं, प्रायः सौ में से नब्बे इन्सान इस काल में प्रेत योनि में जाते हैं। इन्हें लेने भयंकर आकृति के दूत आते हैं जो मृत्यु काल से कंई दिन या मास पहले इन्हें दिखते व डराते हैं। ऐसे मानव मौत से अति भयभीत होते हैं और अक्सर यम प्रेत या भयंकर आकृति दिखने की बात करते हैं। ऐसे मानव मरते समय में भी अति कष्ट में होने पर भी मरना नहीं चाहते ।

उपरोक्त चारों अवस्था वाले मोह वश शरीर छोड़ते नहीं तो यह डरावने रूप वाले यम दूत चाबुक की पीड़ादायी–मार, मार कर प्राणों को अपने साथ खींच के ले जाते हैं। इतनी असहनीय पीड़ा पर भी उपरोक्त प्राणी अपनी काया के आस–पास कर्मों व लालसा युक्त घौर तड़पना व पीड़ा सहने को बाधित होते हैं। महां अज्ञानता वश मोह वशीभूत हुई आत्मां भी प्राणों (मनरूप) संग चल पड़ती है और मृत शरीर आत्मां वहीन हुआ निर्जीव हो जाता है। बाकी उपरोक्त अवस्था वाले मानव घौर कष्ट युक्त कौड़ों की पीड़ा सहते हुए अगले सफ़र की ओर चल पड़ते हैं। यहां सफर उपरांत दो अंधेरी गुफाओं (सुरंग) के पास पहुंचते हैं । एक गुफ़ा उपरोक्त अवस्था वालों के लिए जहां उन्हें घौर असहनीय कौड़ों की मार खाते हुए खींच के ले जाया जाता है, इसके उपरांत गुफ़ा खत्म होने पर लेखा जोखा (कर्मों का हिसाब) उपरांत कर्म फल अनुसार नरक या भौग योनि (कुत्ता, बिल्ली, शेर, कीट वगैरा) में प्राणी कर्मों अनुसार जाता है ।

दूसरे, वो मानव जिन्होंने जग में प्रभु भक्ति (निरंकार के दायरे) अच्छे परोपकारी कर्म किये हुऐ होते हैं, को लेने वाले भद्र–जन सज्जन रूपी (जिन्हें फरिश्ते व देवता भी कहते हैं) दूत आते हैं । ऐसे अवस्था वाले मानव आदर सहित प्रफुल्लित अवस्था में मृत्यु सफर इन संग करने उपरांत, दूसरी गुफ़ा से अकेले सफर करते हुए स्वर्ग या सुन्न लोकों में कर्मों अनुसार सफ़र करते हैं। अपने कर्मों का फल भौगन उपरांत मृत्युलोक में राजयोग युक्त हुए जन्म लेते हैं। पहली गुफ़ा में घौर अंधेरा होने के कारण अति कष्ट होने

पर रूकते ही यम कौड़ों की मार, मार कर घसीटते हुए ले जाते हैं। दूसरी गुफ़ा में भी घौर अंधेरा होता है, पर यहां से गुजरने वाले अपने अपने कर्मों व भक्ति के फल अनुसार छोटी या बड़ी रोशनी युक्त होते हैं । जो उनकी सहायक बनती है व प्राणों संग गुफ़ा में गुज़रते समय सहायक होती है। दूसरी गुफ़ा से गुज़रने वाले स्वर्ग, सुन्न लोक, महा सुन्न व कोई कोई बिरला ही सहशास्त्र लोक में स्थान पाते हैं ।

एक बड़ी विचित्र विडंम्बना देखें, पहली गुफ़ा से गुज़रने वाली ऐसी असंख्य जीव आत्मांए भी हैं, जो सुरंग ख़त्म होने के उपरांत सैंकड़ों, हज़ारों और लाखों सालों से अपने अपने लेखे जोखे का इन्तज़ार कर रही हैं। कभी–कभी भयंकर आपदा में एक साथ हज़ारों लाखों लोग मृत्यु को प्राप्त होते हैं, उस काल में बहुत सी अताताई जीवों के लेखे जोखे का निपटारा नहीं होता। इनमें से ज्यादातर जीव आत्मांऐं हैं जो एक विशेष वर्ग से सम्बंधित होती हैं, (इस विषेश वर्ग में अक्सर सांतवें जन्मधारी मानवों की आत्मांऐं होती हैं। एक प्रलयः अथ्वा कयामत काल जो की आठ अरब चौंसठ करोड़ वर्ष का होता है, जिस में केवल सात बार ही मानव जन्म मिलते हैं, बाकी सारे काल में तो भुगत योनियों में आत्मांऐं रहती हैं) जिनका प्रलयः काल तक लेखा जोखा नहीं होता । उनको प्रलयः काल तक सब कुछ सहना पड़ता है और प्रलयः उपरांत ही उनका कर्मफल निस्तारा होता है। लाखों वर्षों से भूखे प्यासे तड़प–तड़प कर ये आत्मांए सिल व पत्थर बन गई हैं। ये वो अताताई जीव हैं जिन्होंने घौर अत्याचार व दुष्ट कर्म किए होते हैं, अच्छे कर्म लेष मात्र भी नहीं किए होते।

साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार हंसा को भूख प्यास नहीं लगती पर आत्म प्राणों के संग होने से ही उसे भूख प्यास लगती है । सहज मार्ग के अनुयायी जब शरीर छोड़ते हैं उन संग प्राण नहीं होते, वे आत्मिक अवस्था प्राप्त होने से प्राणों के पीछे नहीं जाते, प्राण संग तो संसारी माया युक्त मानवों की आत्मां चल पड़ती है । माया वश आत्मां अपने आप को प्राण समझ कर उस के पीछे हो लेती है । प्राण विहीण आत्मां ही हंसा कहलाती है। हंसा सर्दी, गर्मी, भूख, प्यास, सुख–दुख से सर्वदा मुक्त है। हंसा का इन सुरंगों से कोई लेना देना नहीं । हां निराकार के दायरे के प्राणियों का लेखा जोखा होने से पहले इन सुरंगों से गुज़रना पड़ता है। ऐसा भी नहीं कि पहली सुरंग से गुज़रने वाले सभी बुरे कर्मों से युक्त आत्मांए हों अपितु कुछ ऐसी भी जीव आत्मांए जिन्होंने श्रेष्ठ कर्म व निराकार की थोड़ी बहुत भक्ति की होती है, वे भी अपने अपने कर्मों के अनुसार छोटे बड़े प्रकाश युक्त पहली सुरंग से गुज़रने व लेखे जोखे उपरांत पित्र लोक में स्थान पाते हैं । पित्र लोक में कंई श्रेणियां होने से पित्र लोक की कंई उच्च कर्मों वाली आत्मांए दूसरी सुरंग से गुज़र कर भी आती हैं ।

सदैव–स्मरणिय श्रद्धेय सतगुरू''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार इस धरती के ईलावा भी लगभग पच्चपन सौ से अधिक ग्रह व नक्षत्र हैं, जिन पर जीव धारियों का वास है, इनमें सिद्ध लोक, गंधर्व व यक्ष लोक और, और भी अनगिनत ग्रहों पर जीवधारी/ प्राणियों_का वास है । इनकी काया मानव व जीव जन्तुओं से शक्ल और आकार में भिन्न हैं । धरती वासी इन्हें अन्तरिक्ष जीव (ऐलियन) कहते हैं । इनमें से कंई ग्रह–वासी मानसिक तरंगों और कंई रिद्धी–सिद्धियों से युक्त बहुत शक्तिशाली प्राणी हैं, पर ये सभी भौग लोक हैं । कर्म करने को यह धरती ही है, बाकी सारे भुगत लोक हैं जहां मानव आत्मांऐं कर्मफल भौगने हेतु ही आता है । मौक्ष अर्थात जन्म मरण से मुक्ति केवल इन धरती वासियों को ही मिल सकती है । इसी कारण हमारी धरती को पावन धरा व मौक्षदायनी भी कहा जाता है ।

हे मानव हमारी धरती, अण्ड–मण्ड व सारे का सारा ब्रह्मण्ड कंई बार प्रलयों में नष्ट हुआ और हर बार प्रलयः उपरांत फिर इसका सृजन हुआ और आगे भी यही क्रमः जारी है । निराकार भगवान हर बार प्रलयः के उपरांत इसका सृजन करते हैं जिस कारण उन्हें सृजनहारा भी कहते हैं । हर प्रलयः उपरांत, जीवन और अपने–अपने युग काल अनुसार निरंकार भगवान, राम व कृष्ण के रूप में इस धरा पर अवतरित होते रहे हैं और होते रहेंगे। हे मानवो, ये मानव काया अर्थात मौक्ष पाने का अवसर, जीव को एक प्रलयः काल में केवल सात बार ही मिलता है, बाकी सारा काल भुगत योनियों व दूसरे लोकों में कर्म के फल भौगने हेतु ही बीत जाता है । ये यौनियां व ग्रह कर्मफल भौगने हेतु ही रचे गये हैं।

एक प्रलयः काल में चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का दिन (अर्थात धरती पर जीवन काल) व इतने ही काल की अहोरात्री (अर्थात प्रलयः काल से पुनः संरचना तक की अवधी) होती है। इन आठ अरब चौंसठ करोड़ वर्षों में केवल सात बार ही मानव तन मिलता है । सात की महिमां निरंकार के दायरे में अपरम्पार है जैसे :– सात रंग, सात समुंद्र, सात द्वीप, सात स्वर्ग और सात नर्क, सात सुरतियां, सात (सप्त) ऋषि, सात राग़, सात काल, यहां तक कि निराकार के दायरे की शादियों में भी सात फेरे, सात वचन और सात जन्मों का साथ निभाने की कसमें खाई जाती हैं । इसी कारण मानव जन्म अत्यंत दुर्लभ व अनमोल कहा गया है, हे मानव, मोहिणी माया को तज, पूर्ण सतगुरू की शरणी जा और मौक्ष को प्राप्त कर । मौक्ष पाना ही तो तेरा ऐक मात्र लक्ष्य है, ये मानव जीवन बारम्बार मिलने वाला नहीं ।

बाकी प्राणी भी प्रेत, नर्क व भौग योनि कर्मो अनुसार भौगने के बाद मानव रूप में जन्म लेते हैं। हर मानव पिछले जन्म के कर्म साथ लिए जो उसके प्रालब्द होते हैं, नया जन्म लेता है। यह मानव जन्म से पहले गर्भ के समय आत्मां चेतन सुरति अवस्था में

मालिक साहिब सतपुरूष जी से पूर्ण जुड़ी होती है और अपना निज रूप हंसा को पहचानती है, हंसा (आत्मां) गर्भ में साहिब जी से ही केवल सुरति में बात करती है क्युंकि हसां और उस आनंदमयी मालिक से पूर्ण मिलन मौक्ष के लिए मानव शरीर धारण करती है। यहां एक भ्रम जगत गुरूओं द्वारा फैलाया गया है कि आत्मां गर्भ में अति कष्ट में होती है जो कि सर्वथा सत्य से परे है, आत्मां तो गर्भ में पूर्णतया सुरति वान होती है, तभी तो सत्तपुरूष जी से सुरति से वार्तालाप करती है। साहिब सत्तपुरूष जी तो स्वयं आनंद स्वरूपी हैं, इस कारण हे मानव, सुखपूर्ण व स्वस्थ अवस्था में ही संपूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जाकर तूं साहिब सत्तपुरूष जी से मिलकर निज को जान और मौक्ष को प्राप्त कर, क्योंकि सुख काल में उन्हें भजने से वे तेरी पुकार सुनेंगे। दुख की अवस्था में तो उन्हें सिमरा ही नहीं जा सकता और ना ही वे सुनते हैं क्योंकि दुख तो उनका स्वभाव नहीं, वे आनंदमयी हैं। पूर्व कर्म प्रालब्ध अनुसार, आत्मां राजा या रंक के घर जन्म लेती है, हर मानव व प्राणी उस मालिक का अंश होने से एक समान है, समरूपी है। जग माया की चकाचौंध हमें भ्रमित किए छोटा या बड़ा होने का भ्रम युक्त करती है ।

इस घटना के उपरांत ''वे नाम परमहँस जी'' की भक्ति साधना में अनेकों बार मीन व पपील मार्ग से निराकार सीमा के दायरे में अध्यात्मिक यात्राऐं अथ्वा सैल शुरू हुई। निराकार की भक्ति की सीमा में सैंकड़ों बार लोक लुकांतरों की यात्राएं करने के उपरान्त भी कुछ अभाव बाकी था । उन को भक्ति में उच्च अवस्था प्राप्त होने पर भी, ''अभी भी पूर्णता को पाना शेष है'', लगातार वे ऐसा महसूस करते थे।

——

7 सतगुरू जी के पूर्व तीन जन्मों का भक्ति वृतांन्त

सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' अपने पिछले जन्मों के बारे में कंई बार गौष्ठी के दौरान ज़िक्र कर चुके हैं। गौष्टी के दौरान हमारी जिज्ञासा वश उन्होंने अपने चार गुरूओं का उल्लेख किया।

दिनांक 21.6.2016 को दौबारा पूछने पर ''वे नाम परमहँस जी'' बोले :–

'मैं तीन जन्म पहले ''सुन्न लोक सहस्त्रसार'' में था उसके उपरांत आज से दो जन्म पहले 'मैं' सूफ़ी मत में था, मुझे 'अश्फ़ाक उल्लाह' के नाम से जाना जाता था और निराकार भगवान की भक्ति करता था। दूसरे जन्म में राधा–स्वामी गुरू महाराज सावन सिंह जी मेरे गुरू थे, मेरा नाम सरदार निरंझन सिहं था और मैं उनका पाठी/रागी था ।

तीसरे इस जन्म में मैने निरंकारी मिशन में शहनशाह जी को गुरू धारण किया और बिना कुछ मांगे लगातार भक्ति करता रहा। अपना बचपन घौर ग़रीबी में होने पर भी कुछ मांगा नहीं। मांगने पर मिलता जरूर है पर मन माया ग्रसित मानव निरंकार से आगे नहीं जा सकता अर्थात सहज सत मार्ग में साहिब सतपुरूष जी की भक्ति मार्ग यानि अपने मूल को नहीं पा सकता । यहां एक बात सर्वज्ञात रहे कि मानव के पिछले कंई जन्मों की निस्वार्थ भक्ति के फल उपरांत ही जीव आत्मां को सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी मिल पाती है। निरंकार दायरे की भक्तियां किसी भी मानव को कितना भी प्रेरित क्युं ना करें, वह मन माया को तज ही नहीं सकता और बिना मन माया को तजे सतगुरू परमहंस शरणी मिलती ही नहीं। संतों के अथक प्रयत्नों के बाद भी माया को तज मानव निज को जानने की राह पे नहीं चलता, यह संतों और पूर्ण सतगुरू परमहंसों के अप्रसन्नता और असंतोष का विषय है फिर भी पूर्ण संत व सतगुरू परमहंस जीव आत्मांओं के कल्याण हेतु सारा जीवन प्रयास रत रहते हैं और साधारण साधक कुछ मनुष्यों से बात करने उपरांत उद्विग्न हो उठते हैं । मानवों का सत मार्ग पे अग्रसित ना होना साधकों की उद्विग्नता के स्थान पर उन पर दया भाव का रखना ही एक मात्र ध्येय होना चाहिए। सर्व जीवात्मांओं का कल्याण ही पूर्ण संतों, सतगुरू परमहंसों और उनके अनुयाई साधकों का लक्ष्य होता है ।

मैं जिन गुरूओं से भी जुड़ा वे सभी अति महान थे पर मन की सेव करते हुए इससे निकला ही नहीं जा सकता । मैं जब भी स्वर्ग लोकों आदि की सैल को जाता, ये तीनों गुरू मुझे मिलते थे । स्वर्ग तो अल्प कालिक मुक्ति है, कर्म फल खिन्न होने उपरांत जगत में जन्म तो लेना ही पड़ता है । सावन सिंह जी तिरछी पगड़ी चेहरा भारी कुर्ता और चूड़ीधार पैजामा पहने सहस्त्रसार लोक में लम्बी सफेद दाड़ी चेहरे पर चमक व सोम्य मनमोहक मुस्कान लिए दिखते ।

आखिरकार तीन गुरूओं को धारण करने और सभी जगह परिकाष्ठा पर पहुंचने के उपरान्त उन्होंने निराकार भगवान को ही पूर्ण समर्पण व श्रद्धा भाव से निवेदन किया कि हे प्रभु :– आप ही अब मेरे आध्यात्मिक गुरू बन के मेरा मार्ग दर्शन करें। तां उम्र निराकार भगवान के अनकों भौतिक प्रलोभनों में ना फंसने के कारण व निस्वार्थ भक्ति के ही फलस्वरूप निराकार भगवान ने उनकी इस विनय को स्वीकार किया और फिर वो ही उनके चौथे गुरू बन कर उनका मार्ग दर्शन करते रहे । निराकार भगवान ने ही उनको वर्तमान काल के संपूर्ण सतगुरू शरणी में जाने को प्रेरित किया । उनकी तपो भूमि रिहाड़ी 'सतगुरू सतनाम आश्रम' (कुटिया) में एक मास तक निराकार भगवान के साथ पूर्ण सतगुरू की महिमां को जानने व उनकी शरणी जाने के लिए गोष्ठी होती रही । इस सब का वर्णन वह अपने अनुयाईयों और शिष्यों के साथ भी करते रहे। इस एक मास की

गोष्ठी के उपरान्त एक दिन वो निराकार भगवान के श्री चरणों में नतमस्तक हुए और जैसे ही उन्होंने निराकार भगवान के पांव का स्पर्श किया तो चरणों के स्पर्श मात्र से ही उन चरणों के बदले सतगुरू जी के चरण प्रकट हो गये। सतगुरू जी के चरणों में प्रणाम करने उपरान्त उपर देखा तो सतपुरूष जी ही खड़े मुस्कुरा रहे थे ।

अगले ही पल उन्होंने पूर्ण सतगुरू जी की शरणी में जाने का निष्चय कर लिया और वे अपने चंद शिष्यों को साथ ले के सतगुरू जी के पास जा पहुंचे। सतगुरू जी ने भी एक मास गोष्ठी की जानकारी होने की बात शिष्यों के सामने मानी। उनसे दीक्षा लेने उपरान्त वे पूरे समर्पण और श्रद्धा भाव से उनके आदेशों के अनुसार सेवा और सिमरन में लीन हो गये ।

नोट :– (सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' सहज मार्ग के सत्संग व प्रवचन शुरू करने से पहले अपने शैक्षनिक संस्थान में प्रतिस्पर्धात्मक मैडिकल व इंजिनियर दाखिले की परीक्षा की कौचिंग कक्षाओं में शिष्यों को पढ़ाते थे। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' पिछले चार साल से कौचिंग कक्षाओं में ग़रीब व जरूरत मंद बच्चों को निशुल्क शिक्षा व कौचिंग प्रदान कर रहे हैं। कंई ज़रूरत मंद अथ्वा आर्थिक रूप से कमज़ोर शिषयों की सहायता भी अपनी निजी आमदनी से करते हैं। उपरोक्त शिष्य शब्द का भाव विद्यार्थियों से है)

जिस प्रकार वे अपने निराकार की सीमा के गुरूओं की तमाम परिकाष्ठा पर अपनी भक्ति, श्रद्धा, समर्पण और सेवा के बल पर पहुंचे, ठीक इसी प्रकार बल्कि इससे भी अत्यधिक लगन और निष्ठा से उन्होंने बहुत ही अल्प समय में सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को अपनी भक्ति व सतगुरू के प्रति प्रेम भाव और समर्पण से अपने अंताकरण में सुरति द्वारा प्रकट कर लिया। इसके बाद शीग्र ही उनकी भक्ति फलस्वरूप सतगुरू रूप में साहिब सतपुरूष जी से उनका साक्षात्कार हुआ और फिर सतलोक के सफ़रनामों का क्रम प्रारम्भ हुआ जो आज तक भी जारी है ।

पहले के तीन सफर करते समय चहुं ओर तेत्तीस करोड़ देवी–देवताओं का जमघट दर्शनों के लिए उमड़ा था, क्योंकि हंस–आत्मां तो सुरति रूप है, जिससे वह तो चहुं ओर सुरति द्वारा देख सकती है । उस जमघट में उनके निराकार दायरे के तीनों गुरू संग सच्च खण्ड नानक मार्ग के पूर्व गुरू धर्म दास जी भी खड़े थे। यह सभी बड़े प्रेम भाव से निजधाम जाते हुए उन्हें निहार रहे थे । इसके आगे के सफर सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के परा–विहंगम चाल सूं होने शुरू हो गये अर्थात ध्यान में जाते ही कुछ पलों में निजधाम सतलोक पहुंचना, सैल उपरांत कुछ ही पलों में वापिसी । शुरू–शुरू के पहले निजधाम सफरों में विहंगम चाल द्वारा आधे घंटे से लेकर डेढ घंटे तक का समय लगता था जबकि परा–विहंगम चाल द्वारा सतलोक का पूरा सफर पलों में ही हो जाता है ।

'सार सब्द' पाते ही अगली ही सुबह, साहिब कबीर जी, साहिब रविदास जी, संत मीरां जी व बाबा नानक सहित, सतपुरूष जी सतगुरू जी के रूप में उनकी कुटिया में आए और सभी साहिब जी के रक्खे एक आसन पर विराजमान हो गये और स्वयं सतपुरूष जी सतगुरू रूप में आसन से थोड़ा उपर हवा में ही विराजमान हो गये । सतगुरू जी इन पांचों के दर्शन पाकर अपने आप को धन्य व अनुग्रहित महसूस करने लगे। अगले ही निजधाम के सफ़र में ये पांचों ही उनके मुख से प्रवेश कर के पाओं के अंगुष्ठा से बाहर निकल आए और उनसे कहने लगे कि हमने अपनी सारी सुरति आप को अर्पित की है और इसके उपरान्त वे सभी अदृष्य हो गये। तीसरे दिन अपनी कुटिया में कपड़े धोने में जब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' व्यस्थ थे तो साहिब सतपुरूष जी ने स्वयं प्रकट हो, उनसे रूबरू होकर कहा कि अब तुम मेरी महिमां को गाओ और इसका प्रचार करो, साथ ही ये भी कहा कि तुम अब दीक्षा भी बांटो। ऐसा सुन कर सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' बोले :– मैं दीक्षा अर्थात दात कैसे बांट सकता हूं, मेरे पास जो सब्द है वो तो मेरे सतगुरू जी का दिया हुआ है, जिसे मैं बोल या ज़ुबान पर भी नहीं ला सकता, वह तो मेरी सुरति में सतगुरू जी द्वारा प्रदान की गई अमानत है ।

मेरे पास अपना तो कोई सब्द है नहीं। इतना सुनते ही सतपुरूष जी ने अपने मुखारबिंद से सुरति द्वारा नवीन 'सार–सब्द' की दात, सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के अंताकरण में उत्पन्न की, उन्होंने 'सार सब्द' की दात के सब्दों को सुरति में ही गिना जो सात ही थे। ये दात अदित्य, अनूप, नवीन और सतपुरूष रूपी थी। सतपुरूष जी बोले अब तुम अपने सत्संगों में मेरी महिमां को गाओ और संसार में इस 'सार सब्द' की दात को बांटो। उनके बार–बार प्रेरित करने के बाद ही, उन्होंने ''वे नाम परमहँस जी'' के नाम से इस दात को बांटना और साहिब सतपुरूष जी की महिमां का गुणगान और ब्ख़ान करना अर्थात सत्संग करना प्रारम्भ किया ।

(''वे नाम जी'' व ''वे हूँ जी'' भी तो सतपुरूष जी के ही नाम हैं, 'वे' = 'सतपुरूष' नाम)

'सार–सब्द' के मिलते ही तीसरे दिन की रात को सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की ईक्कतर पीढ़ियों के परिवारिक संबधी अपने–अपने समयानुसार की वेश भूषा में दीक्षा लेने आ पहुंचे। कंईयों की ऊंचाई आठ फुट तक थी। वह बड़ी बड़ी तुरले वाली पगड़िया व चूड़ीदार पैजामे कुरते और रंग बिरंगी पौशाकों में थे। जो सहज मार्ग के पूर्ण संत मौक्ष को पाते हैं वह अपने साथ–साथ ईक्कतर पीढ़ियों को भी भवसाग़र से पार ले जाते हैं। हम सब की ये ईक्कतर पीढ़ियां हमसे जुड़ी हुई इसी प्रतीक्षा में होती हैं कि कब कोई हमारे कुल से मौक्ष मार्ग पर अग्रसित हो कर हमारा भी कल्याण करे । सहज मार्ग के पूर्ण संत अपने साथ–साथ अपनी मृत्त हुई ईक्कतर पीढ़ियों को भी मौक्ष दिलाते हैं । पांचवें दिन सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की

कुटिया में भगवान राम और श्री कृष्ण भी दर्शन हेतु पहुंचे। ना ही सिर्फ इस धरती के जीवों को ही सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' ने मौक्ष की ये दात बांटी, अपितु कंई जीव आत्माओं को मृत्यु उपरान्त भी ये दात प्रदान की अर्थात उनका कल्याण किया ।

सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार जब भी कोई साधक अपने मृत प्रिय भद्रजनों, ईष्टों या गुरूजनों की तस्वीर लेकर सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंसों के पास आता है तो वह जीव आत्मां चाहे किसी भी स्थान या लोक में क्युं न हो तुरन्त अगली रात को ही पूर्ण सतगुरू परमहंस जी के समक्ष मोक्ष दात ग्रहण करने हेतु पहुंच जाते हैं। इस क्रम में बड़े बड़े गुरूजन व महापुरूष भी ''वे नाम परमहँस जी'' के पास आ चुके हैं। जिन–जिन निराकार के गुरूजनों व महांपुरूषों संग बहुत अत्यधिक संगत आस्था से जुड़ी होती है वो इस दात से वंचित रह जाते हैं क्योंकि वे अपनी संगत का मार्ग दर्शन करने को बाध्य होते हैं। क्योंकि काया बंधन से मुक्त आत्म, मोक्ष दात को व सहज मार्ग के पूर्ण संतों के सामर्थय को जानता व समझता है। जब तक आत्म किसी जीव धारी काया में होता है। तब मोह जाल जंजाल वश अपने को काया समझ निज आत्म रूप (हंसा) को भूला रहता है। इसी लिये निज को जाने बिना निरंकार भक्ति से छुटकारा संभव ही नहीं। निज को जाने बिना मानव, निरंकार रूपी ईष्टों को पूज–पूज, सजदे व इबादतों में संसारी सुख साधनों को ही मांगे जा रहा है। जो की सारी की सारी नाशवान हैं। ये सारी संसारिक उपलब्धियां मुत्यु उपरांत संग ना जाकर संसार में ही छूट जाती हैं।

जो भक्ति हम निराकार के निगुर्ण रूप जैसे भगवान, ईश्वर, खुदा, औइम या काल पुरूष व अनेकों दूसरे नामों से करते हैं अथ्वा सगुण भक्ति जैसे मूर्ती रूप में पूजना। ये भक्तियां हम्हें उन ईष्टों को साकार या निराकार रूप में जानने में सहायक होती है। ये भक्तियां हम्हें अपने ईष्टों के लोकों में ले जाती हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि ये सारी भक्तियां निज को (हंसा रूप) जानने की तरफ ना ले जाकर, निरंकार रूपी ईष्टों की शरणी में ले जाती हैं। केवल सहज मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस ही निज (हंसा रूप) को जानने व निजघर सतलोक ले जाने की ओर प्रेरित करते हैं।

संसार में समय समय पर अलग अलग धर्म, निराकार ने ही रचे और सभी आत्मांओं (हंसा) को महां विक्राल माया जाल में उलझा दिया। क्योंकि आत्म की सत्ता तो माया रूपी देवी देवों यहां तक की स्वंय निरंकार से भी अति महान है। अगर हम निज का सामर्थय जान लें तो सारी त्रिलोकि, निरंकार–सहित नत मस्तक हो जाए। हम सभी प्राणियों में साहिब सतपुरूष जी का अंश हंसा (माया में लिप्त आत्मां) विद्यमान है और हम सब हंसों को भ्रमित करने हेतु ही ये सारा त्रिलोकि पसारा है। हंसा तो स्वंय साहिब सतपुरूष जी

का अंश है और निराकार रूपी सभी आराध्य (भगवान, खुदा, ईश्वर, औंकार, अल्लाह, सृजनकार, महांकाल इत्यादि) तो केवल शब्द व शक्ति से उत्पन्न हुऐ हैं। ये सभी इस ब्रह्मण्ड/कायनात को चलाए रखने को बाध्य और सहायक हैं। पर आत्मां अगर अपने निज रूप हंसा को पहचानने हेतु सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी में पहुंच जाए तो निराकार रूपी माया जाल उसका सहायक हो लेता है पर ये माया जाल मानव को उस ओर जाने से रोकने को अपने मोहिणी माया में भ्रमित कर लेता है।

फिर भी चाहे अनचाहे ईक्का दुक्का ही सही इस जंजाल को छोड़ कर बिरले जन सदा से चलते रहे और आगे भी चलते रहेंगे। इन सभी साधक जनों का मार्ग प्रशस्थ करने के लिए समय समय पर सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी इस धरा पर होते रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे। वर्तमान युग में भी सहज सत्तमार्ग के एक महान संपूर्ण संत ''वे नाम परमहँस जी'' सहज सत्तमार्ग के ब्खान व जीव आत्मांओं के कल्याण हेतु प्रयासरत हैं। मानव जब भी मांग व स्वार्थ रहित अपने ईष्टों की निरंतर पूजा करता है तो वे ईष्ट मानव को सहज मार्ग की ओर जाने से नहीं रोक पाते। संत वाणी अनुसार 'मांगन मरन समान है'। ये मानव स्वंय ही माया की दुख व कष्ट दायक परन्तु चकाचौंध भरी माया नगरी के प्रलोभनों से निकलना ही नहीं चाहता। वस्तुतः हर मानव जीवन का लक्ष्य मालिक को पाना अथ्वा आवागमन से छुटकारा ही है। अब ये मानव पर स्वंय निर्भर करता है कि वह मौक्ष राह को चुने या माया रूपी लोभ में भटके और बह जाए। पर विचित्र विडम्भना यह है कि मानव सब कुछ जानते समझते हुए भी मोह वश माया जाल में लिप्त रहता है। सभी सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंसों का सारा जीवन मानव को मौक्ष मार्ग में चलने को प्रेरित करता है अथ्वा प्रयासरत रहता है।

सहज मार्ग के संतों व परमहंसों की महिमां व गुणगान साहिब कबीर जी के वर्णन के बिना अधूरा ही है। साहिब 'कबीर जी' जीवन भर साहिब 'सतपुरूष जी' की महिमां का गुणगान व ब्खान मानव कल्याण हेतु ही करते रहे । उनकी अदभुत साहिब भक्ति की उच्च परिकाष्ठा और साहिब सतमार्ग के प्रथम पूर्ण संत सतगुरू परहमंस होने के बावजूद भी यह माया वशिभूत मानव उनकी महिमां को समझ ही ना पाया। वे तो सहज मार्ग के मूल स्तम्भ व संतों के संत शिरोमणि हैं। उनकी महिमां के गुणगान और महानता के लिए क्या कहें, सर्व सामर्थ होते हुए भी उन्होंने गुरू रामानंद जी को अपना गुरू धारण किया क्योंकि सहज मार्ग में गुरूओं की महिमां अपरम्पार है। हांलाकि गुरू रामानंद जी तो निराकार पद्धति के गुरू थे, बाद में साहिब 'कबीर जी' की महानता का ज्ञान होने पर गुरू रामानंद जी ने उन से दीक्षा ली ।

''कबीर के गुरू रामानंद, रामानंद के गुरू कबीर,
गुरू की महिमां लिखी ना जाए, भयो कबीर कबीर''

कितनी विचित्र बात है, कबीर जी के आज के युग के अनुयायियों ने, (स्वंय को कबीर पंथी कहने वाले) उनकी महानता को ना समझते हुए उन्हें सहज मार्ग सत्ता के विपरीत निराकार गुरूओं के समकक्ष जोड़ दिया, और उनकी मूर्तियां तक बनवा कर पूजना (सगुण भक्ति) आरम्भ कर दिया। सर्व साधारण मानव ने उनकी महानता को जानना तो दूर, उन्हें एक साधारण संत के रूप में उजागर कर दिया। तभी तो उनका आदर सत्कार व साहिब 'कबीर जी' की महिमां का गुणगान ''वे नाम परमहँस जी'' अपने लगभग हर प्रवचन में करते रहे हैं। उनके कथन अनुसार संत 'शिरोमणि कबीर जी' की महिमां ब्खान के बिना सहज मार्ग के संत परमहंसों की महिमां लिखी या कही ही नहीं जा सकती। सहज मार्ग के अनुभव लेखनी व भाषा से परे होते हैं फिर भी आध्यात्मिक दुनियां में अनुभव ही साक्ष्यः होता है, पर इस जगत को समझाने हेतु पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' ने पहली बार एक चमत्कारिक आध्यात्मिक घटना का साक्ष्यः एक जीवित व्यक्ति के रूप में जगत के समक्ष प्रस्तुत किया ।

——

8 आलोकिक दृष्टांत

1 – 'सतगुरू सत्तनाम आश्रम' रिहाड़ी और सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी''के एक पूर्ण रूप से समर्पित अनुयायी जिनकी धर्म पत्नि श्रीमति शशी प्रभा जी का स्वर्गवास तीन वर्ष पहले हो चुका था, जो कि निराकार दायरे में भगवान श्री कृष्ण जी की अनन्य भक्त थी। गृहस्थी के तमाम कार्य करते समय वो अक्सर भगवान कृष्ण जी के भजनों में पूर्णतयाः लीन रहती थी, परन्तु वह सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' से कभी भी मिल नहीं पाई थी। दिनांक 16–02–2013 को अनुयायी जी ने जिज्ञासा–वश उन की तस्वीर अपने सतगुरू परमहंस जी को दिखाई और उनके कल्याण हेतु प्रार्थना की। अगले ही दिन प्रातः लगभग तीन बजे शशी जी दीक्षा लेने पित्रलोक से आश्रम में सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के समक्ष पहुंच गई ।

सतगुरू परमहंस जी ने उनके रूप और पहचान का वर्णन उनके कद 5'–2'' से, रंग गौरा, आगे के बाल घुंघराले, नीले फराक सूट में, जो वह अक्सर पहनती थी, तेजी

से चलने व सदैव मुस्कुराने वाली शांत स्वभाव की कह के किया, जिसकी पुष्टि् उनके पहचान वालों ने की। इतना कह कर सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' ने इस तारीख को नोट करने को कहा, साथ ही वे बोले कि आज से लगभग ठीक छेः महीने बाद इनको मौक्ष प्राप्त होगा ।

दिनांक 17–09–2013 शाम को पांच बजे सतगुरू परमहंस जी ने उनके मौक्ष दिवस के उपलक्ष्य में अनुयायी जी के घर में सत्संग और लंगर का आयोजन किया। सत्संग में साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' ने आध्यात्म के क्षेत्र में एक अदभुत व अनोखी घटना का ज़िक्र करते हुए कहा कि ऐसा कभी भी नहीं हुआ कि किसी आध्यात्मिक दृष्टांत का कोई सांसारिक साक्षी हो । सत्संग से पूर्व ही सतगुरू परमहंस जी ने इस पूर्ण दृष्टांत की साक्षी, शशि जी की बहन का ज़िक्र करते हुए कहा कि पिछली रात को लगभग पौने तीन बजे वही इनको आध्यात्मिक सफर के लिए विदा करने के लिए आई थी। बाकी के वृतान्त को सत्संग उपरान्त उनसे पूछने को कहा। शशी जी की वह बहन सत्संग के बीच में जब सत्संग समाप्ति की ओर था तब पहुंची। रात साढे दस बजे लगभग तीस पैंतिस लोगों के समक्ष उन को इस घटना के बारे में जब पूछा गया तो उन्होंने कहा कि हां पिछली रात मैं, स्वपन में अपनी बहन शशी जी के संग किसी मनमोहक बाग़ में थी और हम दोनों टहलते–टहलते ईक दिव्य ज्योति पुंझ के सामने जा पहुंची। यहां शशि जी बोलीं कि तुम यहीं रूको, ''अब मैं अपने आखिरी सफ़र (मौक्ष) की तरफ़ सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के संग जा रही हूं और मुझसे वापिस लौट जाने को कहा। देखते ही देखते वह दिव्य आलोकिक ज्योति पुण्झ संग आकाश की तरफ़ बड़ चली और पल ही पल में अदृष्य हो गयीं। सतगुरू परमहंस जी ने इसका वर्णन यूं किया कि अगर उनकी बहन भी साधक होतीं तो उन्हें मेरे दर्शन जरूर होते।

2 – दिनांक 18 अक्तूबर 2014 की बात है, साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की एक समर्पित व श्रद्धावान साधिका 'लक्ष्मी जी' ने अपने बाएं पांव की छटी उंगली जिसमें कभी कभार पीढ़ा रहती थी, को आपरेशन द्वारा कटवाने उपरान्त रात दस बजे डाकटरों ने विवेकानंद हस्पताल से छुट्टी दे दी। किसी कारण वश वह डाक्टर द्वारा लिखित दवाईयां घर लाना भूल गई ।

रात बारहां बजे तक आपरेशन के दौरान दी गई दर्द निवारक दवाईयों के कारण उन्हें कोई ज्यादा तकलीफ नहीं महसूस हुई, पर रात बारहां बजे के बाद भयंकर पीड़ा के कारण वो बहुत कष्ट में थीं। करीब एक बजे के आसपास जब पीड़ा असहनीय हो गई तो उन्होंने साहिब सतगुरू परमहंस जी द्वारा बनाया अमृत ग्रहण किया और सुरति सूं बोलीं, हे मेरे सतगुरू परमहंस जी प्यारे यह पीड़ा अब मुझसे सही नहीं जा

रही। इतना कहते ही वह सिमरन में चली गई। कुछ देर सिमरन में साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के उनको दर्शन हुए और इसके साथ ही वह गहरी नींद में खो गई। अगले दिन ऐतवार सत्संग के बीच में सतगुरू परमहंस जी उनके पति से बोले कि आप की धर्म पत्नि ने मुझे रात को बहुत तीव्रता से याद किया तो मुझे खुद वहां जाना पड़ा। उन्होंने उनके पति से कहा रात का सारा दृष्टांत संगत को बताएं और उन्होंने पूरा वृतांत ज्यूं का त्यूं संगत के समक्ष रखा। सतगुरू बोले अक्सर सतपुरूष मेरा रूप धार कर ही गुरूमुखों के पास पहुंचते हैं पर अगर कोई साधक पूरी सुरति मुझ में डाल कर मुझे याद करता है तो मुझे स्वंय भी जाना पड़ता है और मैं कल ठीक रात एक बजे साधिका 'लक्ष्मी जी' के पास उनका कष्ट हरने के लिये पहुंचा था।

3 — एक परम श्रद्धावान साधक 'राजू जी' के साथ एक चमत्कारी अधभुत घटना घटी । राजू जी के परिवार में बहुत देर बाद कोई लड़का पैदा हुआ । राजू जी और उनके भाईयों के घर पहले सभी लड़कियां ही थी। पैदा होते ही यह बच्चा अत्यधिक बिमार हो गया। दूसरे दिन की घटना है, डाक्टरों ने उसे मृत घौषित कर दिया, परन्तु सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' ने फोन पर राजू जी से कहा यह बच्चा अभी मरा नहीं, जीवित है । हमारे एक साधक डाक्टर साहिब भी उस वक़्त वहां थे, दौबारा जांच करने पर पता चला कि बच्चे की सांस अभी चल रही है । साथ ही सतगुरू परमहंस जी ने ईलाज के लिए उसे चंडीगढ़ पी॰जी॰आई॰ हस्पताल ले जाने को कहा। वहां पर सारे मैडिकल टैस्ट करने के बाद डाक्टरों नें कहा कि इस बच्चे का तो दिमाग़ पूर्णतया विकसित ही नहीं हुआ। यह अगर बच भी गया तो बड़ा हो कर मानसिक तौर पर कमज़ोर रहेगा और ठीक प्रकार से कुछ भी काम नहीं कर पाएगा। इतना सुनते ही राजू जी ने सतगुरू परमहंस जी को फोन कर के कहा, साहिब जी, एक तो इतनी देर बाद ये फल प्राप्त हुआ और वो भी इस हालत में। कुछ देर बाद सतगुरू परमहंस जी बोले इस बच्चे की तो आयु समाप्त है, यह थोड़ी देर ही बचेगा अर्थात इसे वापिस जम्मू ले आओ। राजू जी सतगुरू परमहंस जी के कहे अनुसार जब बच्चे को जम्मू की और ला रहे थे तो रास्ते में लगभग एक घंटे उपरांत ही उसकी मौत हो गई। राजू ने फिर सतगुरू परमहंस जी को फोन किया। उसका फोन उठाते ही सतगुरू परमहंस जी बोले, मुझे पता है कि यह बालक चल बसा है। मैं तुम्हें वचन देता हूं कि यही बालक एक वर्ष के भीतर ही आप के घर में वापिस जन्म लेगा। फिर ठीक दस मास बाद ही राजू जी के घर इसी बालक ने पूर्ण स्वस्थ अवस्था में जन्म लिया। जो अब तीन वर्ष का है और बड़ा ही चंचल व पूरे परिवार के लिए खुशियां लिए हुए है। जन्म के कुछ दिन उपरांत जब राजू जी उसका जन्म प्रमाण पत्र लेने नगर निग़म के कार्यालय में गए तो वहां उनको दस मास के ही अंदर दौ बच्चे होने की वजह से प्रमाण पत्र ना मिलने पर, निगम कर्मचारियों के समक्ष साहिब जी की महिमां का सारा ब्खान बताना पड़ा, जिसे सुन कर उनको प्रमाण पत्र तुरन्त जारी कर दिया गया ।

4 – इन्हीं साधक राजू जी के साथ एक और बड़ी चमत्कारिक घटना घटी। दिनांक 13.01.2016 बुधवार की बात है साधक राजू जी अपने गांव–छप्पर, जिला–पुरी, उड़ीसा जो समुन्दर के पास ही है। सारे जिले में मौसम विभाग द्वारा भारी बारिश व समुन्द्री तुफ़ान के कारण स्कूल, कालेज व सभी कार्यालयों में तीन दिन का अवकाश घौषित कर दिया गया था ।

राजू जी इस सब से बेख़बर अपने मकान की छत डालने की तैयारी में मगन थे । सारे का सारा सीमेंट बजरी रेत व दूसरा सामान खुले में ही रक्खा था। तेरहं जनवरी को सुबह आठ बजे सभी मिस्त्री मजदूर काम पे झुट गए पर नौ बजते ही भारी वर्षा शुरू हो गई। जो दिन के दो बजे तक लगातार बरसती रही। इस दौरान उसके कुछ मित्र सम्बंधियों ने उससे कहा कि क्या तुम्हें पहले से घौषित मौसम विभाग की चेतावनी के बारे में पता नहीं था जो कि तीन दिन तक लगातार बारिश बरसने के बारे में बता रही थी। इतना सुनते ही साधक राजू जी ने घबराए हुए किन्तु पूरी आस्था और श्रद्धा भाव से सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को फोन पर अपनी विपदा सुनाई और मदद की भी गुहार लगाई। सतगुरू परमहंस जी ने सारी बातें सुनी, वे जानते थे कि साधक पेशे से पलम्बर है और उसकी माली हालत भी कुछ ठीक नहीं है। कुछ समय उपरांत सतगुरू परमहंस जी बोले, हे राजू तूं सब कुछ पूर्णतः मुझ पे छोड़ दे और इतना कहते ही फोन बंद कर दिया। ठीक पंदरहां मिण्ट बाद लगभग ढाई बजे बारिश रूक गई। केवल उसके गांव में अगले तीन दिन तक कोई बरसात नहीं हुई। सतारहं जनवरी रविवार के सत्संग में सतगुरू परमहंस जी ने अपने प्रवचन के दौरान कहा, जम्मू में यह जो बारिश बरस रही है असल में यह वर्षा राजू जी के गांव में बरसने वाली थी। मैने जल देव ईन्द्र जी को कहा, यह बरसात मेरे साधक के यहां ना बरसा कर इधर मेरे यहां बरसा दो, और फिर हूबहु वैसा ही हुआ ।

लगभग छेः मास बाद राजू जी जम्मू पहुंचे और 5 जून 2016 को सत्संग में उन्होंने इस सारी घटना का वर्णन सतगुरू परमहंस जी के आदेशानुसार सारी संगत के समक्ष रक्खा। साथ ही एक और भी वृतांत जोड़ा कि चौदहं जनवरी सुबह लैंटर डालने के अगले दिन मैं समुंद्र किनारे खड़ा था तो हाथ जोड़ कर साहिब सतगुरू परमहंस जी को याद कर के धन्यवाद का भाव लिए हुए खड़ा था कि क्या देखता हूं समुंद्र के अथाह जल के बीच साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' मुस्कुरा के हर तरफ़ से मेरी ओर निहार रहे थे ।

5 – सरदार सुरिंदर सिंह जो एक सज्जन पुरूष सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की शरणी में श्रद्धा भाव से पहुंचे। वह सिख रागी जत्थों के साथ

मलेशिया और सिंगापुर के गुरूद्वारों में कीर्तन को जाया करते हैं। कंई सालों से वह टांगों में असहनिय पीड़ा से ग्रस्त थे। कंई डाक्टरों व तांत्रिकों का ईलाज कराने के बावजूद भी उनकी पीड़ा में कोई फर्क नहीं पड़ा। इसी पीड़ा के कारण वह सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की शरण में सत्संग के दौरान आते रहे और टांगों का उपचार भी करवाते रहे। सतगुरू परमहंस जी ने स्वंय अपने हाथों से उनकी टांगों को सहलाते हुए एक मास के भीतर ही उनको पूर्णता दर्द से मुक्त कर दिया। वह पहले की तरहं स्वस्थ व सामान्य जीवन जीने लगे ।

जब वह पूर्णतः ठीक हो गये तो सतगुरू परमहंस जी ने उन्हें सहज भक्ति की ओर चलने को प्रेरित किया, किन्तु रागी होने का अहम वे ना तज सके और सत्संग में भी आना जाना बंद कर दिया। काफी लंबे अंतराल के बाद उन्हें फिर उस पीड़ा ने आ घेरा। एक वर्ष उपरांत वे पुनः सत्संग में आये, पर सतगुरू परमहंस जी बोले पूर्णतः समर्पण और 'सार—सब्द' के सिमरन से ही तुम पूर्णतः सर्व रोगों से मुक्त रह सकते हो। अपने महान होने का अहंकार तजो और निज को पहचानने की ओर चलो, दुर्भाग्य वश वे सत्संग में फिर कभी भी दिखाई नहीं दिये। वह आज भी उसी परेशानी से ग्रसित हैं ।

6 — एक वृद्ध माता श्रीमति दीपा जी जो सच्चखंड नानक मार्ग संस्था की साधिका थी । काफी समय से इसी सस्था के भूतपूर्व गुरूओं के प्रति उनकी दृढ़ आस्था और श्रद्धा थी और तीन स्वर्गवासी गुरूजनों का उनमें प्रवेश रहता था । वह अक्सर इन गुरूजनों के प्रवेश के कारण बड़ी असहज, बिमार व कमज़ोर रहने लगी और अपने रोज़मरा के काम करने में भी असमर्थ थी । गुरूओं के प्रवेश होने के दौरान उनकी सांसे फूल जाती, सांस लेना दूबर होने से वह अक्सर बेहोश हो जाती या आपा खो के बदहवास हो जाती, जिस कारण वह काफी दुर्बल हो गई थी। कई मास तक वह बड़ी परेशानी व कष्टों के बावजूद साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के सत्संगों में आती रही, पर अपने गुरूओं के प्रति प्रगाड़ आस्था वश उनसे दूर नहीं होना चाहती थी ।

एक दिन सतगुरू परमहंस जी ने उनको तीनों गुरूओं के चित्र लाने को कहा जिनका उनमें प्रवेश था। चित्र आते ही उनके गुरू धर्म दास जी, सतगुरू परमहंस जी के समक्ष रात को रिहाड़ी 'सतगुरू सतनाम आश्रम' में दीक्षा मांगने हेतू आ पहुंचे। बाकी गुरू जन तो आ ना सके। मुत्यु उपरांत वो ही दीक्षा लेने आ सकते हैं जिन्होंने बहुत भक्ति की हो और कुछ सीमा तक अहम को तजा हुआ हो । सतगुरू परमहंस जी ने उनको कुछ दिन प्रतीक्षा करने को कहा और अगले दिन माता श्रीमति दीपा जी को कहा,

जैसे आप कष्ट में हैं वैसे आपके गुरूआ जन भी अपने निज स्वार्थ वश आप से जुड़े और कष्ट में हैं और मौक्ष के लिए चिंतित हैं। इस कारण अब आप खुद भी मुक्त हो जाओ और उनको भी इन कष्टों से निजात दिलाओ। माता जी ने ये बात समझ में आने उपरांत सहमति जताई। अगली ही रात गुरू धर्मदास जी फिर दीक्षा मांगने सतगुरू परमहंस जी के पास आ पहुंचे। सतगुरू परमहंस जी ने उनको दीक्षा प्रदान की और छेः मास लगातार सिमरन उपरांत गुरू धर्मदास जी मौक्ष को प्राप्त हुए। दीक्षा ग्रहण करने के बाद अगली रात वे गुरू माता जी के सपने में आये और अपने कल्याण हेतू अपनी साधिका का कौटि–कौटि धन्यवाद किया। इस घटना उपरांत माता जी पूर्णता स्वस्थ हो गईं। वह दो तीन सत्संगों में आती रहीं, परन्तु जब वह पूरी तरहं आश्वस्त हो गई कि वह ठीक हो गई हैं, तो मानव की विचित्र मानसिकता देखो कि स्वार्थ सिद्ध होने उपरांत उन्होंने भी सत्संग आना छोड़ दिया ।

7 – एक सिख परिवार जो पिछले साठ साल से बाबा भड़भाग सिहं की गद्दी जिनके परिवार में परम्परा से चली आ रही थी। यह सारा का सारा परिवार तांत्रिकों की परेशानी से ग्रस्त था, इनके घर दो बच्चे अपनी आंखें ना झपक पाने के कारण व मंद बुद्धि होने से बड़े डरावने लगते थे, सभी उन बच्चों से सहमे रहते थे, बहुत से डाक्टरों व तांत्रिकों को दिखाने पर भी वे सभी ठीक नहीं हो पा रहे थे । यह परिवार साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' की शरण में आया और इनके दोनों बच्चे कुछ ही दिनों में सकुशल हो गए। सतगुरू जी की कृपा से बाबा भड़भाग की काली छाया व तांत्रिकों से मुक्त होने के बाद ये परिवार दौबारा दिखाई नहीं दिया अर्थात बड़े दुखी मन से कहना पड़ता है, वाह रे मतलब के बंदो, सतगुरू परमहंसों से शारीरिक दोष दूर करवाने उपरांत तथा ठीक होने पर अपने–अपने धर्मों के लबादे तज कर कुल मालिक साहिब सतपुरूष जी को पाना ही नहीं चाहते !

8 – इसी परिवार की केवल एक पुत्री जो सतगुरू जी के प्रति अति श्रद्धावान साधिका है जिसकी शादी दूसरे सिख परिवार में हुई थी, वह परिवार भी काली तांत्रिक परेशानियों से ग्रस्त था । उनके घर का मुखिया जिसे मृत परिजन रात को सोने ना देते थे और घर वाले उनको शराबी और वहमी समझ कर उनकी खिल्ली उड़ाते थे, पर जब घर वालों को दुष्ट प्रेतों ने तंग करना शुरू किया तो वे समझे। वह और उनकी पत्नि सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की शरणी आए, शराब छोड़ी और उनके द्वारा दिया गया अमृत अपने घर के आसपास और चारपाई के ईर्द–गिर्द छिड़कने भर से वे प्रेतों से मुक्त हो गए । ना–समझों की नासमझी देखें, ठीक होने के ही कुछ दिनों उपरांत मुखिया ने सत्संग आना बंद कर दिया और दौबारा शराब पीना भी शुरू कर दी। उनकी पत्नि टांगों से चलने पर

भयानक पीड़ा महसूस करती थी। घर का एक और बेटा भी रोग ग्रस्त है। सरदार जी उनकी पत्नि ने सकुशल होने पर सत्संग में आना बंद कर दिया, पर उनका परिवार अभी भी शारीरिक कष्टों के लिए आ रहा है, सारे का सारा परिवार सिर्फ शारीरिक कष्टों से ही ठीक होना चाह रहा है, आत्मिक दृष्टि् से तो किसी की भी कोई प्राथमिकता नज़र नहीं आती अर्थात उस एक मालिक साहिब सतपुरूष जी जिनके वे अंश हैं और जहां से वे अनगिनत समय से बिछड़े, इस मन माया और आवागमण में ही भटके और उलझे हुए हैं, इससे बाहिर निकलने के लिए तो वे सोच तक भी नहीं रहे ।

9 – इसी साधिका के घर सतगुरू परमहंस जी के आर्शीवाद से एक पुत्र पैदा हुआ, जो पैदा होते ही अत्यधिक पीलिया रोग से ग्रस्त था व मां को दूध भी नहीं आ रहा था, इस साधिका ने सारी की सारी व्यथा रो–रो कर सतगुरू परमहंस जी को फोन पर कही, सतगुरू परमहंस जी उसी शाम शालामार हस्पताल वैन्टिलेटर में पड़े बच्चे को देखने गये और कहा घबराओ मत, ये बच्चा तो सुबह तक ठीक हो जाएगा, सतगुरू परमहंस जी की कृपा से बच्चा अगले दिन रोग से मुक्त था और मां की छाती से दूध भी आना शुरू हो गया ।

10 – जनवरी मास 2013 के अंतिम दिनों की बात है साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की एक साधिका मीना देवी जी बड़ी श्रद्धा भाव से सत्संग आती थी । वह काफी समय से बिमार ही रहती थी। एक बार अधिक बिमार होने पर डाक्टरों ने पूरी जांच करने के उपरांत छाती में कैंसर होने की बात कही, कुछ दिनों के अंदर सारे मैडिकल टैस्टों द्वारा भी इस बिमारी की पुष्टि् हो गई । सतगुरू परमहंस जी ने मैडिकल रिर्पोटें और ऐक्सरे देखने के बाद कहा, आप शुद्ध अमृत का सेवन करें और 'सार–सब्द' का सिमरन सुरति से पूरी श्रद्धा से करें तो यह कैंसर एक ही मास में ठीक हो जाएगा। साधिका जी ने सब कुछ ठीक वैसा ही पूर्णतः श्रद्धा व समर्पण भाव से किया। एक मास उपरांत उन्हें रैगुलर मैडिकल जांच के दौरान पता चला कि वह पूर्णतः कैंसर से मुक्त हो चुकी थी। पूरी तरहं से स्वस्थ होने के बाद वह धीरे–धीरे सत्संगों में कम आने लगी। कभी–कभार ही वह आश्रम में सत्संग समाप्ति से चन्द पल पहले पहुंचती थी, जबकि इनके परिवार में से सिर्फ यही साहिब सतगुरू परमहंस जी से दीक्षा प्राप्त किए हुए थी, इस दौरान इनकी सास व परिवारिक सदस्य, दीक्षित ना होने के बावजूद अपने–अपने सम्बंधियों को जो दुखी, प्रेत व तांत्रिक परेशानियों से लदे अनगिनत लोगों को ठीक करवाने हेतू लाते रहे। मालिक प्रेम तो दूर, केवल शारीरिक बिमारियां ही ठीक करवाना उनका एक मात्र ध्येय था। इसी कारण सतगुरू परमहंस जी को लौग भूत प्रेत निकालने वाला बाबा ही कहने लगे। एक बात सब को ज्ञात रहे

जो जन सतगुरू परमहंसों से बिमारियां ही ठीक करवाने के मकसद से आते और दिखावे का श्रदा भक्ति भाव ही दरशाते हैं वे छेः मास के अंदर ही फिर किसी ना किसी दुविधा से ग्रसित हो जाते हैं। वह देवी जी तो दीक्षित होने पर भी आठ मास लगातार सत्संग से दूर रही, ईक्का–दुक्का बार ही और वह भी सत्संग समाप्ति उपरांत अपने निज परिवारिक स्वार्थ हेतु अपनी हाज़िरी लगाने के लिए ही आती थीं, हालांकि उनका घर आश्रम के बिलकुल सामने ही था।

एक साल बाद वह फिर बिमार पड़ी तो साहिब सतगुरू परमहंस जी के पास उनका आना निरंतर शुरू हो गया। वह सत्संग में कम ही आती मगर वैसे हर दिन आ जाया करती थी। डाक्टरी जांच के उपरांत उन्हें फिर दौबारा कैंसर होने का पता चला जिसके लिए ईलाज के लिए उन्हें पी० जी० आई० चण्डीगड़ तक भी जाना पड़ा। कैंसर का फैलाव अत्यधिक होने से डाक्टरों ने उनका जीवन तो बस पांच या छेः मास का है, ऐसा कहा। एक बार पुनः उनका पति, सास और सभी परिवारजन सतगुरू परमहंस जी के पास आ कर उनकी आयू बड़ाने की प्रार्थना करने लगे। यहां तक कि अब वह हर रोज़ दो तीन बार रिहाड़ी सतगुरू सतनाम आश्रम में आते। जब स्वयं साहिब सतगुरू परमहंस जी एक साल उनकी आयू बड़ाने का आर्शीवाद देने लगे तो भी परिवार के सभी सदस्यों के बार–बार गिड़गिड़ाने व मिन्नते करने पर उन्होंने उनके दो साल आयू बड़ाने की मांग को स्वीकार किया, पर सतगुरू परमहंस जी बोले ये एक वर्ष समाप्त होते–होते बिस्तर से उठ भी न पाएंगी और इनका जीवन कष्टमय होता जाएगा, इनकी उम्र बड़ाने की मत सोचो, क्योंकि सहज मार्ग में लगातार श्रद्धा व लगन बनी रहनी चाहिए क्योंकि सतगुरू परमहंस जी की कृपा बिना जीवन व्यर्थ है अर्थात मौक्ष नहीं मिल सकता । किन्तू इन्सान की चत्तुर चालाकी और स्वार्थ तो देखो, वे फिर सतगुरू परमहंस जी से इस आयू की सीमा को पांच साल तक बड़ाने का आग्रह कंई मास तक करते रहे। सतगुरू परमहंस जी तो ठहरे दीन दयाल, कृपाल व साधक–वत्सल्य ! उन्होंने कहा अगर सारा परिवार सत्संग में बिना किसी बाधा के लगातार उपस्थित रहा और सभी परिवार–सहित सिमरन में रहेंगे तो ये सीमा पांच साल से ज्यादा भी हो सकती है। यह सब तो आप सबकी श्रद्धा व समर्पण भावना पर निर्भर करता है कि आप स्वयं उन्हें कितनी और कैसी ज़िन्दगी देना चाहते हैं।

इसी दौरान लगभग तीन मास के अंदर ही सतगुरू सतनाम आश्रम, रिहाड़ी से गार्डन ऐनक्लेव, तालाब तिल्लो में स्थानांतरित हो गया। लगभग दो वर्ष बीत गये, एक दिन अप्रैल 2015 में सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' ने एकाएक अपने एक साधक को बुला कर कहा, मीना देवी जी व उनके परिवार वाले लगभग दो साल से सत्संग में नहीं दिखे। सतगुरू दर्शन तो दूर, कभी फोन पर भी बात करना उचित नहीं समझा और अगर कोई

दीक्षित छेः मास से भी अधिक समय तक सतगुरू परमहंस जी के दर्शन, सत्संग और सिमरन करना छोड़ देता है तो उनकी दीक्षा व कृपा समाप्त हो जाती है अर्थात सहज मार्ग से वापिसी हो जाती है। फिर भी सतगुरू परमहंस जी ने उनके घर वालों को सत्संग पहुंचने व सतगुरू दर्शन के लिए तीन बार अपने साधकों द्वारा संदेश भेजा। विधि का विधान अथ्वा निराकार का माया जाल देखें वह परिवार कई मास तक बार–बार आने का आष्वासन तो देता रहा पर वहां पहुंच ना पाए ।

आखिरकार दिनांक 13–01–2016 को मीना देवी जी चल बसीं। सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के अनुसार अभी उन्हें मौक्ष नहीं मिला है, परन्तु श्रद्धावान दीक्षित होने के कारण उनको दौबारा मानव तन मिलना तय है। तभी तो साधक वतसल्य सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' बार–बार सत्संग में कहते हैं सहज मार्ग व साहिब भक्ति में बिना पूर्ण समर्पण किए मानव निरंकार के इस महां लुभावने माया जाल से आकर्षित हो कर पुनः काल जाल की कैद में लौट आता है और फिर दुख तकलीफें और तां कयामत तक के जन्म मरण के चक्र में फंस जाता है।

सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार :–

जो मनुष्य अति कपटि्, रिश्वतखौर, अति लौभी व महां विषय विकारी होते हैं ऐसे लोग सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी के सत्संग आ ही नहीं सकते। यदि किसी विवशता वश आ भी जाएं तो वह सत्संग में आकर भी अपने रोगों को ठीक करने व स्वार्थ सिद्धी में ही लगे रहते हैं। पूर्ण सतगुरू परमहंस जी से साहिब सतपुरूष जी की अनमोल दात पाने के स्थान पर जगत की चंद मायावी फीकरें पा कर ही स्वार्थ सिद्धी उपरांत मोह माया के जाल में पुनः लौट जाते हैं। श्रद्धाहीन स्वार्थी मानव महां काल जाल में फिर पहुंच कर जन्म मरन के अंतहीन चक्रव्यूह में फंस जाता है ।

मीना देवी जी की मृत्यु उपरांत उनके पति श्री कृष्ण जी को एक दिन दिनांक 24.07.2016 को सत्संग के उपरांत सतगुरू परमहंस जी ने अपने एक साधक को उनके घर जा के संदेश देने को कहा। सतगुरू परमहंस जी बोले, उनसे नम्र निवेदन कर के कहें कि वह दोष–युक्त जीवन जी रहे हैं। अब तक तो वह कुछ कुछ बिमार रहते हैं पर उनका आने वाला समय घौर बिमारी और विपत्तियों से भरा है। मृत्यु से पूर्व आगे आने वाला समय उनका बहुत कष्ट्–दायक और लम्बी बिमारी से युक्त होगा। इस कारण वह अपने दोष निवारण हेतु स्वंय परिवार सहित सत्संग में आयें। साधक से सतगुरू परमहंस जी का संदेश सुनने के उपरांत कृष्ण जी कहने लगे, मेरे अमाशय से आगे ही रक़्त स्त्राव हो

रहा है, जब से मेरी धर्म पत्नि की मृत्यु हुई है तभी से मैं बिमार चल रहा हूं। साधक जी के काफी आग्रह के बाद उन्होंने सत्संग में आने की हामी भरी और अगले रविवार को वह सत्संग में अकेले आये और सत्संग उपरांत सतगुरू परमहंस जी के समक्ष हाथ जौड़ कर बोले, हे साहिब जी मैं काफी कष्ट् में हूं, मुझे इस बिमारी से निजात दिलाऐं। साहिब सतगुरू परमहंस जी सुनने के उपरांत बोले आप लगातार सत्संग में परिवार सहित आओ और कम से कम दस सत्संग बिना किसी मान मनोवल व स्वार्थ के पूर्ण श्रद्धा भाव से सुनो और सिमरन में रहो। इतना सुनने के बाद भी वह अपनी बिमारी की ही बात कहते रहे, पर दस पंद्रह मिण्ट की बातचीत में कहीं भी अपनी मृत धर्म पत्नि मीना देवी जी का ज़िक्र करना उचित नहीं समझा और सत्संग से वापिस लौट आए। उनके जाते ही साहिब सतगुरू परमहंस जी ने अपने चन्द श्रद्धावान समर्पित साधकों को सम्बौधित करते हुए कहा, यह तो अपनी बिमारी के ही लिए आए थे, आगे इनका आना दुष्वार है। इसके बाद फिर कभी वो सत्संग में नहीं आ पाए ।

11 – सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की कृपा से मृत देह में प्राण संचार :– साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की एक श्रद्धावान और समर्पित साधिका नेहा जी का पूरा परिवार दीक्षित है और निरंतर सत्संग श्रवन अथ्वा सतगुरू दर्शन हेतु हर सत्संग में आश्रम आता है। सतगुरू परमहंस जी की इनके परिवार पे विशेष कृपा है। यह घटना नेहा जी की माता श्रीमति कुन्ती देवी जी के संग घटी और उन्होंने स्वयं इस सारी घटना को कलमबद्ध किया जो इस प्रकार है :–

''दिनांक 14.04.2016 वीरवार दोपहर की बात है, मैं अपने कार्यालय से छुट्टी उपरांत जरूरी काम के लिए घर जल्दी पहुंचना चाहती थी, मैं मैटाडौर स्टाप पर पहुंची और मैटाडौर की अगली सीट पर बैठ गयी। मैटाडौर चल पड़ी और सवारियां उतरती और चड़ती चली गईं। अंतिम स्टाप से कुछ पहले चालक ने गाड़ी कंडक्टर को चलाने के लिए सौंप दी। कंडक्टर ने जैसे ही गाड़ी चलाना शुरू किया, गाड़ी हवा से बातें करने लगी और बहुत तेजी से चलने की वजह से कंडक्टर का गाड़ी पर नियंत्रण नहीं रहा और एक भयंकर ध्वणि और धक्के से गाड़ी सामने किसी बिजली के खम्बे से जा टकराई। इतने भयंकर झटके के कारण मुझे समझ ही नहीं आया कि कैसे मैं एक पल में ही अपनी सीट से उछल कर आगे के शीशे में से टकरा कर गाड़ी के बाहिर जा गिरी। इतने भयंकर घटनाक्रम से मैं एकदम अचेत सी हो गई और मेरी आंखों के आगे अंधेरा सा छा गया परन्तु कानों में हर तरफ से लोगों की आवाज़ें सुनाई दे रही थी, मैं कुछ संभलती, इससे पहले ही मैं बेहोश हो गई। ऐसा लगा जैसे मैं मृत्यु को ही प्राप्त हो गई हूं। इस सब के बीच ना जाने कब और कैसे मेरी सुरति में सतगुरू परमहंस जी की छवि बनी और मैनें बेहोश होने से ठीक पहले उनके आगे सुरति में ही प्रार्थना की,

कि हे साहिब जी मेरी रक्षा करो ।

मेरे सतगुरू परमहंस जी का नुरानी चेहरा और उनके हाथ दिखाई दिए। इसके बाद मुझे कुछ भी याद नहीं रहा। जब मैं होश में आई तो देखती हूं कि मेरे सगे सम्बंधी हस्पताल में मेरे बिस्तर के आगे पीछे खड़े थे। बाद में मुझे ईलाज के दौरान पता चला कि मेरी रीढ़ की हड्डी पांच जगहों से और छाती की हड्डियां कंई जगहों से टूट चुकी थीं। मेरे सिर के पिछले हिस्से पर गहरी चौट लगी थी और मेरी ठोडी (मूंह) भी काफी कट गई थी। कांधों, गले और चेहरे पे सूजन से कालिमां छा गई थी। कुछ संभलते ही मैनें अपनी बेटी नेहा को साहिब सतगुरू जी को सारा वृतांत बताने को कहा। साहिब सतगुरू जी ने सुनते ही नेहा से कहा कि उन की कोई भी हड्डी टूटी नहीं है। मैं शीघ्र ही हस्पताल उन्हें देखने आउंगा। दो दिन बाद अचानक मेरे साहिब सतगुरू परमहंस जी ने कृपा की और मुझे देखने वो हस्पताल पहुंचे। मैं लगातार दर्द से तड़प और ज़ोर से कराह रही थी, किन्तु सतगुरू परमहंस जी ने पहुंचते ही मेरे सिर पर अपना हाथ रक्खा और सिमरन में जाने को कहा। ऐसे लगा जैसे निर्जीव प्राणों में एकदम से ऊर्जा व शीतलता का संचार हो गया हो। दर्द, पल में ही जैसे मेरे साहिब सतगुरू जी ने हर लिया हो और मैं कराहने के स्थान पर सिमरन करने लगी। मेरा हाथों से उपर का शरीर नहीं हिलता था। पल में ही जैसे सारे शरीर में जान आ गई और उपर का शरीर हरकत करने लगा। कुछ दिनों उपरांत जो डाक्टर पहले इतनी अधिक हड्डियां टूटी हुई बता रहे थे अब निरिक्षण करने पर पता चला कि वे सब ठीक थीं, एक दो हड्डियों में हल्की सी दरारों की लाईनें उभरी थी। सतगुरू कृपा से 14 अप्रैल को मुझे नव जीवन मिला। एक तरफ डाक्टर मुझे छेः मास तक पूरी बैड रैस्ट बता रहे थे परन्तु साहिब सतगुरू परमहंस जी की कृपा से कुछ ही दिनों के अंदर मैं सत्संग में आ पहुंची और पूर्ण स्वस्थ होने की ओर अग्रसर हुई और ठीक पांच मास बाद सतगुरू परमहंस जी की कृपा से दिनांक 25.9.2016 से दौबारा काम पे जा रही हूं।''

साधिका कुन्ति देवी जी इस घटना उपरांत नवजीवन देने के लिए अपने सतगुरू परमहंस जी का कौटि–कौटि धन्यवाद करती हैं। साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की महिमां देखें, वे अपने सभी निष्ठावान साधकों के दुखों को कैसे स्वयं हर लेते हैं।

12 –डाक्टर नरिता जी जो सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की श्रद्धावान साधिका हैं और संसारिक नातों की दृष्टि् से वह सतगुरू परमहंस जी की छोटी बहु हैं। सतगुरू परमहंस जी सब को साधक के ही नाते से अपना मानते हैं और सांसारिक रिश्ते नातों को वह बंधन कहते हैं। उनके अनुसार सारे साधक और शिष्य ही उनका परिवार है। जबकि पिछले पच्चीस वर्षों से सतगुरू परमहंस जी गृहस्थ जीवन को त्याग कर ब्रह्मचर्य–जीवन

व्यतीत कर रहे हैं।

बड़े साहिब जी जो संसारिक रिश्ते में सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के पोते हैं उनको साहिब सतपुरूष जी से साक्षात्कार दिनांक 26.11.2016 को प्रातः की अमृत बेला में हुआ ।

यह घटना दिनांक 5.9.2016 की है, एक महिला मरीज लक्ष्मी जी जो कि जम्मू के बतरा हस्पताल में ईलाज के लिए दाखिल थी जिसका ईलाज सयोंग वश डाक्टर नरिता जी ही कर रही थी। पिछले कंई दिनों के ईलाज के बावजूद उनका उपर का रक्त चाप 70 से उपर नहीं आ रहा था, एक दिन एकाएक मरीज की सेहत बिगड़ने के कारण डाक्टर साहिबा को हस्पताल जाना था। बड़े साहिब जी उनसे ना जाने की ज़िद करने लगे, किन्तु डाक्टर नरिता जी ने मरीज की हालत का खुलासा करते हुए हस्पताल जरूरी जाने को कहा। मरीज की असामान्य सेहत के बारे में ज्ञात होते ही बड़े साहिब जी अपनी माता जी से बोले, आप बताओ कि मरीज को कितने रक्तचाप की ज़रूरत है, क्या मैं इसे 150 तक कर दूं ! तो डाक्टर साहिबा मुस्कुरा के बोलीं अगर 100 भी हो जाए तो ठीक है। इतना सुनते ही बड़े साहिब बोले, कुछ ही पलों में मरीज का रक्तचाप 100 हो जाएगा और वह सिमरन में बैठ गये । कुछ देर उपरांत वह बोले कि मरीज का रक्तचाप 100 हो गया है। इतना सुनते ही डाक्टर साहिबा ने अपने निम्न कार्यरत एक डाक्टर को फोन कर के मरीज के रक्तचाप को जांचने के बाद बताने को कहा। कुछ ही पलों में वहां से मरीज का रक्तचाप 100 होने की पुष्टि् होने का फोन आया। डाक्टर साहिबा एक पल तो स्तब्ध रह गयी, फिर उन्होंने बड़े साहिब जी का कोटि कोटि धन्यवाद किया और सतगुरू सतनाम कहते हुए हस्पताल की ओर चल दी। वहां पहुंचने पर उन्होने स्वंय भी रक्त चाप की जांच की और छोटे साहिब जी का सुरति में धन्यवाद किया । अगले दो तीन दिन में वह मरीज पूर्णता स्वस्थ होके अपने घर चली गई। मरीज के घर जाने से पहले डाक्टर साहिबा ने मरीज को सारे घटना क्रम का विस्तार पूर्वक वृतांत सुनाया। वह मरीज सारा वृतांत सुनने के बाद मन ही मन गदगद हुई और डाक्टर साहिबा व बड़े साहिब जी को धन्यवाद करते हुए घर के लिए रवाना हुई ।

13 – रविवार, दिनांक 18.9.2016 के अमृतमई सत्संग के उपरांत सदा की तरहं सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के समक्ष प्रसाद स्पर्श–हेतु रखा गया। प्रसाद को छूते ही सतगुरू परमहंस जी ने कुछ पल नेत्र बंद किए, एक लम्बी सांस भरी और बोले, ये कैसा और किस का प्रसाद है इस की गन्ध तो जैसे सतलोक में फेली हुई सुगंध सी है, इतना कहते हुए उन्होंने प्रसाद लाने वाले साधक को खड़े होने को कहा और पूछा कि यह

प्रसाद कैसे तैयार हुआ। पूछने पर साधक जी बोले ठीक सुबह साड़े पांच बजे से प्रसाद तैयार होने तक हम सिमरन में रहे और साथ साथ साहिब महिमां के भजन ही गाते रहे। लगभग एक बजे तक प्रसाद तैयार हो गया। सतगुरू परमहंस जी ने इस प्रसाद के देने के पीछे उपलक्ष्य के बारे में पूछा तो साधक जी श्रद्धा भाव से नमन होकर बोले, साहिब सतगुरू जी, आज से तीन साल पहले दिनांक 17.2.2013 को निजधाम वासी शशी प्रभा जी को पित्र–लोक से बुला कर आप ने दीक्षा दी थी और आप ही की कृपा से आपने दिनांक 17.9.2013 को उनको अपने संग ले जा कर निजघर पहुंचाया अर्थात मौक्ष प्रदान किया ।

सतगुरू परमहंस जी बोले, आप तो शारीरिक रूप में काम कर रहे थे पर, ये प्रसाद निजधाम वासी परमहंस शशी प्रभा जी ने अपने हाथों से स्वंय बनाया है, तभी तो ये प्रसाद सतलोक की अलोकिक सुगंध से ओत–प्रोत है। जिस–जिस ने भी इस प्रसाद को बनाते समय श्रमदान किया, वह भी मौक्ष के अधिकारी है। यह प्रसाद सभी दीक्षित साधकों ने मिल कर बनाया है। सतगुरू परमहंस जी ने कहा सहज मार्ग के अनुयायियों व गुरूमुखों का निजधाम वासी, हर पल पथ प्रदर्शक होते हैं। सतगुरू परमहंस जी फिर बोले, कुछ दिनों से कोई मुझे लगातार प्रेरणा दे रहा था कि मैं संगत कल्याण हेतु अपने चरण वन्दना की आज्ञा दूं। कुछ रूकने के उपरांत सतगुरू परमहंस जी फिर बोले, पिछली बार मैनें सतगुरू चरण वन्दना की आज्ञा देने से मना कर दिया था। मैं निजधाम वासियों के आग्रह को ना टाल सका, और देखो, सतलोक वासी परमहंस शशी प्रभा जी के आग्रह अनुसार आज सत्संग से पहले सभी दीक्षा धारी साधकों को सतगुरू चरण वन्दना की प्रथा शुरू करवाई। सतगुरू परमहंसों की चरण वन्दना द्वारा साधक जन गुरू उर्जा से फलीभूत हो कर व माया से मुक्त हो कर सहज मार्ग की ओर तीव्रता से अग्रसित होते हैं, इतना कहने के उपरान्त सतगुरू परमहंस जी साधकों से बोले कि भले ही मैं, किसी भी साधक को मौक्ष दिलवा कर सतलोक भेज सकता हूं परन्तु एक बार, जो सतलोक वासी हो जाता है उसकी अवस्था सर्वोपरि होती है। सतलोक वासियों ने मौक्ष प्राप्त कर लिया है, पूर्ण को पा कर वे परमहंस हो गये हैं, पर मैं तो स्वयं अभी इसी धरा पर ही हूं। अगर मैं भी कोई गल्ती कर बैठूं तो मौक्ष से वंचित हो सकता हूं। मुझे ऐसा भरोसा अपने साहिब सतपुरूष जी पे है कि वे इस दास से कभी भी गल्ती नहीं होने देंगे। इतना कहने के उपरांत सतगुरू परमहंस जी ने सारे वृतांत को कलमबद्ध करने को कहा ।

एक व्यथा जो जग में सर्वत्र और सारे मानव समाज को मोह पाश में झकड़े हुए हैं जिससे मानव जन्म मरण से मुक्त नहीं हो पा रहा। मानव आमतौर पर आध्यात्मिक मार्ग पर चलना ही नहीं चाहता। सब समझ होने के बावजूद वह इस तरफ ध्यान ही नहीं देता। जो भूले भटके इस ओर चलते भी हैं वे सभी भौतिक जगत के स्वार्थ सिद्धी हेतू

ही आते हैं, कोई बिरले जन ही निस्वार्थ भाव से आते तो हैं पर वे बिन साधना, तपस्या और पूर्ण समर्पण ना हो पाने व अहम ना छोड़ सकने से आध्यात्मिक मार्ग से भटक जाते हैं। कोई–कोई बिरला अपने मूल को पाने हेतू पूरी लगन श्रद्धा, समर्पण भाव और अपने अहम को तज लगातार प्रयासरत रहते हुए सतगुरू परमहंस जी की कृपा से साहिब सतपुरूष जी से मिल पाता है अर्थात मौक्ष को पाते है, यह कोई–कोई लाखों में एक ही भड़भागी जन ही होता है जो गुरू शरणी में लीन हो अपने मूल से मिल पाता है। साहिब सतगुरू परमहंस जी साधकों को सम्बौधित करते हुए यूं बोले ''जो साधक जन सतगुरू परमहंस जी संग जुड़ने उपरांत सिमरन व ध्यान द्वारा कुछ भी अनुभव प्राप्त नहीं करते अथ्वा बहुत कम ध्यान करते हैं किन्तु उनके प्रति श्रद्धावान व निरंतर सत्संग से जुड़े रहते हैं, सतगुरू परमहंस जी की कृपा सूं उन्हें भी मौक्ष मिलता है। यहां पर जो उपरोक्त दीक्षित साधक जन, अपने सतगुरू परमहंस जी के जीवन काल में ही मृत्यु गति को प्राप्त होते हैं उन्हें तो सतगुरू परमहंस जी मोक्ष दिला देते हैं परन्तु जो साधक जन उन के जगत त्यागने के बाद निजधाम पहुंचने के उपरान्त जीवन त्यागते हैं, उन्हें युगों–युगों तक मानसरोवर में ही रूकना पड़ता है। जब कोई अगला पूर्ण संत परमहंस धरती पर प्रकट होता है तो केवल वही संत परमहंस मानसरोवर में अटके पड़े साधक जनों के सतगुरू परमहंस जी के आग्रह पर उन्हें निजधाम पहुंचा सकता है। परन्तु मानसरोवर में असंख्य लम्बे काल से अनगिनत हंसा निजधाम तक पहुचने की बाट जोह रहे हैं, यहां तक की साहिब कबीर जी के सतयुग समय के अनुयायी हंसा भी अभी तक मानसरोवर में ही अटके पड़े हैं। एक बड़ी आलोकिक घटना **बड़े साहिब जी** के संग घटी, साहिब कबीर जी के एक परम अनुयायी (बड़े उच्च कोटि प्राप्त आत्मां) जो की सतयुग के काल से मानसरोवर में ही हैं, जो निजधाम जाने को बड़े उत्सुक हैं।

14 – 13 फरवरी, 2017 की रात यह हंस आत्मां बड़े **साहिब 'श्री सक्षम जी'** के आसपास मंडराते रहे ताकि वे भयभीत होकर 'सार सब्द' सिमरन में चले जाऐं और वे उस मोक्ष दात को उनके सिमरन से ही पकड़ लें। इस सब के प्रभाव से **बड़े साहिब जी** के शरीर का तापमान बड़ गया, जिससे उनको एकदम 104 डिगरी के करीब ज्वर हो गया। सतगुरू **''वे नाम परमहँस जी''** को आभास होने पर वे **बड़े साहिब जी** के पास पहुंचे, जहां घर वाले सभी उनकी देख रेख में लगे थे और अत्यधिक चिंतित थे। सतगुरू परमहंस जी के आते ही वह अनुयायी जी वहां से एकदम से अदृष्य हो गये। हांलाकि **बड़े साहिब जी** के संसारिक माता पिता दोनों डाक्टर हैं। सतगुरू परमहंस जी को देखकर सभी थोड़े शांत हुए तो सतगुरू परमहंस जी ने सभी को विश्राम करने को कहा। जाने से पहले श्राविका जी ने पूछा कि बड़े साहिब **श्री सक्षम जी** कब तक ठीक होंगे, जिस पर सतगुरू परमहंस जी कुछ देर उपरांत बोले कि सुबह आठ बजे तक ये पूर्णतया स्वस्थ होंगे और ठीक वैसा हुआ भी। 14 फरवरी की सुबह ठीक आठ बजे बड़े साहिब **श्री सक्षम जी** इस प्रकार उठ बैठे जैसे पिछली रात को कुछ हुआ ही न हो और साथ ही वे अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गये।

सतगुरू परमहंस जी ने अपने साधकों से इस घटना को पूर्ण विस्तार से समझाते हुए कहा कि बड़े साहिब जी के स्थान पे अगर कोई साधारण मानव होता तो वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता। मैं तो वैसे ही **बड़े साहिब श्री सक्षम जी** की उच्च अवस्था के कारण उनका दास बन के उनका पूरा ध्यान रखता हूं। इस घटना के उपरांत मैं सुरति से उनके प्रति आगे के लिए और भी सजग हो गया हूं । सिमरन व ध्यान में रहने से सुरति हमेशा सतपुरूष जी से जुड़ी रहने से हर बात का पूर्वता ही आभास हो जाता है, इसी से ही मुझे इस घटना का सब कुछ पहले से ही ज्ञात हुआ। सुरति सिमरन में रहने से हमेशा सतगुरू परमहंस जी के रूप में सतपुरूष जी से जुड़ाव बना रहता है । बिन सिमरन के सुरति संसारी माया में रमी रहती है क्योंकि निराकार ही मन व माया ही मन का जाल है। ये मन बड़ा ही शक्तिशाली है। ये अपनी मोहिणी तरंगों से सब जीवों को वशिभूत करके रखता है और संसारियों को सतगुरू परमहंस जी की शरणी जाने ही नहीं देता, तभी तो जब भी साधक सिमरन या ध्यान में जाते हैं तो ये शक्तिशाली मन अपनी तरंगों में उलझा लेता है। अगर कोई साधक इसकी ओर ध्यान ना दे तो ये उसे भ्रमित नहीं कर सकता। जिसने पूर्ण सतगुरू परमहंस जी से दीक्षा ली हो तो वह 'सार सब्द' सिमरन सूं इस मन माया सूं मुक्त हो के अपने सतगुरू परमहंस जी का साक्षात्कार कर मौक्ष मार्ग पर चल पड़ता है। मौक्ष प्राप्ति उपरांत ही आवागमण के बंधन से छूटा जा सकता है। बिन सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जाऐ यह 'सार सब्द' मोक्ष दात मिल ही नहीं सकती और इस 'सार दात' बिना मोक्ष संभव नहीं।

आज के इस पावन काल में सतगुरू **''वे नाम परमहँस जी''** के समकक्ष कोई सानी नहीं, क्योंकि उन की वाणी अनुसार कोई जग में बुरा है ही नहीं। तो निराकार और उसकी मन माया बंधन सत्ता बिन सतपुरूष जी की मौन सहमति के ईक पल भी ठहर नहीं सकती। आद्यशक्ति व निराकार के मोहिणी माया जाल का ब्खान, व निराकार को भजने वाले असंख्य धर्म और अनगिनत गुरू हैं, तो भी साहिब सतपुरूष जी की महिमां का ब्खान व गुणगान करने वाले पूर्ण संत परमहंस जन समय समय पर इस धरा पर आते रहे हैं और आगे भी आते ही रहेंगे। सहज सत मार्ग के ये पूर्ण संत सतगुरू परमहंस जीवात्मांओं को मौक्ष मुक्ति मार्ग की तरफ ले जाने का प्रयास करते रहेंगे। आज के इस काल में एक मात्र पूर्ण संत सतगुरू **''वे नाम परमहँस जी''** जीवात्मांओं के कल्याण और उन्हें मोक्ष दिलाने हेतु प्रयासरत हैं। निराकार भगवान को भी पूर्ण संत सतगुरू परमहंसों के समकक्ष नतमस्तक होना पड़ता है।

13 मार्च, 2017 की रात्री को पुनः साहिब कबीर जी के अनुयायी **बड़े साहिब श्री सक्षम जी** को नींद में डरावने की चेष्ठा कर रहे थे, सुरति सूं आभास होते ही सतगुरू परमहंस जी वहां पहुंचे और क्या देखते हैं कि अनुयायी जी सोते हुए **बड़े साहिब जी** के

पास खड़े हैं। वह बड़े साहिब जी को इस उद्देष्य से परेशान कर रहे थे कि वो अल्प आयु अवस्था के कारण जल्दी भयभीत हो के 'सार सब्द' सिमरन में चले जाऐंगे और जैसे ही वे सिमरन आरम्भ करेंगें तो वह सुरति सूं इस मोक्ष दात को ग्रहण कर लेंगें। इस प्रयोजन में दौबारा असफल होने पर 25 मार्च की रात्री उपरांत प्रातः लगभग तीन बजे के आस पास फिर से एक बड़ी सी आलोकिक मक्खी के रूप में सतगुरू परमहंस जी के शयन कक्ष में आए, उस समय सतगुरू परमहंस जी ध्यान में लीन थे, काफी समय वहां भंवरे की सी गुंझन करते हुए मण्डराते रहे और मौक्षदायी 'सार सब्द' दात को पकड़ने की चेष्ठा करते रहे। असफल रहने पर वह वहां से वापिस मानसरोवर लोट गये। सतगुरू परमहंस जी बोले कोई भी देव या दिव्य आत्मां तीन बार के बाद चौथी बार उनके पास नहीं आ सकते। तो भी मैं इन सभी हंसों को अपने अंतिम सफर में मानसरोवर से निजधाम ले जाने के बारे में विचार कर रहा हूं। हांलाकि ये सभी हंसा मानसरोवर में सभी सुविधाओं के उपलब्ध होते हुए भी साहिब सतपुरूष जी के दर्शन और सानिध्य से वंचित रहते हैं। हां कभी कभार इन हंसों को उभारने के लिए निजधाम से परमहंस मानसरोवर आते रहते हैं। मानसरोवर में ही तो आत्मां सिमरन द्वारा पूर्ण मन (जोकि पहले से ही 99 प्रतिशत मन से मुक्त होते हैं मगर फिर भी 1 प्रतिशत मन साथ होता है) का परित्याग कर हंसा बन जाती है। बिन हंसा हुए निजधाम जाना संभव ही नहीं।

हां ! जो सत्संगी सतगुरू परमहंस जी को अपने ध्यान व सिमरन में प्रकट कर लेते हैं उन पर सतगुरू परमहंस जी की विशेष कृपा होने से कुछ देर मानसरोवर भ्रमण के उपरांत निजधाम चले जाते हैं। वे अपने संग–संग अपनी मृत ईक्कहतर पीढ़ियों को भी तारते हैं और निजधाम में उनको साहिब सतपुरूष जी सेवा भी प्रदान करते हैं। उपरोक्त पहली अवस्था वाले साधक जन खुद तो मौक्ष पा लेते हैं पर वो निजधाम में ही रहते हुए सेवा से वंचित व निष्क्रिय रहते हैं। हां वह भी आवागमण से रहित हो हंसा बन सतलोक के ही हो जाते हैं जहां सभी हंसा एक समान हैं।

साहिब भक्ति तो सिलसिली गैल है, चढूं तो गिर–गिर पडूं ।
पपील तहां पांव न धर सके और पंडित लादे बैल ।।

इस घटना उपरांत सतगुरू परमहंस जी ने सब साधकों को कंई सत्संगों में कहा, जो कोई मालिक को पाना चाहता है वोहि केवल सत्संग में आए, जो निज को अर्थात अपने मूल को पाना चाहते हैं बस वे ही आयें, चाहे वह सिर्फ एक या दो

ही क्यूं ना हों या कोई भी ना हों। क्योंकि सतगुरू परमहंस जी की वाणी अनुसार केवल मानव ही नहीं, सारे का सारा ब्रह्माण्ड, देवी देवता तक उनके प्रवचनों को सुनते हैं क्योंकि ये सभी सुरतिवान होने से पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की महिमां को जानते हैं और उनके प्रवचनों में साहिब सतपुरूष जी का गुणगान सुनने को हर पल लालायित रहते हैं। मृत्यु उपरांत जीव आत्मांओं को सतगुरू परमहंस जी की सत्ता (महत्वता) का पता चल जाता है पर वे जीव आत्मांऐं तो जीते जी सतगुरू परमहंस जी की शरणी में ना पहुंच पाने और उनकी महिमां को ना जानने के कारण दुर्भाग्य वश काल जाल बंधन में ही फंसी रह जाती है। तभी तो उन्हें जीते जी सतगुरू परमहंस जी की शरणी ना आ पाने के कारण मृत्यु उपरांत अत्यधिक पष्चाताप होता है। इसलिए हे मानव जीते जी ही सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी आ और इस आवागमण के बंधन से मुक्त हो।

देवी–देव, पित्तर लोक, स्वर्ग और सुन्न लोकों यहां तक की सतलोक में भी सुरति का पसार है, देवी–देव और सारे स्वर्ग व सुन्न लोकों में ध्वणी अर्थात शब्द नहीं, सिर्फ सुरति का ही पसार है । देवी–देव सुरतिवान होने से साहिब सतपुरूष जी को जाग्रत अवस्था होने के कारण जानते तो हैं परन्तु अपने–अपने कर्तव्य के कारण जगत संचालन को बाध्य हैं । मोक्ष तो केवल मानव शरीर व इसी धरा से ही प्राप्त हो सकता है । तभी तो सभी देवी देव, यहां तक कि निराकार स्वयं और आधशक्ति भी मानव शरीर पाने के लिए तरसते हैं । पर इन्हें मानव जन्म मिल ही नहीं सकता। विवशता वश अपने कर्तव्यों से ये विमुक्त नहीं हो सकते। विचित्र विडम्बना देखो एक मानव ही है जो इस अनमोल जीवन को आशा–तृष्णा की पूर्ती में नष्ट कर देता है ।

हे मानव खुद को जान, इस शरीर और भौतिक माया जगत को छोड़ । ये शरीर तो स्वयं में रोगों और दुखों का भण्डार है । हर जन्म में शरीर ही रोगों और दुखों से जर्जर होता है, तभी तो आत्म एक शरीर को छोड़ कर दूसरा शरीर धारण करती है जिसे मृत्यु वासी मौत कहते हैं। यथार्थ में यह मौत दुखदाई नहीं होती । जर्जर व दुखदाई शरीर के स्थान पे आत्म को नवीन युवा शरीर धारण करने को मिलता है जो ह्रष्ठ–पुष्ठ, निरोग व युवा होता है ।

इस कारण हे मानव शारीरिक कष्ट क्लेश छोड़, मालिक की तरफ चल, निज को जान, अपने अहम को तज कर पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जा और आवागमन से मुक्त होना अर्थात मौक्ष को प्राप्त करना ही तेरा एक मात्र ध्येय है। साहिब सतपुरूष जी तो अनगिनत समय से अपने हंसों की बाट जोह रहे हैं। यह (हंसा + मन = आत्मां)

आत्मांए अपना निज रूप हंस (आत्म–मन=हंसा) भूल कर खुद को शरीर समझ माया में फंसी साहिब सतपुरूष जी को पूर्णतः भुलाये हुए हैं।

सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' तो किसी से एक रूपया तक नहीं लेते, इसके विपरीत वह तो कंई जरूरत मन्दों की मदद, सत्संग का सारा खर्च और यहां तक कि प्रसाद भी अपनी निज कमाई से ही लाते हैं व आश्रम की साफ सफाई, चद्दरों की धुलाई, झाड़ू, पोछा तक खुद अपने हाथों से ही संगत की सेवा के लिए बड़ी श्रद्धा से करते हैं। वह सब संगतों का शीष झुका कर नमन और धन्यवाद भी करते हैं। सतगुरू परमहंस जी ने तो अनगिनत लोगों को जीवन दान भी दिया और कितनों को भूत प्रेतों व बिमारियों से मुक्त ही नहीं किया अपितु पैसे से भी ज़रूरतमंदों की आर्थिक रूप से भी मदद करते रहे और आज भी कर रहे हैं ।

अब उन्होंने केवल सांसारिक बिमारियों व कष्टों को ठीक करना बंद कर दिया है क्योंकि वह अक्सर कहते हैं, मैं तो आत्मा का वेज्ञानिक हूं, इन आत्मांओं को हंसा बनाने हेतू इस जग में आया हूं अर्थात जीवों को अपने मूल साहिब सतपुरूष जी से मिलाने के लिए ही उस मालिक द्वारा भेजा गया हूं, नां कि सिर्फ बिमारियों व कष्टों से मुक्त करने के लिए जिसके लिए डाक्टर, हकीम और तांत्रिक जग में भरे पड़े हैं। मैं तो मौक्ष दात बांटने हेतू पूरी ऊर्जा व शक्ति से लद कर इस जग में साहिब सतपुरूष जी द्वारा भेजा गया हूं। साहिब सतगुरू परमहंस जी की वाणी अनुसार जो दात और शक्ति इस वक्त उनके पास है वह इस पूरे ब्रह्माण्ड में साहिब सतपुरूष जी ने किसी ओर को नहीं दी।

सतगुरू परमहंस जी की वाणी अनुसार सहज मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस सदा स्वस्थ रहते हैं। जगत में जो गुरूजन बिमार रहते हैं या ईलाज हेतु हस्पताल में दाखिल होते हैं, साधक जनों को ज्ञात रहे, वे पूर्ण सतगुरू परमहंस ना हो के निराकार दायरे के गुरूजन ही होते हैं। 'सार सब्द' सत्ता तो निराकार रूपी काया मन और भौतिकता की सत्ता से ऊपर की सत्ता है। रोग दुख तो काया (शरीर) व्यस्न आदत है। पूर्ण सतगुरू परमहंस तो स्वंय कायाधारी होते हुए भी मन और काया पर सवार रहते हैं अर्थात आशा तृष्णा से वह सर्वथा रहित होते हैं, यह आशा तृष्णा ही तो सब दुखों व रोगों तथा आवागमण की जननी है।

मानव स्वार्थ सिद्धी हेतु अर्थात जगत दुख निवारण और जगत माया हेतु झूठी श्रद्धा लेकर पूर्ण सतगुरू परमहंस जी के द्वारे पहुंच कर भी वापिस जगत माया में खो जाते हैं ऐसा बार–बार होने पर हमने सतगुरू परमहंस जी से पूछा कि हे साहिब सतगुरू जी, मालिक की तरफ जग की अभी रूची क्यों नहीं बनती ? साहिब सतगुरू परमहंस जी की वाणी अनुसार

''मेरी शरणी कोई आए तो उसके शारीरिक कष्ट तो मैं हर लेता हूं और उसे मालिक की तरफ चलने को प्रेरित करता हूं। कोई ठीक भी हो जाए और अपने मालिक की तरफ ना चले तो दो साल उपरांत दौबारा जीव उसी दुख बिमारी से अथ्वा किसी और बड़ी विपत्ति से घिर जाता है, अगर वह दीक्षित ना हो तो, अन्यथा साधारण मानव को छेः महीने में ही उसे कष्ट व बिमारियां आ घेरती हैं। क्योंकि 'मैं' तो मालिक अर्थात साहिब सतपुरूष जी से सब हंसों को मिलाने आया हूं ना कि शरीरों को ठीक करने, जब तक शरीर (आवागमण) है तब तक रोग और कष्ट तो रहेंगे ही। मूलतः शरीर ही तो तामाम रोगों, दुखों और व्याधियों का घर है। बिना मुक्ति की तड़प जागे, पूर्ण सतगुरू परमहंस की शरणी जाना संभव ही नहीं।''

साधकों के भाव और श्रद्धा अनुसार :—

''सार नाम के हीरे मोती, 'वे नाम' बिखेरें गली—गली ।
ले लो रे भाई ले लो रे, ये दात प्यारी, बेमोल बेचें गली गली ।।

वे नाम कहें, मैं लाया सुरति जहाज हूं ।
साहिब प्यारो इस पे चढ़ो, मैं उतारूं पार रे ।
जो अहम तज के ना चढ़े, जाये यम द्वार रे ।।

मानव अवस्था के बारे में सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के अनुसार :—

हे स्वार्थी मानवो, तुम्हें तन भी बुरे दिखते हैं ।
देवी—देवों के पास तन नांहि, मानव तन को तरसते हैं ।
उनको तन कभी ना मिल पाएगा, तूं इसे व्यर्थ गंवाता है ।
देवी—देव तो माया हैं, माया में ही सब फंसे रह जाते हैं ।
सतगुरू को तूं जान, तो तूं निज को जान पाएगा ।
सतगुरू कृपा सूं तूं, हंस बन सत्तलोक पा जाएगा ।।

नोट :— (इसके ईलावा कंई और अनगिनत अध्यात्मिक व भौतिक दृष्टांत व चमत्कार सतगुरू परमहंस जी द्वारा हुए। जैसे कंईयों को जीवन—दान व अनेकों को ला ईलाज बिमारियों से छुटकारा साहिब सतगुरू परमहंस जी की कृपा दृष्टि् से हुआ जिनमें से अधिकतर वृतान्तों का वर्णन अग़ामी ग्रन्थ 'साहिब जी के सफ़रनामें' में विस्तार पूर्वक पढ़ें)।

सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की महानता देखें, इस उच्च कौटि की अवस्था के बावजूद वे सतगुरू सतनाम की सत्ता की गद्‌दी का प्रचारक व संरक्षक खुद को ना समझ के बड़े साहिब 'श्री सक्षम जी' के प्रतिनिधि के रूप में साहिब महिमां का गुणगान व प्रचार और प्रसार कर रहे हैं। दिनांक 26.01.2016 प्रातः काल की बात है, 'श्री सक्षम जी' जो अल्प आयू पौने छः वर्ष के हैं इसी प्रातः को सोते सोते मुस्कुरा कर उठे और सिमरन में मग्न हो गए। अगले दिन 'श्री सक्षम जी' के पिता जो सतगुरू परमहंस जी के सांसारिक नाते में सपुत्र भी हैं, उन्होंने सतगुरू परमहंस जी से रात का सारे दृष्टांत का वर्णन किया और उनसे इस दृष्टांत पर और प्रकाश डालने का आग्रह किया। अगले सत्संग में रविवार को सतगुरू परमहंस जी ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया :– प्रातःकाल की बात है मैं सदेव की भांति ध्यान में जाते ही निजधाम की सैल को चल पड़ा, तो क्या देखता हूं कि 'श्री सक्षम जी' भी मुझ से कुछ आगे चल रहे हैं जैसे कि वह पहले भी निजधाम जा चुके हों और सारे मार्ग से भलि भांति परिचित हों। निजधाम पहुंचने पर हम दोनों ने साहिब सतपुरूष जी को कर बद्ध होके बड़ी श्रद्धा पूर्वक प्रणाम किया। साहिब सतपुरूष जी बड़े आनंद पूर्वक ''श्री सक्षम जी'' से खेलने लगे। साहिब सतपुरूष जी उनको उछालते और अदृष्य हो कर दूसरे स्थान पर प्रकट हो उन्हें इस प्रकार से थाम लेते जैसे इस से पहले वे एक दूसरे से न जाने कब से चिर परिचित हों। इस सब को मैं कुछ दूरी से ही खड़ा देखता रहा, जो कि बहुत ही आनंदित और प्रफुल्लित कर देने वाला दृष्य था। कुछ देर मैं खड़ा खड़ा देखता रहा फिर मैं सतलोक की सैल के उपरांत वापिस लौट आया और 'श्री सक्षम जी' साहिब सतपुरूष जी संग ही सतलोक में विचरते रहे।

अगली बार सतगुरू परमहंस जी ने ध्यान में जाते ही महसूस किया कि कैसे मैनें इस अल्प आयू में उन्हें पूर्ण 'सार सब्द' की दीक्षा को प्रदान किया ? सतगुरू परमहंस जी बोले, ध्यान में जाने के उपरांत मैनें देखा, 'श्री सक्षम जी' कोई साधारण मानव ना हो के भक्ति में एक उच्च अवस्था प्राप्त आत्मां (हंसा) हैं जो किसी कारण वश अब तक मौक्ष से वंचित रह गये थे। इसी कारण उन्होंने सहज मार्ग के एक संपूर्ण सतगुरू परमहंस जी के परिवार में जन्म लिया। उनकी पूर्वता की उच्च अवस्था के कारण ही उन्हें 'सार सब्द' की दीक्षा प्रदान की। तभी दात पाते ही वे अक्सर ध्यान व साहिब महिमां की चर्चा व वार्तालाप मुझ से किया करते हैं। एक दिन वे अपने चचेरे बड़े भाई से बोले आप ने अभी तक सतगुरू परमहंस जी से दीक्षा क्यूं नहीं ली ? चलो कोई बात नहीं, मैं स्वयं ही एक दिन

आपको दीक्षा प्रदान करूंगा, जिस से आप भी निज को जान कर पूर्णतः मौक्ष के अधिकारी बनेंगे। यह घटना उनके सुरतिवान होने और जाग्रत अवस्था को प्रमाणित करती है। सतगुरू परमहंस जी फिर बोले, 'श्री सक्षम जी' मुझ से भी पूर्व निजधाम की सैल को जा चुके हैं इस कारण आध्यात्मिक दृष्टि् से वे छोटे ना हो के मुझसे भी श्रेष्ठ और बड़े हैं जिस कारण आज से हम उन्हें छोटे संत जी ना कह कर ''बड़े साहिब जी'' कह कर सम्बोधित किया करेंगे । साथ ही साथ इस गद्दी के अगामी संचालक और साहिब सत्ता की महिमां के प्रचारक वे ही होंगे । आज से मैं उनके प्रतिनिधि के तौर पे सारे कार्य और सेवा पूरे समर्पण व श्रद्धा भाव से करता रहूंगा ।

श्रदेय और वंदनीय साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' के इस विलक्षण कृत्य, साहिब भक्ति के प्रति पूर्णतया समर्पण व संगत के प्रति सेवा भाव और दासा पन देख के सारी संगत ही नहीं अपितु आम जन भी उनसे मिल कर उनसे प्रभावित हुए व नमन किए बिना नहीं रहता । सतगुरू परमहंस जी आज के समय में पूर्णतः साहिब सतपुरूष जी का ही रूप हैं तभी तो उनके प्रवचन आलौकिक आभा लिये हुऐ होते हैं जो कि किसी भी ग्रंथ व शास्त्र में वर्णित नहीं हैं और नां ही किसी महांपुरूष की वाणी से मेल खाते हैं, एवमः उनका हर प्रवचन नवीन आलौकिक सत वाणी से औत प्रौत होता है।

गुरू चरणन में शीष धरें, अमरपुर को जायें।
साहिब संग में ले चलें, अपना रूप दिखायें।।

वे नाम ब्रह्मण्ड सैल करि, साहिबन संग ईक साथ।
रूप सतगुरू धर कर चल लिये, छूट गयो संसार।।

''वे नाम'' लाया नाम जहाज है, तुम चढ़ो तो उतरो पार।
ये समय जो बीत गया, कौन कब देत पुकार।।

——

9 खर अक्षर और निःअक्षर

सृष्टि उत्पति से लेकर आज तक का महां सभ्य मानव समाज अपनी उत्पति और मृत्यु से मुक्ति के मार्ग पर चल ही नहीं पाया। क्योंकि माया की मोह लेने वाली त्रिलोकी से भ्रमित मानव, ख़र से अक्षर और अक्षर से निःअक्षर की ओर चलना तो दूर, उसकी बात तक भी सोच नहीं पाया। सारे का सारा मानव समाज जब से सभ्य हुआ है तभी से दुर्भाग्य वश ये ख़र और अक्षर से आगे बड़ ही नहीं पाया। परन्तु ईक्का–दुक्का बडभागी मानव ही माया रूपी महाजाल से मुक्त हो कर सहज मार्ग पर चल पाया, निःअक्षर अर्थात सुरतिवान होके अपने निज रूप हंसा को जान कर अपने निजघर अर्थात मोक्ष को पा सका।

ख़र अक्षर और निःअक्षर पर सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार :–

सारे का सारा मानव समाज ख़र अर्थात माया (झूठ पसार) में रमा हुआ है। हर समय उसे कोई ऐसा संगी साथी चाहिए जिस से भूत, भविष्य व वर्तमान काल की बातें की जा सकें। मानव अपनी बड़ाई करने में तो वार्तालाप के दौरान ऊंची–ऊंची ढींगें हाकना शुरू कर देता है। वार्तालाप करते समय नब्बे प्रतिशत मानव सत्य सीमा का उल्लंघन कर जाते हैं, सत्य व मर्यादा तो उससे जैसे कोसों दूर छूट जाती हैं। क्योंकि 'मै' (अहंम) से वशिभूत मानव अपने को कमतर दिखना व दिखाना ही नहीं चाहता। अपना दुर्लभ व बहु मूल्यवान समय व सारा जीवन इसी उधेड़बुन में ही नष्ट कर देता है। इन व्यर्थ की बातों में इस नवीन काल में दूरदर्शन, सिनेमा, नाटक व जगत के अन्य मायावी (मनोरंजन) प्रलोभन इन्सान को निज को जानने की तरफ का विचार तक भी आने नहीं देते। कहने को ये प्रलोभन मन–भावन, पर असलियत में मानव की समूल विचारधारा तक को अशांतमय बना देते व उद्विघ्नता से भर देते हैं जिससे मानव अपने सारे का सारा जीवन–काल व्यर्थ में गंवा देता है।

संसार का मानव नब्बे प्रतिशत समय ख़र अर्थात व्यर्थ की माया भरी बातों में व सपनों में गुज़ार देता है। परन्तु चंद बड़े बडभागी जन ईक्का–दुक्का ही सही मालिक को जानने के लिए सत्संग, पूजा, ईबादत बिना स्वार्थ के करते हैं व सारे मानव जगत के कल्याण हेतु लगे रहते हैं। इस अवस्था वाले मानवों का सत की ओर ये पहला कदम भर होता है। बाकी सारा मानव समाज मांगों व स्वार्थ सिद्धि हेतु पूजा, ईबादत व प्रार्थनाओं में लगा रहता है, ऐसी भक्तियां भी तो ख़र अवस्था ही हैं। बिन मायावी मांगों के निस्वार्थ भक्ति अर्थात मालिक को जानने हेतु पूजा भक्ति, ख़र से आगे अक्षर अवस्था की ओर अगला कदम है। ख़र अवस्था वाले मानव मजे लेने हेतु वार्तालाप करते हैं, ये मानव सुनना कम और सुनाना ज्यादा चाहते हैं। ये मानव अपनी वाणी में तर्क–वितर्क, चतुराई व चंचलता से भरपूर होते हैं। अपना सारा जीवन स्वपन अवस्था में व्यर्थ ही गुज़ार देते हैं। परन्तु ख़र से आगे अक्षर

अवस्था वाले मानव संयमी, ठहराव व गहन विचारशील, अधिक श्रवन करते, नपा तुला व बहुत कम बोलते हैं। इन दोनों अवस्थाओं से मानव को आवागमण अर्थात जन्म मरन से छुटकारा नहीं मिलता। ये दोनों अवस्थाएं मानव को कर्म जाल व जन्म मरन के बंधन में उलझाये रखती हैं।

निःअक्षर अवस्था में ध्यानी व सहज सत्तमार्ग के पूर्ण संत परमहंस व साधकजन होते हैं। ध्यानी तो निराकार के दायरे की भक्ति में भी होते हैं, पूर्ण समर्पित साधक जन ध्यान (निःअक्षर) में जाकर ही अपने आराध्य व ईष्ट का साक्षात्कार कर पाते हैं। परन्तु निराकार भक्ति में उच्च अवस्था प्राप्त ऋषि मुणि व योगी जन, मन से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाते। जिस कारण उनकी ख़र अवस्था में वापिसी की संभावना बनी रहती है। अक्सर इसके कंई उदाहरण प्राचीन काल में व वर्तमान में भी देखने को मिलते हैं।

सहज सतमार्ग के सतगुरू व पूर्ण संत परमहंस माया रूपी मन व मन तरंग पर सदा सवार रहते हैं, क्योंकि इस मार्ग की भक्ति तो केवल सुरति (ध्यान की उच्च परिकाष्ठा) सूं ही की जाती है। यहां तक की 'सार व सुरत सब्द' की दीक्षा भी सुरति सूं मानव तन को ना देकर सीधी आत्मां को ही दी जाती है क्योंकि आत्मां की निज भाषा ही सुरति है। यह दीक्षा तो अक्षर व लेखनी से परे किसी भी ग्रन्थ में वर्णित नहीं होती। इसी कारण इसे निःअक्षर दात व 'सब्द विदेह' भी कहते हैं। ये पूर्ण सतगुरू परमहंस जी द्वारा सुरति सूं ही साधक को प्रदान की जाती है जिसे साधक जन भी सुरति सूं ही ग्रहण करते हैं। निःअक्षर सब्द की महिमां जिसे 'सार सब्द' व 'विदेह सब्द' से भी संभोधित किया जाता है और इसे सुरति सूं ही सिमरा और ध्याया जाता है। सहज सतमार्ग में सुरति सूं ही सतगुरू परमहंस जी को समर्पण किया जाता है व सुरति सूं ही निजधाम जाया जाता है। सहज मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस जी स्वयं प्रवचन कर्ता ना हो के केवल एक माध्यम भर होते हैं। ये प्रवचन तो परमपुरूष साहिब सतपुरूष जी स्वंय सतगुरू परमहंस जी के मुखारबिंद से करते हैं। सहज सत मार्ग के पूर्ण संत सतगुरू परमहंस, साहिब सतपुरूष जी की महिमां के ईलावा, मायावी संसार से बहुत जरूरत पड़ने पर ही बोलते हैं। क्योंकि वे निःअक्षर अवस्था में सुरति सूं ही अपने प्यारे सतगुरू परमहंस रूपी सतपुरूष जी से जुड़े होते हैं। निःअक्षर होना ही तो सुरतिवान होना है। आत्मां, सुरति सूं ही माया को तज हंसा रूप धारण कर अपने निजधाम अर्थात मौक्ष को पा जाती है।

साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' अनुसार :– **''प्रवचन शुरू करने से पहले 'मैं' स्वयं को साहिब सतपुरूष जी को पूर्णतयः समर्पित कर देता हूं, सारी की सारी प्रवचन अमृत वर्षा स्वयं 'साहिब सतपुरूष जी' की सुरति**

द्वारा दास के मुखार बिंद से बरसती है, तभी तो जो भी ''मैं'' शब्द प्रकट होता है वह साहिब सतपुरूष जी की सत्ता का ब्ख़ान होता है और ''मैं'' निज का शब्द ना हो के सतपुरूष जी का संबोधन है। उनकी मधुर वाणी (भ्रम–वश जगत इसे दास की शरीरिक–मुख–वाणी समझता है) को सभी साधकों के साथ साथ सारे देवी देव, यहां तक कि सतलोक वासी भी श्रवण करते हैं।''

साहिब सतगुरू परमहंस जी की वाणी अनुसार ये मुख से बोले गये शब्द अर्थात भाषा ही हमारे दुखों का मूल कारण है। सतगुरू परमहंस जी की वाणी अनुसार सारे का सारा हंसा–सतलोक में कोई बोल–भाषा नहीं, अर्थात वहां हर तरफ सुरति का ही पसार है। सभी कार्य सुरति द्वारा ही किए जाते हैं, सुनना और बोलना भी सुरति द्वारा ही होता है। सुरति ही तो आनंदमय प्रेम है जिसका वहां हर तरफ पसार है ।

शब्दों के द्वारा जो भी जानकारी दी व प्राप्त की जाती है वही तो सब दुखों की जननी है, संसार में देखो मानव बोल भाषा यानि शब्दों का ज्ञान प्राप्त करने के उपरांत अहंकारी और अहम से भर जाता है। ज्यादा पढ़ा लिखा इन्सान भक्ति की तरफ अहम से युक्त होने के कारण जा ही नहीं पाता। ज्यादा धन दौलत हो तो अहम, ज़रा सुंदरता हो तो अहम, ज़रा बलिष्ठ हो तो अहम, अभिप्राय किसी के पास कुछ ना हो तो भी रिश्तेदारों के अमीर व प्रतिष्ठित होने का अहम, यह भी ना हो तो फिर सपनों में रहने का अहम, बस मानव जीवन में जब भी लेष मात्र का अहम आया तभी मन तुरन्त प्रकट हो के अपने माया जाल में भ्रमित कर के फंसा लेता है। एक बार मन अर्थात अहम जागा तो सारे का सारा जीवन मानव इसकी अधीनता में ही फंसा रहता है ।

कितनी विचित्र विडम्बना है कि मानव ने हर समय कुछ नवीन पाने की चाह में अपना पतन ही कर डाला है । अगर एक चाह पूरी हो तो दूसरी की लालसा, इसी प्रयास में लगातार लगा रहता है । खुद से अगर यह चाह पूरी ना हो सके तो अपने भगवान, अल्लाह, काईस्ट और अपने ईष्ट आराध्यों से ईच्छा पूर्ती की मांग करता रहता है। जैसे ये सब उसके आराध्य ना हो के उसकी मांग पूरी करने के साधन मात्र ही नहीं अपितु उसके अधीन दास ही हों।

यह शब्द ही संसार में मूल समस्या हैं। कहीं कुराण का पन्ना फटा या जला हुआ मिल जाए तो मुसलमान अपना आपा खो कर मरने मारने पर उतारू हो जाते हैं। अगर कहीं गीता रामायण का पन्ना मिले तो हिंदु, ग्रंथ साहिब का पन्ना हो तो सिख, और अगर बाईबल का

हो तो ईसाई अपना आपा खो बैठते हैं। कोई इन सब से पूछे तो, पन्ना तो साधारण पन्ना ही है, पन्ना फटने व जलने का झगड़ा नहीं। झगड़ा तो उस पे लिखे शब्दों का है। अर्थात ये शब्द ही हैं जो मूल समस्या है। जो जो मानव इस झगड़े में उलझते हैं वे धर्म व आध्यात्मिकता से कौसों दूर होते हैं अथार्त दिखावे व बड़े होने का ढौंग करते हैं। इन्हें अपनी केवल अपने अहम व प्रसिद्धि की ही चिन्ता होती है अपितु धर्म से इनका कोई लेना देना नहीं होता। वे तो धर्म के नाम पे अपनी नेतागिरी का ही ढौंग करते हैं।

अपनी अपनी विचारधारा अथ्वा मत्त, विकसित कह के दूसरों को हीन समझना, कहना ही शब्दों का खेल है। हर किसी ने अपनी अपनी शब्दों में पिरोई एवम लिखी गई विचार धारा के धर्म अथ्वा समुधाये अनुसार मन्दिर, मस्जिद, गिरजे और गुरूद्वारों को निर्मित किया । पहले एक बना, फिर दो, फिर ना जाने कितने अनगिनत बनते ही चले गये । कहने को तो ये मालिक का संदेश, मानवता व प्रेम फैलाने के लिए बने थे, ज्यूं–ज्यूं इनकी संख्या बड़ी मानव में प्रेम के स्थान पर नफ़रत व द्वेष बड़ती चली गई।

वाह रे नासमझ मानव ! जीते जी तूं कुछ भी नहीं करता, मरने के बाद तो तूं निर्जीव कुछ कर भी नहीं सकता। मेरे ही आखिरी नबी, अवतार, महांपुरूष और गुरू ने जो भी ग्रंथ लिखे, वो ही सही, बाकी सब ग़ल्त। यह भी तो शब्दों का ही बंधन है। जीते जी तो इन महां पुरूषों का महत्व व महानता तो बहुत अधिक होती है परन्तु मरने उपरांत सब राख/माटी की ही ढेरी है। बहुत से धर्मों के ईष्ट व अवतार सारा जीवन संघर्ष करते व यातनाऐं सहते रहे, तब के मानव ने उनका सम्मान तो किया नहीं और उनके जाने उपरांत महिमां मण्डित करना शुरू किया।

वाह रे सभ्य मानव तेरी दम्बी आदत ! जीते जी तूं सबका अपमान व तिरस्कार करना तथा मृत्यु उपरांत गुणगान गाना तेरा स्वभाव ही तो है। अर्थात **नबी, अवतार, गुरू, क्राईस्ट, बुद्ध, महावीर और कोई भी गया हुआ महांपुरूष अब आपके लिए कुछ भी नहीं कर सकता।** उनके कहे या लिखे हुए शब्द ही मानव के विभाजन, दुखों और नफरतों का कारण बनते हैं और बनते चले जा रहे हैं। अपनी अपनी विचारधारा ही दूसरों से अलगाव का कारण बनती है। विचारधारा द्वारा नफ़रत ज्यादा बड़ने पर ये मरने मारने के लिए उग्र रूप शब्द ही फैलाते हैं ।

हे जगत के मानवो, सृष्टि् का एक अटल विधान है कि हर रोज नवीन विचार, नवीन समस्याऐं और उनके नित नवीन हल जग में लगातार आते रहे हैं और आते ही रहेंगे। हर युग में रहन–सहन पहनावा, खान–पान यहां तक कि सोच और विचार धाराऐं ही नहीं, साधन व समस्याऐं और उनके हल भी नवीनता लिए बदलती रहती हैं। आज से सैंकड़ों हज़ारों वर्ष

पहले के महांपुरूष अवतार पैगंम्बर परिस्थिति व काल के अनुसार योग्य व सर्वश्रेष्ठ हो सकते हैं और हुए भी हैं । आज के इस आधुनिक विज्ञानिक युग व मानव की भौतिक उन्नति और आंतरिक महांपतन में उनकी प्रासंगता वैसी ना रह के नग्न सी रह जाती है। मानव हर कार्य अपने दबंग व अहम से युक्त होकर कर रहा है। स्वयं के साथ साथ मानव सारे समाज के लिए परेशानियां खड़ी किए जा रहा है ।

सब कहने का भाव यह है कि जो धर्म सम्प्रदाय यह कहते हैं कि हमारा ही आखिरी नबी, गुरू, अवतार व आखिरी धार्मिक ग्रन्थ हैं, इसके बाद आगे कोई नहीं होगा अर्थात ना आज कोई हम से श्रेष्ठ है और ना कोई आज के बाद हमसे श्रेष्ठ व हमसे उन्नत विचार भाव रखने वाला होगा। हां अपने अपने सम्प्रदाए को एक–झुट रखने भर के भाव से व सम्प्रदाए में बिखराव के भय से कुछ समय तक यह सब ठीक दिखता है, पर भय और विवशता वश लिए गये कोई भी निर्णय या विचार कभी भी सत्य से औत प्रौत नहीं होते, सर्वथा सत्य से विमुख होते हैं अथ्वा सत्य को नकारना ही है। इस ठहराव से सांसारिक पतन तो होता ही है साथ ही मानव का आध्यात्मिक पतन भी हो जाता है। क्योंकि महांपुरूषों, नबी, अवतारों के शब्द जिस भाव से कलमबद्ध किए गये होते हैं उस भाव से ग्रंथों के अर्थ निकालने में सर्व–साधारण मानव असमर्थ है, वह तो अपने स्वार्थ व आवश्यकता अनुसार अर्थ का अनर्थ निकालने लगता है।

धार्मिक ग्रंथों में लिखे शब्दों को निज स्वार्थ सिद्धि हेतू जन कल्याण के विपरीत दूसरों का अनिष्ठ व उन्हें मारने को भी शब्दों की व्याख़्या और अर्थ निकालने को तत्पर रहते हैं, सारे के सारे धार्मिक ग्रंथ तो प्रेम संदेश से भरे पड़े हैं, इनमें लिखे शब्द ही तो प्रेम को मलियामेट कर निज व अपने सम्प्रदाए की सुरक्षा के नाम पे परमाणु बम्ब, नाईटरोजन और हाईडरोजन बम्ब तक रच डाले, दूसरों के विनाष करने की चाह ने अपना व अपनों का विनाष ही रच डाला। इतना होने उपरान्त भी चैन नहीं क्योंकि इन्हें चलने में कुछ समय शेष है, अगर ये बने हैं तो चलेंगे भी ! इसमें कोई संशय नहीं। अपनी सुरक्षा व दूसरों का पतन करने के भाव व आवेश ने उग्र–रूप में एक दूसरे को मारना शुरू कर दिया, सभी की सुरक्षा को भी ख़तरे में डाल दिया, क्योंकि निर्णय हो चुका है कोई रहनुमा है नहीं अर्थात नांहि कोई मार्गदर्शक होगा जो समय व काल के अनुसार सब को एक–झुट कर के सही रास्ते की ओर ले चले। तभी तो जो सम्प्रदाए यह कहते हैं हमारा आखिरी रहनुमा, गुरू, अवतार व नबी हो चुका, और अब आगे होगा भी नहीं।

कुछ काल उपरांत वह कटट्र रूड़ी वादी होने के साथ साथ धर्म की विचारधारा का प्रचार ना करके अपनी सख्ंया बड़ाने की बाते और चेष्ठा में लगे रहते हैं। अपने धर्म की अच्छी बातों की भी घटिया और नीच से नीच व्याख़्या अपने हित को ध्यान में रख के करते हैं। तभी तो अपने मालिक को कुर्बानी, (किसी भी जीव की मालिक, खुदा अथ्वा देवी देवों के नाम पे हत्या

करके भक्षण करने वाला मानव मृत्यु उपरांत प्रेत योनि में ही वासा पाता है) पहले पहले पशु पक्षियों की व कभी कभार मानव की कुर्बानी, अब तो उग्र रूप में खुल्लम–खुल्ला मानव को अपनी विचारधारा व धार्मिक कृत के नाम पर मारने को उचित ठहराना शुरू कर दिया है। शब्दों का भ्रम मानव को अपने घृणित कार्य के लिए मारना व मालिक को अर्पण कह कर उस मालिक को भी गुनाहगार ठहराते हैं। अंदर से तो गुनाह का साथ देते और बाहिर से सभ्य होने का ढौंग करते हैं। ऐसे दम्बी पैसे, हथियार व ताकत के बल पर अपनी संख्या व नफ़रत को बड़ा कर सारे जगत को नफ़रत में डुबो रहे हैं। कहने को मालिक की ईबादत/पूजा, पर वह घृणा व ज़ुल्म के अनुयायी धर्म का लबादा औढ़े बैठे हैं। यह संख्या में बड़ रहे हैं व आगे भी बड़ेंगे, जिससे ईन्सानों में प्रीत प्रेम भाव लुप्त होता जा रहा है। यह सब तो प्रलय व विनाष की निशानियां हैं। वाह रे सभ्य व धार्मिक मानव, धर्म की आड़ में पूरी मानवता को शर्मसार व समाप्त किए जा रहा है। प्रेम के स्थान पे एक दूसरे से आज के युग में सारे मानव समाज का पतन व क्षमा, दया व परमार्थ भाव तो बिलकुल विलुप्त ही हो गया है बस संशय ही संशय शेष है।

प्रेम तो एक भाव है जो हंसा को साहिब सतपुरूष जी (कुल मालिक) से जोड़ता है। प्रेम तो शब्दों में व्यक्त ही नहीं किया जा सकता। शब्दों में बस पिरोते ही वह प्रेम भाव अशुद्ध (खंडित) हो गया, अब ये प्रेम, प्रेम ना रह कर के वासना अर्थात स्वार्थ सिद्धि का साधन ही बन रह गया। तभी तो बनावटी प्रेम के नाम पर संसार में दंगे पे दंगे हो रहे हैं। दिखावा भर को प्रेम, सब के अंदर एक दूसरे से प्रतिद्वंदता, नफ़रत व द्वेष कूट–कूट कर भरा है।

सारा संसार कर्म फल से बंधा है अर्थात जैसी करनी वैसी भरनी। हे सभ्य मानव देख, पशु पक्षी बहुत कम ही बोलते हैं इसी कारण वह एक जंगल में वे खाने–पीने व रहने के ईलावा कोई झगड़ा नहीं करते। वे बहुत कम बोलते और अधिकतर सुरति से ही बात करते हैं । यह सुरति ही है जिससे सारा प्राणी जगत ही नहीं मानव भी चेतन है ।

——

10 निरंकार का क्रूर माया जाल

जो महांपुरूष इस संसार में सारे का सारा जन्म भर दिक्कतों और मुसीबतों भरा जीवन जीते रहे, संसारी जनों के कोप व गुस्से से कष्ट पाते रहे, माना, वह महांपुरूष, युगपुरूष, श्रेष्ठजन आदर वन्दना के पात्र हैं। नबी, गुरू, अवतार, दिगंबर, पैगंम्बर तक कहना तो उचित है पर उनको भगवान या खुदा कहना या उसका पुत्र कहना सर्वथा अनुचित है। क्योंकि सभी जीव धारियों में आत्म अर्थात हंसा का वास है तो सभी हंसा–मालिक, जीव एक समान हैं। क्योंकि निराकार भगवान अर्थात ओम, खुदा, ईश्वर ने ही कुराण, वेद, गीता, रामायण तोरा, बाईबल ना जाने कितने ही ग्रंथ अपने प्यारों अर्थात उसकी कंई जन्मों–जन्मों से पूजा करने वालों से

लिखवा व रच डाले। सभी के ग्रंथ महान, श्रेष्ठ और अपने आप में पूर्ण हैं। यह शब्दों व भाषा में लिपि बद्ध हैं अर्थात हर एक अच्छी विचारधारा से सभी भरे पड़े हैं। परन्तु, हैं तो शब्दों का भण्डार ही !

निराकार की क्रूर माया जाल का विचित्र कमाल देखो :–

निराकार ने ही समय समय पर नवीन धर्म व सम्प्रदायः अपने प्यारों से अर्थात भक्ति करने वालों से रचा डाले। ताकि मानव इस की सत्ता से आगे सहज सतमार्ग अर्थात अपने मूल सतलोक की ओर अग्रसित ही ना हो सके। नफरतों, द्वैषों व संशयों से भरा जीवन मरन के बंधन में मानव उलझा रहे। अपनी चेतना व सुरति संसार कामों में ही उलझा के रक्खे। अमर प्रेम की तरफ जाना तो दूर, उस ओर सोच भी ना पाए। देखो शब्दों का कमाल, ग्रंथ तो एक दूसरे से प्रीत प्रेम के स्थान पर नफ़रत और झगड़ों का साधन बन गये अर्थात हर ओर सब कुछ शब्दों का खेल, ये शब्द ही द्वैष, संशय और नफरत का कारण है। प्रेम तो शब्दों में व्यक्त ही नहीं होता, प्रेम तो प्रेम है, सुरति है, प्रेम तो आनंद है और ये सब तो शब्दों से परे है सिर्फ सुरति से ही जानना सम्भव है। प्रेम तो कहा या बोला नहीं जा सकता, अगर प्रेम शब्दों में बोला, लिखा तो, वह प्रेम ना हो के वासना है, स्वार्थ सिद्धी है। विचारों की मिलावट हो गई तो मिलावट, प्रेम हो ही नहीं सकता। प्रेम तो सुरति है, एहसास है सब की खुशी है, मानव आत्म हंसा को अपने मूल से जोड़ने का साधन है। प्रेम ही से तो आत्म हंसा हो कर अपने मूल, सतपुरूष सूं मिल पाती है। मूलतः प्रेम ही तो सुरति है। सुरति (चेतना) का कोई धर्म जात या विचार धारा से कोई लेना देना नहीं।

सुरति तो आत्म चेतना है जिसे मन ने कैद कर रक्खा है, जब तक ये है, तो मानव जीवित है। बिन सुरति के मानव व अन्य कोई भी प्राणी निर्जिव अर्थात माटी मात्र है। सारा सुरति का पसार स्वर्ग में है, वहां सब कुछ सुरति द्वारा ही होता है। तभी तो स्वर्ग–जन्नत–हैवन में सभी धर्मों के अनुयाई मौहम्मद साहिब, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा मसीह व और भी सभी महानतम लौग, महापुरूष बिना विचारधारा के सुरति सूं सभी प्रेम से रहते हैं। मगर उनके अनुयाई तो धरती पर शब्दों के आडम्बरों में फंसे ग्रंथों के अर्थों का अनर्थ बनाकर एक दूसरे के खून के प्यासे हो मरने मारने पर उतारू हैं । सभी श्रेष्ठ होने के अहम से युक्त दूसरों को ही नीचा साबित करने में लगे हैं। नरकों में भी सुरति का ही पसार है पर बेचारी जीव आत्मां वहां कष्टों व यात्नाओं में बेबस लाचार विलाप ही करती दिखती है। वहां कष्ट भौगने के ईलावा कुछ भी नहीं ।

हे मानव तूं तो काया नहीं, मन नहीं, आत्मां भी नहीं, तूं तो हंसा है । ये धर्म, विचारधाराएं तज, अहम तज, नाशवान जगत व भौतिकता की चकाचौंध तज दे। जब तक सब कुछ तज कर खाली नहीं होता, तब तक तूं अपनी सुरति को पहचान नहीं पाएगा, सुरति बिन प्रेम कहां, बिन प्रेम सत्त कहां, बिन सत्त हुए आनंद व मौक्ष कहां ? इसलिए हे संसारी मानव तुझ से सब संभव नहीं, तूं तो सिर्फ पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी पूर्ण ज्ञान हेतू जा, संसारिक दुख व बिमारियों

के निवारण के लिए नहीं। क्योंकि काया शरीर तो स्वंय में दुखों से ही भरी फुलवाड़ी है, सब समस्याओं की जननी है। अनगिनत जन्मों से तो तूं इसकी ही लगातार सेवा में लगा हुआ है। इसने तो तुम्हें अंतहीन, कष्टमय, विकराल आवागमण में बांध के रक्खा है। अब तूं, आत्म (हंसा) को जान और अपने मूल को पहचानने की तरफ चल। अपने आप को जान लेना ही भक्ति की पहली सीढ़ी है। बिन पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जाए भक्ति संभव ही नहीं। हे मानव, तूं अपने शब्द ज्ञान अर्थात तरकों व तकरारों के अहम अहंकार को छोड़, दुनियां के मोह से निकल कर खाली हो जा। खाली मानव हो के सतगुरू परमहंस जी की शरणी जा कर पल में उनकी कृपा से मौक्ष को पा ले। अर्थात सतगुरू परमहंस जी की शरणी में ही मानव कल्याण अर्थात आवागमण से छुटकारा संभव है। बिन सहज सत मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी जाए मौक्ष संभव ही नहीं ।

खर, अक्षर है तभी तो निःअक्षर की महिमां अति महान है। निरंकार की त्रिगुणी माया देखें, काया माया, काया के अन्दर निरंकार रूपी मन माया सारी की सारी बाहरी त्रिलोकी भी माया। इस त्रिलोकी की हर बात द्वेत अर्थात दो पहलू लिए है। यह द्वेत केवल मौक्ष उपरान्त मिटता है, सतलोक में हर तरफ सत्त सुरती पसार है। आत्म से माया (असत्य) हटने पर सत्त अर्थात हंसा रह जाता है। सत्त, सत्त (हंसा) में सत्त (सतलोक) समा एक हो जाते हैं।

सदा से त्रिलोकी में द्वेत विद्यमान है। हर वस्तु के दो पहलू होते रहे हैं और सर्वदा रहेगें। सत्त है तो झूठ भी – था और रहेगा। ऐसे ही जो बना है वो मिटेगा, जो पैदा हुआ वो मरेगा, अन्धेरा है तो प्रकाश भी, चेतन है तो जड़ भी, मायावी त्रिलोकी है तो चौथा लोक सतलोक भी है, माया जाल है तो मोक्ष भी है। ऐसे ही ख़र–अक्षर हैं तो निःअक्षर शब्द की महिमां भी है। माया में रमा मानव सर्वदा खर अवस्था में मगन जमता, मरता वा भुगत योनियों में जन्म लेता है। भुगत योनियों–बिन संसार की कल्पना भी संभव नहीं। खर से जो जन पूजा, पाठ व ध्यान द्वारा अक्षर अवस्था में आते हैं, वह मृत्यु उपरान्त स्वर्ग–सुन्न लोक, भोग उपरान्त, राज योग से युक्त साधन सम्पन्न परिवार में पुनः जन्म लेते हैं। अभिप्राय यह है कि खर से उच्च, अक्षर अवस्था में निराकार त्रिलोकी से आवागमन नहीं कटता। जहां आवागमन है वहां सहज सत्त मार्ग पे चल के मौक्ष भी प्राप्त किया जा सकता है।

खर से अक्षर अवस्था तक बहुत कम मानव ही पहुँचते हैं और इन में से कोई बिरला ही मांग रहित ध्यान करने पर बड़ा बडभागी ही संसारी माया (मैं और मेरी का त्याग) तज, सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी आ के निःशब्द 'सार सब्द' की दात पाके मौक्ष का अधिकारी बन, सतगुरू परमहंस जी के संग सत्तलोक पहुँचता है। खर और अक्षर की महानता, अक्षर द्वारा खर अवस्था वाले को निःअक्षर 'सार सब्द' की महिमां का गुणगान व बखान करना मात्र ही है ताकि प्राणी मात्र निःअक्षर अवस्था में आके सहज भक्ति मार्ग पर अग्रसर हो सके।

इस आधुनिक संसार के वेज्ञानिक व अर्थ शास्त्रियों का बड़ा अदभुद, विचित्र व अड़ियल भरा व्यवहार प्रायः देखने में आता है, कि आध्यात्म के संतो, ऋषि मुणियों व सतगुरूओं ने जिन बातों का उल्लेख अपनी लेखनी द्वारा ग्रंथों व अभिलेखों में पूर्वता ही कर दिया है, आज के आधुनिक सभ्य समाज के देसी और विदेशी वेज्ञानिकों पर पाश्चात के प्रभाव का इतना गहरा असर है, कि वे संतों व ऋषि मुणियों द्वारा वर्णित ग्रंथों व धार्मिक पुस्तकों में दिये गये तथ्यों को स्वीकार ही नहीं करते। इतनी ज्यादा अंध आस्था कि हमारे ग्रंथों में

करोड़ों वर्ष पूर्व से वर्णित है कि धरती गोल है और पृथ्वी व ग्रह–नक्षत्र सूर्य के इर्द–गिर्द एक निश्चित दूरी पर घूमते हैं। असंख्य ग्रह ऐसे भी हैं जहां जीवन वास है। अभी बहुत लंबा काल व्यतीत नहीं हुआ, वेज्ञानिक पृथ्वी को चपटा कहते थे और सूर्य पृथ्वी के इर्द–गिर्द घूमता है, ऐसा मानते थे। बाद में इस ज्ञान की जानकारी होने पर इसे अपनी खोज कह कर बताते रहे। ठीक ऐसे ही काल–गणित रूप रेखा भारत में प्राचीन समय से शक् व विक्रमी सम्वत के रूप में संतों ने सर्व समाज को प्रदान की हुई थी, पर पाश्चात प्रभावी वेज्ञानिक अंग्रेज़ी कैलेंडर को काल गणना का एकमात्र पैमाना बताते हैं, ऐसे ही आर्युवेद, योग, भविष्य व भूतकाल का ज्ञान गणित, यहां तक कि आध्यात्म के अस्तित्व तक को ही नक्कार देते हैं। मुख्य अभिप्रायः यह है कि संतों व ऋषि मुणियों की आध्यात्म उन्नति ही समस्त मानव जीवन में शांति, समृद्धि, मानव, प्राणी जगत व प्राकृति हेतु सर्व कल्याणकारी है। विज्ञान के दायरे से कहीं परे, आध्यात्म अर्थात मानव का अतंरमुखी होना, मानव समाज के उत्थान के लिए अति आवश्यक है। आध्यात्म ही मानव समाज में एकता, समंझस, सम भाव दृष्टि् व एक रूपता उत्पन्न कर सकता है।

वेज्ञानिक दृष्टि् से देखा जाए तो भौतिक उन्नति भी अति आवश्यक है। भौतिक सुख साधन व नित नवीन खोजों ने मानव समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया है, इसकी निर्भरता से जीवन में आरामदायिकता के अति बड़ने से मानव समाज बहुत तामसी व आलसी हो गया है, जहां घंटों के काम मिण्टों में हो जाते हैं। कहने को मानव जीवन पहले से अधिक सुखमय हो गया है, परन्तु ठीक इसके विपरीत एक स्पष्ट सत्य, जिसे सभी नज़र अंदाज़ करते जा रहे हैं। वेज्ञानिक काल की उन्नति के कारण मानव, अशांत, क्रोधी, असहनशील, रोगग्रस्त हो गया है और अपना मानसिक संतुलन तक भी खो बैठा है। अत्यधिक आधुनिक होने की चाह में मानव ने प्रेम प्यार व अपनेपन को मिटा कर रख दिया। हर मानव वास्नात्मक दृष्टि् (दिखावा व लोभ भरा प्रेम) भरा प्यार तो दर्शाता है, पर दूसरों के संग संग अपनों से भी प्रतिद्वंदता में लगा है। विज्ञान ने दूसरों से आगे बड़ने व, और–अधिक पाने की चाह ने सर्व मानव समाज के भीतर अशांति का भवंडर रच डाला। इससे भी आगे, दूसरे कहीं आगे ना निकल जाएं, उनके विनाष के साधन भी रच डाले। एक ऐसी ही विज्ञान भरी भौतिकवाद की आधुनिकता के अभिषाप ने सारे के सारे विश्व को विनाष के कग़ार पर ला खड़ा किया। विज्ञान की महत्वता कम नहीं, परन्तु मानव अति भौतिकता (मायावी संसार) में अंधमग्न होने से स्वंय ही पूरी मानव सभ्यता के विनाष का कारण बन गया है।

आज के वेज्ञानिक व उन्नतशील मानव, सारे ब्रह्माण्ड व सृष्टि की उत्पत्ति का उद्गम स्थल अर्थात केन्द्र बिन्दु ढूंड रहे हैं। जिसे सहज मार्ग के पूर्ण संत परमहंसों ने अपनी वाणी में पहले से ही दर्शाया है। वर्तमान युग के पूर्ण संत सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' द्वारा सर्व साधारण, विज्ञान के रूचिकारों व जगत के आध्यात्मिक उत्थान के लिए इस विषय को उन्होंने अपने प्रवचनों में विस्तारपूर्वक व स्पष्टता से समझाया है। साहिब सतगुरू परमहंस जी की वाणी अनुसार इस निःअक्षर सब्द, विदेह नाम, अक्का सब्द, सतनाम, मूल नामा अथ्वा मोक्ष दात को सहज मार्ग के सभी पूर्ण संतों ने 'सार सब्द' को अलग अलग नामों से ही संबोधित किया है। इस 'सार सब्द' में स्वंय साहिब सतपुरूष जी सुरति रूप में समाये हुए हैं। परमपुरूष जी स्वंय सारी सृष्टि् में रूप, रंग, गंध, राग, द्वेष, कर्मकाण्ड व मन माया से परे निर्लिप्त रहते हुए भी, सब जीवों, सभी वस्तुओं व प्रत्येक ग्रह नक्षत्र में सुरति सूं विद्यमान हैं।

परमपुरूष साहिब जी जगत के किसी भी रूप व कार्य में लिप्त नहीं होते। निर्लिप्त रहते हुए भी निज हंसों (माया में लिप्त होने पर आत्म) के उत्थान व मौक्ष हेतु सहज मार्ग के पूर्ण संतों व सतगुरू परमहंसों में सदा प्रकट रहते हैं। तभी तो सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी मायावी संसार में रहते हुए भी सर्वदा मन तरंग पर सवार रहते हैं, वे अवगति अर्थात मन माया रूपी

खर अवस्था में कभी लिप्त नहीं होते। जिससे वे स्वंय मौक्ष मार्ग पर चलते हुए सभी जीवों के सर्व कल्याण व उत्थान हेतु साहिब महिमां का गुणगान जीवन भर करते रहते हैं। सहज सतमार्ग के सभी सतगुरू परमहंसों में परमपुरूष जी स्वंय वास करते हैं, तभी तो सहज मार्ग के सतगुरू परमहंसों को साहिब नाम से संबोधित किया जाता है। साहिब सतपुरूष जी की महिमां का गुणगान गाने वाले अनेकों संत सतगुरू परमहंस हुऐ हैं, जिनमें सर्वप्रथम साहिब कबीर जी, साहिब सतगुरू 'रे–दास जी', साहिब रामानंद जी, साहिब धर्मदास जी, संत पल्टु साहिब जी, साहिब दादू जी, साहिब तुलसीदास हाथरस जी, संत दरिया साहिब जी, साहिब संत मीरांबाई जी, साहिब ब्रह्मानंद जी, साहिब बाबा नानक जी व इसी श्रृंखला को आगे बड़ाते हुए वर्तमान काल के सर्वश्रेष्ठ साहिब सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' भी हैं। साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' की वाणी अनुसार सब जीवों वस्तुओं व प्रत्येक स्थान में साहिब जी (सतपुरूष जी) का वास है। इस कारण कोई ऊंच–नीच, छोटा–बड़ा, कनिष्ठ–विशाल सब एक समान हैं। जब सब एक सम हैं तो कोई बुरा कैसे हो सकता है, इसी कारण सभी को सुरति सूं प्रेम भरी दृष्टि से देखें, कोई निंदनीय नहीं है। फिर भी हमें कोई निंदनीय दिखे तो समझें, अभी हम पूर्ण नहीं, अधूरे हैं।

पूर्ण सतगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' भौतिक विज्ञान के साथ–साथ आध्यात्मिक अर्थात आत्मिक सत्ता और मौक्ष मार्ग के पूर्ण महां विज्ञानी हैं। ये निःअक्षर सब्द अर्थात 'सार सब्द' में ही तो परमपुरूष जी की ऊर्जा समाहित है, जिससे ये सब्द सबल है, महां शक्तिशाली मौक्ष प्रदाता है। यही 'सार नाम' निःअक्षर सब्द ही वो न्युक्लस है जिसे सारे का सारा अंड मण्ड ब्रह्माण्ड, त्रिलोकी, त्रिलोकी–आधार पंच तत्व भी यहीं से उत्पन्न हुए और प्रलय उपरांत इसी में ही समा जाऐंगे। लम्बी अहोरात्री उपरांत यहीं से फिर नव संचार व पुनः सृष्टि की उत्पति होती है और अंतिम महां प्रलय उपरांत ये सब कुछ अपने उद्‌ग़म स्थल सतलोक में जा समाएगा।

सतगुरू परमहंस जी ने अनगिनत बार स्वर्ग, नर्क, सहस्त्रसार लोक, सुन्न व महांसुन्न लोकों की यात्राएं की हैं। सतलोक हर तरफ सुरति का ही पसार है, ऐसे ही स्वर्ग में सब काम सुरति द्वारा ही किया जाता है। स्वर्ग (जन्नत/हैवन) में राम, कृष्ण, मौहम्मद साहिब, ईसा, बुद्ध, महावीर, सभी महापुरूष व भद्रजन ईक–मिक हो के सुरति में रहते व सुरति से व्यवहार करते हैं। सुरति ही तो कल्प वृक्ष है। सभी सुरति से ही सुरति में रहते बोलते व सुनते हैं। सतगुरू परमहंस जी ने इनको अनेकों बार अपने आध्यात्मिक (रूहानी) सफ़रों में देखा। सुरति ही तो प्रेम है, मानव जब सुरति वान होगा तभी प्रेमी बन पाऐगा, वर्णा अपनों से प्रेम और दूसरों से नफ़रत फैलाना ही शब्दों की कहानी है। शब्दों से ही धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों और यहां तक कि देशों में नफ़रतों व संशय के कारण मानव समाज बटा पड़ा है। शब्दावली अर्थात विचारधारा ने सारी मानव सभ्यता का पतन ही कर डाला, कहने को आज का मानव सब कालों से ज्यादा सभ्य है। पर देखो शब्दावली विचारधारा ने विनाष अथ्वा मानव की संपूर्ण सभ्यता को नष्ट करने हेतु ऐटम, न्युट्रान, हाईडरोजन और पल्टौनियम बम्ब तक बना डाले । यह सभी विनाषकारी हथियार मानव सभ्यता को सैंकड़ों बार से अधिक समूल नष्ट करने को काफी हैं।

इसलिए हे मानव, तूं विनाष का रास्ता छोड़। कईं प्रलयों से तूं इसी राह पे तो चल रहा है, तेरी तृष्णा कहीं भी समाप्त नहीं हुई। जब तक तूं निज को जानने की और पूर्ण सतगुरू परमहंस जी की शरणी में समर्पित हो कर पूर्ण (साहिब सतपुरूष सत्ता) को नहीं पाऐगा तब तक कैसे इस घौर क्रूर माया जाल व आवागमण के कष्टमय चक्र से छूट पाएगा। निज को जानने में सहज मार्ग के पूर्ण सतगुरू परमहंस जी ही तेरे सहायक बनेगें। वे तो हर पल अनगिनत प्रलयों (तां–कयामतों) से तेरे सहज सत मार्ग पर चलने की बाट जोह रहे हैं और दूसरी तरफ एक मानव है जो उनकी तरफ पीठ कर के निराकार महांकाल के मोह माया जाल में मग्न हुआ है।

सतगुरू साहिब ''वे नाम परमहँस जी'' की अदभुत लीला, साहिब सतपुरूष जी का अनोखी और सरल वाणी में ब्ख़ान करना है। दासापन में उनके समकक्ष इस जग में कोई नहीं है। वह सारे सत्संग घर की साफ़ सफ़ाई व रख रखाव यहां तक की झाडू पौछा भी स्वयं अपने हाथों से ही करते

हैं। वह अक्सर सत्संगों व प्रवचनों में कहते हैं, मेरी संगत की सेवा ही सतपुरूष की सेवा है। वो तो साधकों के नमन के साथ–साथ खुद भी साधकों को नमन करते हैं। उनका कहना है कि हर प्राणी एक ही सत्ता से आया है फ़िर कौन बड़ा और कौन छोटा ? जब तक हम सम्मान व सम–भाव से संपूर्ण प्राणी के कल्याण (मौक्ष) हेतु प्रयास नहीं करते, तब तक सहज सत्त मार्ग भक्ति संभव ही नहीं, अर्थात सभी जीवों में उनको सत्तपुरूष ही दिखाई देते हैं। उनका यहां तक मानना व कहना है कि ये सारी की सारी ईक्कीस लोकों से भरी त्रिलोकी भी सतलोक का ही हिस्सा है जो सतलोक से ही निकली और अंतिम महांप्रलय उपरान्त सब जीव आत्मांऐं और त्रिलोकी, यहां तक कि खुद निंरकार भी सतलोक में ही समा जाएंगे। जब हर तरफ सब ओर सतलोक की सत्ता है तो फिर कौन अच्छा और कौन बुरा ?

अर्थात हम अहम और स्वार्थ को छोड़ कर अंतर्दृष्टि् से देखें :–

''जग में सभी भले, कोई भी बुरा है नहीं'
जब भी जागें, चहुं ओर सतलोक ही सतलोक है''

——

11 निरंकार दायरे की पाँच मुद्राऐं

निराकार दायरे की उच्च अवस्थाऐं (मुद्राऐं)

(1 चाचरी मुद्रा 2 भूचरी मुद्रा 3 अगोचरी मुद्रा 4 ऊनमुनि मुद्रा 5 खेचरी मुद्रा)

1 चाचरी मुद्रा :–

ध्यान स्थान :– दो नेत्रों के मध्य में त्रिकुटि स्थान पर ध्यान करने की विधि को चाचरी मुद्रा कहते हैं। सर्व साधारण जन दो नेत्रों के मध्य स्थान को शिव नेत्र स्थान (भृकुटि) भी कहते हैं।

विशेषज्ञ :– चेचरी मुद्रा भृकुटि स्थान पर ध्यान लगाने का नाम है। इस मुद्रा में ध्यान लगाने वाले गुरू गौरख नाथ जी बड़े उच्च कौटि के विशेषज्ञ माने जाते हैं। यहां पर ध्यान लगाने वाले साधक जन गुरू गौरख नाथ जी का अनुसरण करते हैं।

अनुभूतियां :– यहां ध्यान करने वाले साधक जन अंतःकरण में सुख शांत्ति का अनुभव करते हैं तथा अलख निरंझन व ज्योति निरंझन शब्द का जाप करते हैं। यहां ध्यान करने वाले कुछ साधक जन जहां अलख निरंझन का जाप करते हैं तो कुछ साधक जन ज्योति निरंझन शब्द का जाप भी करते हैं। परन्तु कुछ बिरले साधक जन दोनों शब्दों का ही जाप चाचरी मुद्रा में करते हैं। दशानन लंकेश्वर महाराज भी चाचरी मुद्रा के विशेषज्ञ माने जाते थे।

दृष्ट्ांत :– चाचरी मुद्रा के परिपक्व साधक अंतर्मुखि, पूर्वाभासी व भविष्य ज्ञाता होते हैं तथा ध्यान मुद्रा में जाने पर पीला अम्बर तथा पीले रंग का प्रकाश देखते हैं जो की अग्नि तत्व का प्रतीक है।

कायाकल्प (सिद्धि) :– चाचरी मुद्रा के साधक जन अग्नि तत्व की सिद्धियों से युक्त होते हैं। शारीरिक ऊर्जा से भरपूर व शक्ति से युक्त प्रकाशमय बड़े बड़े नेत्र, प्रफुल्लित काया तथा ज्योर्तिमय चौड़ा माथा इनके शरीर की शोभा बड़ाते हैं।

2 भूचरी मुद्रा :—

ध्यान स्थान :— आँखों से उपर दोनों भवों के मध्य स्थान में ध्यान करने की विधि को भूचरी मुद्रा कहते हैं।

विशेषज्ञ :— प्रायः सर्व साधारण साधक जन इसे त्रिकुटि स्थान भी कह के सम्बोधित करते हैं। महात्मां वेद व्यास जी इस त्रिकुटि स्थान पर ध्यान लगाने वाले भूचरी मुद्रा के उच्च विशेषज्ञ माने जाते हैं।

अनुभूतियां :— भूचरी मुद्रा में ध्यान करने वाले साधक जन कर्म निष्ठ व कर्तव्य परायन होते हैं। ऐसे साधक जन ओ३म, ऊँ (ओम) अथ्वा ओमकार शब्द का जाप करते हैं। भूचरी मुद्रा में ध्यान लगाने वाले साधक कर्मयोगी होते हैं तथा अग्नि तत्व धारी होने के कारण कुछ भी अनुचित्त होने पर जल्द ही आवेश में आ जाते हैं। भूचरी मुद्रा के विशेषज्ञ अग्नि और जल तत्व धारी होते हैं। जल तत्वधारी होने के कारण ये आवेश से बहुत जल्द निकल कर शान्त मयी अवस्था में भी आ जाते हैं।

दृष्टांत :— भूचरी मुद्रा में ध्यान करने वाले साधक ध्यान की गूढ़ अवस्था में श्वेताम्बर, तथा श्वेत प्रकाश ध्यान अवस्था में देखते हैं तथा उच्च ध्यान की मुद्रा में चहुं ओर नीली और काली पृष्ठभूमि देखते हैं।

कायाकल्प (सिद्धि) :— भूचरी मुद्रा के विशेषज्ञ साधक जन जल और अग्नि तत्वों से युक्त सिद्धियों के स्वामी होते हैं। इस अवस्था में ध्यान करने वाले साधक जन सोम्य व आकर्षक काया वाले होते हैं। इनके मुख़ारबिंद पे कमल रूपी लालिमा विराजती है तथा ये बड़े नेत्र वाले परन्तु आकर्षण युक्त होते हैं।

3 अगोचरी मुद्रा :—

ध्यान स्थान :— अगोचरी मुद्रा के विशेषज्ञ साधक जन अनहद धुणों पे ध्यान धरते हैं तथा ये धुणें उनके ह्रदय चक्र से व सुन्न लोक से आती हैं।

विशेषज्ञ :— योगेश्वर सुखदेव जी महाराज अगोचरी मुद्रा के उच्च कौटि के विशेषज्ञ हुऐ हैं। इस मुद्रा में ध्यान करने वाले साधक जन उन्हीं का अनुसरण करते हैं।

अनुभूतियां :— अगोचरी मुद्रा वाले साधक जन अपने ध्यान में सोह्म शब्द का जाप करते हैं। ये अपने उच्च ध्यान की मुद्रा में अनहद धुणों को सुनते हैं तथा उसी पे ध्यान धरते हैं। अगोचरी मुद्रा के साधक जन योगी कहलाते हैं।

दृष्ट्ांत :— अगोचरी मुद्रा के साधक जन ध्यान में जाते ही अनहद धुणों को श्रवन करते हैं। नीलाम्बर देखते हैं तथा पीले रंग का प्रकाश देखने के साथ साथ उच्च अवस्था प्राप्त होने पर निरंकार सूर्य रूप के दर्शन करते हैं।

कायाकल्प (सिद्धि) :— ऐसे साधक जन अग्नि, वायु, जल तत्वों से युक्त सिद्धियों के स्वामी होते हैं। ये बलिष्ठ काया के स्वामी होते हैं तथा अपने संग लालिमा लिये हुऐ शान्त मय आभा का आभास कराते हैं। इनके नेत्र मनमोहक तथा चेहरा मुस्कान युक्त होता है।

4 ऊनमुनि मुद्रा :—

ध्यान स्थान :— ऊनमुनि मुद्रा के विशेष साधक जन मूलाधार चक्र पे ध्यान केंद्र करते हैं। उच्च अवस्था प्राप्त होते ही ऊनमुनि मुद्रा में ध्यान करने वाले साधक निरंझन लोक में अपना ध्यान स्थिर कर लेते हैं।

विशेषज्ञ :— ऊनमुनि मुद्रा के उच्च कौटि के विशेषज्ञों में महात्मां दत्तात्रेय जी तथा राजा जनक जी के नाम विशेष हैं। इस मुद्रा में ध्यान करने वाले साधक जन महात्मां दत्तात्रेय जी का अनुसरण करते हैं। ऊनमुनि मुद्रा के विशेषज्ञ साधक जन निरंकार दायरे की उच्च अवस्था को प्राप्त हो योगेश्वर कहलाते हैं।

अनुभूतियां :— ऊनमुनि मुद्रा के साधक जन मूलाधार चक्र में ध्यान लगाते समय सत्त शब्द का जाप करते हैं तथा उच्च अवस्था प्राप्त होने पर यही साधक जन निरंकार लोक में ध्यान लगाते हुऐ भी सत शब्द का ही जाप करते हैं।

दृष्ट्ांत :— ऊनमुनि मुद्रा के विशेषज्ञ योगेश्वर जन ध्यान की गूढ़ अवस्था की मुद्रा में तीव्र प्रकाश युक्त रोशनी देखते हैं तथा लालिमां से युक्त विभिन्न प्रकार की रंग बिरंगे प्रकाश की छटाओं को निहारते हैं।

कायाकल्प (सिद्धि) :– इस मुद्रा के विशेषज्ञ योगेश्वर अग्नि, जल, वायु तत्व से युक्त सिद्धियों के स्वामी होते हैं। ऐसे योगेश्वरों के मुख पर शांत आनंदमयी लालिमां से युक्त नेत्रों भरी मोहनी मुस्कान होती है। ये त्रिलोकि में कहीं भी आ जा सकते हैं।

5 खेचरी मुद्रा :–

ध्यान स्थान :– खेचरी मुद्रा के विशेषज्ञ योगेश्वर अष्टम चक्र से आगे दशम द्वार में ध्यान एकाग्र करते हैं। यहां पर ध्यान करने वाले योगेश्वर सुन्न लोक से आने वाली ध्वणियों को श्रवण करते हैं। खेचरी मुद्रा के विशेषज्ञों को महां योगेश्वर कह के सम्बोधित किया जाता है।

विशेषज्ञ :– खेचरी मुद्रा के विशेषज्ञ आज के वर्तमान काल तक केवल पाँच महां योगेश्वर ही हुऐ हैं। खेचरी मुद्रा के विशेषज्ञ महां योगेश्वरों में त्रिदेव भगवान महांदेव, विष्णु जी, ब्रह्मां जी, गौरख नाथ जी और महांऋषि वेद व्यास जी ही हुऐ हैं।

अनुभूतियां :– इस मुद्रा के विशेषज्ञ महां योगेश्वर दशम द्वार पर ध्यान एकाग्र करते हुऐ ररंकार अथ्वा औंकार शब्द का जाप करते हैं तथा ऐसे महां योगेश्वर महां प्रज्ञा अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं।

दृष्ट्ांत :– महां योगेश्वर इस मुद्रा में निपुण होने पर ध्यान में जाते ही निरंकार रूपी सूर्य के दर्शन करते हैं। इनको निरंकार रूपी सूर्य कभी कभार पिलाम्बर तो कभी कभार श्वेत प्रकाश युक्त अवस्था में दर्शता है तथा ध्यान की अति गूढ़ अवस्था में इनको सुन्न रूप निरंकार के दर्शन होते हैं।

कायाकल्प (सिद्धि) :– पांचों महां योगेश्वर प्रकाश युक्त काया के स्वामी होते हैं तथा इनका चेहरा प्रफुल्लित व सम्मोहन भरी मन मोहने वाली काया होती है। ये सभी महां योगेश्वर कहीं भी कभी भी पल में ही आ जा सकते हैं तथा मन भावन पदार्थ अपनी सिद्धि से प्रकट कर लेते हैं।

नोट :– निरंकार सूर्य रूपी चित्र प्रथम पृष्ठ पर देखें।

—0—

12 निरंकार दायरे की चार मुक्तियां

(1 सामिप्य मुक्ति 2 सालुक्य मुक्ति 3 सशिप्य मुक्ति 4 सायुज्म मुक्ति)

1 **सामिप्य मुक्ति** :– श्रेष्ठ कर्म काण्ड (दान पुण्य व कर्तव्य निष्ठ) कर्म करने वाले लोग सामिप्य मुक्ति अर्थात पित्तर/पित्र लोक (ईन्द्रलोक) को प्राप्त होते हैं। सर्गुण व निर्गुण पूजा करने वाले, एक से अधिक ईष्टों को पूजने वाले तथा नास्तिक कर्म निष्ठ मानव पित्र लोक में स्थान पाते हैं।

धरती का एक वर्ष पित्र लोक के एक दिन के बराबर होता है अर्थात धरती के एक दिन के श्रेष्ठ कर्मों का फल पित्र लोक में फलिभूत हो कर एक वर्ष तक मिलता है। अपने अपने कर्मफल (प्रालब्ध) के अनुसार जीव मृत्यु उपरांत पित्र लोक में सैकड़ों वर्षों तक वासा पाते हैं। परन्तु कर्म फल समाप्ति उपरांत वे पुनः मनुष्य योनी में मृत्यु लोक (धरती) में लौट आते हैं।

गुरूधारी तथा बिना गुरू धारण किये हुऐ दोनों ही प्रकार के गृहस्थी व कर्म योगी कर्तव्य निष्ठ मानव पित्र लोक में वासा पाते हैं। यहां पर निवास करने वाले जीवों को यहां के नियमानुसार ही जीवन यापन करना पड़ता है।

2 **सालुक्य मुक्ति** :– सर्गुण भक्ति करने वाले भक्त जन सालुक्य मुक्ति अर्थात स्वर्ग में वासा पाते हैं। सर्गुण भक्ति करने के संग संग एक ही ईष्ट की पूजा करने वाले तथा गुरूधारी साधक जन सालुक्य मुक्ति को प्राप्त हो के अपने अपने ईष्ट के लोक में मुत्यु उपरांत स्थान पाते हैं।

एक ईष्टधारी भक्त होने के कारण वे अपने अपने देव लोकों में वासा पाते हैं, जैसे भगवान राम जी के भक्त जन भरतपुर लोक में, भगवान कृष्ण जी के भक्त गौ लोक में, त्रिदेवों में भगवान विष्णु जी के सभी अवतारों को भजने वाले बैकुण्ठ लोक में, भगवान भोलेनाथ जी को भजने वाले शिव लोक में, भगवान ब्रह्मां जी को भजने वाले ब्रह्मलोक में तथा आद्य् शक्ति के विभिन्न विभिन्न देवी रूपों को भजने वाले भक्त जनों को आद्य् शक्ति (भागवत्त) लोक में स्थान मिलता है।

सालुक्य मुक्ति को प्राप्त होने वाली जीवात्माऐं मृत्यु उपरांत मीन चाल से अपने अपने ईष्टों के स्वर्ग लोकों की ओर प्रस्थान करती हैं। पित्र लोक का एक वर्ष स्वर्ग लोक के एक दिन के बराबर होता है अर्थात धरती पर एक दिन के श्रेष्ठ कर्मों का

फल (प्रालब्ध), स्वर्ग लोक में हज़ारों वर्षा तक भौगने को मिलता है अर्थात हज़ारों वर्ष तक जीवात्मां स्वर्ग लोक में कर्म फल भौग कर व कर्म फल समाप्त होने पर पुनः धरती पर मनुष्य रूप में जन्म लेता है।

गृहस्थी व ब्रह्मचारी बड़े बड़े दान पुण्य व लंगर ईत्यादि लगाने वाले परन्तु एक ही ईष्टधारी भक्त जन स्वर्ग लोक में वासा पाते हैं। स्वर्ग लोक में वास करने वाली जीवात्माऐं मनवांछित फल व भौग भौगती हैं तथा श्रेष्ठ कर्मों के फल की समाप्ति उपरांत राजयोग से युक्त होकर मनुष्य बन कर धरती पर जन्म लेती हैं।

3 **सशिप्य मुक्ति** :— निरंकार दायरे के गुरूजनों से दीक्षित तथा ब्रह्म मुहूर्त में शब्द का जाप करने वाले भक्त जन तुरियातीत अवस्था को प्राप्त हो कर शुद्ध ब्रह्म लोक में स्थान पाते हैं। सशिप्य मुक्ति को प्राप्त करने वाले भक्त जन लगभग 80 प्रतिशत तक मन से मुक्त हो जाते हैं परन्तु फिर भी ये मन तरंग से बच नहीं पाते।

स्वर्ग लोक का एक वर्ष शुद्ध ब्रह्मलोक (भगवान निराकार लोक/काल निरंझन लोक) के एक दिन के बराबर होता है अर्थात धरती पर किये गये एक दिन के श्रेष्ठ कर्मों का फल शुद्ध ब्रह्मलोक में लाखों वर्षों तक भौगने को मिलता है। सशिप्य मुक्ति को प्राप्त होने वाले भक्त जन धरती पर मृत्यु उपरांत पपील चाल से गमण करते हुऐ शुद्ध ब्रह्म लोक में वासा पाते हैं। परन्तु शुद्ध ब्रह्मलोक से भी जीवात्माओं के श्रेष्ठ कर्म फलों की समाप्ति उपरांत जीवात्म राजयोग से युक्त हो कर मनुष्य रूप में धरती पर पुनः जन्म लेता है।

शुद्ध ब्रह्म लोक में ब्रह्मचारी, सन्यासी तथा गृहस्थी त्यागने के उपरांत ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले साधक जन ही वासा पाते हैं अर्थात गृहस्थ जीवन जीने वाले साधक जन सशिप्य मुक्ति को प्राप्त नहीं हो सकते, इसी कारण शुद्ध ब्रह्मलोक में ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले श्रेष्ठ भक्त जन ही वासा पाते हैं। यहां पर वासा पाने वाले भक्त जन कंई ऋिद्धियों से युक्त हो कर योगी व योगेश्वर कहलाते हैं। यहां पर वासा करने वाली जीवात्माऐं स्वर्ग व धरती पर पपील चाल से कहीं भी विचरण कर सकती हैं।

4 **सायुज्म मुक्ति** :— निरंकार दायरे की सर्वोच्च मुक्ति सायुज्म मुक्ति है। यहां पर अपने गुरू को संपूर्णतः समर्पित भक्त जन परन्तु निर्गुण रूप में भगवान निरंकार को भजने वाले श्रेष्ठ भक्त जन ही स्थान पाते हैं। ऐसे भक्त जन अंतर्मुखी हो कर सर्वदा भक्ति में ही लीन रहते हैं तथा संसार से बहुत कम मेल जोल रखते हैं।

सायुज्म मुक्ति को प्राप्त होने वाले श्रेष्ठ भक्त जन सुन्न व महां सुन्न लोकों में वासा पाते हैं। सायुज्म मुक्ति को प्राप्त भक्त जन 98 प्रतिशत मन तरंग से मुक्त हो जाते हैं। ये भक्त जन त्रिकाल दर्शी व सब ऋिद्धि सिद्धियों से सम्पन्न होते हैं। सर्व ऋिद्धि सिद्धियों से युक्त होने के कारण ये पल में ही तीन लोकों में कहीं भी आ जा सकते हैं। सायुज्म मुक्ति को प्राप्त भक्त जन योगेश्वर और महां योगेश्वर कहलाते हैं।

सर्व श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न होने के उपरांत भी ये मन से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाते क्योंकि बिन सहज सत मार्ग के पूर्ण 'सतगुरू परमहंस जी' से 'सार सब्द' नां मिल पाने के कारण जीवात्मां कभी भी मन से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सकता और बिन मन से पूर्णतः मुक्त हुऐ सम्पूर्ण मुक्ति अर्थात मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। सायुज्म मुक्ति को प्राप्त श्रेष्ठ भक्त जन सुन्न व महां सुन्न लोकों में सर्व भौगों को भौगते हुऐ अनंत काल उपरांत (अपने श्रेष्ठ कर्मों के फल को भौगने के उपरांत) राजयोग से युक्त हो कर धरती पर मनुष्य रूप में पुनः जन्म लेते हैं।

नोट :– कोई भी भक्त जन संसार में गृहस्थ आश्रम का निर्वाह करते हुऐ सामिप्य और सालुक्य मुक्ति को प्राप्त तो कर सकते हैं परन्तु वे कितने भी श्रेष्ठ व उच्च अवस्था प्राप्त भक्त जन क्युं ना हो, वे सशिप्य और सायुज्म मुक्ति को प्राप्त नहीं हो सकते। केवल पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर के ही भक्त जन इन मुक्तियों को प्राप्त हो सकते हैं।

वे नाम पास दो वस्तुऐं, सार नाम और सुरत नाम।
ब्रह्मण्ड में नहीं किसी पास, सुरति सब्द नाम।।

(दोनों दात सत्तपुरूष जी द्वारा साहिब सत्तगुरू ''वे नाम परमहँस जी'' को प्रदत्त की गई)

—0—